Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SAHITYA SANDESH
MAR-MAY 1947-48 G.K.U.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112997

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्च, अप्रैल १९४७ अंक ९-१

विषय सूची

RT-0560

१—आचार्य केशवदास और उनका काव्य सम्बन्धी मान-दण्ड	श्री सोमनाथ गुप्त एम० ए०	—३५१
२—आचार्य शुक्ल का काव्य सिद्धान्त	श्री शिवनाथ एम० ए०	—३६३
३—हिन्दी उपन्यास साहित्य में नायक का विकास	श्री कान्तिचन्द्र सौनरेक्सा	—३६७
४—प्रकृति के कवि रवीन्द्रनाथ	श्री नलिनीरंजन वन्द्योपाध्याय	—३७४
५—हिन्दी कविता में विरहिणी	श्री डा० नगेन्द्र एम० ए०, डी० लिट०	—३७७
६—कुरुक्षेत्र:युग की ललकार	श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय एम० ए०	—३८२
७—विचार विमर्श		—३८६
८—सम्पादकीय		—३९४
९—साहित्य परिचय		—३९६

प्रकाशक
साहित्य रत्न भंडार
आगरा

एक प्रति
का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्रम स्मृति ग्रन्थ

सम्राट विक्रमादित्य, कालिदास और उनके काल से सम्बन्धित अनुपम लेखों का अपूर्व संकलन। संस्कृति, साहित्य, काव्यशास्त्र, कला, विज्ञान, इतिहास, दर्शन, राजनीति, एवं पुरातत्व पर प्रकाण्ड पण्डितों एवं धुरन्धर विद्वानों की लेखनी से लिखे गये गवेषणा पूर्ण ऐसे लेख अन्यत्र प्रकाशित नहीं हुए। प्राचीन भारत के अतीत गौरव के लिए ग्रन्थ का अध्ययन आवश्यक है। भारत के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त अनेकानेक विद्वानों ने ग्रन्थ की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। ग्रन्थ सुन्दर चित्रों से सुसज्जित है।

ग्रन्थ पर अपनी बहुमूल्य सम्मति प्रदान करते हुए देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद, खाद्य सचिव, गवर्नमेन्ट आफ इंडिया एवं अध्यक्ष विधान निर्मात्रि परिषद लिखते हैं--

"उद्योग स्तुत्य है। ग्रन्थ मूल्यवान है। संग्रह के योग्य है। साहित्य कला तथा भारत के गौरव और बड़प्पन के उच्च एवं सुन्दर भावों का उत्पादक है।"

थोड़ी प्रतियाँ ही बचीं हैं। पृष्ठ संख्या ६१० डेमी साइज ११"×६" मूल्य डाक व्यय सहित केवल तीस रुपये। ग्रन्थ व्ही० पी० पी० द्वारा नहीं भेजा जायगा। लश्कर में लेनेवालों को ग्रन्थ २८ रुपये में दिया जावेगा।

मैनेजर—
आलीजाह दरबार प्रेस,
लश्कर, ग्वालियर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

112997
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
112997

भाग ८] आगरा—मार्च १९४७ [अङ्क ९

आचार्य केशवदास और उनका काव्य सम्बन्धी मान-दण्ड

श्री सोमनाथ गुप्त एम० ए०

प्राचीन कवियों के अध्ययन के लिए एक विशेष सहृदयता की आवश्यकता है। प्रोफेसर सोमनाथजी ने पूर्ण सहृदयता के साथ केशव की कविप्रिया का काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण पाठकों के समक्ष रक्खा है। इसमें कविप्रिया का सार मिल जाता है किन्तु उस सार को पढ़ लेने के पश्चात् भी हमको खेद के साथ कहना पड़ता है कि काव्य के लिए केशव दोषों से बचने का नकारात्मक मान उपस्थित कर सके हैं। दोषों का अभाव मात्र काव्य की आत्मा का स्थान नहीं ले सकता। वर्ण्य विषयों की लम्बी तालिका और अलङ्कार शेष रह जाते हैं वर्ण्य विषय सब कवि-शिक्षा के व्यावहारिक अङ्ग हैं उनका काव्य की आत्मा से उतना ही सम्बन्ध है जितना कि वस्त्रों और आभूषणों का पहनने वाले की आत्मा से। गुप्तजी के सहृदयता पूर्ण पोषण के पश्चात् हमारी भावना यही रहती है कि कम से कम कवि-प्रिया में केशव की दृष्टि बहिर्मुख ही रही है। भावों की अपेक्षा उनकी दृष्टि राज्यश्री की ओर अधिक रही है। उनके विशिष्ट अलङ्कार केवल अभिव्यक्ति के ही अलङ्कार हैं।—सम्पादक

काव्य किसे कहते हैं? काव्य का स्वरूप क्या है? काव्य का लक्ष्य क्या है अथवा उसका क्या प्रयोजन है? काव्य के सामान्य उपकरण कौन से हैं? काव्य के तत्व कितने हैं और उनमें किस की प्रधानता है? काव्य की आत्मा किसे मानना चाहिए?

काव्य-शास्त्र पर लिखने वाले प्रत्येक आचार्य ने उक्त प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया है। किसी का विवेचन विस्तृत है और किसी का संकुचित। ऐसा भी देखा जाता है कि किसी ने काव्य की सीमा का उल्लेख करते हुए उसे 'काव्य के स्वरूप' का विवेचन समझ लिया है और किसी ने 'काव्य के प्रमुख तत्वों का वर्णन' ही काव्य सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर मान लिया है। ऐसी अवस्था में पाठक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े असमञ्जस में पड़ जाता है। लेखक—आचार्य का स्पष्ट मन्तव्य उसके सामने नहीं आपाता और प्रश्नों का उत्तर भी इसलिए अधूरा ही रह जाता है।

संस्कृत की बात जाने दीजिए। उसमें आचार्यों ने वास्तविक अर्थों में विवेचन किया है। 'साहित्य-दर्पण' और 'रस-गंगाधर' इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। परन्तु हिन्दी के आचार्यों ने ऐसा नहीं किया। कभी कभी तो उन्हें 'आचार्य' कहने में इसी कारण संकोच भी होने लगता है। प्रस्तुत लेख में हम केशवदास का मत इस सम्बन्ध में पाठकों के सामने रखते हैं।

केशव के विषय में सामान्य धारणा यही है कि केशव अलङ्कारवादी लेखक थे। काव्य में कला-पक्ष का चमत्कार उन्हें अधिक प्रिय था और अपनी कविता में उन्होंने इसी को प्रधानता दी है।

इसमें सन्देह नहीं कि केशव अलङ्कार-प्रिय थे परन्तु उनकी 'अलङ्कार-भावना' भी सामान्य तत्संबंधी भावना से बहुत कुछ भिन्न थी। 'कवि-प्रिया' इस विषय में उनकी चिंताधारा को बिल्कुल स्पष्ट कर देती है।

केशव ने 'कविता के स्वरूप' की कल्पना 'स्त्री' रूप में की है और अपनी कवि-प्रिया के १६ भावों को उसके १६ शृंगार माना है।

सुवरण जटित पदारथनि, भूषण भूषित मान।
कवि-प्रिया है कवि-प्रिया, कवि की जीवन प्रान॥
केशव सोरह भाव शुभ, सुवरन मय सुकुमार।
कवि-प्रिया के जानिये, यह सोरह शृङ्गार॥

उसके स्वरूप का वर्णन करते हुए वह कहते हैं—

राजत रंच न दोष युत, कविता बनिता मित्त।
बूँद क हाला होतज्यों, गंगाघट अपवित्त॥

इस कथन में भी केशव 'काव्य की आत्मा' को अभी छूने का प्रयत्न नहीं करते।

'कवि साधना' का वर्णन करते हुए केशव कहते हैं,

चरण धरत चिंता करत, नींद न भावत शोर।
सुवरण को सोधत फिरत, कवि व्यभिचारी चोर॥

कवि की साधना यही है कि वह अपनी कविता का एक एक चरण चिन्तन करने के पश्चात लिखता है। अपनी धुन में उसे न तो शिथिलता (नींद) ही अच्छी लगती है और न बेसुरे स्वर (शोर) ही अच्छे लगते हैं। उसका कवि सुन्दर और मधुर वर्णों को सदैव ढूँढ़ता रहता है। इससे स्पष्ट है कि कवि बनना केशव के मतानुसार, कोई साधारण कार्य नहीं है। कवि बनने के लिए चिंतन, उत्साह या ओज, स्वर-साधन और सुन्दर वर्णावली पर पूर्ण अधिकार की आवश्यकता है।

केशव उस काव्य को उत्कृष्ट काव्य मानते हैं जो दोषों से रहित हो। इस विषय का वर्णन उन्होंने विस्तार के साथ किया है। सब मिलकर उन्होंने काव्य के १६ दोष बतलाये हैं। इनमें ५ तो ऐसे हैं जिन पर एक दम दृष्टि जाती है। ये दोष यदि कवि-प्रतिभा और उसके कर्म को मर्यादित करने में सहायक होते हैं, यद्यपि कवि निरंकुश होता है परन्तु केशव उसे यह अधिकार नहीं देते कि वह किसी वस्तु का वर्णन इस प्रकार करे जो कवि-रीति के विरुद्ध है। यदि वह ऐसा करता है, कमल का स्वामी सूर्य न बताकर चन्द्रमा को बताता है, तो वह पंथ-विरोधी 'अन्ध' दोष का भागी है। इसी प्रकार यदि संहरण करने वाले शिवरूप का वर्णन करते हुए कवि उनके विशेषण के रूप में 'रुद्र' और 'उग्र' आदि न लिखकर 'सिद्ध' और 'शिरोमणि' लिखता है तो वह कवि शब्द-विरोधी 'बधिर' दोष का भागी है क्योंकि ऐसा करने से कवि शिष्ट और शिक्षित समाज में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के उपयुक्त प्रयोग से अपनी अज्ञानता प्रदर्शित करता है। छन्द-भङ्ग भी भारी दोष है क्योंकि वह काव्य को 'पंगु' बना देता है, अलङ्कार हीन छन्द रचना नग्न दोष से युक्त मानी जाती है और इसी प्रकार निरर्थक शब्दों के प्रयोग से कविता में 'मृतक' दोष आजाता है।

जैसा ऊपर बताया जाचुका है, केशव के दोषों की सूची में इन पाँच के अतिरिक्त, अगण (गणों का शुभ अशुभ तथा उपयुक्त रूप से छन्दों में अप्रयोग), हीन रस (रस तत्वों का अपरिपाक), गति भङ्ग, व्यर्थ (एक ही छन्द में पूर्वापर विरोध), अपार्थ (छन्द में सुसंगत अर्थों का अभाव), हीन क्रम, कर्ण-कटु, पुनरुक्ति, तथा देश, काल, लोक, न्याय और आगम (शास्त्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोधी दोषों का भी वर्णन है।

इन दोषों के वर्णन से केशव का अभिप्राय काव्य की अभिव्यञ्जना संबन्धी सीमाओं का निर्धारण समझना चाहिए। आगे चलकर केशव अभिव्यञ्जना सम्बन्धी इन सीमाओं में और भी योग दे देते हैं। 'वस्तुवर्णन के प्रसंग में केशव ने रंग की दृष्टि से समस्त पदार्थों को सात रंगों में विभाजित कर दिया है। उनका स्पष्ट मन्तव्य है कि विष्णु, शिव, सूर्य और चन्द्रमा आदि देवता, नारद आदि मुनि; शरद मेघ, चन्द्रिका आदि प्राकृतिक दृश्य; मन्दार तथा घनसार आदि पदार्थ एवं कीर्त्ति, जरा तथा हास आदि सूक्ष्म भावनाओं का चित्रण ऐसे शब्दों द्वारा होना चाहिए जो श्वेत रंग के अभिव्यञ्जक हैं। हरि वाहन हरजटा, चम्पक, दीपक तथा सुरपाल आदि के लिए पीत वर्ण के पर्यायवाची; रामचन्द्र, नीलकण्ठ, आकाश, खंजन, जमुना, किसान तथा कलह, लोभ, क्षोभ, दुख आदि सूक्ष्म मनोभावों का वर्णन श्याम-वर्ण पर्यायवाचियों द्वारा; संध्या, खद्योत गजमुख, रौद्र आदिका रक्तवर्ण पर्यायवाचियों द्वारा; काक-कंठ, खर, मूषक और कपोत आदि का धूम्रवर्ण पर्यायवाचियों द्वारा; व्योम, मरुत मणि और सूर्य, अश्व आदि का नील वर्ण पर्यायवाचियों द्वारा तथा उन समस्त पदार्थों और भावों का जिन में एक से अधिक वर्ण सम्मिलित हैं, दो या अधिक उन्हीं के वर्ण पर्यायवाची शब्दों द्वारा होना चाहिये। ये मिश्रण कई प्रकार के हो सकते हैं।

इससे स्पष्ट है कि कवि की दृष्टि रंग रूप में बड़ी सच्ची और पैनी होनी चाहिये अन्यथा इस वर्णन के दोषयुक्त होने की संभावना रहेगी। ये दोष पंथ, देश, काल, न्याय, आगम आदि किसी भी प्रकार के हो सकते हैं।

कवि का 'वर्ण्य' क्या हो! और कैसा हो! इनके सम्बन्ध में भी केशव बड़े विस्तार में गए हैं। आज कल की विचार-धारा के अनुसार काव्य का सीमा-क्षेत्र (Scope & Subject matter) कुछ भी हो सकता है। साधारण पदार्थ से लेकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव का चित्रण कवि अपनी कविता में करने के लिए स्वतन्त्र है। केशव ने भी इसी प्रकार का विस्तार माना है। भेद इतना ही है कि यह न कह कर उन्होंने अपने विवरण में अनेक पदार्थों के नाम गिना दिए हैं और उनका वर्गीकरण कर दिया है। यह वर्गीकरण वर्ण्य के रूप, गुण, गति, प्रभाव तथा शक्ति आदि के आधार पर किया गया है।

(अ) रूप और आकार—के अंतर्गत कई प्रकार के वर्ण्य आगये हैं।

(१) आवर्त—चकरी; चक्र, अलात (बनेठी) तथा आतपत्र (छाता)

(२) सुवृत्त—गुच्छा, कुंभ, कुच, अंडा।

(३) सुरूप—नल, नलकूबर, हरि-सुत, मदन।

(४) कुटिल—अलक, भृकुंचिका, अहि, कटाक्ष, बालशशि।

(५) त्रिकोण—शकट, वज्रहर, शिव-नेत्र, पावक-कुण्ड।

(आ) गुण और प्रकृति के अनुसार वर्ण्य—

(१) कोमल—पल्लव, माखन, प्रेम, पुण्य, दयालु-मन।

(२) कठोर—मणि, धातु, कुच, भुज-मूल, विरही का चित्त, दुर्जन-दृष्टि।

(३) सुखद—पण्डित, पुत्र, पतिव्रता, विद्या, दान, मान।

(४) दुखद—पाप, पराजय, झूठ, हठ, असहन-शीलता।

(५) तीक्ष्ण—नख, कटाक्ष, नितम्ब, कुच, गुण-लाज मति।

(६) शीतल—मलयज, दाख, कालिंद, प्रिय-संग।

(७) तप्त—रिपु-प्रताप, दुर्वचन, तप्त-वचन, संताप, तृष्णा।

(८) निश्चल—सती, समर, धर्म।

(९) चंचल—तरंग, कुरंग, धन, लोभी-मन, बालक, लक्ष्मी।

(१०) मधुर—प्रियाधर, सोमकर, माखन, दाख, बालक की तोतरी भाषा, कवि उक्ति, महुआ, मिश्री।

(इ) गति के अनुसार :

(१) मंदगति—कुलतिय, कुवजन का हास विलास शनि और गुरु की गति, हंस तथा गज आदि की गति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) अगति—सिंधु, गिरि, वापी, कूप ।

(३) सदागति—पवन ।

(ई) सात्विक भाव तथा क्रिया के अनुसार :

(१) गुरुलाज ।

(२) सत्य ।

(३) झूठ ।

(४) दान—गौरीदान, रामचन्द्र, हरिश्चन्द्र, वार्ता आदि का दान ।

(उ) ध्वनि के अनुसार :

(१) क्रूर स्वर—झींगुर, साँप, उलूक, महिषी, काल, श्वान ।

(२) सु-स्वर—केकी, कोकिल, तंत्री, दुंदभी ।

(ऊ) शक्ति के अनुसार :

(१) अबल—पंगु, गूँगा, रोगी, अंधा, अनाथ ।

(२) बलिष्ठ—पवन, पवन-दूत, परमेश्वर, सुरपाल, अदृष्ट ।

(ए) समष्टि रूप से :

मंडल—कुंडल मंडल, मुद्रिका मंडल, आल बाल मंडल, रविमंडल ।

(ऐ) सम्पूर्ण वर्णन के आधार पर (इनका वर्णन सम्पूर्ण रूप से होना चाहिये) ।

सम्पूर्ण—अंबुज, आनन, आरसी और संत सुप्रेम प्रकाश ।

वर्ण्य-विषय सम्बन्धी उपरोक्त तालिका के अतिरिक्त केशव की आचार्य प्रतिभा काव्य विषय की विवेचना में और भी अधिक गहरी गई है । इन विषयों को उन्होंने दो प्रकार के 'भूषण' माना है— 'भूमि-भूषण और राज्यश्री भूषण'। इनका वर्गीकरण भी इसी प्रकार से किया गया है ।

भूमि भूषण केशव ने १२ माने हैं ।

देश नगर वन बाग गिरि आश्रम सरिता ताल ।
रवि शशि सागर भूमि के भूषण ऋतु सबकाल ॥

प्रत्येक भूषण के अन्तर्गत केशव ने यह भी बताया है कि उन प्रसंगों में कौन-कौन से अन्य प्रासंगिक वर्णन आने चाहिए ; यथा—

देश—रत्न, पशु, पक्षी, बधू, वसन, सुगन्ध, सुवेश, नदी, नगर, गढ़, भाषा ।

नगर—खाईकोट, अटा ध्वजा, वापी, कूप, तड़ाग, वारनारि, असती, सती, भिन्नभाग ।

बन—सुरभी, वनजीव, भूतप्रेत, भय, भिल्ल-भवन बल्ली, विटप, दव, (निवासी)

गिरि—शृंग, दीरघ दरी, सिद्ध, सुन्दरी धातु, सुर, नर औषधि, निरझर, (शान्ति) ।

आश्रम—होमधूम, ब्रह्मघोष, मुनिवास, सिंहादिक पशु, मृग, मोर का वैर नाश ।

सरिता—जलचर, हय, जलज, तट, मुनिवास और यज्ञकुंड, स्नान, पवित्रता ।

बाग—लतायें, तरुवर, कुसुम, कोकिल और मोर कलरव, भँवरे का अनुराग वर्णन ।

तड़ाग—लहर, खग, पुष्प, पशु, सुरभी, समीर, तमाल, करम-केलि, जलचर ।

समुद्र—तुंग लहरें, गंभीरता, रतन, जंतु, गंगासंगम देवियाँ, यान, विमान, पहाड़, बड़वानल, चन्द्रोदय, समय, ज्वार, पन्नग तथा देव, अदेव का घर ।

सूर्योदय—अरुणता, पावनता, शंखवेद ध्वनि मुनियों द्वारा, पंथ का चालूहोना, कोक कोकनद शोकहर, कुवलय और कुलटाओं को दुखदायी, तारा, ओषधि, चन्द्रमा, दीप, घू-घू, चोर और तम के लिए हानिकारक ।

चन्द्रोदय—कोक कोकनद को दुखद मानिनि और कुलटाओं को दुखद तथा कुवलय, जलधि और चकोर को सुखद ।

ऋतुवर्णन–१ वसन्त—पुष्प, अलि कोकिलरव, वन शोभा, कोमल सुगंधित समीर ।

(२) ग्रीष्म—तप्त समीर, सुख और जल; सरिता, ताल का सूखना, जल और थल में जीव की निर्बलता तथा आप का फलित होना ।

(३) वर्षा—हंसों बकों का पयान; चातक दादुर और मोर रव, केतकी, कंज कदम्ब और घनघोर बिजुली का वर्णन ।

(४) शरद—निर्मल आकाश में शशि प्रकाश, काश और कमल का विकास, पंथी, पितर और राजाओं की यात्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य शुक्ल का काव्य-सिद्धान्त

श्री शिवनाथ एम० ए०

इस लेख को हमने अध्ययन अंक के लिए आमन्त्रित किया था। देर में आने के कारण हम उसमें न दे सके। आचार्य शुक्लजी की काव्य दृष्टि व्यापक और समन्वयशील थी। उसमें जीवन की धूप छाँह और शुक्ल और कृष्ण पक्ष दोनों के लिए ही स्थान था। उनके लिए जीवन-कुसुम शैया नहीं थी जिसमें सब कोमल ही कोमल हों। वे जीवन के सुखमय साध्य-पक्ष के साथ-साथ कठोर प्रयत्नशील साधना-पक्ष के भी समर्थक थे। तुलसी का रामचरित मानस इसी कठोर प्रयत्नमय साधनावस्था के ही कारण उनका उपास्य ग्रन्थ था।

शुक्ल भाव और विभाव पक्ष दोनों को ही महत्व देते थे। विभाव पक्ष के अभाव या क्षीणता के ही कारण वे रहस्यवाद के पक्ष में न थे। शुक्लजी की इसी समन्वयशील वस्तुगत (objective) प्रतिभा का परिचय लेखक ने दिया है। साथ ही उनके रस और साधारणीकरण सम्बन्धी सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डाला है।—सम्पादक

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करने वाले समीक्षक थे और इसी तथ्य को दृष्टि-पथ में रखकर उन्होंने सर्वत्र साहित्य की मीमांसा की है। वे लोकवादी भी थे। वे वैसे ही साहित्य या साहित्यकार को महत्व देते थे जिसके द्वारा "सुरसरि सम सब का हित होई।" इसी लोकवाद के कारण वे व्यक्तिवादी अथवा सीमित क्षेत्र में ही प्रसारित साहित्य या साहित्यकार को विशेष महत्व नहीं देते थे। काव्य-सिद्धान्त की स्थापना में भी वे अपने इन मतों को लेकर चले हैं। काव्य के विषय की व्यापक सीमा पर विचार करते हुए वे कहते हैं—"काव्य-दृष्टि कहीं तो १—नरक्षेत्र के भीतर रहती है। कहीं २—मनुष्येतर बाह्य-सृष्टि के और ३—कहीं समस्त चराचर के।" (चिन्तामणि पहिला भाग पृष्ठ १६६) नरक्षेत्र के अन्तर्गत मनुष्य के बाह्यान्तर दोनों रूपों के चित्रण से तात्पर्य समझना चाहिए। कवियों की दृष्टि नर-क्षेत्र पर ही विशेष गई है। जिस क्षेत्र को लेकर चलने में

की तैयारी।

(५) हेमंत—तेल, रुई, स्त्री और रतिवंतों की तपन बड़ी रातें और छोटे दिन।

(६) शिशिर—राजा और रंक का नाच, गाना हँसना, दिन में क्रीड़, रात्रि में निशंकता, सरसता।

राज्य श्री के भूषणों—में केशव ने निम्न प्रसंग माने हैं—

१ राजा, २ राजपत्नी, ३ राजकुमार, ४ प्रोहित, ५ दल-पति, ६ दूत, ७ मंत्री, ८ मंत्रीपति, ९ पयान, १० हय, ११ गज, १२ संग्राम, १३ आखेट, १४ जल-केलि, १५ बिरह, १६ स्वयंवर, १७ सुरति,—

तत्पश्चात् भूमि भूषण के अनुसार राज्य श्री के प्रत्येक भूषण के अनुकूल प्रसंगों का उल्लेख भी केशव ने ही किया है।

ऊपर जिन प्रसंगों का उल्लेख हुआ है उन सब को केशव काव्य के 'सामान्य अलंकार' मानते हैं। इस व्याख्या से पता चलता है कि केशव की अलंकार-भावना कितनी विस्तृत और व्यापक है। इससे यह भी मालूम होता है कि संसार और उसके विषय में उनकी जानकारी कितनी सूक्ष्म और पूर्ण थी।

सामान्य अलंकारों के अतिरिक्त काव्य का एक और भी महत्वपूर्ण अंश है जो वर्ण्य-विषय सम्बन्धी कवि-भावों की उद्भूत की व्यंजना से संबध रखता है। इस प्रकरण को केशव 'विशिष्ट-अलंकार' के नाम से पुकारते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्येतर बाह्य-प्रकृति और समस्त चराचर भी आगए हैं।

नरक्षेत्र पर दृष्टि रखकर चलने वाले काव्य की अपेक्षा नरेतर सृष्टि पर भी दृष्टि रखकर चलने वाले काव्य का महत्व अधिक है। इसी प्रकार समस्त चराचर को दृष्टिपथ में रखकर चलने वाले काव्य का महत्व और भी अधिक है। आचार्य शुक्ल ने काव्य की इस विस्तृत विषय-सीमा के अनुसार ही काव्य की परिभाषा का रूप भी स्थापित किया है। वे कहते हैं—"हृदय पर नित्य प्रभाव रखने वाले रूपों और व्यापारों की भावना के सामने लाकर कविता बाह्य-प्रकृति के साथ मनुष्य की अन्तःप्रकृति का सामञ्जस्य घटित करती करती हुई उसकी भावात्मक सत्ता के प्रसार का प्रयास करती है।" (वही पृष्ठ १६६) काव्य के रूप के विषय में आचार्य शुक्ल ने किसी न किसी रूप में ऐसी ही बातें सर्वत्र कही हैं।

(२)

आचार्य शुक्ल द्वारा निर्धारित काव्य-विषय के तीन रूपों की चर्चा ऊपर हुई है। काव्य के इन विषयों से मानव अनन्त काल से परिचित है। ऐसी अवस्था में ऐसे विषयों के प्रति उसके हृदय में वासना की स्थिति वंश-परम्परानुगत रूप से भी हो गई है। परन्तु नागरिक-सभ्यता के उत्तरोत्तर विकसित होते जाने के कारण काव्य विषय के इन प्रकारों के मूल वा आदिम रूपों से मानव दूर होता जा रहा है। काव्य विषय के मूल वा आदिम रूपों के प्रति मानव हृदय में जो वासनाएँ वा भावनाएँ हैं उनको सभ्यता के नए-नए पर्दे ढँकते जा रहे हैं। आचार्य शुक्ल का कथन है कि ज्यों-ज्यों इस प्रकार के आवरण मन की वृत्तियों पर चढ़ते जायँगे "त्यों-त्यों एक ओर तो कवि की आवश्यकता बढ़ती जायगी, दूसरी ओर कवि-कर्म कठिन होता जायगा।" (वही पृष्ठ १६७) ऐसा इसलिए होगा कि मानव हृदय के सम्मुख काव्य विषय के मूल और आदिम रूपों को सभ्यता के आवरणों से बाहर निकाल कर रखना होगा और इन विषयों को मूर्त और गोचर रूपों में सामने रखना होगा। आचार्य शुक्ल का कथन है कि इन विषयों को मूर्त और गोचर रूपों में इसलिए रखना होगा कि "काव्य में अर्थ ग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिम्बग्रहण अपेक्षित होता है। यह बिम्बग्रहण निर्दिष्ट, गोचर और मूर्त विषय का ही हो सकता है।" (वही पृष्ठ ११८)

काव्य-रचना की प्रक्रिया में अर्थ ग्रहण वा बिंबग्रहण कराने अथवा श्रोता, पाठक वा दर्शक के संमुख समुचित आलम्बन उपस्थित करने में कल्पना वा भावना का बहुत महत्व है। "जो वस्तु हमसे अलग है, हमसे दूर प्रतीत होती है, उसकी मूर्ति मन में लाकर उसके सामीप्य का अनुभव करना ही उपासना है। साहित्य वाले इसी को 'भावना' कहते हैं और आजकल के लोग कल्पना।" (वही, पृष्ठ २१६-२०) 'उपासना' भावयोग का ही एक अङ्ग है, धार्मिक क्षेत्र में इसे 'ध्यान' कहा जाता है। कल्पना के दो रूप हैं—विधायक और ग्राहक। प्रथम का सम्बन्ध कवि से है और द्वितीय का श्रोता, पाठक वा दर्शक से।

आचार्य शुक्ल ने काव्य-रचना के उपकरण कल्पना और चमत्कारवाद को, जिसके अन्तर्गत अलङ्कार को लिया है, काव्य का साधन ही माना है, साध्य नहीं। 'चमत्कार' से उनका तात्पर्य उक्ति के चमत्कार से है जिसके भीतर वर्ण-विन्यास की विशेषता, शब्दों की क्रीड़ा, वाक्य की वक्रता या वचन भङ्गी और अप्रस्तुत वस्तुओं का अद्भुतत्व अथवा प्रस्तुत वस्तुओं के साथ उसके सादृश्य या सम्बन्ध की अनहोनी या दूरारूढ़ कल्पना आदि आती है। आचार्य शुक्ल चमत्कार को भी काव्य के लिए आवश्यक मानते हैं, परन्तु उतने ही चमत्कार को वे उपयोगी स्वीकार करते हैं जितने से किसी भाव की अनुभूति में तीव्रता आए। वे काव्य और सूक्ति में अन्तर करते हैं। जो उक्ति स्वयः भाव में लीन करे वह तो काव्य है, और जो केवल कवि की कथन-चातुरी के दर्शन की ही ओर मन को प्रवृत्त करे वह सूक्ति है, काव्य श्रेष्ठ है, सूक्ति नहीं।

काव्य का परम लक्ष्य होता है रूप-विधान, इसी कारण जगन्नाथ पंडित राज ने कहा है—"रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।" इस रूप-विधान के लिए भाषा की लक्षणा शक्ति का उपयोग करना पड़ता है, जाति-संकेतवाले शब्दों की अपेक्षा विशेष रूप-व्यापार सूचक शब्द अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखने पड़ते हैं। पारिभाषिक शब्दों का बहिष्कार करना पड़ता है, ऐसे शब्दों का लाना 'अप्रतीतत्व' दोष माना गया है। भाषा में नाद-सौन्दर्य की योजना करनी पड़ती है। काव्य-भाषा में व्यक्तियों के नाम न लाकर उनके रूप, गुण, कार्य-बोधक शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

(३)

हिन्दी-साहित्य में रीतिकाल के आ जाने से बहुत दिन तक लोगों में यह धारणा बनी रही कि कविता का लक्ष्य मनोरंजन मात्र है, वह ठाले बैठे लोगों की वस्तु है। कविता का कोई उच्च लक्ष्य नहीं है। इस धारणा को निराधार साबित करने के लिए इधर अनेक लोगों को प्रयत्न करना पड़ा; उनमें से आचार्य शुक्ल भी एक हैं। उनका कथन है— 'मन को अनुरंजित करना, उसे सुखी या आनन्द पहुँचाना ही यदि कविता का अन्तिम लक्ष्य माना जाय तो कविता भी केवल विलास की एक सामग्री हुई।' (वही पृष्ठ २२३) परन्तु बात ऐसी नहीं है। कविता विलास की परिस्थिति उपस्थित कर मनुष्य को अकर्मण्य नहीं बनाती; वरन् 'कविता तो भावप्रसार द्वारा कर्मण्य के लिए कर्मक्षेत्र का और विस्तार कर देती है।' (वही पृष्ठ २१६) इस प्रकार काव्य और जीवन-निर्वाह अथवा व्यवहार में कोई विरोध नहीं है। आचार्य शुक्ल कविता का लक्ष्य इससे भी ऊँचा मानते हुए कहते हैं—'कविता ही हृदय को प्रकृत दशा में लाती है और जगत् के बीच क्रमशः उसका अधिकाधिक प्रसार करती हुई उसे मनुष्यत्व की उच्चभूमि पर ले जाती है। भावयोग की सबसे उच्च कक्षा पर पहुंचे हुए मनुष्य का जगत् के साथ पूर्ण तादात्म्य हो जाता है, उसकी अलग भावसत्ता नहीं रह जाती, उसका हृदय विश्व-हृदय हो जाता है। उसकी अश्रुधार में जगत् की अश्रुधारा का, उसके हास-विलास में जगत् के आनन्द-नृत्य का, उसके गर्जन-तर्जन में जगत् के गर्जन-तर्जन का आभास मिलता है।' (वही पृष्ठ २१६) आचार्य शुक्ल काव्य की इस उच्चभूमि की चर्चा कर उसके चरम लक्ष्य रस की ओर संकेत करते हैं। वे 'हृदय की मुक्तावस्था' को रस दशा मानते हैं। मुक्तावस्था कब आती है, इस पर विचार करते हुए वे कहते हैं कि जगत् के 'इन रूपों और व्यापारों के सामने जब कभी वह अपनी पृथक् सत्ता की धारणा से छूट कर अपने आप को बिलकुल भूलकर-विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है, तब वह मुक्त-हृदय हो जाता है।" (वही पृ० १६२) आचार्य शुक्ल की दृष्टि से यही रसावस्था है और इस अवस्था तक कविता पहुँचाती है।

रस-दशा तक पहुँचाने के लिये कवि को किन प्रतिक्रियाओं का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है, इस पर भी आचार्य शुक्ल ने विचार किया है। आचार्य शुक्ल का कथन है कि रसोद्बोध वा रसानुभूति के लिये श्रोता पाठक वा दर्शक के साथ आलंबन का साधारणीकरण और आश्रय का तादात्म्य आवश्यक है। 'जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यतः सबके उसी भाव का आलंबन हो सके तब तक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती। इसी रूप में लाया जाना हमारे यहाँ 'साधारणीकरण' कहलाता है।' (वही पृ० ३०८) यह भाव का विषय पहले ज्ञानेन्द्रियाँ उपस्थित करती हैं, फिर इनके द्वारा उपस्थित सामग्री को कल्पना लेकर रसोद्बोध के उपयुक्त उनकी योजना करती है। आश्रय के साथ तादात्म्य का तात्पर्य यह है कि काव्य वा नाटक में आश्रय के हृदय में जो भाव उठते हैं वे ही भाव कवि अपनी शक्ति द्वारा श्रोता पाठक और दर्शक में भी उठाए। कुछ काव्य ऐसे होते हैं जिनमें आलंबन का चित्रण नहीं रहता वे केवल भाव-प्रदर्शक काव्य होते हैं, ऐसी परिस्थिति में श्रोता वा पाठक अपनी रुचि, योग्यता, भावना आदि के अनुसार आलंबन का आरोप कर लेता है।

यह तो रस की उच्चकोटि की दशा की मीमांसा हुई, जिस पर भारत के प्राचीन साहित्याचार्यों ने विचार किया है। आचार्य शुक्ल का कथन है कि रस की इससे एक नीची कोटि भी होती है, जिस पर इन आचार्यों की दृष्टि नहीं गई है। ऊपर इस पर विचार हुआ है कि रस की उच्चावस्था में आश्रय के साथ श्रोता वा दर्शक का तादात्म्य होना चाहिये, परन्तु इसकी कुछ नीची अवस्था में "श्रोता या दर्शक का हृदय उस पात्र के हृदय (आश्रय के हृदय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अलग रहता है—अर्थात् श्रोता या दर्शक उसी भाव का अनुभव नहीं करता जिसकी व्यंजना पात्र अपने आलंबन के प्रति करता है, बल्कि व्यंजना करने वाले उस पात्र के प्रति किसी और ही भाव की व्यंजना करता है। यह दशा एक प्रकार की रस दशा ही है—यद्यपि इसमें आश्रय के साथ तादात्म्य और उसके आलंबन का साधारणीकरण नहीं होता।....बल्कि श्रोता या पाठक उक्त पात्र के शील द्रष्टा या प्रकृति द्रष्टा के रूप में प्रभाव ग्रहण करेगा और यह प्रभाव भी रसात्मक ही होगा पर इस रसात्मकता को हम मध्यम कोटि की ही मानेंगे।" (वही पृ० ३१४) आचार्य शुक्ल का कथन है कि इस दशा में भी एक प्रकार का तादात्म्य और साधारणीकरण होता है।" (वही पृष्ठ ३१५) उच्चकोटि की रसानुभूति और इस मध्यम कोटि की रसानुभूति में अन्तर है। मध्यम कोटि की रसानुभूति में "श्रोता या पाठक अपनी पृथक सत्ता अलग सँभाले रहता है" और उच्च कोटि की रसानुभूति में "अपनी पृथक सत्ता का कुछ क्षणों के लिए विसर्जन कर आश्रय की भावात्मक सत्ता में मिल जाता है। (वही पृष्ठ ३१६) मध्यम कोटि की रसानुभूति का सम्बन्ध व्यक्ति-वैचित्र्यवाद से है, जिसके साक्षात्कार से केवल तीन अवस्थाएँ उत्पन्न हो सकती हैं—आश्चर्यपूर्ण प्रसादन, आश्चर्यपूर्ण अवसादन और कुतूहल मात्र।

इस मध्यम कोटि की रसानुभूति की स्थापना के अतिरिक्त आचार्य शुक्ल ने रसात्मक बोध के कुछ और रूपों की भी स्थापना की है, जो दर्शक को रस की पूर्णावस्था तक पहुँचाते हैं। आचार्य शुक्ल का कथन है कि कल्पित रूप-विधान द्वारा रसानुभूति की मीमांसा तो आचार्यों ने भी की है और इसके द्वारा रसावस्था की प्राप्ति मानी है, परन्तु प्रत्यक्ष रूप-विधान और स्मृत रूप-विधान द्वारा भी भावुक हृदय उसी रसावस्था का अनुभव करता है जिस रसावस्था का अनुभव कल्पित रूप-विधान द्वारा होता है। यहाँ प्रत्यक्ष से तात्पर्य केवल चाक्षुष-ज्ञान से ही नहीं, वरन् कान, नाक, जिह्वा और त्वचा के प्रत्यक्ष ज्ञान से भी है। प्रत्यक्ष रूप-विधान द्वारा रसानुभूति की मीमांसा करते समय आचार्य शुक्ल की दृष्टि प्रकृति के प्रत्यक्ष-दर्शन द्वारा रसानुभूति पर विशेष है।

स्मृत रूप-विधान की मीमांसा करते समय आचार्य शुक्ल ने स्मृति के दो रूपों पर विचार किया है—विशुद्ध स्मृति और प्रत्यक्षाश्रित स्मृति या प्रत्यभिज्ञान। इसी स्मृत रूप-विधान के अन्तर्गत स्मृत्याभास कल्पना की मीमांसा हुई है जिसमें "पहले देखी हुई वस्तुओं या बातों के स्थान पर या तो पहले सुनी या पढ़ी हुआ बातें हुआ करती हैं अथवा अनुमान द्वारा पूर्णतया निश्चित।" (वही पृष्ठ ३५०) आचार्य शुक्ल इन सभी प्रकार के रूप-विधानों में उच्चकोटि की रसानुभूति मानते हैं।

(२)

रस-सिद्धान्त पर भी उन्होंने मौलिक ढङ्ग से विचार किया और इसके विषय में अपने ढङ्ग से तर्क उपस्थित किए। साधारणीकरण, रस की मध्यम कोटि (व्यक्ति-वैचित्र्यवाद) प्रत्यक्ष तथा स्मृत-रूप विधान में उच्चकोटि की रसानुभूति आदि की उनकी मौलिक स्थापनाएँ हैं। कहना न होगा कि रस-सिद्धान्त की मौलिक स्थापना करते समय उनकी दृष्टि शास्त्रवाद पर अत्यन्त कम और जीवनगत व्यवहार और अनुभूति पर अत्यधिक है, इसी कारण वे मौलिक सिद्धान्तों की स्थापना भी कर सके। आचार्य शुक्ल ने अपनी दृष्टि से वस्तुओं की छानबीन करके सिद्धान्तों की स्थापना की है। इस प्रकार विवेचना कर सिद्धान्तों की स्थापना करने वाले समीक्षक देशी तथा विदेशी साहित्य में भी कम हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी उपन्यास साहित्य में नायक का विकास

(लेखक—श्री कान्तिचन्द्र सौनरेक्सा)

हिन्दी का उपन्यास क्षेत्र पर्याप्त रूप से विस्तृत है। गत सौ वर्ष के भीतर उपन्यास साहित्य ने जिन मंजिलों को तय किया है उनका विद्वान लेखक ने अपने समाजवादी दृष्टिकोण से बड़ा कौशलपूर्ण पर्यवेक्षण किया है। हमें खेद है कि स्थानाभाव के कारण हमें उसमें काट-छाँट करनी पड़ी है। सौनरेक्सा जी ने जो प्रारम्भ में तिलिस्मी, जासूसी तथा नीतिवादी उपन्यासों का दिग्दर्शन कराया है उसको हमने छोड़ दिया है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य के प्रथम पचास वर्षों के दो चरण समाप्त कर बीसवीं शताब्दी प्रारम्भ होती है। उसी के लगभग प्रेमचन्द जी ने हिन्दी के अधकचरे सामाजिक नायक को बल, बुद्धि और प्रौढ़ता प्रदान की। प्रेमचन्द की नवीन प्रेरणा का स्रोत आर्यसमाज के अतिरिक्त राजनीति में नवोदित गाँधीवाद का बढ़ता हुआ प्रभाव भी था।

तिलिस्मी और अर्धसामाजिक उपन्यासों में सामाजिक बन्धनों से रहित और व्यक्तिगत शौर्य तथा गर्व की केवल मध्यकालीन भावनाओं से संयुक्त चरित नायकों के साथ साथ खलनायक भी पाये जाते हैं; उनमें सामाजिक अथवा वस्तुगत परिस्थितियाँ नहीं, खलनायकों की दुष्टता ही उपन्यास के कथानक का अधिकतर विकास और चरित नायक के चरित्र का निर्माण करती है। प्रेमचन्द ने देखा कि हमारी वर्तमान समाज-व्यवस्था में उन्मुक्त प्रेम को कोई स्थान नहीं है; सभी इन्सान न्यूनाधिक मात्रा में भले-बुरे हैं, अतः उनके उपन्यासों में खलनायक को कोई स्थान नहीं मिला, यदि हम मान लें कि रूढ़िगत अर्थानुसार प्रेमाश्रम का ज्ञानशंकर एक सर्वथा खलनायक नहीं है। चरितनायक को छोड़कर प्रेमचन्द के अन्यान्य पात्र दुर्बल दुष्ट, दुराचारी, आदि हो सकते हैं, किन्तु चरितनायक के मुकाबिले में वे किसी भी तरह से खलनायक नहीं कहे जा सकते। हिन्दी उपन्यास के नायक के विकास में इस आधारभूत तथ्य को उन्नति की ओर एक उच्चतर सोपान मानना चाहिये।

ध्यान देने की दूसरी आधारभूत बात यह है कि प्रेमचन्द के उपन्यासों की नायिकायें बड़ी सकर्मक बड़ी प्राणवान हैं, तिलिस्मी उपन्यासों की प्रेम की कठपुतलियों की तरह नहीं जिनसे प्रेम और विवाह करने के लिये, मध्यकालीन प्रवृत्ति के चरितनायक और खलनायक परस्पर तलवारें खड़काते हों। प्रेमचन्द की नायिकायें अक्सर ही उनके नायकों से ऊपर उभरने लगती हैं, उनसे अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होती हैं; जीवन के भावना-क्षेत्र में उनसे ऊँची उठ जाती हैं, जीवन के कर्मक्षेत्र में उनसे आगे बढ़ जाती हैं। प्रतिज्ञा की प्रेमा और सेवासदन की सुमन, रंग-भूमि की सोफिया और कर्म-भूमि की सकीना, गबन की जालपा और निर्मला की निर्मला; और गोदान की उस महान धनिया के नाम सम्पुष्ट प्रमाण हैं।

प्रेमचन्द के प्रथम उपन्यास प्रतिज्ञा का नायक अमृतराय भीष्म प्रतिज्ञ है; किन्तु उसकी वह प्रतिज्ञा पथ-भ्रष्ट थी; परन्तु नायिका प्रेमा अन्त तक जीवन से जूझती रहती है। सेवासदन का नायक पदनसिंह चरित्रहीन (दुश्चरित्र नहीं।) व्यक्ति है उसकी अपेक्षा तो उसके चाचा पद्मसिंह कहीं अधिक कर्मशील और प्रबुद्ध हैं। वास्तव में उसकी नायिका सुमन ही उसकी नायक भी है। दुर्बल और शक्की तोताराम की अपेक्षा आत्मरक्षा की चेष्टा में सतत संलग्न किंतु परम सद्भावनामयी निर्मला ही अपने नामराशि उपन्यास की प्राण है। गोदान में धनिया ही संचालक एवं संवाहक शक्ति है, वही जिंदगी को आगे बढ़ाती है। उसमें बिजली बनकर जान डालती है। जीवन की प्रगति को अवरुद्ध करनेवाली परम्परागत अवनतिशील प्रथाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामजस्यहीन भावनाओं, जर्जर रूढ़ियों, खण्डित मान्यताओं, का वह प्रतिरूप होरी हिन्दुस्तान की मिट्टी में बट वृक्ष की भाँति दृढ़ खड़ा है—घना और गम्भीर किंतु स्थिर और निश्चल। जर्जरित, गतिरुद्ध, प्रतिक्षण खण्ड खण्ड होती हुई भारतकी पंगु प्राचीनता का यह प्रतिनिधि होरी वास्तव में एक महान चरित्र-चित्रण है। परन्तु आज जीवन-मरण के हमारे संघर्ष में मजूर-किसान, दलित-शोषित, दीन-हीन की जागृति की प्रतिनिधि धनिया अर्थात् विदेशी साम्राज्य-वाद और देशी पूँजीवाद की कसी जंजीरें तोड़ती हुई भारतमाता महानतर है। **समाज और उसके अधिनायक पुरुष द्वारा युग युग से संत्रस्त और संतप्त भारतीय नारी को प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में नई परिभाषा, नई वाणी, नई जिंदगी मिली। नवीन भारतीय संस्कृति को हमारे महान उपन्यासकार की यह एक महानतम सामाजिक देन है।**

गबन का नायक रमानाथ नासमझ, डरपोक और गैरदुनियादार आदमी है, जो अपने परिवार को मुसीबतों के गड्ढे में ढकेल देता है। नायिका जालपा उन नारी-सुलभ संस्कारगत मनोवृत्तियों की दास है जो अपने आप में कोई भयंकर दुर्गुण न होते हुए भी निम्न मध्यवर्गीय भारतीय परिवार के आर्थिक कंकाल के लिए अभिशाप बन जाती हैं। फिर भी वह अपने पति की नासमझी से उत्पन्न विकट परिस्थिति से परिचित होते ही अपने परिवार को उबार लेती है और बड़ी समझदारी तथा कर्मशीलता का परिचय देती है। 'रंगभूमि' में आदर्श-चरित्र सूरदास है और चरितनायक विनय। गांधीजी का प्रतीक सूरदास शायद हिन्दी उपन्यास-साहित्य का प्रथम गान्धीवादी नायक है, जिसका विश्वास है कि गान्धीवाद द्वारा ही मानवता का त्राण सम्भव है और यही प्रेमचन्द की तत्कालीन दार्शनिक स्थापना थी, मान्यता थी; हालाँकि इससे भी पहले वह प्रेमाश्रम में साम्यवादी नायक प्रेमशंकर की बड़ी साहसिक कल्पना कर चुके थे। उस जमाने में साम्यवाद से उनका परिचय अवश्य ही सुना-सुनाया और दूर का था। यही कारण है कि आगे प्रेमशंकर का विकास न होकर सूरदास आता है और आगे बढ़कर कायाकल्प का रहस्यमय-सा चक्रधर। गान्धी कल्पित जीवन की सरलता दरिद्रता की सीमा को छूने लगती है और वही फिर जीवन की गतिमयता, उसकी उन्नत-विकास, उसकी शक्ति की विरोधिनी बन जाती है, यह प्रेमचन्द नहीं सोच सके थे। दरिद्रनारायण की प्रतिष्ठा के लिए पूँजीवादी समाज में दरिद्रता की सत्ता अनिवार्य है। इसी कारण पूँजीवादी नीतिशास्त्र और अध्यात्मवाद दरिद्रता को दिव्यता से विभूषित करता है। उसे वरदान की संज्ञा देता है, उसे एक सद्‌गुण मानने की प्रवंचना खड़ी करता है। व्यक्ति के बाद वह समस्त समाज को दरिद्र बनाने का आयोजन करता है। जिस सुख का सुखद स्वप्न दरिद्र को दिखाया जाता है, उसका आधिभौतिक और आध्यात्मिक भोग दरिद्र को दान देकर पूँजीपति पाता है। प्रेमचन्द ने किसी तर्क-प्रणाली का आश्रय नहीं ग्रहण किया, उनकी करुणा, उनकी अन्तर्भूत मानवीयता ही इतनी तीव्र, प्रखर और प्रचुर थी कि सचेत रूप से वह किसी ऐसी प्रतिगामी विचारधारा के पोषक नहीं बन सकते थे। जो संस्कारगत दुर्बलतायें आगे थीं, वे उन्होंने अपने समय से, अपने समाज से विरासत में पाई थीं, किन्तु प्रेमचन्द उन से निरन्तर जूझते रहे। विनय का सोफिया से प्रेम होता है, किन्तु विवाह नहीं। तत्पश्चात् कर्म-भूमि में अमरकान्त प्रेमचन्द का प्रथम नायक है जो प्रेम की सम्भ्रात अथवा बुर्जुआ (सुसंस्कृत नहीं) परम्परा को छोड़कर ग्राम्य-बाला मुनिया से और फिर दरिद्र पठान किशोरी सकीना से प्रेम करने का साहस करता है और प्रतीत होता है कि यदि वह विवाहित न होता, तो उससे शादी भी कर लेता। किन्तु गोदान का गोबर, झुनिया को बिना फेरे डाले भी घर ले आता है।

इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यास-नायक का विकास एक नितान्त सीधे रेखाक्रम में कालक्रमानुसार न होकर एक वक्र रेखाक्रम में होता है, जिसका उच्चतम बिन्दु प्रेमशंकर है और अन्यतम एवं अन्तिम होरी। प्रेमचन्दी नायक के इस विषम-विकास का कारण हमारे उपन्यास-सम्राट की एक ओर तो असीम मानवीयता से परिपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभूतिशीलता थी और दूसरी ओर यथार्थ तथा आदर्श की उनकी अपनी धारणा, अपनी परिभाषा थी। 'आदर्शोन्मुख यथार्थवादी' उपन्यास को वह उच्चकोटि का मानते थे।* और कहते थे कि "यथार्थवाद का यह आशय नहीं कि हम अपनी दृष्टि को अन्धकार की ओर ही केन्द्रित करें।"‡ परन्तु प्रकाश की ओर दृष्टि फेरते ही प्रेमचन्द उसका नाम आदर्शवाद रख देते थे। यथार्थवाद को वह कमजोरियों और कुरीतियों की पर्यायवाची अभिव्यक्ति समझते रहे। यथार्थ का अर्थ कभी भी 'अच्छा' और 'आदर्श' हो सकता है, यह उन्होंने कभी विचार नहीं किया। फलस्वरूप उनका नायक सामान्यतः रूढ़िग्रस्त और दुर्बल है और आदर्श उपस्थित करती हैं उनकी नायिकाएँ अथवा उपनायक। इनके अतिरिक्त उनके शेष पात्र तो और भी अच्छे होते हैं, जो न सिर्फ भलाई-बुराई के—भलाई अधिक बुराई कम—शानदार मानव हैं, बल्कि ऐसे मानव हैं जो अच्छे बनना चाहते हैं, अच्छाई करना चाहते हैं। प्रेमचन्द के नायक और उपनायक कभी-कभी तो एक-दूसरे में इतने घुले-मिले होते हैं कि नायक को पहिचानना मुश्किल हो जाता है और अक्सर ही उनके उपनायक उभरकर अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। तात्पर्य यह कि प्रेमचन्द के नायक की कोई साफ-सुथरी तस्वीर खींचना नामुमकिन है; यदि कोई दुस्साहस करेगा भी, तो परिणाम जामिनीराय की अपेक्षा पिकासो के चित्रों जैसा होगा। प्रेमचन्दीय नायक विशिष्ट और असाधारण व्यक्ति न होकर अपने समाज के सामान्य अङ्ग ही होते हैं। कला की दृष्टि से कोई इसे उपन्यासकार की कमजोरी कह सकता है, लेकिन विचार-पक्ष से यह उनकी खूबी है कि उनके उपन्यासों का विकास उनके नायकों में नहीं, बल्कि सभी छोटे बड़े पात्रों में सन्निहित है—वे पात्र-पात्रियाँ जो समाज के समूचे वातावरण में साँस लेते हैं, जीते-मरते हैं और परिस्थितियों को सुधार द्वारा बदलकर समाज को उन्नत करना चाहते हैं।

जीवन को प्रेमचन्द ने जमे और थमे हुए पानी के पोखर में नहीं, प्रवाहित सरिता की—जन-जीवन की सरिता—वेगवती धारा में देखा था और उसी का गतिशील चित्रण किया है।

प्रेमचन्द के समकालीन उपन्यासकार विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, बेचन शर्मा पाण्डेय उग्र, जी० पी० श्रीवास्तव (दिल की आग उर्फ दिल जले की आह), चतुरसेन शास्त्री, ऋषभचरण जैन और भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने भी प्रेमचन्दीय सुधारवादी नायक को अपनाया, किन्तु वे उसमें प्रेमचन्द की सुसंस्कृत, सकरुण और सघननिष्ठ मानवीयता की उच्चता को प्रतिष्ठित नहीं कर सके। उग्र ने यथार्थता की कुछ गहरी पुट देकर उसे विकसित करना चाहा, किन्तु उलटे उसे अधिक उग्रपन्थी और उच्छृङ्खल बना बैठे। कुत्सित आदर्शवादी एवं सुधारवादी आलोचकों (vulgor Idealist and Rolouinst) ने (जैसे बनारसीदास चतुर्वेदी) उनके साथ बजाय सहानुभूतिपूर्वक बरताव करके उन्हें सही मार्ग दिखलाने के, प्रतिक्रियावादी बनाकर पथ से भटका दिया। जैन स्वयं ही कुत्सित और पथभ्रष्ट सुधारक प्रमाणित हुए। कौशिकजी ने यद्यपि कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं की, तथापि अवनति की राह भी उन्होंने नहीं पकड़ी। जी० पी० श्रीवास्तव कामना-पूर्ति की शैली अपनाकर अबाध-विह रोमान्सवादी बन कर रह गए। केवल भगवतीप्रसाद वाजपेयी ही सचेत रूप से उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहे परन्तु कालान्तर में वह शरद्चन्द्र से अत्याधिक प्रभावित हो गए। इस काल में केवल प्रतापनारायण श्रीवास्तव ही एक ऐसे उपन्यासकार हुए जिन्होंने अपने विख्यात उपन्यास बिदा में पूर्णचन्द्र जैसे धीरोदात्त नायक का निर्माण प्रेमचन्द से एक कदम आगे बढ़कर किया है।

जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्दकालीन उपन्यासकारों में अपनी साहित्यिक गुरता के कारण उल्लेखनीय हैं, 'कंकाल' और 'तितली' उनके दो प्रसिद्ध उपन्यास हैं; तीसरा

* प्रेमचन्द के निबन्ध-संग्रह 'कुछ विचार' में देखिए 'उपन्यास' शीर्षक लेख।

‡ इसी पुस्तक में 'उपन्यास का विषय' शीर्षक लेख देखिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यास 'इरावती' अधूरा है। कंकाल का विजय और तितली का मधुबन केवल परिस्थितिजन्य नायक हैं और तदनुसार घटनाचक्र से ही संचालित हैं। विजय वर्तमान समाज की जर्जरता का प्रतीक है, यानी कंकाल है। मधुवन एक सामान्य सुधारवादी किन्तु सच्चा और शिक्षित ग्राम्य युवक है। प्रेमचन्द नायक से भिन्न प्रसाद के नायक परिस्थिति निर्माण नहीं करते। जो है, सो है। उसमें गति है, किन्तु एक ही स्थान पर घूमनेवाले दिशा-हीन लट्टू की प्रगतिहीन गति, मात्र कम्पन। समय की अग्रसर दिशा में वे नहीं बढ़ते। प्रसाद जी ने जीवन की धीर वेगवान गंगा में से दो गागर जल भरकर उसका चित्रण किया है, जिसमें गंगाजल के सभी गुण हैं, किन्तु गंगा की गतिशीलता नहीं। हिन्दी के उपन्यास नायक की विकास-प्रक्रिया में प्रसाद जी का नायक एक विश्राम-बिन्दु है।

(४)

प्रेमचन्द के जीवनकाल में ही फ्रायड के मनोविज्ञान से अनभिज्ञ उपन्यासकारों ने विलायती और बंगाली लेखकों की देखादेखी मनोविश्लेषणात्मक (१) उपन्यास लिखने शुरू कर दिए, जिनके नायक प्रेमचन्दीय, स्वाभाविक, समाजगत नायक के विपरीत मनोवैज्ञानिक उलझनों के विचित्र प्राणी हैं। कहने का यह अभिप्राय नहीं कि वे फ्रायड के मनोविश्लेषण शास्त्र को पहले पढ़कर फिर उसके दृष्टान्त रूप में पात्रों की अथवा कथानक की सृष्टि करते

उपन्यास में क्या दृष्टान्त रूपक को सर्वथा अवाञ्छनीय माना जाए, यह प्रश्न अब उपस्थित होता है, मेरे विचार से सभी उच्चकोटि का साहित्य किसी न किसी रूप में दृष्टान्त कहा जा सकता है। जीवन में सामग्री जो है, उसे लेकर और जो होनी चाहिए, उसकी कल्पना कर के ही साहित्य रचना की जाती है। यथार्थ का उपयोग अथवा अभिव्यक्ति दृष्टान्त नहीं तो क्या है? मनोविज्ञान शास्त्र में जो उदाहरण अथवा दृष्टान्त दिए जाते हैं, वे भी जीवन से लेकर ही, कल्पना कर के नहीं। वास्तव में दृष्टान्त का प्रश्न साहित्य के अंतस्थ का इतना नहीं जितना कि उसके रूप का, शैली का, शिल्प का है। दृष्टान्त को जीवन से लेकर साहित्य में पात्र दृष्टान्त के रूप में उतारा जाये, तो उसे अवांछनीय कहा जाएगा, क्योंकि उसमें तब साहित्यकार की कला कहाँ रही? मनोविज्ञान की पुस्तक में ही कोई दृष्टान्त आ जाने से वह साहित्यिक उपयोग के लिए बहिष्कृत नहीं किया जा सकता क्योंकि साहित्य की सामग्री स्वानुभूत भी होती है और परानुभूत भी; परानुभूत सामग्री अन्य रचनाकारों की कृतियों से प्राप्त होती है, अन्य व्यक्तियों के ज्ञान और अनुभव से उपलब्ध होती है। परानुभूति को त्याज्य कहने का दुस्साहस कौन समालोचक करेगा और साहित्य सृजन को असम्भव बनाने की धृष्टता करेगा? मनोविज्ञान शास्त्र में उल्लिखित अनेक दृष्टान्त ऐसे हो सकते हैं, जो स्वयं कथाकार की एकत्र सामग्री में भी समानान्तर रूप से, यदि हूबहू नहीं तो, उपस्थित रह सकते हैं। समालोचक का कर्तव्य तो केवल शैलीयज्ञ में उस सामग्री की अभिव्यक्ति, चयन, आदि की विवेचना करना है; भाव अथवा अन्तस्थ अथवा दर्शन पक्ष में उसकी समीचीनता, उसकी संगति उसकी उपादेयता आदि का परीक्षण आदि करना है। ये दोनों कार्य उसे देश, काल, समाज, परिस्थिति आदि के संदर्भ में सम्पन्न करने हैं।

तो मनोविज्ञान का अध्ययन किये बिना मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखने तथा उसमें पात्रों का मनोविश्लेषण करने का परिणाम यह होता है कि पात्रों का आचार-व्यवहार विचार-धारणायें, सफलता-विफलता और उनका अन्त असंगतियों, अस्वाभाविकताओं, विरूपताओं से भरा होता है जिनकी कोई व्याख्या कोई कारण आपको उपन्यास में नहीं मिलेगा; जिनके एक मात्र कारण हैं लेखक की निजी विचित्रतायें, अभिरुचि, मनःविकृति आदि। लेखक अधिक से अधिक उनके द्वारा अपनी मनोकामना पूर्ण करता है अथवा अपने विकृति-बुद्धि पाठकों की। जैनेन्द्र ने सुनीता लिखने से पहले कभी मनोविज्ञान का अध्ययन नहीं किया* इसीलिए सुनीता अनायास, अकारण ही नंगी हो

* उसी अवसर पर जैनेन्द्रजी का कथन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है। सुनीता के चरित्र में अथवा उपन्यास की परिस्थितियों में ऐसा क्या है जो उसे अयाचित ही ऐसा प्रदर्शन करने के लिये प्रेरित करता है ? हरि प्रसन्न अवश्य ही उस दुर्घटना के लिये तैयार नहीं था। फ्रायडियन किस्म के नायकों के हिंदी स्रष्टाओं को फ्रायड तथा उसके पूर्ववर्ती और परिवर्ती मनोविज्ञान शास्त्रिओं के विचारों और पद्धतियों का कितना ज्ञान था और उसका कितना उपयोग वे कर सके। यह चिन्तनीय है, किंतु इसका अनुमान हिंदी साहित्यकारों की विज्ञान विषयक सामान्य अनभिज्ञता और उपेक्षा से सरलता पूर्वक लगाया जा सकता है।

फिर भी इस तथाकथित अथवा मिथ्या मनोवैज्ञानिकता के कारण हिन्दी उपन्यास में बारीकी और गहराई आई, कलात्मक निखार आया और फलस्वरूप उनकी औपन्यसिकता भी बढ़ गई। अध्ययन की सुविधा के लिए यहाँ से हिन्दी के उपन्यास-नायक का विकास तीन धाराओं में विभक्त किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक, रोमान्टिक और राजनीतिक। शेषोक्त धारा में नवरोमान्सवादी और ऐतिहासिक, ये दो उपधारायें भी सम्मिलित हैं।

प्रथम धारा के प्रमुख उपन्यासकार जैनेन्द्र के पास भी केवल नायकायें हैं। मृणाल उर्फ बुआजी, सुनीता, कट्टो और कल्याणी। 'त्यागपत्र' की मृणाल, हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक अनुपम नारी है,—धीर; प्रशान्त; उदात्त असीम करुणा, अगाध स्नेह, अपरिमित मानवीयता से परिपूर्ण किन्तु विद्रोह की ज्वालामुखी, समाज में क्रान्ति की मुखर माँग, जीवन विकास के लिये अदम्य शक्ति, अमर ज्योति! उसका स्रष्टा धन्य है, अमर है।

सुनीता के साथ देवर-भाभी के जोड़े में हरिप्रसन्न एक महत्वपूर्ण नायक है। यह जोड़ा हिन्दी कथा-साहित्य में देवर-भाभी के ऐंद्रिक रोमान्स का माता-पिता है। (लखनऊ से प्रकाशित 'चकल्लस' ने देवर-भाभी विशेषांक तक निकाला था, जिसके सम्पादक थे नरोत्तम प्रसाद नागर और प्रमुख लेखक थे पहाड़ी, अमृतलाल, नागर रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल)। हरिप्रसन्न के सम्मुख निर्जन में अनायास ही सुनीता के अनावरण हो जाने की अस्वस्थ परम्परा हिन्दी कथा-साहित्य में ऐसी चली कि पीढ़ी के हिन्दी उपन्यासकार ने किसी न किसी बहाने अपनी नायिका का नग्न प्रदर्शन अवश्य किया है। साम्यवादी यशपाल तक ने इस प्रवृत्ति को बड़े चाव से ग्रहण किया है। हिन्दी उपन्यास की विकासोन्मुख प्रवृत्ति में यह ह्रासोन्मुख मनःस्थिति अवश्य ही विचारणीय है। कहने का यह अभिप्राय नहीं कि नारी केनग्नतम सौंदर्य का चित्रण साहित्य-कथा में वर्जित होना चाहिए, किन्तु चित्रण की शैली अवश्य ही विकृत नहीं होनी चाहिये; नहीं उससे रसाभास उत्पन्न हो। नग्नता का कौन-सा चित्रण विकृत है, कौनसा नहीं, इसके विषय में मतभेद की गुंजाइश बहुत अधिक नहीं होती, मैं तो सोचता हूँ कि नारी के नग्नतम सौन्दर्य के सामाजिक प्रदर्शन का एकमात्र औचित्य उसका सृजनात्मक उपयोग है, ऐसा उपयोग जिसकी गतिशील गंगा व्यक्ति से समाज की ओर प्रवाहित हो; न कि उल्टी बहे।

तथाकथित मनोवैज्ञानिक नायक का चरम विकास अज्ञेय के 'शेखर' में हुआ और चरम पतन इलाचन्द जोशी की 'पर्दे की रानी' के नायक इन्द्रमोहन तथा प्रेत और छाया के नायक पारसनाथ में होता है। इन दोनों ही उपन्यासकारों ने फ्राइड का घोर अध्ययन किया है। शेखर के प्रथम भाग का अधिकांश तो जैसे शिशु-मनोविज्ञान का शस्त्र है, एक समस्यागत बालक का तथाकथित वैज्ञानिक-सा अध्ययन। दूसरे भाग में शेखर किशोर और युवक के रूप में आता है जिसकी प्रवृत्तियां असामाजिक प्रतीत होती हैं। 'प्रश्न' 'संस्मरण' 'नरगंध' और 'निकट' की दूरी के नायक भी अस्वस्थमना और अकर्मण्य हैं। वे स्वस्थ सामाजिकता से या तो अनभिज्ञ हैं या उसके विरोधी हैं।

हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास नायक पर शरदचन्द्र का प्रभाव भी इसी काल में पड़ने लगा था। प्रेमचन्द्रीयता भगवती प्रसाद वाजपेयी के सुधारवाद नम्रक में दो बहिनें तक शरद-चन्द्रीयता पूरी तरह से आती है। दोनों ही भले-बुरे युवक हैं। जीवन के विकास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में या यों कहें कि अपनी कामनापूर्ति की राह में रोड़े अटकते देखकर देवता बनने की कोशिश करते हैं और असफल रहते हैं, असफल रहना ही चाहिए, क्योंकि वे परिस्थितियों को बदलने का प्रयत्न नहीं करते। इस दृष्टि से एक कर्मठ नायक हमें सियारामशरण गुप्त की "नारी" में मिलता है, जो अपने अभिभावक से विद्रोहकर एक दरिद्र लड़की से शादी करके जीने के लिए उन्हीं से जंग भी छेड़ देता है और अपने भाग्य का निर्माण स्वंय करता हैं। उदयशंकर भट्ट का प्रथम उपन्यास वह जो मैंने देखा इसी क्रम में आता हैं, जिसका नायक अजय शरद के श्रीकान्त का असफल उत्तराधिकारी प्रतीत होता है, यद्यपि नायिका सुधि किरणमयी की भाँति ही एक सफल नारी है। बंगाली के छायावादी प्रभाव से रंजित हिन्दी उपन्यासनायक के अतिमनोविज्ञानवाद की यहाँ जान निकल जाती है और अब उनके और आगे विकास की कोई गुञ्जाइश नहीं है।

हिन्दी के रोमाण्टिक नायक अप्सरा और अलका में पहले निरालाजी ने रचे, जो भले भले सामन्तवादी प्रेमी से लगते हैं। विशुद्ध एवं स्वस्थ मनोरञ्जन उनका ध्येय है। तत्पश्चात् यह नायक क्रमानुसार भगवती चरण वर्मा के तीन वर्ष में उपेन्द्रनाथ अश्क के सितारों के खेल में और रांगेय राघव के घरोंदे में यूनिवर्सिटी का विद्यार्थी है। अश्क का नायक गर्ल्स होस्टिल के एक कमरे में आत्म-विकास (नगेन्द्र जी के शब्दों में निश्छल आत्माभिव्यक्ति।) का प्रयत्न प्रारम्भ करता ही है कि वहाँ से बाहर गिरकर अस्पताल में अपनी प्रेमिका द्वारा मारा जाता है। अध्ययन नायक का नहीं, पढ़ी लिखी लता के रूप में एक विकृत नारी का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। भगवतीचरण वर्मा का प्रखर बुद्धि, निर्धन नायक रमेश सामन्तवादी संगति में पड़ कर वेश्यागामी बनता है और फिर अपनी प्रेमिका भले घर की बेटी प्रभा को भी वेश्या की परिभाषा की परिधि में समेट लेता है, प्रेम के स्वस्थ सामाजिक रूप को न देखकर उसके मात्र वासना रूप को भी विकृत करके देखता है, वह भाग्यवादी है। समाज-विज्ञान को बेचारा न तो जानता है और न ही जानना चाहता है। आज मानव जीवन के दुख की जड़ में सामाजिक असंगतियाँ, असामञ्जस्य और विश्रृङ्खलता है, जिन्हें दूर करके ही अपना और अपने समाज का नया भाग्य निर्माण किया जासकता है—रमेश के रूप में वर्माजी यह नहीं मानते, क्योंकि जानते ही हैं। उसके लिये सामाजिक नारी प्रभा वेश्या है और वेश्या सरोज समाज से ऊपर कोई सती-साध्वी और आध्यात्मिक नारी है। सामाजिकता का यह अवैज्ञानिक विरोध वर्माजी में यहाँ तक बढ़ता है कि गांधीवाद का आदर्श-कवच पहनकर वह अपने सबसे नये वृद्ध उपन्यास "टेढ़े मेढ़े रास्ते" में वैज्ञानिक समाजवाद के विरोधी हो जाते हैं, साम्यवाद की पीठ में छुरा भोंकते हैं और इस प्रकार विकास की शक्तियों का विरोध करने का नतीजा यह होता है कि उनका नायक रामनाथ पहले विक्षिप्त और फिर पागल हो जाता है। लेकिन 'घरौंदे' में भगवती जैसे दृढ़, कर्मशील नायक की रचना कर रांगेय राघव ने रोमाण्टिक उपन्यास के पथभ्रष्ट नायक को ऐतिहासिक विकास की सहज क्रान्तिकारी धारा की ओर मोड़ दिया।

अब मैं तीसरे तथा अन्तिम नायक वर्ग का उल्लेख करूँगा, जिसमें ऐतिहासिक कहे जाने वाले उपन्यासों और उनके नायकों की प्राचीन परम्परा को वर्तमान में होकर भविष्य में ले जाने का भगीरथ प्रयत्न है, जिससे कि समाज के ऐतिहासिक विकास की शृङ्खला स्पष्ट है, क्योंकि उसकी स्पष्टता में ही भविष्य का निर्देशक और उस शृङ्खला की अटूटता सन्नहित है। वृन्दावनलाल वर्मा के 'गढ़कुण्डार' 'विराटा की पद्मनी' भगवती चरण वर्मा की चित्रलेखा, कृष्णानन्द गुप्त के 'केन' और निरालाजी की प्रभावती के मध्यकालीन सामन्त नायकों को विश्रृङ्खलित परम्परा मेरी विवेचना की राह से परे एक अलग पगडण्डी है। परन्तु निरालाजी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास में सामन्तवादी परम्परा के विरुद्ध जो जनवादी दृष्टिकोण अपनाया है वह इस धारा में प्रगति का पहला चिन्ह है। रामरतन भटनागर की 'अम्बपाली' राहुल जी के 'जय योधेय' और सिंह 'गपति' तथा यशपाल की 'दिव्या आधुनिक संदर्भ में उल्लेख-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीय हैं। भटनागर जी ने आम्रपाली के सामन्ती नायक को गाँधीवाद की संजीवनी बूटी खिलाकर उसे पुनर्जीवित करने का साहसिक प्रयत्न किया है, हालाँकि यह तरीका अवैज्ञानिक और अनैतिहासिक है। प्रेमचन्दीय दर्शन से इस भाँति सम्बंध स्थापित करके वह आधुनिक बन जाते हैं, लेकिन प्रेमशंकर जैसा उसमें कुछ भी नहीं है जो उसे भविष्य के उपन्यास नायक की चरम परिणति साम्यवाद की अन्तिम मानववादी परम्परा में प्रतिष्ठित करदें। राहुलजी ने भारत की प्राचीनतम भूमि में से साम्यवादी व्यवस्था के बीज खोद निकाले हैं। यशपाल ने मारिश के चित्रण में जीवन के इसी यथार्थ तथा व्यवहारिक दर्शन को रूपान्वित कर दिया है।

प्रेमचन्द के जीवन काल में ही जैनेन्द्र के साथ साहित्य में पदार्पण करने वाले नरोत्तम प्रसाद नागर ने आत्मचरितात्मक उपन्यास 'दिन के तारे' में नायक शशि को गांधीवादी बलि-का बकरा बनाने से इन्कार करके प्रेमचन्दीय नायक परम्परा से पहली बार हिन्दी उपन्यास में तीव्र और सकर्मक विद्रोह उपस्थित किया। समाजजन्य अभावों से व्यथित शशि अभावों की पूर्ति करने के लिये समाज को ही बदलने का एक मात्र और सही रास्ता अपनाता है। क्रांति का दर्शन वह समझता है; उसकी वैज्ञानिक प्रणाली चाहे उसे अभी न आती है, पर वह निश्चय ही रोमांटिक नहीं है। सतत प्रगतिशील भगवती प्रसाद वाजपेयी ने अपने सबसे नवीन उपन्यास निमंत्रण के नायक शर्माजी के रूप में रोमांटिक साम्यवादी सृष्टि की है। फिर गंगाप्रसाद मिश्र के संघर्षों के बीच का चरित्रहीन नायक (दुश्चरित्र नहीं) त्रिलोकी पूरा साम्यवादी होजाता न। 'चढ़ती धूप' में अंचल का उपन्यास नायक मोहन अपनी अपूर्णताओं और चरित्रगत दुर्बलताओं के बाव जूद एक बलिदानी और 'प्रेरक सामाजिक बोध का सृजन'' करना चाहकर ही साम्यवादी विचारधारा को अपनाता है और सार्वजनिक सेवा में अपने प्राणों की आहुति चढ़ा देता है—यह माना, लेकिन वह सही किस्म का साम्यवादी नहीं बनता। जीवन में वह रोमांटिक रहा; वैयक्तिक वासनाओं से ऊपर नहीं उठ सका; तदुपरान्त गोली खाकर मृत्यु में कामनापूर्ति करना ही उसके लिए एकमात्र शेष उपाय था। सर्वदानन्द वर्मा के 'अनिकेतन' का नायक रामेश्वर भी रोमांटिक साम्यवादी है, जो अब ''आँधी और पानी में कुछ बदला सा लगता है। रामचन्द्रतिवारी के उपन्यास सागर-सरिता और अकाल के नायक अनिल पर साम्यवाद का कोई बिल्ला नहीं टँका है, किन्तु फिर भी वह मन, वचन और कर्म से जीने की एक दुर्दमनीय इच्छा शक्ति से 'प्रेरित' कठोर अनवरत परिश्रम और संघर्ष करके केवल साम्यवादी होकर जा सकता है इसके विपरीत साम्यवादी श्रीकृष्णदास के 'अग्निपथ' और 'क्रान्तिदूत' के नायक मोहरचन्द साम्यवादी होते हुए भी रोमान्स की घनी छाँह से धुँधले हो उठे हैं। अपने भाग्य का स्वयं निर्माता दिनेश, पहाड़ी के उपन्यास सराय का नायक है जो जीवन से कभी नहीं भागता। यशपाल के दादा कामरेड का हरीश आतंकवाद की गलत राह को अवश्य छोड़ता है, लेकिन जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण दुर्बल रोमांस से मुक्त नहीं है। देशद्रोही के डा० खन्ना आजादी की लड़ाई के सही रास्ते पर चलते हैं, भले ही उनके विरोधी उन्हें गद्दार कहें और पार्टी मेम्बर का भावरिया तो देश की आज़ादी की लड़ाई में अपने प्राण दे ही देता है। उपेन्द्रनाथ अश्क सबसे नए वृहद उपन्यास गिरती दीवारों में नायक चेतन स्वभाव से ही भावुक और संवेदनशील है, अतः उसके घरेलू जीवन में जो घटनाएं होती हैं, उनसे पूरी तरह प्रभावित होता है और उसकी प्रतिक्रियायें एक प्रकार से समूचे समाज के जीवन में घटित होनेवाले संघर्ष का प्रतीक बन जाती हैं। वह देखता है कि पुरानी मान्यतायें टूट रही हैं परन्तु उनसे चिपटे रहने की चेष्टा भी औचित्य की सीमा का अतिक्रम करने लगती हैं। परिस्थितियों के दबाव से पुरानी दीवारों का गिरना अनिवार्य है, दीवारें गिरने लगती हैं; चेतन उनका एक मूक दर्शक नहीं है; उनमें परवश बन्दी नहीं है; वह समाज का सचेत-अंग ही नहीं, सकर्मक कर्त्ता भी है; वह ध्वंस में सहायता देता है। यह उसके चरित्र का एक रचनात्मक पहलू है। चेतन का चरित्र पूर्वनिश्चित और किसी पूर्वाग्रह द्वारा नियोजित नहीं है। परिस्थितियों के क्रम में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति के कवि रवीन्द्रनाथ

श्री नलिनीरञ्जन बन्द्योपाध्याय

प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक ने कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रकृति सम्बन्धी विचारों का उद्घाटन किया है। उन्होंने कवि और प्रकृति के आदान-प्रदान को नीचे के शब्दों में व्यक्त किया है—'प्रकृति हृदय को रँगती है अपने रंग में और फिर स्वयं प्रकृति भी हृदय की अनुभूति और रंग में रँग कर सजीव हो उठती है'। कवीन्द्र रवीन्द्र ने भौतिक चक्षु द्वारा मानसिक तत्व को देखा है और मन के द्वारा भौतिक पदार्थों को। यही कवि का पृथ्वी और स्वर्ग का एकीकरण है। —सम्पादक

"काव्य वह साधन है, जिसके द्वारा प्रकृति के साथ मनुष्य के रागात्मक संबन्ध की रक्षा और उसका निर्वाह होता है। कविता उन मूल और आदिम मनोवृत्तियों का व्यवसाय है, जो सजीव सृष्टि के बीच सुख-दुख की अनुभूति से विरूप परिणाम द्वारा, अत्यन्त प्राचीन कल्प में प्रकट हुई और मनुष्य जाति जिसके सूत्र में आदिकाल से सृष्टि के साथ तादात्म्य का अनुभव करती चली आयी है रागात्मक मनोवृतियों का सृष्टि के साथ उचित सामञ्जस्य-स्थापित करके, कविता मानव-जीवन के व्यापकत्व की अनुभूति उत्पन्न करने का प्रयास करती है।"

कवि, प्रकृति का अनन्य पुजारी है। प्रकृति के पाठशाला में ही कवि जीवन का अध्ययन करता है। तदनतर, वह अपनी मनोवृत्तियों और भावनाओं के अनुरूप, प्रकृति का वर्णन करता है। प्रकृति-कवि वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) के विषय में माथ्यु आर्नल्ड (Mathew Arnold) कहता है—"the nature took hold of his pen aond wrote herself for him". (प्रकृति खुद ही आकर उनके हाथ से कलम लेकर लिखने बैठ जाती थी।) मानसोद्भूत विभिन्न भावनाओं का प्रतिबिम्ब, कवि, प्रकृति के विशाल क्षेत्र में ढूँढ़ता है और अपने मनोनुकूल उसका वर्णन करता है। मानव-प्रकृति-गत भिन्न-भिन्न तत्वों का साक्षात् स्वरूप-दर्शन कवि को होता है प्रकृति में कवि वर्ड्सवर्थ, एक दिन संध्या-समय समुद्री किनारे पर विचरण करता है। उसकी अन्तः वृत्तियाँ शान्त हैं, निस्तब्ध है, और तदनुकूल वह प्रकृति को भी शान्त-वातावरण में देखता है,—"the holy time is quiel as nun, breth less with adoralion".

कविवर रवीन्द्रनाथ के जीवन और काव्य में विश्व प्रकृति का एक प्रधान स्थान है। एक सुदीर्घ काल-व्यापी साहित्यिक जीवन के विभिन्न अध्यायों में कवि के अकुण्ठित आग्रह और आकुल मनोवेगों का स्वाभाविक निसरण हुआ है। इस व्यापक सत्य का प्रमाण, उनकी कृतियों से हमें मिलता है—प्रकृति के साथ हार्दिक संयोग का विकाश, इस रहस्यमयी प्रकृति के साथ मानव-आत्मा की आत्मीयता, विश्व प्रकृति का आह्वान—"जानि ना कोन् विपुल वानी,

---

ही उसका विकास होता है। वह स्वंय उस विकास का विरोधी नहीं, सहयोगी है—यही उसकी महानता है।

हिन्दी उपन्यास के नायक का विकास यहाँ पर उन्नति की एक निश्चित मंजिल पर पहुँच जाता है। प्रेमशंकर शशि, शर्मा जी, त्रिलोकी, मोहन, रामेश्वर, दिनेश, अनिल, भगवती, हरीश, डा० खन्ना, भावरिया और चेतन उसके टेढ़े-मेढ़े विकास-पथ के मार्ग-सूचक हैं और दिव्या का वह महान नास्तिक, दार्शनिक, प्रेमी और मानव मारिश जो "मानव की ही सन्तति की परम्परा के रूप में मानवता को अमरताप्रदान करने का आश्वासन दे रहा है, हिन्दी उपन्यास नायक के समोज्ज्वल भविष्य को आलोकित करनेवाला एक विशाल प्रकाश-स्तम्भ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाजे व्याकुल सूरे", भाषाहीन के साथ अनिर्वचनीय का परिचय, सीमा के बीच असीम का इंगित और प्रकाश—"मेघेर आड़ाले हाँसिया पोंछाले, अरुण किरणे चरण बाड़ाले", सीमाहीन के साथ ससीम के मिलन की अभिलाषा और व्यग्रता—"आछि-पाथार आशा नियें, तारे हय-नि आमार पाडआ", प्रकृति के आनन्दोत्सव में मनुष्य का आमन्त्रण और योग—"विजुलि क्षणिक आभा हाने, सकल प्राण टानिछे पथ-पाने", तथा ससीम का चिर सुन्दर, चिर नवीन के साथ निकटतम और अनिवार्य संयोग—"यतई गृह साजाइ आयोजने, येन तोमाय घरे हय नि आना, से कथा रय मने।"

रवीन्द्र नाथ के प्रकृतिक-काव्य, प्रकृति-दर्शन और प्रकृत के संपर्श से अन्तः प्रवृत्तियों का क्रमिक परिवर्तन और परिवर्द्धन की पर्यालोचना करने के पूर्व, आलोचनीय विषय यह है कि साहित्य और प्रकृति के सम्बन्ध में कवि का क्या कथन है! 'साहित्येर तात्पर्य" में कवि ने लिखा है,—"वाह्य जगत हमलोगों के अन्तर्जगत में प्रवेश कर, एक नवीन जगत की सृष्टि करता है। वाह्यजगत के रूप रङ्ग और ध्वनि के साथ हमारे अन्तःजगत की रागात्मक प्रवृत्ति का रहस्यमय समन्वय होता है।.........इस अभिनव सृष्टि जगत का आनन्दोल्लासित सङ्गीत हमारी हृदय-वीणा-तन्त्री को रात-दिन झंकृत करता रहता है—एक मानस-संगीत होता है—ईश्वरीय सृष्टि की प्रतिक्रियात्मक पृष्ठभूमि पर, हमारे अन्तःकरण में एक नवीन सृष्टि की प्रेरणा होती है—साहित्य, उसी का विकाश है।"

प्रकृति के संपर्श से स्पन्दित हृदय प्रकाशोन्मुख होता है। प्रकृति कवि वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) कहता है—"Nature fails not to provide impulse and uttrance. The slightest impulse in the vernal wood would tell you more of man and the world, than any sage or volumes of books can tell you, प्रकृति, किस प्रकार, मानव-मस्तिष्क में नाना रूपों और रसों का संचार करती है, अन्तः प्रकृति को वाह्य प्रकृति के आनन्दोत्सव में संयोग कराती है, और शिल्पकार के हृदय को सृष्टि की प्रकाश-लीला में आत्मविभोर करती है, इसका आभास हमें मिलता है कवि की "मानसी"—स्थित "उपहार" कविता में—

"वाहिरे पाठाय विश्व, कत गन्ध नाना दृश्य
संगीहारा सौन्दर्येर वशे,
विरही से घुरे घुरे, व्यथाभरा कत सुरे
काँदे हृदयेर द्वारे एसे।
सेइ मोह मन्त्र गाने, कविर गभीर प्राणे
जेगे उठे विरही भावना,
छाड़ि अन्तःपुरवासे, सलज्ज चरणे आसे
मूर्त्तिमति मर्त्तेर कामना।
अन्तरे वाहिरे सेइ, व्याकुलित मिलनेइ
कविर एकान्त सुखोच्छ्वास,
सेइ आनन्द मुहुर्तगुलि, तव करे दिनुतुलि
सर्व श्रेष्ठ प्राणेर प्रकाश।"

"चैताली" की सूचना में, कवि ने प्रकृति की इस प्रेरणा, और इस हृदयोन्मेष के सम्बन्ध में लिखा है—"बाहर, हमारी आँखों पर प्रकाश है और अन्तकरण में मैं गीत गाता हूँ।" "जीवनस्मृति" नामक पुस्तक की 'छवि ओ गान' शीर्षक रचना में कवि ने लिखा है—'विभिन्न क्षेत्र गामिनी दृष्टि के सहारे मैंने स्वतन्त्र छवि को कल्पना के आलोक और मन के आनन्द के घेरे में बाँधकर देखा। एक एक दृश्य एक एक विशेष रंग में रंगीन होकर, हमारी आँखों के सामने उपस्थित हुआ। कल्पना की तूलिका से विश्व-प्रकृति को रंगीन बनाकर मैंने देखा। परन्तु--कामना होती थी, देखने की—चक्षुरिन्द्रिय द्वारा, मानसिक पदार्थ को और मन द्वारा भौतिक पदार्थ को।" कवि कहता है, "यदि मैं चित्रकार होता तो चित्रपट पर, रेखा और रंग द्वारा, मानसिक दृष्टि और सृष्टि को जकड़कर रखने की चेष्टा करता। किन्तु, मेरे पास तो हैं, सिर्फ शब्द और छन्द।" कवि वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी इसी तरह का भाव शब्द चित्रण किया है,—

Ah! if mine had been the painter's hand,
To express what then I saw; and add the gleam
The light that never was on sea or land,
The consecration, and the poet's dream"

प्रकृति हृदय को रंगती है-अपने रंग में, और फिर स्वयं प्रकृति भी, हृदय की अनुभूति और रंग में, रंग कर सजीव हो उठती हैं। कवि के शब्दों में,—'ससीम पूर्णता के लिए असीम की ओर दौड़ता है, और असीम, ससीम में अपने आवास की भिक्षा मांगता है।" तभी तो 'मुक्ति' के पीछे मरने वालों को कवि ने कहा,—

"मुक्ति उरे मुक्ति पावि कि रे?
स्वयं विधि बाँधा आछेन, सृष्टि-बाँधन तरे।"

कवि; असीम से भिक्षा मांगता है, —

"युक्त करो हे सबार संगे,
मुक्त करो हे बन्ध।"

कवयित्री महादेवी असीम से वर-याचना करती है,—

"वर दो मुक्ति दो,
बन्धनों के बीच, मुक्ति की रानी बनूँ मैं।"

कवि की सृष्टि में, असीम और ससीम का यह अद्भुत न्वय हमें देखने को मिलता है। कवि गुरु कहता है—

'सीमार माझे असीम तुमि,
बाजाउ आपन सूर।"

कवि के कथनानुसार, शिल्पकार की सृष्टि उसकी अन्तः ज्योति है, उसका आनन्द उसका अन्तःएश्वर्य है। कवि और शिल्पकार की आधार शिला, वाह्य उपकरण नहीं। वाह्यजगत की वास्तविकता को स्वीकृत कर शिल्पकार उससे 'सत्यं' 'शिवं' और 'सुन्दर' की सृष्टि करता है। वाह्यजगत को देखने का जो गम्भीर तात्पर्य है वह कवि और शिल्पकार का एक ही है। जहाँ तक 'देखने' तक का संपर्क है उन दोनों में कोई पार्थक्य नहीं। शिल्पकार भौतिक जगत में वास्तविकता को नहीं देख पाता। उसके दृष्टिकोण में द्रष्टा ही स्रष्टा हैं और स्रष्टा ही द्रष्टा है। कवि के मानस-सागर में भी वाह्य प्रकृति के रूप और रस के आस्वादन से, जो आनन्द-लहरियाँ अठखेलियाँ करती हैं, उसका मूलभूत कारण उपकरण नहीं है। रवीन्द्रनाथ की भाषा में—उस आनन्द का कारण उसकी अन्तरात्मा ही है। तभी तो कहा, हमारे मनीषियों ने—"सोऽहं" सिर्फ जीवन में ही नहीं, शिल्प में, साहित्य में, काव्य में भी—"आत्मानं रथिनं विद्धि; एषहि द्रष्टा, स्रष्टा, घ्राता, मन्ता, रसयिता, बोद्धा, कर्त्ता, विज्ञानात्मा पुरुषः।" ज्ञानमय, अनुभूतिमय, प्रकाशमय आत्मा के द्वारा ही संसार में रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श तथा संयोग-सुख की अनुभूति होती है।

वाह्यजगत को देखने की दृष्टिभंगी ही कवि और शिल्पकार की सृष्टि का मूलभूत रहस्य है। "जापान यात्री" नामक पुस्तक में कविगुरू ने लिखा है, "आज प्रकृति देवी सजधज कर हमारे सामने खड़ी है। मैं उन्हें देखता हूँ। मैं यहाँ द्रष्टा हूँ। इस द्रष्टा 'अहम्' का अपने को शब्द रेखा के उपकरणों द्वारा अभिव्यंजित करना ही साहित्य है, कला है। जगत का दृष्ट पदार्थ नहीं, इसका द्रष्टा ही रहस्यपूर्ण है—यह एक विशिष्ट दर्शन है, और इसीका प्रकाशन कला के रूप में हमारे सामने आता है। कवि की आत्मा में, 'अहम्' ही काव्य-सृष्टि का मूल उद्गम स्थान है। "श्यामली" की "आमि" कविता में इस भाव का स्वच्छन्द स्फुरण हुआ है—

"आमि चोख मेललुम, आकाशे ज्वले उठलो आलो
पूर्वे-पश्चिमे।

गोलापेर दिके चेपे बललुम, 'सुन्दर'
सुन्दर हल से।
तुमि बलबे, एइ ये तत्त्व-कथा,
एइ कविर वानी नय।
आमि वलव, एइ सत्य, ताइ एइ काव्य।
एइ आमार अहंकार अहंकार समस्त मानुषेर हय,
मानुषेर अहंकार पटेइ, विश्वकर्मार विश्व-शिल्प।"

कवि रबीन्द्रनाथ, अपनी सृष्टि में अकेले ही खड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी कविता में विरहिणी

डा० नगेन्द्र एम० ए०, डी० लिट०

यद्यपि मिलन स्पष्टत: ही सुखमय और विरह दुखमय है। परन्तु फिर भी मानव-मन निसर्गतः मिलन की अपेक्षा विरह की ओर ही अधिक आकृष्ट होता है और मन के मर्मी कवियों ने भी इन दोनों में विरह को ही कहीं अधिक महत्व दिया है। साधारणतः यह बात मानव-प्रकृति की विचित्रताओं में गिनी जाती रही है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। मानव-प्रकृति और उसकी प्रवृत्तियाँ विचित्र होते हुए भी कार्य-कारण सम्बन्ध में बँधी हुई हैं। उपर्युक्त वैचित्र्य भी अकारण नहीं है—मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण-शास्त्र दोनों के पास इसके निश्चित कारण मौजूद हैं और स्वयं कवियों ने ही उनकी ओर जाने-अनजाने स्पष्ट संकेत कर दिए हैं—उन्होंने स्पष्ट कहा है—'विरह प्रेम की जागृति गत है और सुषुप्ति मिलन है—अथवा मिलन अन्त है मधुर प्रेम का और विरह जीवन है।' अर्थात् मिलन की अपेक्षा विरह का महत्व इसलिए अधिक है कि विरह में प्रेम उद्बुद्ध रहता है और मिलन में सुप्त हो जाता है—अभिलाषा की अपूर्ति उसकी चैतन्यावस्था है और पूर्ति उसकी सुषुप्ति है। कालिदास ने कारण को और भी स्पष्ट करते हुए लिखा है—

स्नेहावाहु: किमपि विरह व्यापदस्ते ह्यभोग्या—
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसा: प्रेमराशी भवन्ति।

अर्थात् स्नेह के लिए कहा गया है कि वह विरह में कुछ मलिन हो जाता है। परन्तु इसके साथ यह भी मानना पड़ेगा कि इसकी अनुपस्थिति में भोग के अभाव के कारण वह अत्यधिक सघन हो जाता है। इस प्रकार कालिदास ने असन्दिग्ध शब्दों में भोग के अभाव को विरह के महत्व का कारण बतलाते हुए आज से दो हजार वर्ष पूर्व मनोविश्लेषण-शास्त्र के उस सूक्ष्म तथ्य को प्राप्त कर लिया था जिसको कि उसके आचार्य फ्रॉयड ने आज अनेक सिद्धान्तों और प्रयोगों की शल्य-क्रियाओं के बाद प्रामाणिक रूप से हमारे सम्मुख रखा है—उन्होंने स्पष्ट कहा है कि प्रत्येक मिलन अर्थात् काम-पूर्ति के पश्चात् प्रेम की क्षति हो जाती है और यदि पुनरावृत्ति की इच्छा जागृत न हो जाया करे तो निश्चय ही प्रेम का अन्त हो जाए। दूसरे शब्दों में, मिलन प्रेम का व्यय है और विरह उसका संचय—इसलिए मिलन की अपेक्षा विरह का मूल्य अधिक है—यह केवल काव्य-सत्य ही नहीं है, विज्ञान भी इसको इसी रूप में स्वीकार करता है।

इस प्रसङ्ग में दूसरी बात जो ध्यान आकर्षित करती है वह यह है कि वैसे तो प्रायः सभी साहित्यों में, और विशेषकर हमारे साहित्य में पुरुष की अपेक्षा स्त्री का विरह वर्णन अधिक है। कवियों ने विरह की अपेक्षा विरहिणी को ही अधिक महत्व दिया है। यह भी आप देखेंगे, कोई आकस्मिक घटना या संयोग नहीं है—इसके भी निश्चित कारण वर्तमान हैं। भारतीय आलोचकों ने कई प्रकार से इसकी संगति बैठाई है—पार्थिव विरह वास्तव में अपार्थिव विरह का ही प्रतिबिम्ब है—और अपार्थिव विरह में स्त्री-रूपिणी मानव-आत्मा ही परम पुरुष के विरह में व्याकुल रहती है, सच्चिदानन्द-घन परम-पुरुष में विरह कहाँ? इसलिए पार्थिव विरह में भी स्त्री का ही विरह प्रधान है। एक आध्यात्मिक कारण तो यह दिया जाता है। दूसरा एक अर्ध-मनोवैज्ञानिक कारण यह दिया जाता

है। किसी भी इतिहास ने उसे सर्वसाधारण के साथ बाँधने का प्रयास नहीं किया है।

He was not of an age, but for all time
Like Apollo he came forth to warm our ears
or like a Mercury to charm.!
Nature herself was proud of his designs,
And joyed to wear the dressing of his lines!'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का भाव-जगत अधिक समृद्ध है, और साथ ही वर्णन करने वाले पुरुष कवियों को स्वभावतः पुरुषों की चेष्टाओं का अङ्कन करने की अपेक्षा स्त्रियों की वियोग-जन्य चेष्टाओं और काम-दशाओं का अङ्कन करने में अधिक रस मिलता है, इसलिए विरहिणी का महत्व अधिक रहा है। परन्तु आज मनोविश्लेषण-शास्त्र इसका कुछ और ही वैज्ञानिक कारण उपस्थित करता है—उसका कहना है कि प्रेम की परिणति है रति में—और रति-क्रिया में पुरुष मोचन करता है और स्त्री धारण करती है। पुरुष के लिए जो केवल एक क्षण का तीव्र आनन्द है, स्त्री के लिए वह एक स्थायी वरदान है जो नौ मास तक उसके शरीर और आत्मा के रस से पोषण पाकर जीवनभर के लिए उस मधुर-मिलन का प्रतीक बन जाता है। इसी कारण पुरुष का प्रेम अपेक्षाकृत अस्थायी और स्त्री का स्थाई होता है और यही कारण है कि पुरुष की वृत्ति अनेकोन्मुखी और स्त्री की एकोन्मुखी होती है। इसी अन्तर को ध्यान में रखते हुए ही तो भारतीय तथा अन्य शास्त्रों ने पुरुष को एक से अधिक विवाह की आज्ञा देदी है, और स्त्री के लिए पातिव्रत्य को अनिवार्य ठहराया है। एकोन्मुख प्रेम में स्वभाव से ही स्थायित्व और तीव्रता अधिक होती है—और इसीलिए स्त्री के विरह में पुरुष के विरह की अपेक्षा अधिक गुरुता रहती है।

विरह के साहित्य-शास्त्र में चार अंग कहे गए हैं—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। पूर्वराग मिलन से पूर्व की अवस्था है—इसमें अभिलाषा जाग्रत हो जाती है परन्तु मिलन-सुख के अभाव में अतृप्त रहती है, इसीलिए इसे विरह का ही एक रूप माना है। मान में ईर्ष्या आदि के कारण मिलन नहीं हो पाता—इसमें संयोग में भी वियोग रहता है। प्रवास में नायक अथवा नायिका की अनुपस्थिति रहती है—और करुण में उनमें से एक का मरण हो जाता है—परन्तु पुनर्जीवन की आशा बराबर बनी रहती है। विरह के इन चारों अङ्गों में करुण तो आधिदैविक परिस्थितियों पर आश्रित रहने के कारण अस्वाभाविक है और हिन्दी में उसका वर्णन नहीं है। उधर पूर्वराग अपरिपक्व है और मान अत्यन्त अस्थाई तथा एक प्रकार से संयोग का ही अंग-सा है। विरह का पूर्ण विकास प्रवास में ही है। इस प्रकार पूर्वानुरागवती, मानवती और प्रोषित-पतिका विरहिणियों में वास्तविक गाम्भीर्य प्रोषितपतिका में ही मिलता है। शास्त्र की दृष्टि से पूर्वराग के अंतर्गत साधारणतः उत्कण्ठिता की ही गणना की जा सकती है। मान के अन्तर्गत मुख्यतः खण्डिता, साधारणतः विप्रलब्धा, कलहान्तरिता आदि, और प्रवास के अंतर्गत प्रोषितपतिका और उसके प्रवत्स्यत्पतिका आदि भेद आते हैं। "आने का निश्चय करके भी दैव वश जिसका प्रिय न आसके वह खिन्नमना नायिका 'उत्कण्ठिता' कहलाती है" परिभाषा के अनुसार यह अवस्था कम से कम एकबार मिलन होजाने के उपरांत ही आनी चाहिये, परन्तु साधारण रूप में, अभिलाषा से आकुल पूर्वानुरागवती को भी 'उत्कण्ठिता' मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये "अन्य स्त्री के संसर्ग चिह्नों से युक्त नायक जिसके पास जाय वह ईर्ष्या से कलुषित चित्त वाली नायिका 'खण्डिता' कहलाती है। जो क्रोध के मारे पहले तो प्रार्थना करते हुए नायक को निरस्त करदे, फिर पीछे से पछताए उसे 'कलहान्तरिता' और संकेत करके भी प्रिय जिसके पास न जाए उस नितान्त अपमानिता को 'विप्रलब्धा' कहते हैं।'-हिन्दी में विरहिणी के सामान्यतः ये ही रूप प्रकारान्तर से मिलते हैं। आज मनोविज्ञान के युग में वैसे तो इस प्रकार के स्थूल वर्ग-वाचक भेदों का कोई विशेष मूल्य नहीं रहा, फिर भी हिन्दी की प्राचीन कविता में विरहिणी के रूप-विकास का अध्ययन करने के लिए नायिका-भेद का शास्त्रीय आधार ध्यान में रखना आवश्यक है, ऐसा विशेष कर इसलिए और भी आवश्यक हो जाता है कि हमारे प्राचीन कवियों में से अधिकांश की चेतना में स्थूल अथवा सूक्ष्म रूप से यह आधार अनिवार्यतः व्याप्त था।

हिन्दी कविता ने जिस वातावरण में जन्म लिया, वह राजनीतिक और सामाजिक विप्लव से क्षुब्ध था—उस युग का प्रतिनिधि नायक योद्धा होता था जिसका अधिकांश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन युद्ध-क्षेत्र में बीतता था, और उस युग की प्रतिनिधि नायिका क्षत्राणी वीराङ्गना होती थी जो क्षात्रधर्म के महत्व और गौरव से पूर्णतः अभिज्ञ होती थी। वह समराङ्गण में जाते हुए अपने वीर-प्रेमी को अपने हाथों से अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित कर आरती उतार कर बिदा करती थी। पति का गौरव उसका गौरव था—पति की जय उसके प्रेम की जय थी, और पति की पराजय उसकी पराजय। इतिहास साक्षी है कि महाराज जसवंतसिंह की रानी ने युद्ध से विमुख होकर लौटने वाले अपने पति के लिए महल का द्वार बन्द कर दिया था। इस प्रकार वीर-युग का प्रेम क्षात्रधर्म से अभिन्न था—किसी तरह भी हृदय की दुर्बलता का प्रदर्शन करना क्षत्राणी नायिका के लिए अपमान की बात थी। परन्तु फिर भी मानव-स्वभाव अपने आप को व्यक्त किए बिना थोड़े ही रहता है, और क्षात्र-धर्म के सम्पूर्ण संयम और गौरव-भावना को चीरती हुई विरहिणी के हृदय की पुकार भी वीरकाव्य में समय समय पर सुनाई दे ही जाती है।

'आजु बरसि जा मेरे कनवज पै
कन्ता एक रैनि रहिजायँ।'

भक्ति-युग के प्रथम चरण में प्रेममार्गी सूफ़ी कवियों की प्रबंध-रचनाएँ और दूसरे चरण में सगुणोपासक कवियों का भ्रमर-गीत प्रसंग मुख्यतः विरह-काव्य के अन्तर्गत आता है। जायसी और उनके सहयोगियों की विरहिणी नायिकाएँ दुहरा व्यक्तित्व रखती हैं। वे प्रायः सभी राजकुमारियाँ होने के अतिरिक्त किसी न किसी रूप में मानव-आत्मा की प्रतीक भी हैं। इन सूफ़ी कवियों ने अपनी प्रेम-विह्वल आत्मा का सम्पूर्ण विरह उनके व्यक्तित्व में उंडेल दिया है, अतएव स्वभावतः ही उनमें एक उत्कट तीव्रता और गंभीरता मिलती है जो अन्यत्र दुर्लभ है। जायसी की नागमती को सरलता से इन सबकी अन्यतम प्रतिनिधि माना जा सकता है। साधारणतः उसका व्यक्तित्व एक राजमहिषी का सा ही है, उसमें भौतिक जीवन के राग-द्वेष सभी मिलते हैं; परन्तु कवि ने जहां उसके विरह का वर्णन किया है वहां उसके व्यक्तित्व का भौतिक (शारीरिक) अंश क्षीण होजाता है और मानसिक तथा आध्यात्मिक अंश ही जैसे शेष रह जाता है। वह अपने राजमहिषी के गौरव को त्याग कर जोगिनी बन कर घर से निकल पड़ती है। प्रकृति के कण कण से उसका रागात्मक सम्बन्ध स्थापित होजाता है, और कवि की अपनी रहस्य-भावना का उसके व्यक्तित्व पर आरोप होजाने से सम्पूर्ण विश्व ही जैसे उसे विरह-विह्वल प्रतीत होता है। इस प्रकार प्रेममार्गी कवियों की विरहिणी अनेक अंशों में विरह-दग्ध प्रकृति का एक अंग है जो रहस्यद्रष्टा प्रेमी कवि की वाणी प्राप्त कर मुखर हो उठता है।

सूफ़ी कवियों का यही विरह मीरा में सगुणोपासना का आधार पाकर सर्वथा प्रत्यक्ष होजाता है। आलम्बन में नाम, रूप, गुण का आरोप होजाने पर फिर न किसी प्रतीक की आवश्यकता रहती है, और न किसी माध्यम की। इसीलिए मीरा ने कृष्ण को स्पष्टतः पति रूप में वरण कर उनके समक्ष अपने विरह का प्रत्यक्ष निवेदन किया है, उन्होंने न किसी लौकिक कथा को व्याज बनाया है और न प्रकृति को माध्यम।

सगुणोपासक कवियों में सबसे प्रमुख हैं सूर—और इन कवियों की प्रतिनिधि विरहिणी हैं राधा और उनकी सहचरी गोपियाँ। वास्तव में सूर ने विरहिणी के एक नवीन वर्ग की ही सृष्टि की है। इनमें हमें काव्यों की अष्टाङ्गवती संस्कारमयी नायका और लोक-गीतों की निश्छल ग्राम-वधूटियों का मध्यवर्ती रूप मिलता है। इनका विरह कल्पनात्मक न होकर नैसर्गिक जीवन का सहज अंग है—इन विरहिणियों में न तो राजसी जीवन की गरिमा और अभिजात्य है और न नागरिक जीवन की विलास भावना। इसलिए इनके विरह में न तो नागमती और सीता का सा गंभीर संयम मिलता है, और न रीति-काव्य की नायकाओं का जैसा प्रदर्शन ही। ये विरहिणियाँ सीधी-सादी ग्वालिनी हैं जो न किसी प्रकार की कृत्रिम मर्यादा का बंधन मानती हैं, और न विरह-निवेदन की ऊहात्मक शैली का ही प्रयोग करना जानती हैं। इनके मन में किसी प्रकार का छल नहीं है—इसीलिये इनका विरह उपालम्भ से मुखर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वस्व दान कर देने के उपरान्त भी इनका प्रेमी इनसे छल कर चला गया—और कदाचित लौटकर भी न आये। उन्होंने नाहक ही ऐसे व्यक्ति से मैत्री की जो उनकी कोटि का नहीं था, उनके प्रेम की प्रवञ्चना हुई, इसकी उन्हें कसक है। परन्तु फिर भी उसे भूलना उनकी शक्ति की बात नहीं रही। उसी का योग साधे हुए वे मथुरा की ओर आँखें किए बैठी थीं कि कदाचित उनका भाग्य फिरे और कृष्ण लौट कर आएं। पर कृष्ण तो न आए उनके प्रतिनिधि ऊधो ज्ञान का संदेश लेकर आते हैं। वञ्चित प्रेम इस व्यंग्य की चोट से तड़प उठता है। और व्यंग्य का जबाव व्यंग्य से देना आरम्भ कर देता है। गोपियों का प्रेम मुख्य तो था ही—व्यंग्य का मिश्रण हो जाने से एक विचित्र तिक्तता (तलखी) आ जाती है। इसमें संदेह नहीं कि गोपियाँ अशिक्षिता हैं—उनका बौद्धिक आधार किसी प्रकार भी समृद्ध नहीं है परन्तु उनकी वाणी में आवेग की इतनी तीव्रता है कि सुनने वाला अभिभूत हो जाता है—उनके तर्कों में बुद्धि की तीक्ष्णता नहीं है परन्तु भाव की शक्ति है। इसीलिये भारतीय विरह काव्य में भ्रमर-गीत का इतना गौरव है। गोपियों के विरह पर मनोविश्लेषण-शास्त्र की दृष्टि से विचार कीजिये, उसका मुख्य तत्व है उपालम्भ और उपालम्भ में अपनी हीनता की स्वीकृति अन्तर्निहित है। गोपी कृष्ण के प्रेम में स्थिति का वैषम्य स्पष्ट था—आरम्भ में उनको इसका ज्ञान रहा होगा, परन्तु उसका विकास इतने स्वाभाविक ढंग से हुआ कि प्रेम के आवेग में यह चेतना शीघ्र ही मग्न हो गई। लेकिन विरह फिर इस वैषम्य को सतह पर ले आता है, और उधर ज्ञान के संदेश से आहत और अपमानित होकर यह आत्म हीनता का भाव उपालम्भ का रूप धारण कर लेता है। गोपियों के इस विरह की संगति उनके स्रष्टा सूर की मानसिक स्थिति के साथ पूरी तरह बैठ जाती है क्योंकि सूर को भी तो भगवान से सखा-भाव का निर्वाह करने में इसी प्रकार की हीनता की चेतना और उधर ज्ञानियों द्वारा अपने भाव के तिरस्कार की अनुभूति हुई होगी पात्र और उसके स्रष्टा का यही तादात्म्य विरहिणी गोपिकाओं के सफल अंकन का कारण है।

भक्ति-काल में स्वभावतः ही विरह का प्राधान्य रहा—क्योंकि इस युग के प्रतिनिधि कवियों का परोक्ष-प्रेम अनिवार्यतः विरह प्रधान था। इसके विपरीत रीति युग का प्रेम विलास मय और संयोग प्रधान था। अतएव भक्तिकाल की विरहिणी त्यक्ता या प्रोषित-पतिका है, रीति-काल की प्रतिनिधि विरहिणी प्रायः खण्डिता ही है। प्रोषित-पतिका का विरह प्रवास जन्य होने के कारण निश्चय ही स्थायी और गम्भीर होता है—त्यक्ता के विरह में स्थायित्व और गांभीर्य और भी अधिक होना चाहिये। उधर खण्डिता में वियोग तो अत्यन्त अल्प-कालीन एवं अस्थायी ही होता है परन्तु ईर्ष्या के आतिशय्य के कारण उसमें तीव्रता बेहद आजाती है। बिहारी, मतिराम देव, और पद्माकर जैसे रसिकों के मन प्रोषित-पतिका के गांभीर्य को पूर्णतः ग्रहण और व्यक्त करने में प्रायः असमर्थ रहे हैं—इन कवियों द्वारा अंकित प्रोषित पतिकाओं के चित्र प्रायः अत्युक्ति से मुखर और ऊहा से वाचाल हैं। इसका कारण यही है कि इनकी प्रकृति रसिक अर्थात् अनेकोन्मुखी थी और प्रोषित-पतिका के विरह का मूल आधार है एक निष्ठता, जिसके गांभीर्य और महत्व से ये अपनी परिस्थिति और प्रकृति-वश पूर्णतः परिचित नहीं हो सके थे। इसके विपरीत इनका वातावरण और संस्कार खण्डिता के अनुकूल पड़ते थे क्योंकि रसिकता का ईर्ष्या से घनिष्ठ परिचय होता है। और जैसा कि मैंने अभी कहा खण्डिता के विरह का आधार ईर्ष्या ही है। ईर्ष्या से प्रज्वलित विवशता से आर्द्र और व्यंग्य से कटु-तिक्त रीति-युग की खण्डिता को नैतिक गांभीर्य और गरिमा से वञ्चित किया जा सकता है, परन्तु उसकी तीव्रता का प्रभाव असंदिग्ध और अनिवार्य है।

देवजु पै चित चाहिए नाह तौ
नेह निबाहिये देह मर्‌यौ परै।
त्यों समुझाइ सुझाइए राह
अमारग जो पग धोखे धर्‌यो परै।
नीके में फीके ह्वै आंसू भरौ कत
ऊँची उसास गरो क्यों भर्‌यौ परै।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राबरो रूप पियो अँखियान भरयो सु
भर्‌यौ ऊबर्‌यौ सो ढर्‌यो परे।

इसके बाद आधुनिक युग आरम्भ हो जाता है। आधुनिक युग का आरम्भ यों तो हरिश्चन्द्र के समय से ही होता है, परन्तु वह वास्तव में परिवर्तन-काल है। उस युग की काव्य-चेतना रीति-काल के विरुद्ध प्रति-क्रिया करता हुई कभी पीछे भक्ति-युग की ओर लौटती है, और कभी आगे दृष्टि-पात करती हुई नवीन संघर्ष-मय राष्ट्रीय-सामाजिक जीवन की ओर बढ़ती है। निदान उस युग की विरहिणी के व्यक्तित्व में इन्हीं तीनों तत्वों का अनमेल मिश्रण है। आधुनिक युग की रूप-रेखा वास्तव में द्विवेदीजी के समय में आकर बन पाई। यह युग सुधार अथवा पुनर्निर्माण का युग होने के कारण नैतिक मूल्यों से शासित है।

रीतिकाल में नारी का कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं था—वह जीवन का एक उपकरण मात्र थी पर यहाँ आकर रीति-काल का भोगवाद नवीन नैतिक आदर्शों द्वारा तिरस्कृत हो कर एक प्रकार से विशेष हो जाता है। अब नारी-स्वातन्त्र्य और नारी के समानाधिकार की प्रतिष्ठा प्राचीन संस्कृति और नीति-शास्त्रों के आलोक में धीरे धीरे हो रही थी। भारतीय नारी घर की चहार-दीवारी को लांघ कर सामाजिक उत्सवों और सभाओं में पुरुष के साथ आने जाने लगी थी—परन्तु स्त्री-पुरुषों का यह सम्मिलन अभी केवल सामाजिक स्तर पर ही हो रहा था, अभी वह सामाजिक दायित्व और धार्मिक कर्त्तव्य की नैतिक चेतना से बँधी हुई ही पुरुष के सामने बाहर आती थी। बाहर का पर्दा उसने अनैतिक और अस्वाभाविक कह कर उतार दिया था—परन्तु उसके मन पर अभी नैतिकता का गुरुतम भार था। ऐसी परिस्थित में उसका प्रेम और विरह भी विलास की भावना से ऊपर उठकर नैतिक आदर्शों द्वारा अनुशासित हो चला था।

इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं हरिऔध और मैथलीशरण गुप्त। प्रियप्रवास की राधा, साकेत की उर्मिला और यशोधरा की गोपा के व्यक्तित्वों में तत्कालीन विरह का आदर्श जैसे साकार होगया है। उस युग का संदेश है सेवा युग-पुरुष गाँधी के प्रभाव से दीन-दुखियों की सेवा में ही उस युग के धर्म का स्वरूप स्थिर हो गया था। राधा, उर्मिला और यशोधरा तीनों ही सेवा के आदर्शको ग्रहण कर अपनी व्यथा का उन्नयन (Sublimation) करती हैं—दूसरे शब्दों में दुखी विश्व की पीड़ा में ही अपनी पीड़ा को निमग्न कर शान्ति-लाभ करती हैं। ये विरहिणियाँ मानों पहले अपने प्रेमियों को ईश्वर से एक रूप कर देखती हैं, और फिर ईश्वर को जनता-जनार्दन से एक रूप कर अपने विरह का आदर्शीकरण करती हैं। परन्तु विरह का यह आदर्शीकरण बहिर्मुख और वस्तु-परक ही है—यहाँ विवेक के द्वारा भावना का शिक्षण और परिशोधन किया गया है।

छायावाद-युग तक आते आते स्वतन्त्र्य और समानाधिकार की भावना जो नारी के मन में अङ्कुरित हुई थी, वह विदेशी साहित्य और संस्कृति के सम्पर्क में आकर पल्लवित हो चुकी थी। वहाँ के रोमानी प्रेम का प्रभाव अनिवार्य्य रूप से उसके मन पर पड़ रहा था, और इधर जिस पुरुष से पिछले युग में उसने केवल सामाजिक स्तर पर मिलना सीखा था उसके साथ उसका संपर्क अब अधिक घनिष्ठ हो चला था। निदान पुरुष के प्रति अब उसके मन में भी सहज रोमानी कामार्षण जगने लगा था—परन्तु उधर नैतिक मूल्यों का आतङ्क भी अभी संस्कारों पर कठोरता से जमा हुआ था। परिणाम यह हुआ कि उसका यह कामार्षण सहज अभिव्यक्ति न पाकर कुण्ठित होने लगा। इस कुण्ठा से स्वास्थ्य की क्षति तो अवश्य हुई, परन्तु उसकी चेतना बहिर्मुखी और वस्तुपरक न रहकर अंतर्मुखी एवं सूक्ष्म भाव-परक हो गई, और अभिव्यक्ति के असामान्य मार्गों की खोज करती हुई—कहीं मिथ्या आध्यात्मिक, कहीं बौद्धिक—आध्यात्मिक, और कहीं आध्यात्मिक स्पर्शों का मोह छोड़ अतीन्द्रि मात्र रह गयी। छायावाद की विरहिणी का प्रतिनिधि-रूप हमें महादेवी में मिलता है। इस विरह का आलम्बन कौन है? यह प्रश्न थोड़ा जटिल है। मेरे पास इसका केवल एक ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुरुक्षेत्र-युग की ललकार

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय

कुरुक्षेत्र का नाम लेते ही सारा महाभारत अपनी विपुल विराटता के साथ साकार हो उठता है। महाभारत यदि महायुद्ध का प्रतीक है तो कुरुक्षेत्र उसकी मीमांसा। द्वापर में महायुद्ध हुआ था, सतयुग में महायुद्ध हुआ था और कलयुग में—आज भी युद्ध-महायुद्ध होता है। शायद आगे भी होगा। कवि 'दिनकर' कुरुक्षेत्र में युद्ध की मीमांसा आज की देश-काल-पात्र की परिस्थिति में रखकर करते हैं। वास्तव में भारत की रग-रग में आज अर्जुन से भी अधिक व्यामोह समाया हुआ है और स्वत्व-प्राप्ति की आकांक्षा को हिंसा-अहिंसा का प्रश्न इस तरह से जड़ीभूत किए है कि सारा देश 'किंकर्तव्यविमूढ़' की तरह स्तब्ध है। बर्बर विदेशियों की सशस्त्र शक्ति के सामने उसका क्या कर्तव्य है? यही उसकी सबसे बड़ी समस्या है जो सुलझने की अपेक्षा दिन प्रतिदिन और अधिक उलझती जा रही है। देश को वर्गों, दलों और व्यक्तियों में विभाजित कर रही है।

श्री दिनकर का कुरुक्षेत्र आज के भारत का, विश्व-व्यापी महाभारत का काव्य-विवेचन है, साहित्य-दर्शन है।

उत्तर है, वह यह कि मूल रूप में तो इसका आलम्बन पार्थिव है, परन्तु व्यक्त रूप में अपार्थिव है। मध्य युग के भक्त कवियों के विरह का भी मूल आलम्बन अनिवार्यतः पार्थिव ही था—परन्तु उन्होंने जहाँ मूल आलम्बन और व्यक्त आलम्बन के अन्तर को साधना और विश्वास के द्वारा भर लिया था, वहाँ छायावाद के कवि के लिए आज वह सम्भाव्य नहीं है। इस अन्तराल को भरने का उसके पास केवल एक ही साधन है—वह है दार्शनिक चिंतन और महादेवीजी ने इसी के द्वारा पार्थिव को अपार्थिव रूप दिया है। उनकी अनुभूति सत्य है, और उतना ही सत्य यह दार्शनिक चिन्तन है, इस लिए उनका विरह शुद्ध अध्यात्म की कोटि में भले ही नहीं आता परन्तु मिथ्या-अध्यात्म की कोटि में उसे नहीं धकेला जा सकता। उन्होंने अपनी अनुभूति का दार्शनिक चिंतन द्वारा परिष्कार कर दर्शन के सर्ववाद को भावों में बाँधने का प्रयत्न किया है। अन्य कवियों में से कुछ ने इस अन्तर का अनुभव ही नहीं किया, उनका विरह स्पष्ट रूप से अतीन्द्रिय और अशरीरी अर्थात् इतना सूक्ष्म और परिष्कृत है कि उसका भोगमय रूप लुप्त हो गया है। और कुछ ने आध्यात्म के केवल बाह्य-रूप को ही ग्रहण कर अनुभूति की ईमानदारी के अभाव में मिथ्या अध्यात्म को जन्म दिया है।

यह समय भी अधिक न रहा। आज जीवन की गति काफी तेज है, इसलिए उसके मूल्यों में भी उसी तेजी के साथ परिवर्तन होरहे हैं। साहित्य में छायावाद के सूक्ष्म रोमानी मूल्यों के विरुद्ध प्रगतिवाद के भौतिक-आर्थिक मूल्यों ने पिछले कुछ वर्षों से प्रतिक्रिया आरम्भ करदी है। प्रगतिवाद की कविता परिमाण में अभी अत्यल्प है, परन्तु उसके सैद्धान्तिक दृष्टिकोण, और उधर कुछ एक कहानी-उपन्यास आदि से संकेत लेते हुए कहा जा सकता है कि जीवन की अन्य अभिव्यक्तियों की भाँति विरह का विवेचन भी वह आर्थिक वैषम्य के आधार पर करेगा। उसकी विरहिणी पूंजीवादी समाज-व्यवस्था के दुष्परिणामों से शोषित नारी होगी, ऐसा अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

रवि बाबू ने कहा है कि मेरी आत्मा में एक विरहिणी भरी बैठी है जो अपने दुःख के गीत सुनाया करती है। परन्तु वास्तव में यह विरहिणी तो अजर अमर है। प्रत्येक युग के कवियों के हृदयों में इसका वास है। यही विरहिणी तो आदि कवि के हृदय में सीता, कालिदास के हृदय में शकुन्तला, जायसी के हृदय में नागमती, सूर के अन्तस में राधा, मैथलीशरण के मानस में उर्मिला और महादेवी के प्राणों में कवि से तद्रूप होकर रोई है।

(आ० इं० रेडियो के सौजन्य से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध की यह मीमांसा, प्रज्ज्वलित प्रतिशोध की वाणी का यह स्वरसन्धान, अपने को मिटाकर भी स्वतन्त्रता पाने की हठ का आह्वान गुलाम भारत तथा अन्य सभी पराजित एवं पददलित राष्ट्रों के विकास और गति का मूलमन्त्र है। कुरुक्षेत्र वाली वाणी वास्तव में युगवाणी है। विश्व-महायुद्ध के बीच सबसे महान निरीह हत्या भारत की ही हुई है। सन् ४२ का पृष्ठ रक्ताक्षरों से लिखा गया है और इस रक्त में हिन्दू-मुसलमान तथा ईसाई सभी भारतीयों के रक्त की अपनी-अपनी अरुणिमा है। हिन्दी के कवि का यह स्वर देश-व्यापी पीड़ा तथा अपमानजनक क्रीड़ा की प्रतिशोध-परिपुष्ट अन्तर्ध्वनि की प्रतिध्वनि-शंखध्वनि मात्र हैं। और सन् ४३ का जनविरचित बंगाल का अकाल; रोंगटे खड़े हो जाते हैं! सदियों से यह देश इसी के लिए गौरवान्वित है; और आज! आज तो दिनकर ने ठीक ही लिखा है—

जिस दिन समर की अग्नि बुझ शान्त हुई,
एक आग तब से ही जलती है मन में।

इसी ज्वाला से तपा हुआ, निखरा हुआ, दिनकर का कवि कुरुक्षेत्र के प्रथम प्रश्न से ही स्वत्व-प्राप्ति की साधना में युद्ध-क्रान्ति को अनिवार्य मानता है, और सच तो यह है कि दिनकर का क्रान्ति प्रतिपादन आज के भारत के लिए गीता की तरह गेय हो उठा है। प्रश्न के द्वारा प्रश्न का उत्तर देना वाणी की शक्ति का समर्थक है और यदि यह प्रश्न काव्यमय हो, काव्य हो तो सोने में सुगन्धि की प्रतिष्ठा। दिनकर का प्रश्न-उत्तर ऐसा ही है—

पापी कौन मनुज से उसका
न्याय चुराने वाला।
याकि न्याय खोजते विघ्न का
सीस उड़ाने वाला।

'न्याय चुराने वाले को' पापी तो सभी कहेंगे, मानेंगे किन्तु 'सीस उड़ाने वाले' की दाद देना कठिन है।

देश की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साधन निर्देशकों में प्रायः दो दल हैं—गान्धीवादी और शेष विभिन्न मतवादी। कोई भी दल और कुछ भी विश्वास करता रहा हो, युद्ध की चुनौती द्वारा देश को स्वतन्त्र करने की प्रेरणा लेकर नहीं आया।

हाँ, राजनीति में, साहित्य में क्रान्ति के कतिपय शब्दकार ऐसे अवश्य रहे जो क्रान्ति की शब्द-रचना बराबर करते रहे और करते हैं। बच्चन की 'बंगाल का अकाल' एक ऐसी ही क्रान्तिकारी कविता है जो पिछले सन् ४२-४३ के दानवी बंगाली दुर्भिक्ष को आधार बना कर लिखी गई है। कविता बड़ी घनघोर है, फ्रांस की महाक्रान्ति का सजीव स्मरण सामने रखकर ब्रेड ब्रैला-ब्रैला के साथ बहुत ही ओजपूर्ण शब्दों में बंगाली (भारतीय) मरभुखों से क्रान्ति की अपील की है। शान्ति-अहिंसा का पाठ पढ़ाने वाले पुरखों को आवेश में लंठ तक कह डाला है किन्तु सन् ४२-४३ के मुर्दों की आवाज सन् ४७ के जीवित-प्राणों की पुकार नहीं, मानवता का उपहास मात्र है क्योंकि जिनसे क्रान्ति की कामना की गई है, वे मर गए। काश कि बच्चन ने उस समय यह आवाज उठाई होती? महादेवी जी ने बंग-दर्शन का माध्यम कवियों के लिए उपस्थित किया था। कविता पढ़ने से सहज में ही यह विश्वास होता है कि भूखों-कुत्तों की तरह मरने वाले मानव की मरणशील मनोवैज्ञानिकता में कवि की यह स्वर-साधना निश्चय ही नए प्राण फूंक देती—फ्रांस की क्रान्ति की तरह जिसका स्मरण कविता में है। पर बच्चन के कवि को यह सौभाग्य नहीं मिला और आज तो वह कविता उस महानाश और महापमान की विस्मरणीय स्मृति के अतिरिक्त कुछ नहीं, चिता की टंडी राख, बारूद नहीं। बच्चन ने इसके पहले भी कहीं लिखा है।

कंचन तो लुट चुका पथिक अब,
लूटो राख लुटाता हूँ मैं।

ऐसे क्रान्तिकारी कवियों की हिन्दी में कमी नहीं क्रान्तिदूत अंचल जी का तो सारा साहित्य क्रान्ति की कल्पित कल्पना किलोल है। इस प्रकार देश में गांधीवाद न केवल राजनीति में वरन् साहित्य में भी हावी रहा। तभी तो बच्चन जैसा महाप्राण व्यक्ति भी मच्छरों की भांति मरते हुए भुखमरों में खड़े होकर उन्हें स्फूर्ति नहीं दे सका और कवि पुंगव अन्तर्राष्ट्रीयता की शव पर रूस-गान की, लालनिशान की, स्टैलिनग्रेड की साधना करते रहे। उस समय का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगतिशील साहित्य सब सामने है।

धीरे-धीरे समय बदल रहा है और देश पीड़ा के दंशन से विचक कर उद्बुद्ध हो रहा है, गांधीवाद की अगली पीढ़ी राजनीति और साहित्य दोनों में, जिसकी आत्मा सन् ४२ में बमक उठी थी सामने आ रही है और दिनकर के शब्दों में उसकी रूप रेखा भी।

युद्ध का उन्माद संक्रमशील है
एक चिनगारी कहीं जागी अगर
तुरत बह उठते पवन उनचास हैं
दौड़ती-हँसती-उगलती आग चारों ओर से।

सन् ४२ में ऐसा ही हुआ था। मारपीट-तोड़फाड़ सारे देश में एक ही दिन! कहा जाता है उसके इतिहास बाजार में बिकते हैं। फल भी कुछ बुरा नहीं हुआ। आज निश्चय ही हम गांधीवाद द्वारा उपार्जित प्रायः पूरे राजनीतीक अधिकारों से बहुत ज्यादा के अधिकारी हैं। फिर भी देश की स्थिति में अभीतक किसी सम पर अपने ताल-स्वर को समन्वित करने की कोई सुविधा सामने नहीं दीखती, चारों ओर अविकल-अवरोध। दिनकर के कवि ने इस परिस्थिति को, देश की इस विपन्नता को, उसके 'पैसिव-रेभिस्टेन्ट' को चीन्हा-पहचाना है, क्योंकि वह समाजी है, संसारी है। हर गाँव-प्रान्त-देश-विदेश विश्व को साथ लेकर चलता है, सब को सब के मन का रास्ता दिखाता है, उसे द्रष्टा भी तो कहा जाताहै। विश्व के स्वतंत्रता संग्रामों में, सामाजिक क्रान्तियों में, जीवन-विकास की प्रायः सभी सम्भावनाओं में, अखिल जीवन में, साहित्यकार विचार और भाव जगत् का गायक अगुआ रहा है और रहेगा।

दिनकर उनमें से एक हैं। नये भारत का नया नेता, यद्यपि अपनी पोथी 'नये भारत के नये नेता' में दिनकर का शुमार नहीं किया। पर दिनकर तो आज प्रतिशोध पर उतारू है—

जानता हूँ किन्तु जीने के लिये
चाहिये अंगार जैसी वीरता,
पाप हो सकता नहीं वह युद्ध है
जो खड़ा होता ज्वलित प्रतिशोध पर।

इतना ही नहीं और भी—

चीनता हो स्वत्व कोई और तू
त्याग तप से काम ले यह पाप है।

यही दिनकर की ललकार है, समय को कवि का सन्देश है। दिनकर ने साफ भूमिका में लिख दिया है—'कुरुक्षेत्र की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न महाभारत को दुहराना ही मेरा उद्देश्य था। मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठर और भीष्म का प्रसंग उठाये बिना भी कहा जा सकता था किन्तु तब यह रचना (कुरुक्षेत्र) शायद प्रबंध के रूप में नहीं उतर कर मुक्त बनक कर रह गई होती। दिनकर ने भीष्म और युधिष्ठर का प्रसंग उठाया है। कुरुक्षेत्र की प्रबंधात्मकता के लिये नहीं वरन् अपनी भावधारा की प्राण-प्रतिष्ठा के लिये आज अपने अधिकारों को मांगने की अपेक्षा येनकेन प्रकरेन लेलेना ही अधिक जँचता है। जनता-समाज-देश सभी अपने अधिकारों के लिये आकुल व्याकुल हैं। सब के भीतर आग सुलग रही है और दिनकर कुरुक्षेत्र में जाता है, अपने अधिकारों के लिये मर मिटने की बात सिखाता है, युद्ध की बात बताता है। भीष्म के माध्यम से दिनकर की विदग्ध मानवता जैसे चीख पड़ती है—

कायरों सी बातकर मुझको जला मत आजतक
है रहा आदर्श मेरा वीरता, बलिदान ही।

* * * * * *

त्याग-तप, भिक्षा? बहुत हूँ जानता मैं भी, मगर
त्याग-तप, भिक्षा, विरागी योगियों के धर्म हैं,
याकि उसकी नीति जिसके हाथ में शायक नहीं
या मृषा पाखण्ड यह उस कापुरुष बलहीन का
जो सदा भयभीत रहता युद्ध से यह सोचकर
ग्लानिमय जीवन बहुत अच्छा, मरण अच्छा नहीं।

भारत अब ग्लानिमय जीवन बिताने को कतई तैयार नहीं। अब वह अपने अधिकारों के लिए मरने-मिटने, मारने-मिटाने को भी कटिबद्ध है। देशी भाई जान चुके हैं कि—

पाशविकता खड्ग जब लेती उठा
आत्मबल का एक वश चलता नहीं।

ऐसी स्थिति में तो केवल 'शरीर माधम खलु धर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनम्' वाला बलिष्ट शरीर ही काम देता है। आज के भारत की तरह द्वापर में पाण्डवों को निर्वासित करके दुर्योधन ने भी शान्ति की स्थापना की थी किन्तु उसका जो परिणाम हुवा उसी का नाम महाभारत है। आज सारा देश निर्वासित है, सम्भवतः इसी कारण पं० जोशी ने अपने नवीनतम उपन्यास का नाम निर्वासित रखा है। और कृष्ण का काम कवि करे तो आश्चर्य की बात नहीं। कवियों ने देश को विदेश को स्वतंत्रता-संग्रामों में सक्रिय भाग लिया है, इतिहास इसका साक्षी है। दिनकर ने मनुजोचित अधिकारों के लिए युद्ध का निमंत्रण दिया है—खुले शब्दों में जिहाद बोला है, जिसे सुनकर, पढ़कर, मनन करके यदि—

दबे हुए आवेग यहाँ यदि
उबल किसी दिन फूटें,
संयम छोड़ काल बन मानव
अन्यायी पर टूटें।

तो यह स्वाभाविक ही कहा जावेगा। इसी प्रकार के अन्य अनेक तर्कों तथा प्रमाणों से कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि—

किसने कहा, पाप है समुचित
स्वत्व प्राप्ति हित लड़ना
उठा न्याय का खड्ग समर में
अभय मारना मरना।

मूलतः यही दिनकर के कुरुक्षेत्र का सार-स्वर है। इस परिणति तक पहुँचने के लिए सांस्कृतिक तथा व्यवहारिक जिन सीढ़ियों का निर्माण कवि ने किया है वे उसके काव्य की अनोखी उक्तियाँ और चुभती हुई सूक्तियाँ हैं। जिनके द्वारा मानव को नई प्रेरणा मिलती है, वह नये विचार सुनता और समझता है—

कानन में देख अस्थि-पुंज मुनि पुंगवों का
दैत्य-वध का था किया प्रण जब राम ने;
"मति भ्रष्ट मानवों के शोध का उपाय एक
शस्त्र ही है"? पूछा था कोमलमना वाम ने।
"नहीं प्रिये सुधर मनुष्य सकता है तब
त्याग से भी" उत्तर दिया था घनश्याम ने,
"तप का परन्तु बस चलता नहीं सदैव
पतित समूह की कुवृत्तियों के सामने"।

और फिर—

हिंसा का आघात तपस्या ने कब कहाँ सहा है?
देवों का दल सदा दानवों से हारता रहा है।

इसलिए कवि बार-बार सचेत करता है कि—

करुणा, क्षमा है क्लीब जाति के कलंक घोर
क्षमता क्षमा की शूर-वीरों का सिंगार है।

वस्तुतः भारत जैसे पराजित-पीड़ित देश को आवश्यकता इस बात की है कि वह—

कौन है बुलाता युद्ध? जाल जो बनाता?
या जो जाल तोड़ने को क्रुद्ध काल-सा निकलता?

कहते हुए अपने अधिकारों के लिए डट जाय और उन्हें अपनी शक्ति से प्राप्त करे।

दिनकर ने विजयोपरान्त व्यवस्था का भी बहुत ही सुन्दर-स्वस्थ और समतामय निर्देशन किया है—

शान्ति नाम उस रुचिर सरणि का
जिसे प्रेम पहचाने,
खड्ग-भीत तन ही न
मनुज का मन भी जिसको माने।

सबके मानने की बात समता के सिवाय और हो भी क्या सकती है?—

धर्मराज यह भूमि किसी की नहीं क्रीत है दासी,
है जन्मना समान परस्पर इसके सभी निवासी।

अस्तु—

पृथिवी हो साम्राज्य स्नेह का,
जीवन स्निग्ध सरल हो,
मनुज-प्रकृति से विदा सदा को
दाहक द्वेष-गरल हो,
बहे प्रेम की धार, मनुज को
वह अनवरत भिगोये,
एक दूसरे के उर में नर
बीज प्रेम का बोये।

क्योंकि मानव के साथ मानव की साम्यवादी-स्नेहवादी नीति ही से विश्व का कल्याण सम्भव है, अन्यथा नहीं। कौन नहीं जानता कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार-विमर्श—

प्रसाद जी की कहानियों में यथार्थवाद की अभिव्यञ्जना

प्रसादजी कवि हृदय तथा छायावाद के प्रवर्तकों में से एक थे। फिर भी सांसारिक जीवन की यथार्थ परिस्थितियों तथा उनके प्रभावों से वे एक दम मुक्त न होसके। देशकाल का प्रभाव उनके हृदय तथा मस्तिष्क पर भली भांति पड़ा जिसकी झलक उनके साहित्य में अनेक स्थलों पर दृष्टिगत होती है। आदर्श तथा काल्पनिक लोक में विचारों के पंखों के द्वारा विचरने वाले प्रसादजी ने स्वयम् ही यथार्थ की महिमा का कई एक स्थान पर उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ आंधी कहानी में प्रसादजी ने लिखा है:—"फिर भी घर बसाना पड़ेगा। फिर वही सब समस्याएँ सामने आयेंगी। तब तुम्हारा यह स्वप्न भंग हो जायगा। पृथ्वी ठोस और कंकरीली रह जायगी। फूल हवा में बिखर जायगें......"

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण हमें विवश करते हैं कि हम उन्हें यथार्थ जगत की ठोस तथा कंकरीली पृथ्वी से विमुख न समझें। लेखक की प्रथम कहानी में हम ग्रामीण जीवन का यथार्थ वर्णन पाते है। प्रेमचन्द की भाँति प्रसादजी ने यद्यपि ग्राम जीवन के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश नहीं डाला, तथापि प्रसाद के हृदय पर गावों की हीनता तथा घोर दरिद्रता का गम्भीर प्रभाव पड़े बिना न रह सका। देश की दरिद्रता का प्रभाव प्रसादजी पर पर्याप्त मात्रा में पड़ा। फलतः उन्होंने अपनी कई एक कहानियों में दरिद्र जीवन का चित्रण करते हुए धनी तथा पूंजीपतियों की अर्थ लोलुपता पर व्यंग वाणों की वर्षा की है।

'करुणा की विजय' कहानी में लेखक ने अधिकारी वर्ग की स्वार्थ परता तथा कर्तव्य विमुखता का चित्रण किया है। इसी कहानी में मोहन के कपड़ों तथा रोकड़ का वर्णन लेखक ने इस प्रकार किया है:......"एक कुये के समीप बैठा हुआ अपनी बहन को समझा रहा है। फटे हुए कुरते की छोर से उसके अश्रु पोंछने में वह सफल नहीं होरहा है। क्योंकि कपड़े के सूत अश्रु विशेष थे।...... ढाई पैसे के वह बेच चुका था। अभी दो तीन पैसे का चना जो जल और मिर्च में उबाला हुआ था और बचा है। मोहन चाहता था कि चार पैसे उसकी रोकड़ में और बचे रहें। डेढ़ दो पैसे का कुछ लेकर अपना और रामकली का पेट भर लेगा।" मोहन की गरीबी का यह वर्णन पढ़कर प्रत्येक व्यक्ति यही सोचेगा कि प्रसादजी यथार्थ जीवन के कुशल चित्रकार हैं और सन्देह होने लगता है कि यही प्रसादजी छायावाद के प्रवर्तक थे जिन्होंने यथार्थ जीवन का इतना सूक्ष्म अवलोकन किया था।

इसी प्रकार नीरा का पिता (नीरा कहानी में) निरन्तर दुखों का सामान करते करते नास्तिक बन जाता है। ईश्वरी भक्त-वत्सलता का वह उपहास करता है। प्रेमाश्रम के दुख

जब तक मनुज-मनुज का यह
सुख-भाग नहीं सम होगा,
शान्ति न होगा कोलाहल
संघर्ष नहीं कम होगा!

अन्त में यह बता देना अनुचित न होगा कि मैंने पाठकों के सामने दिनकर के कुरुक्षेत्र का रीढ़-भाव ही सामने रखने की चेष्टा की है। युधिष्ठिर की ग्लानि और भीष्म का आँखे खोलने वाला प्रबोध तथा तन-मन एवं बुद्धि-हृदय के द्वन्द्व और अन्तर्वृत्तियों का काव्योचित आकलन यदि देखना हो तो कुरुक्षेत्र में प्रवेश कीजिए। राजनीति में शान्ति-अशान्ति का उपयोग, जीवन में यौवन-वार्धक्य का उपयोग, ज्ञान-वैराग तथा कर्म का योग, मानवीय साम्य-सिद्धान्ती नूतनता का आनन्द और प्रयोग आदि का काव्यानन्द लेने के लिए दिनकर का यह काव्य पठनीय है, संग्रहणीय है। मानव श्रेय के लिए दिनकर के ये शब्द कितने सजीव हैं—

श्रेय उसका बुद्धि पर चैतन्य उर की जीत;
श्रेय मानव की असीमित मानवों से प्रीत।
एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान,
तोड़दे जो, बस वही ज्ञानी, वही विद्वान्।

और मानव भी वही है।

कुरुक्षेत्र-रचयिता-श्री रामधारीसिंह दिनकर, प्रका०-उदयाचल पटना। मूल्य ३॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरन भगत भी नीरा के पिता के समान चित्रित किये गये हैं। प्रसादजी ने अपनी 'भिखारिन' तथा 'छोटे जादूगर' कहानी में भी यथार्थ जीवन का भला चित्रण किया है। 'छोटे जादूगर' कहानी में बालक जब जादू का तमाशा दिखाकर घर पहुँचा तो उसकी माँ अन्तिम सांसें लेरही थी। बिना कुछ बोले ही वह चल बसी। कहानी का करुण अन्त हममें समाज के स्वार्थी और विनोद प्रिय रईसों के प्रति विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित कर देती है। यथार्थ की कठोरता से छबकर किसी अन्य लोक में भाग जाने की इच्छा हमारे हृदय में जागृत हो उठती है। प्रसादजी दरिद्र जीवन की हीनता से प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त उनकी रचनाओं में हमें कहीं कहीं राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का भी चित्रण मिलता है पर वहाँ भी प्रसादजी अपने आदर्श को नहीं भूले और जैसी परिस्थिति है उसका यथार्थ सब चित्रण करके वे चुप नहीं होगए। उनका उद्देश्य था उसमें सुधार करना, उसे उचित मार्ग पर लगाना।

'आँधी' तथा 'इन्द्रजाल' संग्रह में यथार्थवादी कहानियों की अधिकता है। आँधी, मधुआ, घीसू, बेड़ी, इन्द्रजाल तथा गुण्डा इत्यादि कहानियों में लेखक अपनी कल्पना का सहारा लेकर किसी आदर्श लोक की स्थापना नहीं करता बरन यथार्थ जीवन का चित्रण करना ही उसका लक्ष्य है। मधुआ तथा घीसू कहानियों में शराबी तथा घीसू का जीवन चित्रण यथार्थ से अत्यन्त विवश है। शराबी का जीवन और उसके मनोभावों का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक है। इसी कहानी में मधुआ के प्रति करुणा की भावना तथा शराब पीने की लालसा दोनों ही भाव उसके हृदय में उठते हैं। उनमें संघर्ष होता है पर अन्त में करुण भाव की विजय होती है। घीसू कहानी में यत्र तत्र आदर्शों की भी स्थापना की गई पर यथार्थवाद आदर्शवाद से दबा हुआ दृष्टिगत होता है।

'बेड़ी' कहानी में यथार्थपूर्ण वातावरण ही चतुर्दिक दृष्टिगत होता है। उसमें आदर्शों के लिए कोई स्थान नहीं है। श्री विनोद शंकर व्यास के शब्दों में बेड़ी का कथानक सत्य घटना पर निर्भर है। प्रसादजी ने अपनी आँखों से बनारस की गलियों में फिरते हुए एक अंधे भिखारी को देखा था जिसने अपने सुख तथा स्वार्थ के लिए लड़के के पैरों में बेड़ियाँ डाल दी थी और एक दिन वह एक धनी की तीव्र गति से आती हुई कार से टकरा गया। पर पैसे की कचालू खाने और शीत का दूर करने के लिए कुरता पहनने की अपूर्ण साध लिए हुए वह बालक अपनी सांसारिक बेड़ियाँ काटकर इस लोक से बिदा होगया।

प्रसादजी ने 'आँधी' कहानी में लैला (एक ईरानी नवयुवती) की प्रेम कहानी का यथार्थ वर्णन करते हुए स्थान स्थान पर आधुनिक डाक्टरों, मनोवैज्ञानिकों तथा इतिहासकारों पर व्यंग बाण चलाये हैं। मनोवैज्ञानिकों पर लेखक ने निम्न शब्दों में व्यंग किया है—

"आज कल मनोविज्ञान का युग है न? प्रत्येक मनोवृत्ति के लिए हृदय को कबूतर का दरबा बना डाला है, जिसके लिए सफेदा, नीला, सुर्खा का श्रेणी बिभाग कर लिया गया है।"

यह सब प्रसाद की यथार्थवादिता के परिचायक हैं और यह प्रमाण है कि वे कल्पना के सहारे ही आदर्श लोक में नहीं विचारा करते थे, वरन् यथार्थ जीवन और आधुनिक परिस्थितियों तथा समस्याओं से भी वे परिचित थे। प्रसाद जी की कहानियाँ हमारे जीवन से दूर की वस्तु नहीं है। उनमें स्वाभाविकता की भी कमी नहीं है।

ले०—त्रिलोकी नारायण दीक्षित एम० ए०,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगतिशील संगीत

साहित्य-सन्देश के नवम्बर १९४६ के अंक में एक नोट श्री प्रभाकर माचवे का प्रकाशित हुआ है जिसमें उन्होंने और बातों के साथ प्रगतिशीलता या प्रगतिशील संगीत के संबन्ध में चर्चा की है। आज कल प्रगतिशील नाम प्रत्येक कृति के साथ जुड़ा होना आवश्यक है, ऐसी ध्वनि आज के साहित्यिक वर्ग में विशेष रूप से जागरूक है। 'प्रगति शील' शब्द आज लाक्षणिक अर्थ में प्रयुक्त होता है। स्पष्ट तौर से हंसिया हथोड़े से संबन्ध रखने वाली कृति या कम्युनिस्ट कृति के साथ। इसीलिए प्रत्येक कवि या कलाकार से आशा की जाती है कि प्रगतिशील बनने के लिए परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से उसका संबन्ध कम्युनिस्ट पार्टी से हो। मेरे एक कहानीकार कम्युनिस्ट मित्र तो यहाँ तक आगे बढ़ गए हैं कि वे मनुष्य के पुराने ढंग के पहनावे को देखकर उस व्यक्ति की कलात्मकता का भी परिचय पा लेने का दावा रखते हैं। उनकी दृष्टि में ऊँचे कालरका कुरता तथा पजामा पहरने वाला व्यक्ति ही प्रगति शील हो सकता है। उनका कहना है कि मनुष्य का पहनावा देखकर वे उसकी कृति के संबन्ध में भी निर्णय दे सकते हैं। वे कहते हैं—'हंसिया हथोड़े, लाल निशान और रूस पर लिखी गई आज तक की प्रत्येक कविता कलिदास रवीन्द्र तथा आजकल के युग-प्रवर्तक कवियों से श्रेष्ट है।'

जहाँ इतना आग्रह अपने मत के प्रति लोगों (प्रगतिशील कहलाने वाले वर्ग) में हो यदि वहां प्रगतिशील संगीत की भी कल्पना की जाय तो आश्चर्य की बात नहीं है।

कहानी, कविता, नाटक, उपन्यास तक ही यह बात नहीं है। आलोचना के समय भी कुछ लोग इसी दृष्टि-कोण से आलोचना करते हैं। यदि आप तथाकथित प्रगतिशील वर्ग से किसी प्रकार संबन्ध नहीं रखते तो आपकी अच्छी से अच्छी कृति भी उनकी दृष्टि में उपहासास्पद एवं निन्दनीय है। वे चाहेंगे कि ऐसी कृति का निर्माण न हो, पाठकों तक भी वह न जा सके। रूस के मार्क्सवादी लेखक 'प्लेखोनोव' की तरह का यह दुराग्रह आजकल के हिन्दी लेखकों में पाया जाता है। जिसने बिना समझे बूझे 'मिनुमेट' नाम के एक परम्परागत नृत्य के पूंजीवादी कह कर पुकारा था।

मैं मानता हूँ प्रगतिशील या प्रगतिवाद मानवता तक पहुँचने का साधन है, स्वयं साध्य नहीं है। इसी तरह कम्युनिज्म भी हमारे या संसार के समाज के वास्तविक सुखतक पहुँचने का एक प्रयोग है। वह प्रयोग भविष्य में कैसा सिद्ध होगा, यह भविष्य के गर्भ में है। ऐसी अवस्था में हमें प्रत्येक पुरानी वस्तु या प्रत्येक अप्रगतिशील कही जाने वाली कृति को उपेक्षा की दृष्टि से देखने का अधिकार नहीं है।

एक प्रकार के ज्ञान के संस्कृत होने में युगयुगान्त के प्रयत्न होते हैं जो परिवर्तित एवं परिवर्धित होकर उसको साहित्य का अङ्ग बनाते हैं। वह हमारे साहित्य की संचित निधि बनती है। यदि हम उनको सुरक्षित रख कर समय की उपादेयता के अनुसार कुछ सामयिक चीजें लिखते हैं तो वे शाश्वत नहीं हो सकतीं और न वे हमारे साहित्य की निधि ही बन सकती हैं। रूस, लाल निशान, हँसिया, हथोड़े की कविता में एक सिद्धान्त के प्रचार का साधन है, स्वयं स्थायी साहित्य नहीं है।

जनता में प्रचारार्थ लिखाजाने वाला साहित्य न तो शाश्वत हो सकता है न भविष्य के लिये प्राणवान। उसकी प्राणवत्ता सामयिक है और समय के बीत जाने या जिस उद्देश्य के लिये वह लिखा गया है उसकी पूर्ति हो जाने के बाद उसका महत्व नहीं रहता। इसलिये प्रगतिशीलता की व्याख्या हमको कुछ और आगे बढ़ कर करनी होगी। उसमें उन तत्वों को भी लेना होगा जिनका मानव प्रकृति से स्थायी सम्बन्ध है, तथा जो जीवन के प्रत्येक प्रकार के उत्थान में व्यष्टि या समष्टि के साथ चलते हैं। हम केवल समष्टि ही नहीं है व्यष्टि भी हैं। व्यक्ति की पृथकता या श्रेष्ठता भी हमारे हजारों साल के निरंतर उद्बोधन का फल है। उसे हम छोड़ कर पीछे नहीं चल सकते। इस लिए यह आवश्यक है कि हम जीवन के सभी निर्माणकारी तत्त्वों का समावेश कर के प्रगतिशीलता की व्याख्या करें।

इस दृष्टि से यदि प्रगतिवाद का अर्थ प्रोपेगेण्डा नहीं है तो हमें संगीत, नृत्य, कविता, कहानी में उनका भी समावेश करना होगा जो प्राचीन हैं। जिनमें अभीतक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीरां के 'राणा'

समस्त उत्तरापथ को अपने प्रेमाकुल हृदय के विह्वल आह्वान से एक बार ही आलोडित कर देने वाली भक्त मीरा का जीवन चरित्र तिमिराच्छन्न है। इतिहास के पृष्ठ उस पर समुचित प्रकाश डालने में असमर्थ हैं, और भक्त श्रद्धालु जनता उसके चरित्र पर अलौकिकता का आवरण डाल उसे अधिक रहस्यमयी बनाये हुए हैं। मीरा जिसके जीवन की प्रत्येक अनुभूति में, प्राणों की पुकार में भारतीय नारी-हृदय का अन्तर्नाद प्रतिध्वनित है, उस मीरा के सम्बन्ध में जनता का यह अज्ञान हमारे साहित्य का एक करुण अभाव है। इस अभाव की पूर्ति के निमित्त कुछ विद्वानों ने मीरा के जीवनवृत्त पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है। इनमें पाश्चात्य विद्वानों में सर्व श्री टॉड और ग्रियर्सन के नाम प्रमुख हैं, तथा भारतीय विद्वानों में सर्व श्री देवीप्रसाद, श्यामल दास, सारदा और ओझा जी की खोजें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

टॉड के अनुसार मीराँ का काल सन् १४०३ से १४७० है। टॉड की धारणा थी कि मीरा राणा कुम्भा की पत्नी थीं किन्तु यह मत अब भ्रान्त सिद्ध हो चुका है। ग्रियर्सन ने मीरा को विद्यापति की समकालीन माना है। विद्यापति का संवत् १४६० में राजा शिवसिंह के यहाँ वर्तमान होना इतिहास सिद्ध है। किन्तु मीराँ को विद्यापति की समकालीन सिद्ध करने के लिए उपर्युक्त तिथियों के मध्य के ४७ वर्ष के व्यवधान से बड़ी खींच तान करनी पड़ेगी।

इधर भारतीय विद्वानों ने मीरा को १६ वीं और १७ वीं शताब्दी की विभूति सिद्ध किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मीरा की जन्म-तिथि संवत् १५७३ मानी है किन्तु अन्य विद्वानों में श्री देवीदास, श्यामल दास तथा ओझा जी के अनुसार संवत् १५५५ से १६०३ तिथि अधिक युक्ति संगत है। इन सभी विद्वानों ने मीरा को एक स्वर से प्रसिद्ध शूर राणा सांगा की पुत्रवधू और भोज की पत्नी माना है समय के सम्बन्ध में मतभेद होते हुए भी इन सभी विद्वानों ने एक मत से मीरा को मेड़ता के संस्थापक और मेड़तिया शाखा के जन्मदाता दूदा जी की पौत्री और रत्नसिंह की पुत्री माना है। इस तथ्य का निर्देश हमें मीरा के काव्य में भी मिलता है:—

"मेड़तिया घर जन्म लियो है मीरा नाम कहायो।"

कहा जाता है कि मीराँ की "गिरधर लाल" के प्रति लगन बाल्य-काल से ही थी। मीरा का यह प्रेमाधार पार्थिव नहीं, वह अपार्थिव जगत की विभूति है जहां लौकिक वासना की गन्ध अभिप्रेत नहीं।

मीरा को हम सर्वत्र एक प्रेम योगिनी के रूप में पाते हैं। वैवाहिक जीवन की जो कुछ झलक हमें उसके काव्य में मिलती है उससे यह तो स्पष्ट ही ध्वनित हो जाता है कि मीरा की प्रेम साधना में अनेक विघ्न पड़े। कुछ काल-तक जनता की सर्वमान्य धारणा थी कि मीरा के त्रासक स्वयं उसके पति थे। किन्तु इधर विद्वानों का सतत प्रयास यह सिद्ध करना रहा है कि मीरा पर अत्याचार करने वाले उसके देवर विक्रमादित्य थे तथा भोज के जीवन-काल में मीरा का जीवन सुखकर और साधारण लोक व्यवहार सम्मत था। अर्थात् मीरा अपने पति में अनुरक्त थी और

जीवन को उन्मेलित करने की क्षमता है, जो अभी तक हमारे लिए स्फूर्ति का कारण बनती रही है। केवल नवीन की भावना हमारे लिये हितकर न होगी। नवीन केवल उतना ही ग्राह्य है जिससे हमारी परम्परा का बौद्धिक विकास जीवन की ग्राहिणी शक्ति खो न बैठे। कौन नहीं जानता कि इस नवीन कम्यूनिज्म के तत्त्व हमारे प्राचीन विचारों का ही विकास नहीं है या उन बिखरे सूत्रों का एकत्रीकरण नहीं है? यह ठीक है उसमें दर्शन तथा विवेचन की पद्धति नवीन है जिसमें समाज का आर्थिक आधार प्रमुख है। परन्तु आर्थिक आधार तो जीवन का वाह्य व्यापार है। इस वाह्य व्यापार को सब कुछ मान लेना मनुष्य की सब अवस्थाओं के लिये कभी भी हित कर नहीं हो सकता। जहाँ तक समाज का सबन्ध है यह आर्थिक पहलू ठीक एवं सङ्गत है किन्तु उसकी आध्यात्मिकता तथा आत्म-सुख का तो यह कभी भी मूलाधार नहीं बन सकता। सुख या आनन्द हृदय की वस्तु है, वाह्य व्यापार के पहलुओं में सदा परिवर्तन होता रहेगा किन्तु आत्मा में तो हमें अपने अपने भीतर के प्रच्छन्न सुख को खोज निकालना होगा। जिस दिन मनुष्य मात्र में यह क्षमता उत्पन्न हो सकेगी उसी दिन मनुष्य का कल्याण होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी संसार से विरक्ति वैधव्य जीवन गत ज्वाला में है। किन्तु इस विचार धारा से अनेक स्थानों पर मीरा के पदों से साम्य नहीं मिलता और साधारणतः मीराँ के पदों को पढ़ कर पाठक को यही भ्रान्ति होती है कि मीराँ के 'राणा' उसके पति राणा हैं देवर राणा नहीं।

मीरा के पदों में जहाँ भी पारिवारिक जीवन के उल्लेख मिलते हैं वहाँ सर्वत्र हमें उसके लौकिक पति की उपस्थिति का आभास मिलता है। प्रियादास की टीका में मीराँ के सम्बन्ध में हमें जो पंक्तियाँ मिलती हैं वे मीराँ के आत्म परिचय में इतनी सटीक बैठती हैं कि यहाँ उनका उदाहरण देना प्रस्तुत विषय की समालोचना में सहायक सिद्ध होगा। प्रियादास मीरा के सम्बन्ध में लिखते हैं—

मेर तो जन्म भूमि, झूम हित नैन लागे
पगे गिरधारी लाल पिता ही के धाम में
राना कै सगाई भई करी ब्याह सामानई
गई मत बूढ़ि वा रंगीले घनश्याम में।
भांवरे परत मन सांवरे सरूप मांझ
तांवरे सी आवे चलिबे को पति गाम में
पूछैं पिता माता 'पट आभरन लीजिये जू'
लोचन भरत नीर कहा काम दाम में।
देवो गिरधारी लाला जौ निहाल कियौ चाहौ
और धन माल राखियै उठाय के
बेटी अति प्यारी प्रीति रंग चढ़यौ भारी
रोय मिली महतारी कही 'लीजियै लड़ाय कै"

तथा—

राणा सुनि कोपि करयौ धरयौ हिय मरबोई
दई ठौरं न्यारी देखि रीझि मति बाम की
लालन लड़ावै गुन गाय कै मल्हावै
साधु संग ही सुहावै जिन्हें लागी चाह श्यामकी।

प्रियादास की इस टीका से यह निर्भ्रान्त सिद्ध है कि अभी तक मीराँ के त्रासक उसके पति राणा ही माने जाते थे तथा मीराँ का कृष्ण-प्रेम वैधव्य की ज्वाला को भूलने का उपादान मात्र न था। कृष्ण उसके बाल्य सखा और प्रणयी हैं—

'भांवरे परत मन सांवरे सरूप मांझ की' उक्ति 'मेरी उनकी प्रीति पुरानी, उन बिन पल न रहाऊँ" की ही पुष्टि करता है।

स्वप्न देखती है और विश्वास के आवेग भरे हृदय से कह उठती है—

"माई म्हाँ ने सुपने में परण गया जगदीश
सोती को सुपना आविज्योजी, सुपना विश्वावीस।"
"माई म्हाँ ने सुपने में परण गया गोपाल।
अंग अंग हल्दी में करी जी सुधे भी ज्यो गात
माई म्हाँ ने सुपने में परण गया दीना नाथ।"

कोई विश्वास करे या न करे, मीरा का विश्वास तो अटल है। बार-बार वह गा उठती है—

"सुपने में म्हाने परण गया जी हो गया
अचल सुहाग।"

एक दिन मीरा के जीवन में ऐसा आता है जब वह देखती है कि उसका प्रेम-मार्ग अवरुद्ध है। वहाँ पति अपने सम्पूर्ण अधिकार दर्प से अपने प्रणय का दावा करता है। अधिकार के इस दावे पर मानों वह विवश होकर कह उठती है—

"राणा जी म्हाँरी प्रीति पुरबली मैं कांई करूँ"

राणा का अधिकार गर्व यहाँ अवश्य ही कुण्ठित हुआ होगा। उधर मीरा राज कुल की मर्यादा के विरुद्ध निर्बाध भाव से साधुओं का सत्संग भी करने लगीं—राजमन्दिरों में जहाँ केवल श्री एक लिङ्ग के पूजन की परम्परा चल रही थी, वैष्णव जन के गान गूँजने लगे। मीराँ का मार्ग भला निर्बाध कैसे रहता? विवाह के अवसर पर ही गौरी-पूजन के विधान से मीरा की हठ पूर्ण असह मति "म्हाँने गुरु गोविन्द री आन गोरल का पूजाँ" सास की तथा अन्य परिजनों की विपत्ति का कारण बन गई। सास ऊँच-नीच समझाती है-"थे बेटी राठोड़ की थाँने राज दियो भगवान।" किन्तु मीराँ अपनी टेक नहीं छोड़ती यही नहीं जब वह सौभाग्य-सूचक आभूषण भी उतार कर कौषेय धारण करती है तब राणा पुनः मीराँ से उसकी इस उदासीनता के प्रति विद्रोह प्रकट करते हैं, तभी अपने प्रण में अटल मीराँ मानो सदर्प कह उठती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हार सिंगार सभी ल्यो अपना चूड़ी कर की पटकी।
मेरा सुहाग अब मोकूँ दरसा औरन जाने घट की ।।
महल किला राणा मोहि न चाहिये सारी रेशम पटकी
हुई दिवानी मीराँ डोले केस लटा सब छिटकी।"

क्या मीरा की यह उक्ति पति से भिन्न किसी अन्य पुरुष के प्रति हो सकती है?

"चुनरी के लिए टूक-टूक ओढ़ लीन्ह लोई
मोती मूँगे उतार बन माला पोई।"

मीराँ की यह स्वच्छन्दता तथा हठ घर वालों की आँखों में काँटे सी खटकती है—सखियाँ निरन्तर समझाती हैं, ननंद ऊदा मीराँ से राजवधू के उपयुक्त वस्त्राभूषण पहनने तथा लौकिक ऐश्वर्य भोग का बार बार स्नेहाग्रह करती है। 'रत्न जड़ित पहिरो आभूषण भोगो भोग अपारी" पर वह आग्रह व्यर्थ सिद्ध होता है। तब ऊदा दूसरे प्रबल शस्त्र लोक निन्दा का भय दिखाती है। वह कहती है—

"भाभी मीरा लाजे लाजे गढ़ चित्तौड़
राणो जी लाजे गढ़ रा राजवी।"

तथा—

"भाभी मीरा लाजे लाजे प्यारा मायन बाप
पीहर लाजे जी कांशे मेड़ तो।"

पर ऊदा का यह अस्त्र भी व्यर्थ ही जाता है और तब मानों वह हताश होकर प्रश्न करती है—

वर पायो हिंदुवाणी सूरज, थें काई मन धारी"

हे भावी! अब तो तुम हिन्दू कुल के सूर्य स्वरूप राणा को ही पति रूप में प्राप्त कर चुकी; अब किस आकांक्षा से यह साधना कर रही हो? अर्थात् हिन्दू स्वरूप राणा से बढ़ कर नारी के लिए और कौन आदर्श वर हो सकता है।

किन्तु मीराँ कह उठती है—

"ऐसे वर को क्या वरूँ,
जो जनमै और मर जाय।
वर वरिये एक साँवरों जी,
'मेरी' चुड़लो अमर हो जाय।"

मीराँ पर जब समझाने बुझाने से कोई प्रभाव न पड़ा तब उस पर अत्याचार प्रारम्भ हुए। मीराँ के पदों में अनेक जगह विषाद मानो छलका पड़ा है—

"हेली म्हाँ सूँ हरि बिन रह्यो न जाय।
सासु लड़ै मेरी ननद खिझावे,
राणा रह्यो रिसाय।
पहरो भी राख्यो, चौकी बिठायो,
ताला दियो जड़ाय।
पूर्व जन्म की प्रीति पुराणी,
सो क्यूँ छोड़ी जाय।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर,
और न आवे म्हारी दाय'

"औरन आवे म्हाँरी दाय" मुझे तो गिरिधर नागर के अतिरिक्त और कोई पसन्द ही नहीं आता, अरे! मैं क्या करूँ?

यह विषादोक्ति पति के अतिरिक्त और किस की ओर लक्ष्य कर सकती है?

किन्तु अत्याचार का यहीं अन्त नहीं। मीराँ के प्रति राज परिवार में विद्रोह बढ़ता ही रहा। राणा का हृदय मीरां के प्रति अत्यन्त कठोर हो उठा। मीरां का साधुओं के मध्य बैठ कर भजन कीर्तन करना एक अक्षम्य अपराध था। किंवदन्तियों से तो यहाँ तक प्रकट है कि राणा तथा अन्य सम्बन्धी मीरां के चरित्र पर भी सन्देह करने लगे और एक बार स्वयं राणा तलवार लेकर मीरा का वध करने पहुँचे। किन्तु मीरां के पदों में इसका उल्लेख नहीं। "सांप टिपारो" तथा "विष को प्यालो" का उल्लेख अवश्य मीरां ने अनेक बार किया है। संसार के इन प्रपञ्चों से, अत्याचारों से तथा ईर्षा द्वेष मुक्त मीरां कभी कभी तो मानों चकित होकर प्रश्न करती है—

"राणा जी के क्यां ने राखो म्हासूँ बैर।
के तो राणा जी म्हांने ऐसा लाग्यो
ज्यूँ ब्रच्छन में कैर।"

और कभी विरक्त हो कर कह उठती है—

"सीसोद्या रूठो तो म्हारो कांई कर लेसी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कभी नारी जन्म सहज करुणा से अभिभूत हो कह उठती है—

"राणा मो पर कोप्यौ रे रती न राख्यो मोद।
ले जाती बैकुंठमें यह तो समझ्यो नहीं सिसोद।"

इस उक्ति में हमें एक और संकेत मिलता है—भारतीय धर्म परम्परा के अनुसार पत्नी के पुण्य बल से पतित से पति के भी उद्धार के दृष्टान्त मिलते हैं। मीरा की यह उक्ति संभवतः इसी सिद्धान्त की ओर संकेत करती है।

मीरां के इसी प्रकार के और भी कितने हीं पद हैं जहाँ मीरां ने राणा को सम्बोधन कर अपना हृदय मानों खोल कर रख दिया है।

मीरां के पदों में जिन राणा के प्रति सम्बोधन है वह मीराँ के देवर हैं या पति ? विद्वानों की सम्मति तो देवर के ही पक्ष में है किन्तु मीरां के पदों में व्याप्त ध्वनि से वह पति ही प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त मीरां ने जैसे अपने पदों में सास, ननद, सखियों आदि का उल्लेख किया है वैसे ही क्या वह देवर कह कर राणा को एक बार भी सम्बोधन नहीं कर सकती थी। पर मीराने ऐसा नहीं किया यह भी भारतीय नारी के पति के नाम न लेने की साधारण रीति के अनुकूल ही प्रतीत होता है। मीरां ने प्रत्येक स्थान पर "राणा" और "सीसोद्या" उपाधियों का ही प्रयोग किया है अत: यह "राणा" मीरां के पति ही प्रतीत होते हैं देवर नहीं।

मीरां का राणा से विवाह तो हुआ पर वह उन्हें पति रूप में कभी वरण न कर सकी। आर्य रमणी का पति तो एक ही हो सकता है और मीरां अपने पति का परिचय उन्मुक्त कंठ से देती है—

"मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई,
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।"

इसी भाव की यथार्थता हमें एक गुजराती पद में मिलती है जो मीरा की एक निष्ठा पर मानों सत्य की छाप लगा देती है—

"कानुडेन जाणी मोरी पीर बाइहुँ तो बाल कुंवारी।"*

मीराँ के इस पद में "बाल कुंवारी" शब्द का प्रयोग चिन्त्य है। यह प्रयोग मीराँ के आलोचकों को उनकी जीवन सम्बन्धी गुत्थी सुलझाने में सहायता दे सकता है। विवाहिता मीराँ अपने को "बाल-कुंवारी" कहती है। यह क्या अकारण हो सकता है ? मीराँ के स्वर में कहीं भी लोक-भावना का प्रतिबन्ध नहीं। उसने अपने विषय में जो कुछ भी कहा है वह कहीं रहस्यात्मक नहीं। अत: मीराँ को समझने के लिए हमें टेढ़े-मेढ़े मार्ग के अनुसरण की आवश्यकता नहीं। मीराँ का लौकिक-व्यक्ति से परिणय उसके जीवन पर कोई छाप न डाल सका।

"रैन अंधेरी विरह घेरी तारा गिणत निस जात।
लै कटारी कंठ चीरूं करूंगी अपघात।"

मीराँ का आस्तित्व लोकोत्तर है—अतः लौकिक दृष्टि-कोण से मीराँ की जीवनी नहीं समझी जा सकती। विद्वानों की विचारावलि में मीराँ को 'राणा' की मीराँ का पति मानने में संकोच होने के दो ही व्यक्त कारण प्रतीत होते हैं—एक तो भारतीय नारी का पति की उपेक्षा कर अपना स्वतन्त्र मार्ग निर्धारित करने की धारणा से असहमति हो सकती है। यहाँ आलोचकों का दृष्टिकोण अत्यन्त ही, रूढ़िग्रस्त है। अतः उदार मत और निर्णय रूढ़िगत विचारों के ऊपर उठ नहीं पाते। शताब्दियों से भारतीय नारी का रूप पति की अनुवर्तिनी रहा है—उसे कोई धार्मिक स्वाधीनता नहीं, जीवन का कोई स्वतन्त्र पथ नहीं, पति से भिन्न उसकी कोई गति नहीं। अतः आलोचक यह कैसे सहलें कि वैष्णव-धर्म की ज्वलन्त प्रतीक, भारतीय महिलाओं का आदर्श मीराँ पति का विरोध कर अपना स्वतन्त्र मार्ग बनावे। भले ही वह मार्ग अध्यात्म और दर्शन के सिद्धान्तों पर ही अवलम्बित क्यों न हो। एक मात्र ईश्वर तो पति ही है, पति की उपस्थिति में उसके किसी प्रतिद्वन्दी की संभावना भारतीय नारी जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में संभव नहीं; चाहे वह प्रतिद्वन्द्वी अपार्थिव और लोकोत्तर ही क्यों न हो।

मीरों के इस कल्पित वैधव्य का दूसरा कारण मीरों के निर्धारित पति भोजराज की अल्पायु होना है। किन्तु मीरों की जन्म-तिथि इतनी विवाद ग्रस्त है कि मीरों के पति कौन थे यह निर्विवाद मानने में हमें संकोच होता है। मीरों के सम्बन्ध में काल विस्तार इतना लम्बा हो जाता है कि सहसाही किसी तिथि पर विश्वास नहीं होता। और ग्रियर्सन की तिथियां आज मान्य नहीं, किन्तु स्वयं मीरों के पदों में कुछ ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे सहसा ही किसी तिथि के सम्बन्ध में निश्चय करना कठिन हो जाता है। मीरों के पदों में गुरु रैदास का नाम मिलता है, वैष्णव साहित्य में भी मीरों रैदास की शिष्या मानी गई है; यद्यपि कुछ विद्वान वैष्णव भक्ति की प्रतीक मीरों को निर्गुणियां रैदास की शिष्या नहीं मानते। इसके अतिरिक्त जन श्रुतियों और वैष्णव साहित्य में मीरों के चैतन्य सम्प्रदायी जीव गोस्वामी से भेंट का विस्तृत उल्लेख मिलता है। तुलसी की पत्रिका और अकबर तथा तानसेन की मीरों से भेंट, मीरों को १५ वीं शताब्दी से १७ वीं शताब्दी तक खींच लाती है। इन तीन शताब्दियों के दीर्घ काल में मीरों का अस्तित्व सब में व्याप्त है; तब कैसे यह निर्भ्रान्त रूप सिद्ध किया जावे कि मीरों की जन्म तिथि संवत् १५७३ है अथवा १५५५ से १६०३ तक। इन विरोधी मतों के मध्य यह ही कैसे निसंकोच घोषित कर दिया जावे कि मीरों के पति कौन हैं। संभवतः इन्हीं अनिश्चित धारणाओं के कारण किसी अन्तिम निर्णय को न देकर गुजराती साहित्य के इतिहास लेखक श्री कावेरी कहते हैं—

"यह प्रश्न कि वह किस की पत्नी थी कोई महत्व नहीं रखता क्योंकि उसको अपने पति अथवा पति के परिवार वालों से कोई सहयोग न था।"

यदि इसी प्रकार का उदार दृष्टिकोण हिन्दी साहित्य के आलोचकों का भी होता तो कम से कम इस कल्पित वैधव्य की दुरूह धारणा से मीरां के पाठक अवश्य बच जाते। क्योंकि मीरों के काव्य में जहाँ भी आत्म परिचयात्मक उक्तियाँ आती हैं वहाँ मीरों का कल्पित वैधव्य उस सत्य के संहार के लिए मानो-नंगी तलवार खींच कर दौड़ पड़ता है। मीरों की आत्माभिव्यक्ति में हमें वह कसक मिलती है जो सदियों से नारी-के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के अपहरण के विरुद्ध मानों चीत्कार कर रही है। मीरा के स्वर में कहीं भी वैधव्य की ज्वाला नहीं, मृत पति की पुण्य और प्रिय स्मृति में एक भी करुण अश्रु बिन्दु का अर्घ्य कहीं भी नहीं। अतः मीरों की वैधव्य जन्य ज्वाला से इस पवित्र प्रेम योग का विकास संभव नहीं क्योंकि मीरों यदि वैधव्य की ज्वाला भूलने के लिए कृष्ण को अपना आराध्य बनाती तो इससे सहज' उपाय सती प्रथा का पालन करने में ही उनके मार्ग में कौन सी बाधा हो सकती है! मीरों मेवाड़ भूमि की, वीर क्षत्राणी थी। जिसके लिए जीवन और मृत्यु में कोई विशेष अन्तर नहीं। जौहर की अग्नि समाधि से सुपरिचित वीरांगनाओं के लिए पति की अग्नि शैया पर चिरशयन सुमन शैया पर सोने की सुकोमल और सुखकर कल्पना थी। फिर मीरां भला इस अग्निपथ से चलकर शीघ्रातिशीघ्र उस लोक में अपने प्रिय पति से अनन्त मिलन के लिए महायात्रा करने में क्यों कुंठित होती? पति के वियोग दुख को भूलने के लिए कृष्ण को अपनाने की भावना राजस्थान की सती रमणियों में प्रचलित नहीं। उन वीरांगनाओं के सम्मुख तो एक ही पथ प्रशस्त था और वह था अग्निपथ। आज की यह भावना कि किसी अभाव को भूलने के लिए भक्ति से मन बहलावे उस सुदूर काल की भावनाओं से मेल नहीं खाती। मीरां की कृष्ण-भक्ति में किसी अभाव को भूलने का भाव नहीं। वह तो सती की एक निष्ठा से अपने प्रियतम के रंग में आपाद मस्तक डूबी हुई समस्त लौकिक—अभावों से मुक्त प्रेम के सुरीले गीत गाती हुई अपने पथ पर बढ़ रही है—

"मैं अपने सैयाँ सँग साँची।
अब काहे की लाज सजनी॥
मरगट है नाची।"

— पियाणुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

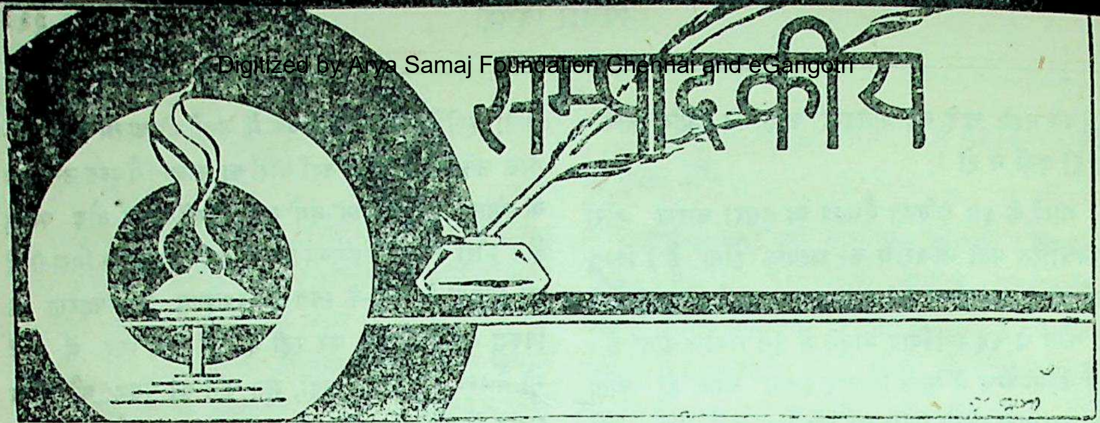

हिन्दी में अभिनन्दन-ग्रन्थ

अभी कुछ समय पूर्व ही श्री० नाथूरामजी प्रेमी को एक अभिनन्दन-ग्रन्थ टीकमगढ़ से भेंट किया गया है। यह एक स्तुत्य प्रयत्न है। यह पं० बनारसीदास चतुर्वेदी की प्रेरणा और देखरेख तथा विद्वद्वर्य डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के परामर्श से प्रस्तुत हुआ है। चतुर्वेदीजी ने निवेदन में लिखा है :

"जो किसान खेत पर घोर परिश्रम करके अपने खून को पसीना बनाकर अन्न उत्पन्न करते हैं, जो मजदूर लोकोपयोगी धन्धों में अपना जीवन खपाते हुए भावी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के लिए अपनी शक्ति तथा समय को अर्पित करते हैं, जो ग्रामीण अध्यापक मगजपच्ची करके पचासों छात्रों को अक्षर-ज्ञान कराते हैं, जो बढ़ई अथवा लुहार जनता के नित्यप्रति काम आने वाली चीजें बनाते हैं, अथवा जो पत्रकार या लेखक नानाप्रकार के कष्टों को सहते हुए सर्वसाधारण को सात्विक मानसिक भोजन देते हैं वे सभी अपने-अपने ढङ्ग पर वन्दनीय हैं, अभिनन्दनीय हैं।"

हम इससे पूर्ण सहमत हैं। प्रेमी अभिनन्दन-ग्रन्थ कुशल व्यक्तियों के द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ है। इसमें ७५१ घनिष्ठ छपे हुए पृष्ठ हैं, १४ सुंदर चित्र हैं। २५ निबन्ध प्रेमीजी के सम्बन्ध में हैं; १७ भाषा विज्ञान और हिन्दी-साहित्य पर हैं, १७ भारतीय संस्कृति, पुरातत्व और इतिहास पर, ७ जैनदर्शन पर, २१ संस्कृत, प्राकृत और जैन-साहित्य विषयक ८ मराठी और गुजराती साहित्य पर, ११ बुन्देलखण्ड सम्बन्धी, १२ समाज-सेवा और नारी-जगत पर, ६ विविध। इस प्रकार ग्रन्थ में अपने-अपने विषय के मान्य विद्वानों के द्वारा यह इतनी विशद और ज्ञानवर्द्धक सामग्री प्रस्तुत कर दी गयी है। साहित्य की किसी भी रूप में सेवा करने वाले व्यक्ति का यह अभिनन्दन निश्चय ही व्यक्ति का अभिनन्दन तो है ही, लोककल्याण का भी सुन्दर साधन है।

यथार्थ में हिन्दी में अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने की यह परिपाटी नयी नहीं है। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (शोक आज वे स्वर्गीय हो चुके हैं!) को आरा नागरीप्रचारिणी सभा एक अभिनन्दन-ग्रन्थ बहुत पहले भेंट कर चुकी है। 'काशी नागरीप्रचारिणी' का 'द्विवेदी अभिनन्दन-ग्रन्थ' आचार्य द्विवेदी के अभिनन्दन के उपलक्ष्य में अब तक एक आदर की वस्तु है। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य सम्मेलन महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द को अनुशीलन ग्रंन्थ भेंट कर चुका है।

इधर हिन्दी के दो और महान साहित्य-सेवियों और साधकों के अभिनन्दन के लिए ग्रन्थ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। ऐसा एक आयोजन काशी से वर्तमान युग के महाकवि निराला के अभिनन्दन के लिए प्रस्तुत हो रहा है। यह ग्रन्थ 'सरस्वती' के आकार के ५०० पृष्ठों में होगा। इस ग्रन्थ के द्वारा यह उद्योग किया जा रहा है कि नवयुग की 'साहित्यिक तथा सांस्कृतिक प्रगति का सर्वाङ्गीण विवेचन तथा विवरण' प्रस्तुत कर दिया जाय। इसके सम्पादक मण्डल में भी देश के उच्चकोटि के विद्वान सम्मिलित हैं, और शेष सभी हिन्दी जगत का इस अभिनन्दन में पूरा-पूरा सहयोग है। अवश्य ही यह अभिनन्दन-ग्रन्थ हिन्दी के आधुनिक युग से सम्बन्धित ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत कर सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा आयोजन ब्रज-साहित्य-मण्डल के द्वारा हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्य-सेवी सेठ श्री कन्हैयालाल पोद्दार के अभिनन्दन के उपलक्ष्य में हो रहा है। इसकी रूपरेखा से विदित होता है कि यह अत्यन्त विशद होगा। सरस्वती के आकार के एक हजार पृष्ठों से अधिक पृष्ठ उसमें रहेंगे। इसका सम्पादक मण्डल भी उतना ही दृढ़ है और उच्च-कोटि के साहित्य और कला के मर्मज्ञ तथा विद्वान इसमें सम्मिलित हैं। यों इसमें संस्कृत साहित्य, हिन्दी साहित्य तथा मारवाड़ और मारवाड़ी साहित्य पर भी संग्रहणीय सामग्री रहेगी, किन्तु प्रकाशित रूपरेखा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह 'ब्रज का एक बृहत विश्वकोष' होगा। मण्डल का यह उद्योग भी प्रशंसनीय है। ब्रज का भारत के इतिहास में साहित्य, संस्कृति तथा कला सभी दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। उसके सम्बन्ध में एक स्थान पर ही प्रायः समस्त मननीय सामग्री मिल सके तो बड़ा लाभ हो। हम आशा करते हैं कि मण्डल ऐसा ही उपयोगी अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रस्तुत करके सेठजी के अभिनन्दन के बहाने साहित्य, इतिहास, संस्कृति और कला का यथार्थ उपकार करेगा। हम इन दोनों महान आयोजनों की पूर्ण सफलता चाहते हैं। ये दोनों ही ग्रन्थ हिन्दी के साहित्य-भण्डार की अमूल्य मणियाँ बनें।

श्री 'हरि-औध' जी का स्वर्गवास

कवि सम्राट पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय जी द्विवेदी युग की सुसम्पन्न साहित्यिक विभूतियों में से थे। उन्होंने ऐसे समय में जबकि खड़ी बोली की लोग हंसी उड़ाया करते थे कि न उसमें साहित्यिक-प्रतिष्ठा है और न उसने साहित्य को कोई स्थायी सम्पत्ति-प्रदान की, अपना प्रिय-प्रवास संस्कृत छंदों में लिखकर खड़ी बोली का मान बढ़ाया। यद्यपि संस्कृत छंद लिखे रहीम आदि अन्य कवियों ने भी तथापि हिन्दी में संस्कृत छन्दों के प्रयोग की सम्भावना को उन्होंने ही विकसित किया था और कृष्ण-काव्य को आज कल की भावनाओं के अनुकूल एक नया रूप प्रदान किया था। उपाध्याय जी केवल "रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका राकेश बिम्बानना' की सी संस्कृत-गर्भित भाषा लिखने में ही सिद्ध हस्त नहीं थे वरन् उन्होंने बोलचाल की मुहावरेदार भाषा लिखने में भी कमाल हासिल किया था। रीतिकालीन परम्परा में उन्होंने रस कलश लिखा। उसकी भूमिका में रस का गद्यमय पाण्डित्य पूर्ण विवेचन हुआ है, वह उनके शास्त्रीय पाण्डित्य का परिचय है। उनके पटना विश्व-विद्यालय में दिये हुए व्याख्यान उनके भाषा शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान तथा ऐतिहासिक खोज की प्रवृत्ति के द्योतक हैं। उपाध्याय जी ने हिन्दी काव्य के किसी विधा को अछूता नहीं छोड़ा और जिस विधा को छुआ उस में अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया यद्यपि आप पूर्ण आयु को पहुँच चुके थे तथापि उनका जीवित रहना हिन्दी के लिए गौरव की वस्तु थी। हिन्दी में प्राचीन पाण्डित्य की परम्परा अब मिटती सी जा रही है। उपाध्याय जी के स्वर्गवास से जो हिन्दी को क्षति पहुँची है उसकी पूर्ति सहज नहीं है। ईश्वर दिवङ्गत आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा उनके परिवार के लोगों को इस क्षति के सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

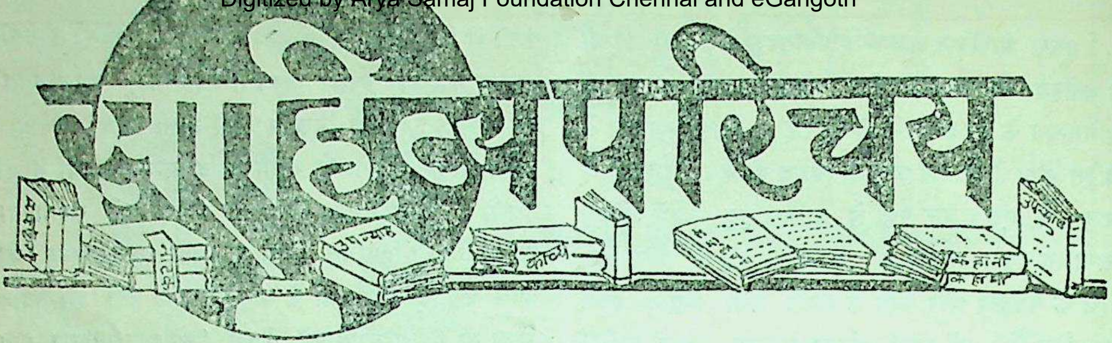

समालोचना

साहित्य—लेखक-श्री शिवनारायण शर्मा, बी० ए० (आनर्स) साहित्यभूषण; प्रकाशक-पाटलिपुत्र प्रकाशन पटना सिटी। मूल्य ३)

प्रस्तुत पुस्तक में साहित्य के विविध अङ्गों पर विवेचन है और साथ ही उन अङ्गों का क्रम विकाश भी दिया है। यह पुस्तक किसी वाद या पक्ष विशेष को लेकर नहीं लिखी गई है किन्तु इसका उद्देश्य विद्यार्थियों को साहित्य की विभिन्न विधाओं के सम्बन्ध में प्रचलित और मान्य ज्ञान से परिचय करा देना प्रतीत होता है। यद्यपि इस में भारतीय और पाश्चात्य दोनों सिद्धान्तों का समावेश हुआ है तथापि यह पाश्चात्य सिद्धान्तों से कुछ अधिक प्रभावित प्रतीत होती है। जैसे गीत काव्य के ही विभाजन में ओड इलेजी आदि पर अधिक विवेचन है, पद साहित्य पर कम। कहानी, उपन्यास, इत्यादि तो पाश्चात्य देशों की दैन है ही, उसमें टेकनीक भी प्रायः पाश्चात्य होगा ही, उसके लिए पाश्चात्य का सहारा ढूँढना किसी को आपत्ति जनक नहीं हो सकता। साहित्यिक विधाओं के विकास का विवेचन सरल और मार्मिक है किन्तु उसमें दोष केवल इतना ही है कि अखीर में आकर यह विवेचन कुछ चलता सा हो जाता है और इसे अद्यतन बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया है। जितना है उतना बहुत अच्छा है। लेखक ने रस निष्पत्ति जैसे विषय को काफी सरल बना दिया है। पुस्तक साहित्य के विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोग भी सिद्ध होगी।

साहित्यिक निबन्धावली—सम्पादक-डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी एम० ए० पी० एच० डी० तथा प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा साहित्याचार्य; प्रकाशक—ग्रन्थ माला कार्यालय पटना कालेज। मूल्य ३॥)

विहार प्रान्त अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए हिन्दी भाषा को अपनाये हुए हैं और उस प्रान्त में साहित्यिक चिन्तन भी काफी हुआ है। प्रस्तुत पुस्तक में उसी साहित्यिक चिन्तन का दिग्दर्शन हुआ है। इसमें बिहारी के विभिन्न विद्वानों के साहित्यिक धाराओं के विभिन्न पक्षों पर तेरह लेख संग्रहीत है। ऐसे संग्रहों में न तो सब लेख एक ही धरातल के हो सकते है और न उनमें अन्विति ही हो सकती है। फिर भी जो लेख हैं उनमें साहित्यिक विवेचन पर्याप्त ईमानदारी से किया गया है और प्राय सभी तरह के पक्षों का प्रतिनिधित्व हुआ है।

डाक्टर देवराजजी के साहित्य के प्रयोजन में काव्य के उद्देश्यों और क्षेत्र का कुछ दार्शनिकता के साथ विवेचन हुआ है। लेखक की दृष्टि वाह्य और वस्तुगत अवश्य है किन्तु उन्होंने जीवन को उसकी सम्पूर्णता में लिया है—जीवन से आँख बचाकर नहीं, जीवन को उसकी पूर्णता में रागात्मक निरीक्षण और अनुभूति का विषय बनाकर ही कलाकार अपने काम को पूर्णतया सम्पादित कर सकता है

डाक्टर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्रीजी न निर्गुण भावना का दार्शनिक आधार सांख्य के प्रकृति पुरुष में माना है और रहस्यवाद का उद्गम स्थान वेदों में दिखाया है। सूर और तुलसी की सगुण निर्गुण ऐक्य की भावना की बड़ें श्रीमद्भावत में दिखाई हैं। लेख विशेष ज्ञान वर्द्धक है।

श्रीमती विद्यावती गुप्त ने बड़ी सहृदयता के साथ तुलसी चित्रित नारी भावना पर विचार किया है। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसी को अधिक दोषी नहीं ठहराया है। प्रो० जगन्नाथ शर्मा ने सूर की भक्ति भावना और दर्शन में यह सिद्ध किया है कि मूलतः सूरदासजी ने वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग को ही स्वीकार किया है किन्तु वे सम्प्रदाय के घेरे में बँधे नहीं है वे भी तुलसी की भाँति समन्वय वादी थे। प्रोफेसर विश्वनाथ प्रसादजी ने भारतेन्दु की कला में बतलाया है कि भारतेन्दुजी जहाँ प्राचीन साहित्य की सृष्टि थे वहाँ नवीन साहित्य के स्रष्टा भी थे। प्रो० नवल किशोर गौड़ ने छाया वाद की शव परीक्षा के बहाने उसका वास्तविक मूल्याङ्कन किया है। ऐसे सहृदयता पूर्ण विश्लेषण को शव परीक्षा कहना शब्दों का कुछ दुरुपयोग सा प्रतीत होता है। श्री शिववालकराम ने प्रगतिवाद की रूप रेखा अङ्कित की है किन्तु वे साम्प्रदायिक प्रगतिवादी नहीं मालूम पड़ते हैं। उनके मत से साम्प्रदायिक प्रगतिवाद अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है। प्रो० वेणीमाधव मिश्र ने सामयिक हिन्दी काव्य पर एक दृष्टि डाली है। इस विवेचन में उन्होंने भारतीय संस्कृति प्रधान राष्ट्रीयता का पक्ष लिया है। प्रो० केशरीकुमारसिंह भी विगत महायुद्ध और हिन्दी साहित्य शीर्षक लेख में इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साहित्य के कलात्मक निर्माण के लिए न तो जर्मनी से फतवा आ सकता है और न रूस से फरमान। उसकी मृत्तिका तो कलाकार की आत्मा में पड़ी है। श्री केदारनाथ मिश्र भी हिन्दी कविता के वर्तमान और भविष्य में इसी स्वर में बोल रहे हैं। प्रो० दिवाकर प्रसाद विद्यार्थी ने पाश्चात्य साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियाँ बतलाई हैं और उनकी यत्र-तत्र हिन्दी साहित्य में छाया भी दिखाई है। प्रो० विश्वनाथप्रसादसिंह वर्मा ने अपने लेख में (भगवान बुद्ध का रहस्यवाद) भगवान बुद्ध को न तो पुद्गलवादो (Maeritalistic monist) माना है और न न्याय वैशेषिक का सा आत्मवादी। उनकी अविद्या से मुक्त स्थिति कोमाण्डयूक उपनिषद की रहस्यमयी तर्कातीत प्रज्ञावस्था से सम्बद्ध किया है। पुस्तक के सभी लेख लेखको की सहृदयता और गम्भीर अध्ययन का परिचय देते हैं।

मैथिल कोकिल विद्यापति की पदावली— सम्पादक, शम्भूप्रसाद बहुगुना एम० ए० प्रकाशक— एजूकेशनेल पब्लिशिंग कम्पनी, चारबाग लखनऊ मूल्य २) पृष्ठ संख्या, भूमिका ७१ + पाठ और टीका ७५ = १४६

गीत काव्य में विद्यापति का एक विशेष स्थान है उनको गीत काव्य के जनक जयदेव का सीधा उत्तराधिकार मिला है, इसी लिए वे अभिनव जयदेव की पदवी से विभूषित किये गये थे। विद्यापति के मार्मिक पदों का यह संग्रह विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोग की वस्तु है क्योंकि इस में प्रत्येक पद की पूरी टीका दी गई है। अन्य सहृदय लोग भी इसके सहारे विद्यापति का रसास्वाद कर सकते हैं।

इसकी भूमिका में पदावली के भाव पक्ष की आलोचना के साथ दो प्रश्न पर विशेष प्रकाश डाला गया है। लेखक महोदय ने उपयुक्त उदाहरणों से इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मैथिल भाषा बङ्गाली की अपेक्षा पूर्वी हिन्दी के अधिक निकट है। दूसरी बात यह है कि बहुगुना जी ने विद्यापति ठाकुर को भक्त और रहस्यवादी कवि की अपेक्षा शृङ्गारी अधिक माना। उनको यदि भक्ति थी तो शिवजी की। राधा माधव की नहीं। राधा माधव की भक्ति के जो पद हैं वे वृद्धावस्था के लिखे हुए मालूम पड़ते है। फिर भी वे रीतिकाल के शृङ्गारिक कवियों से विद्यापति को भिन्न मानते हैं। उन्होंने जीवन का उल्लास देखा था और उसको सजीव रूपमें चित्रित किया था। लेखक की यह बात भी ठीक है कि विद्यापति ने अपने आश्रय दाता की प्रसन्नता के लिए लिखा, किन्तु लेखक के साथ इस बात में सहमत होने में थोड़ी हिचकिचाहट होती है कि जयदेव के केवल "यदि हरि स्मरणे सरसंते मन" के लिख देने से वे भक्त हो गये और इसके न लिखने से विद्यापति शृङ्गारिक रहे। जयदेव शिव भक्त थे किन्तु उनकी शृङ्गारिक भावना ने उनकी शिव भक्ति को दबा लिया। उन्होंने कुचों की उपमा शिव से दी। हमको इतना अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि हिन्दू धर्म में पालित पोषित होने के कारण वे कृष्ण का अलौकिकत्व और नारायणत्व मानते थे। कृष्ण उनके इष्ट न थे। कृष्ण का सौन्दर्य पक्ष उनके हृदय में कुछ अधिक प्रबल हो गया था और वे शृङ्गारिक भावनाओं में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह गये। उन्होंने राधा कृष्ण का शृङ्गार इसी प्रकार वर्णन किया जिस प्रकार कालिदास ने शिव पार्वती का। कौन कह सकता है कि कालिदास शिवपार्वती के भक्त न थे। बहुगुनाजी ने जो लिखा वह भी एक पक्ष है।

कहानी

माटी की मूरतें—लेखक-श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रका० पुस्तक भंडार लहेरिया सराय, पटना। पृष्ठ सं० १०४ मू० ३)

इस पुस्तक में ग्रामीण जीवन के ग्यारह चित्र हैं। बुधिया, बलदेवसिंह, सरजू भैया, भौजी आदि किसी कथा के कल्पित पात्र नहीं, वे ऐसे नायक हैं जिनका लेखक से सम्पर्क और सम्बन्ध रहा है। जिनके जीवन कृत्य जो इस पुस्तक में अंकित हैं, लेखक की आंखों के सामने गुजरे हैं। इसलिये ये कल्पना चित्र नहीं, जीवन चित्र हैं। व्यक्ति का चित्र खींचते हुये लेखक देहाती समाज की सामयिक अवस्था का फोटू भी सामने ला देता है। देहाती जीवन के सम्बंध में अब तक भिन्न भिन्न लेखकों द्वारा जो कुछ चर्चा हुई है उसमें कल्पना, अनुमान और सहानुभूति की मात्रा ही अधिक पाई जाती है। बेनीपुरीजी के इन चित्रों में उस कठोर सत्य की झाँकी मिलेगी जो सौ फीसदी देहात की जिन्दगी है। तिस पर भी उसमें रूखापन नहीं है, सामाजिक दृष्टि कोण से इन जीवन चित्रों का मूल्य किसी युग पुरुष के जीवन चरित्र से कम नहीं है?

हमारे अमर नायक—लेखक-श्री प्रेमनरायन टंडन, प्रका०—विद्या मंदिर रानी कटरा लखनऊ। पृ. सं० ८० मू० ।॥)

उत्तर रामचरित, कादम्बरी, नागानंद, मृच्छ कटिक शकुन्तला, रघुवंश तथा सत्य हरिश्चन्द नाटक के क्रमशः राम, चन्द्रापीड़, जीमूत बाहन, चारुदत्त, दुष्यन्त, रघु और हरिश्चंद्र नायक हैं। इन नायकों का चरित्र चित्रण इस पुस्तक में दिया गया है। मूल पुस्तक में नाटक का जैसा चरित्र चित्रण है, उसी का सरल, सुबोध, सार-अनुवाद पुस्तक में है। जो एक स्वतंत्र रोचक कथा सी बन गई है। पाठकों को मनोरंजन के साथ उससे ज्ञान लाभ भी होगा।

जीवनियाँ

राष्ट्रपति कृपलानी—लेखक-श्री, कौशल प्रसाद जैन; प्रका—इन्द्र प्रस्थ विद्या पीठ देहली। मूल्य ।—) पृ. सं० ३२

राष्ट्रपति आचार्य जे० पी० कृपलानी की यह संक्षिप्त जीवनी है। काँग्रेस के अंदर उनके मुख्य मुख्य कार्यों का जो प्रकाश में आचुके हैं, यह पुस्तक परिचय देती है।

पं० जवाहरलाल नेहरू—लेखक—श्री कौशल-प्रसाद जैन; प्रकाशक—इन्द्रप्रस्थ विद्यापीठ, दिल्ली। पृ. सं० ५२ मूल्य ॥)

पं जवाहरलाल नेहरू की संक्षिप्त जीवनियाँ भी कई निकल चुकी हैं। यह पुस्तक उन्हीं का अनुकरण मात्र है। उनके उत्तर कालीन जीवन पर नाम मात्र का ही प्रकाश डाला गया है।

महामना पं० मदनमोहन मालवीय—लेखक-श्री कौशल प्रसाद जैन; प्रका; इन्द्रप्रस्थ विद्यापीठ दिल्ली। पृ; सं० ४८ मू० ।।)

स्वर्गीय महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी के जीवन का परिचय।

छत्रपति शिवाजी—ले०-स्व० लाला लाजपतराय, प्रकाशक—जय भारत सा० प्रे० दिल्ली। पृ; सं० १६७ मू० १॥)

स्वर्गीय लाला लाजपतिराय जी की लेखनी से निसृत यह महाराष्ट्र केशरी शिवाजी का जीवन चरित्र है। ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर लिखी गई यह जीवनी हिन्दू जाति में अपने पूर्वजों की कीर्ति, साहस और बलिदान के भाव भरेगी और आज के युग के लिये उन्हें कर्मरत, वीर और नीतिज्ञ बनने की प्रेरणा देगी। मनोरंजन के साथ पढ़ते हुये इस पुस्तक से पाठक लाभ उठायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनैतिक

५४ वां कांग्रेस अधिवेशन—लेखक-श्री कौशलप्रसाद जैन, प्रका०-आर्य पुस्तक भण्डार दिल्ली । मू० १) पृ. सं० ६६

मेरठ कांग्रेस अधिवेशन का संक्षिप्त हाल इस पुस्तक में आगया है । शुरू में मेरठ का ऐतिहासिक परिचय भी दिया गया है । कांग्रेस के प्रस्ताव और मुख्य भाषणों का खुलासा भी पुस्तक में दिया गया । पुस्तक जल्दी में तैयार की गई है. इसकी झांकी उसके बाह्य रंग रूप में मिलती है ।

पं० जवाहरलाल नेहरू के प्रमुख भाषण—संकलन-कर्ता-श्री कौशल प्रसाद जैन, प्रका०-इन्द्र प्रस्थ विद्यापीठ दिल्ली । मू० ।।) पृ. सं० ५२

पं० जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रपति के रूप में ही अंतर्कालीन सरकार में शामिल हुये थे । इस स्थिति में उन्होंने समय समय पर जो भाषण दिये, उनमें से कुछ खास भाषण मुख्यत: इस संग्रह मेंसंगृहीत हैं । पुस्तक की छपाई अच्छी नहीं है ।

हमारे राष्ट्रपति और उनके भाषण—संग्रहकार-श्री कौशल प्रसाद जैन, प्रका-इन्द्रप्रस्थ विद्यापीठ देहली । मू० १।) पृ० १०८

इस पुस्तक के प्रायः आधे पृष्ठों में पं० जवाहरलाल नेहरू के कुछ भाषण और आधे पृष्ठों में उनकी संक्षिप्त जीवनी दी गई है । इस प्रकार 'पं० जवाहरलाल नेहरू' और 'पं० जवाहरलाल नेहरू के प्रमुख भाषण' नामक पुस्तिकाओं को मिलाकर यह एक और पुस्तक तैयार करदी गई है ।

अगस्त आन्दोलन के क्रांतिकारी—लेखक-श्री कौशल प्रसाद जैन, प्रका-आर्य पुस्तक भंडार दिल्ली । मू० १) पृ. सं० ७६

इस पुस्तक में अगस्त १९४२ के आन्दोलन में नाम पाये हुये विशेषतः श्री जयप्रकाशनारायण, श्री राममनोहर लोहिया, श्री अच्युत पटवर्धन और श्री अरुणा आसफ अली का जीवन परिचय दिया गया है । ऐसी ही एक पुस्तक 'अगस्त क्रांति के विद्रोहीनेता' नाम से दिल्ली से ही और भी निकल चुकी है । फिर दोनों लेखकों में किसने किसकी नकल की है ? प्रतीत होता है कि 'क्रान्तिकारी' 'विद्रोहीनेता' का अनुकरण है । विषय में ही नहीं मैटर में भी ।

बालोपयोगी ।

अँगूठी का मुकदमा—लेखक-श्री सुदर्शन; प्रका०-बोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स कालबा देवी रोड बम्बई मू० १) पृ. सं० ६३

बालकों के लिये दस कहानियां इस पुस्तक में दी गई है । कहानियां कुछ तो पुरानी हैं जिनको लेखक ने नया रूप देकर बालकों के लिये उपयोगी बनाया है, कुछ [illegible] बातों के आधार पर गढ़ी गई हैं । बालपयोगी कहानियां [illegible] पहलुओं से लिखी जाती हैं । कोई मनोरंजन प्रधान होती है तो कोई शिक्षा प्रधान तथा कोई ज्ञान वर्धक । इस संग्रह में हर तरह की कहानियों से लेखक ने [illegible] शिक्षा ग्रहण का उपदेश दिया है । पुस्तक की भाषा [illegible] और मँजी हुई है । चौथी कक्षा से ऊपर के विद्यार्थी इन कहानियों को पढ़ेंगे ।

विजय किसकी—लेखिका-श्री० शकुन्तला पाठक; प्रका-हिन्दी मन्दिर प्रकाशन प्रयाग । मू० ।।।) पृ. सं० ६६

प्रसिद्ध नीति ग्रंथ 'हितोपदेश' की कहानियां इस पुस्तक में संगृहीत हैं । जिनको नये ढंग से लिखकर छोटे छोटे बालकों के लिये उपयोगी बनाया गया है । जंगल के पशु पक्षियों की इन कहानियों को छोटे बालक चाव से पढ़ेंगे और उनको शिक्षा भी मिलेगी ।

विविध ।

बंगाल में हिन्दू संस्कृति के नाश का प्रयत्न—संकलन-कर्ता- श्री कौशलप्रसाद जैन, प्रका-आर्य पुस्तक भंडार दिल्ली । मू० ।।) पृ. सं० ५८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंगाल के नोआखाली काण्ड की देश में जो प्रतिक्रिया हुई उसका परिचय इस पुस्तक में दिया गया है। नोआखाली काण्ड पर देश के प्रमुख व्यक्तियों ने जो वक्तव्य दिये तथा कांग्रेस ने जो प्रस्ताव पास किया वह इस पुस्तक में संगृहीत है। उसके साथ जहां तहां लेखक ने अपनी टिप्पणियां भी करदी हैं, जिनमें राष्ट्रीय और हिन्दू महा सभावादी दोनों दृष्टिकोण शामिल हैं।

क्या बिहार काण्ड के लिये हिन्दू जिम्मेदार हैं—लेखक श्री कौशलप्रसाद जैन; प्रका०—आर्य पुस्तक-भंडार, दिल्ली। मू० ।।) पृ. सं० ५२

नोआखाली काण्ड की प्रति क्रिया बिहार में हुई और बिहार की प्रतिक्रिया जैसी देश में हुई उसका वर्णन इस पुस्तिका में है। पुस्तक तैयार करने का लेखक का तरीका बड़ा आसान है। देश में हुई किसी विशेष घटना पर नेताओं के वक्तव्यों को इकट्ठा कर दिया, कुछ नमक मिर्च मिलाकर पुस्तक तैयार हो गई। व्यवसायिक दृष्टि से यह चीज भली है पर वह साहित्य नहीं कही जा सकती। विशेषकर उस दशा में जहाँ पुस्तक की छपाई, सफाई, प्रूफ आदि में अनगिनती दोष भरे हुए हों। लेखक के विचारों की अनिश्चितता का तो जिकर ही क्या ?

सेक्स से सुख और जीवन—श्री मन्मथनाथ गुप्त; प्रका०—किताबमहल इलाहाबाद। मू० १।।) पृ. सं० १७२

प्रस्तुत पुस्तक में दाम्पत्ति जीवन के योनि सम्बंधों पर लेखक ने विशद चर्चा की है। इस सम्बन्ध में पाश्चात जगत बहुत आगे बढ़ चुका है। पुरुष का स्त्री के प्रति और स्त्री का पुरुष की ओर स्वाभाविक आकर्षण प्रणाय के रूप में परिवर्तित होता है। योनि समागम के साथ उसकी निष्पत्ति होती है। कामेच्छा शारीरिक तत्वों की एक आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रगट होती है अथवा प्राणधारियों में वह नैसर्गिक, उसके प्रत्येक व्यापार की प्रेरक शक्ति है, यह दो मत पश्चिमी दार्शनिकों में प्रबल रहे हैं। इस दूसरी प्रवृत्ति के जन्मदाता फ्रायड हैं और पहले मत के प्रवर्तक काल मार्क्स। लेखक ने अपनी पुस्तक के प्रारंभ में दोनों विद्वानों के मत की चर्चा की है और मार्क्स के मत के विपरीत फ्राइड के कई सिद्धान्तों की आलोचना भी की है।

पश्चिमी विद्वानों के विचारों का मन्थन करते हुए आपने बतलाया है कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध केवल प्रजनन के लिए ही नहीं होता, सुख वा आनन्द की निष्पत्ति उसका अनिवार्य अंग है। आगे लेखक ने काम-कला सम्बन्धी बातें भी बतलाई हैं जिसमें कहीं-कहीं ऐसे वाक्यों का प्रयोग हुआ है, जिन्हें बाजारू लोग ही प्रयोग कर सकते हैं। हमारे साहित्य में इस विषय पर इस ढङ्ग से लिखने का यह प्रयास प्रारम्भिक ही है अतः कुछ व्यक्तियों को पुस्तक में अश्लीलपन की गन्ध आवे पर सचाई और वस्तुस्थिति का स्पष्ट चित्रण करने वाले इतनी जोखों उठा सकते हैं।

मासिक साहित्य

जनवाणी—सम्पादक—आचार्य नरेन्द्रदेव आदि। प्रकाशक—काशी विद्यापीठ बनारस कैंट। मू० ८) वार्षिक, पृ० सं० ८०

हमारे मासिक साहित्य में 'जनवाणी' का उद्भव एक विशेष उद्देश्य को लेकर हुआ है। पत्रिका 'समाजवादी दल' (कांग्रेस) के उद्देश्य और नीति की पोषक है। उसके राजनैतिक लेख गम्भीर और मननशील होते हैं। समाजवादी विचार धारा के बुद्धिजीवी लेखकों की रचनाएँ इस पत्रिका द्वारा इच्छुक पाठकों को पढ़ने के लिये मिलेंगी। इस प्रकार 'जनवाणी' का प्रकाशन राजनैतिक व्यक्तियों की एक आवश्यता की पूर्ति करेगा और संक्रांति काल के भारत को समाजवादी लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में सहायक सिद्ध होगी। उसके विद्वान सम्पादकों से यह आशा की जासकती है कि वे दल गत राजनीति के उथले वादविवाद से ऊपर रह कर पत्रिका का दृष्टिकोण गम्भीर और व्यापक रखेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९४६-४७ की हिन्दी की नई पुस्तकें

साहित्य और आलोचना

सिद्धान्त और अध्ययन—
डा० गुलाबराय एम० ए० ३।)
विद्यापति की पदावली—शंभुप्रसाद बहुगुणा २)
सूरदास:एक अध्ययन—रामरतन भटनागर २॥)
हिन्दी प्रयोग—रामचन्द्र वर्मा ३।)
साहित्य और जीवन—बनारसीदास चतुर्वेदी ।)
हिन्दी कलाकार—इन्द्रनाथ मदान ५)
कोविद निबंध—श्रीनरायण चतुर्वेदी १।=)
राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज—
मोतीलाल मैनारिया ३)
हिन्दीसाहित्य का परिचय—
डा० सी० बी० लाल गुप्त १)
साहित्य परिचय—प्रेमनरायण टण्डन २)
गोदान:एक अध्ययन—प्रेमनरायण टण्डन १॥)
साहित्य निबंधावली—
डा० धर्मेन्द्र, प्रो० देवेन्द्र ३॥)
हिन्दी लोक गीत—राम किशोरी श्रीवास्तव १॥)
हिन्दी में निबन्ध साहित्य—
जनार्दनस्वरूप अग्रवाल १।)
हिन्दी रचना और उसके अङ्ग—
प्रेमनारायण टण्डन २)
बात चीत—आनन्दकुमार १)
गद्य चन्द्रिका—बुद्धिनाथ शर्मा १=)
साहित्य की वर्तमान धारा—
जगन्नाथप्रसाद मिश्र १॥)
तुलसीसाहित्य की भूमिका—
रामरतन भटनागर २)
गीता दर्शन की पृष्ठ भूमि—सत्यदेवशास्त्री १।)
प्रसाद साहित्य—परमानन्द शर्मा २)
साहित्य—शिवनरायण शर्मा ३)
प्रगतिवाद—शिवदान सिंह चौहान ६)
जवाहर गद्य गीत—चन्द्रसेन शास्त्री ॥)
कामायिनी का विवेचन—
ब्रजभूषण शर्मा एम० ए० १)
सूरदास—ब्रजेश्वर वर्मा २॥)
उर्दू के अदीब—श्रीपद जोशी १।)
प्रेमचन्द : उनकी कहानी कला—प्रो० सत्येन्द्र ३)
तुलसीदास एक अध्ययन—रामरतन भटनागर २॥)
कबीर ,, ,, २॥)
कविप्रसाद ,, ,, २॥)
नंददास ,, ,, २॥)
शरदचन्द ,, ,, मन्मथनाथ गुप्त ३)
प्रगतिवाद की रूपरेखा—श्री शिवचन्द्र ४)
हमारे अमर नायक—प्रेमनरायन टण्डन ॥)
निर्मला:एक अध्ययन ॥=)

कविता

इत्यलम—'अज्ञेय' ४)
प्रतिध्वनि—'त्यागी' २)
कालदहन—केदारनाथ एम० ए० १)
नवीन—गोपालसिंह नेपाली २)
मानसी—उदयशंकर भट्ट २)
अपने पथपर—शिशुपालसिंह 'शिशु' १)
नयेपत्ते—निराला २)
गाँधी आश्रम की प्रार्थना—'संकलन' ।)
फांसी—रघुवीरशरण मिश्र ३)
वल्लरी—शेखर १।)
छत्रसाल शतक—रेवतसिंह ।=)
मिट्टी की दुनिया—महेशचरण जौहरी १।)
हलाहल—बच्चन २॥)
आहुति—तन्मय बुखारिया १)
पाकिस्तान— ,, ,, २)
वीरगान—शिवनन्दन कपूर ॥)
अरुणिमा—युगलकिशोर पटैरिया १।)
मिट्टी की ओर—'दिनकर' ४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...स्साद—विशम्भरदयाल मानव ।।।)
...द्रुर--सुरेन्द्र कुमार श्री वास्तव २)
...रंभा—राजेन्द्रदेव सेंगर ४)
...क्षेत्र—दिनकर १।।)
...र्षांह— ,, १।)
...व के गीत— संकलन (स्त्री पक्ष) ।।)
...व के गीत— ,, ,, (पुरुष पक्ष) ।।)
अमर संगीत—श्री कृष्णप्रसाद गुप्त =)।
महामानव—ठाकुर प्रसादसिंह ४।।)
हृदयध्वनि—लक्ष्मीनरायण टण्डन १।)
दा ...चित्र--शिशुपालसिंह १।।)
...राग--श्री कैरव ।।)
...र--दाऊदत्त उपाध्याय १।)
...दास--श्रीश दत्तशास्त्री १।)
...र - रघुवीरशरण मिश्र
घन आनन्द और आनन्दघन—विश्वनाथप्रसाद ५)
...थागत--पूर्णगिरिगोस्वामी १।)
...ञ्जलि--जीवनलाल प्रेम २)
निर्माण--कुमुदविद्यालङ्कार १)
...विनिम-- ,,
प्रेमपत्रावली--मदनमोहन गुप्त मदन १)
यशस्विनी--ब्रजकिशोर नारायण १।।)
मीरा और उनकी प्रेमवाणी--ज्ञानचन्द जैन २)
दीपिका--देवनाथ पाण्डेय १)
बंगाल का काल--बच्चन १)
भूख--स्वराजप्रसाद द्विवेदी ।=)
धरती—त्रिलोचन शास्त्री ३)
चट्टान—रामइकबालसिंह राकेश २।।)
साकेत संत--डा० बलदेवप्रसाद ६)
दीपक--द्वारिकाप्रसाद बाजपेयी ।।।)
...चरित्र—सूर्यदेव मिश्र ३)
महापुरुष—रघुवीरशरण मिश्र १)
चित्तौड़—परदेशी १)
देशदर्शन—बैजनाथ सिनहा ।।।)
उनका पाकिस्तान—गोपालप्रसाद व्यास २)
देशदर्शन--बैजनाथसिंह ।।।)
अजित—मैथिली शरण गुप्त १।।)
नकुल—सियाराम शरण ,, १।।)
नोआखाली में— ,, ,, ।।)

उपन्यास

अधूरीनारी--उदयराजसिंह २।।)
आम्रपाली--रामचन्द्र ठाकुर ४)
अमर शहीद--अनन्त ३)
आरोहण—महावीरप्रसाद कपूर २)
आंधीरानी--सर्वदानन्द वर्मा २।।)
अवन्तिका--जानकीप्रसाद पुरो० ३)
एक सूत्र--गोविन्द वल्लभ पन्त ३)
इसके बाद--मोहनलाल महतो वियोगी १।।)
कभी न कभी--वृन्दावनलाल वर्मा २।।)
कच्चा धागा--द्विजेन्द्रनाथ मिश्र १)
गिरतोदीवारें--उपेन्द्रनाथ अश्क
गुरू घण्टाल--केदारनाथ भट्ट ३)
टेढ़ेमेढ़ेरास्ते--भगवती चरण वर्मा ७)
दिव्य गंधा--बैनीप्रसाद बाजपेयी 'मंजुल' २।।)
देश भक्त और देश द्रोही— २।)
दोदिन की दुनिया-- ३)
धुआ--राखलदास १)
नवाव लटकन--अरुण २)
निर्वासिता--इलाचन्द्र जोशी ५)
पत्थर की देवी--कृष्णकुमारसिंह १।।)
प्रतिवन्ध—दीनबन्धु पाठक २)
पृथ्वीवल्लभ--कन्हैयालाल मुन्शी २।।)
पागल—शिवनाथसिंह शाण्डिल्य १)
पार्टी कामरेड--यशपाल २।।)
फुलबूट—अजीमवेग चगताई १।।)
भूचाल—रामसिंह
मनोवेदना—अम्बिकाप्रसाद वर्मा १।।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैम्पायर--अजीमबेग चगताई १।)
विकृत छाया--गुरुदत्त ४॥)
विक्रमादित्य--शुकदेवबिहारी मिश्र ५)
सर्द-छाया--द्वारिकाप्रसाद ।॥)
सुमंगला--वैनीप्रसाद बाजपेयी २॥
श्रीमतीजी--शिक्षार्थी २)
राजसी कलाकार--सीतेश १)
कँटीले तार--रामशरन शर्मा १)
गृहयुद्ध--मनमथनाथ गुप्त ३।)
तीन उपन्यास--शरतचन्द्र २।)

कहानियाँ

अधूरी साधना--अविनाश कुमार १।)
अंजुलिनी--स० न० कुलश्रेष्ठ
अमर ज्योति--निशीथ कुमार राय १)
अमरों की बस्ती में--मुरलीधर सारस्वत १।)
अष्टदल--सावित्री कपूर, शशि अरोरा २)
इनकिलाब--पुष्पा भारती २)
ईश्वर : ऐतिहासिक विकास--नरसिंह जोशी १)
कर्मयोग--मोहन शर्मा १।।)
क्रान्ति और कुमारियाँ २)
गौरव मुकुट--रामचन्द शर्मा २)
चिर समाधि--अनंत १।।)
चलते चित्र--शिव चन्द्र १॥)
चन्द्रमित्रा-- २॥)
चवन्नी वाले--संतोष नरायन नौटियाल १॥)
जुगनू--श्री मन्नारायण ३)
जवानी का नशा--नलिन २।)
जातक भाग--भदन्त आनन्द कौ० १०)
डा० कोटनीस--राजेश्वर गुप्त १)
तूफानों के बीच--रांगेय राघव १)
तूफान (संग्रह) २)
दलेमले फूल--बिजली १॥)
देवदासी--रांगेय राघव १॥)
धरोहर--होमवती १।।)
नरक का कीड़ा--अरुण १॥)
नया आलोक: नई छाया--विराज २)
नव प्रसून--यशपाल जैन १)
नयन तारा--श्री नाथसिंह १॥)
पगडंडियां--राजेन्द्र सक्सेना १)
प्रगति और प्यार--वीरेन्द्र २)
पुकार--कमला त्रिवेणी २॥)
सुख की खोज--स्वा० सत्यभक्त १)
किससे क्या सीखें--कृष्णगोपाल माथुर २)
बाहर भीतर--नरोत्तमदास नरेन्द्र १।)
भस्मा व्रत चिनगारी--यशपाल १॥)
मुर्दों का गाँव--धर्मवीर भारतीय ॥)
मंजिल--भैरव प्रसाद गुप्त २)
मालिनियाँ--रामनरायन शर्मा १॥)
मानसरोवर भाग ५--प्रेमचन्द ३)
माटी की मूरतें--रामवृक्ष बेनीपुरी ३)
यात्रा--कमला चौधरी २॥)
युग चित्र--लक्ष्मीधर बाजपेयी २॥)
रामलीला--राधा कृष्ण १।।)
राजस्थान रमणीरत्न १।)
रोटी का टुकड़ा--शिव नरायन १।)
राशनकार्ड--महावीर शुक्ल १)
लेफिटीनेन्ट--अजीमबेग चगताई १।।)
वे चेहरे--शम्भुनाथ सक्सेना १)
स्नेहदान--प्रो० हरीशंकर १।)
हंसों की रानी-- १)

नाटक

कालदहन--केदारनाथ १)
तिरङ्गा झंडा--'विराज' १।)
विक्रमार्चन--डा० रामकुमार वर्मा, सत्येन्द्र आदि २)
प्रेम या पाप--सेठ गोविन्ददास १)
मीरा--गोकुलचन्द शास्त्री १॥)
मुकुट--वात्सायन १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधाकृष्ण—चतुरसेन शास्त्री ।||)
संकल्प—प्रेमनरायन टंडन १।)
सन्तोष कहाँ—सेठ गोविन्ददास १||)
सोहागदान—शिवकुमार ओझा ||=)
शिवाजी—डा० रामकुमार वर्मा १)
भोर का तारा—जगदीशचन्द्र माथुर १||)
सर्प दर्शन—गणेशचन्द्र जोशी १)

इतिहास

ग्वालियर राज्य में प्राचीन मूर्तिकला—हरिहर निवास दुबे १०)
विजयनगर साम्राज्य का इतिहास—वासुदेव उपाध्याय १)
विक्रम स्मृति ग्रन्थ— ३०)
सम्राट अशोक—कोसल एम० ए० १)

राजनैतिक

अधिनायक तन्त्र—गुप्तनाथसिंह ।=)
आधुनिक संसार—कृष्णचन्द्र विद्यालंकार ४)
अगस्त १९४२ का महान विप्लव—दीनाथ व्यास ४||)
आजादहिंद फौज का इतिहास—सूर्यवलीसिंह २)
अगस्त क्रान्ति के विद्रोही नेता—कैलाशचन्द्र जैन २।)
अगस्त आन्दोलन के क्रान्तिकारी—कौशलप्रसाद जैन १)
अगस्त क्रान्ति और प्रति क्रान्ति—मन्मथनाथ गुप्त २||)
आजादहिन्द फौज का मुकद्दमा २)
एक महान चुनौती—लुईफिशर ६||)
कल की दुनियाँ—रा० गा० खाडिलकर २||)
कांग्रेस के सात साल—पट्टाभि सीतारमैया ||)
कलकत्ते का कत्लेआम—व्रजेन्द्रनाथ गौड़ १)
खून का बदला खून नहीं—म० गान्धी १|||)
गान्धीवादी विधान—श्रीमन्नारायण अग्र० १||)
गान्धीजी के साथ सात दिन—लुईफिशर २)
गायडा नैंग—रामकृष्ण ।=)
चीन और भारत—अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी १।)
५४ वाँ कांग्रेस अधिवेशन १)
चीन का आधुनिक इतिहास-प्रो०तान०यु०शान २)
जेल के वे दिन—विजयलक्ष्मी पंडित २)
जंगी गेस्टापो—कमलाप्रसाद राय ।=)
झांसी रानी रेजीमेन्ट— ।=)
देशी राज्य की अंतिम ज्योति—मानसिंह २)
नवभारत—रामकृष्ण ५)
नेताजी—श्रीराम ब्रह्म० ४)
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस—प्रह्लाद भट्ट ४)
परिवार और राजसत्ता की उत्पत्ति—फ्रे० एँगेल्स १)
परमाणु बम—र० ह० खाडिलकर ।=)
प्रांतीय स्वायत्त शासन—राजेश्वर प्रसाद १)
फरार की डायरी—दुर्गाशंकर २||)
ब्रिटिश साम्राज्य शासन—दयाशंकर दुबे १।)
भारत का भाग्य—सिरिल मोडका (अनु०) १|||)
भारत में सशस्त्र क्रांति का रोमांचकारी इति०—मनमथनाथ गुप्त ४||)
भारतीय जाग्रति—भगवानदास केला २)
मनुष्य जाति की प्रगति— ,, ,, ३।)
यूरोप के दो सिपाही—रामकृष्ण शर्मा ।=)
रियासती जनता की समस्याएँ— |||)
रियासतों का सवाल—बैजनाथ महोदय २)
विजयपथ—रस्किन १|||)
सन् बयालीस का विद्रोह—गोविन्दनारायण खरे ६)
सन् ४२ का विद्रोह—गोविन्दसहाय-एम० एल० ए० ६||)
समाजवाद (चतु० सं०)—सम्पूर्णानन्द २)
हमारी आज की आर्थिक समस्याएँ—दयाशंकर दुबे २)
हमारी राष्ट्रीय समस्याएँ—भगवानदास केला १)
हमारे राष्ट्रपति, उनके भाषण— १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनी

अशोक—भगवती प्रसाद बाजपेयी ४)
नेताजी सुभाष—छविनाथ पाण्डेय ३)
विश्व की विभूतियाँ—हरिभाऊ उपाध्याय १॥)
मेरी जीवन यात्रा—राहुल सांकृत्यायन ७॥)
रोजा लेग्जुम्बर्ग—रामवृक्ष बेनीपुरी
छत्रपति शिवाजी—ला० लाजपतराय १॥)
मौलाना आज़ाद—महादेव देसाई २॥)
बा० राजेन्द्रप्रसाद (आत्म कथा) १२)
महामना पं० मदनमोहन मालवीय ॥)
राष्ट्रपति कृपलानी ।–)

आयुर्वेद

शरीर परिचय—जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल वैद्य १।)
नैसर्गिक आरोग्य ,, ,, ,, १॥)
भारतीय भौतिक विज्ञान ,, ,, ॥)
ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा ,, ,, २)
मुख रोग विज्ञान ,, ,, २)
कर्ण रोग विज्ञान ,, ,, २)
सिरो रोग विज्ञान ,, ,, ४)
चिकित्सक—रामनरायन दुबे ७॥)

ग्रामोपयोगी

गाँव की बात—भगवानदास केला ॥)
गाँव की सेहत—रमेश वर्मा ॥)
गाँव के गीत (स्त्रियों के गाने)—रमेश वर्मा ॥)
गाँव के गीत (पुरुषों के गाने)— ,, ,, ॥)
रेंगने वाले—आनन्द स्वरूप १)
सरदार हरीसिंह नलुआ—कौ० प्रसाद जैन १।)

धर्म और नीति कथा

धर्मशिक्षा—व्यथित हृदय ॥।=)
अशान्तविश्व को शान्ति का सन्देश—तुलसीरामजी महाराज ।)
जीवन सूत्र—(अनुवाद) १॥।)
ब्राह्मण सावधान—किशोरीदास बाजपेयी ॥।)
जागरण का मार्ग—लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय १)

जातक—तृतीय खण्ड भ० आ० कौशल्यायन १०
आचार्य सायण और माधव—बलदेव उपा० ६)
हिन्दू जाति का उत्थान और पतन—रजनीकान्त शास्त्री ५)
अपराध—मनमथनाथ गुप्त ३)

स्वास्थ्य-चिकित्सा

ब्रह्मचर्य जीवन—स्वा० योगानन्द १॥)
हमारी खुराक—एम० आर० मसानी ॥।)
दी मैटेरिया मैडिका (हिन्दी)—डा० एन० सी० भादुरी २॥)
वृहद्-बायो कोमिक चिकित्सानिदान— ,, ३)
जम्स आव हेल्थ—जटाशंकर नन्दी
कबीर परिचय—जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्य १।)
नैसर्गिक आरोग्य— ,, ,, १॥)
भारतीय भौतिक विज्ञान— ,, ॥)
ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा— ,, ,, २)
मुखरोग विज्ञान— ,, ,, २)
चर्म रोग विज्ञान— ,, ,,
नासा रोग विज्ञान— ,, ,,
बच्चों का पालन पोषण—व्रजमोहन मिहिर २।)

स्त्रियोपयोगी

नारीजीवन : कुछ समस्याएँ—सुमन १।)
नारी : गृहलक्ष्मी और कल्याणी—सुमन २)
नारीसमस्या—राधादेवी गोइनका ४)
गाँव के गीत—रमेश वर्मा ॥)
नारीजीवन—दुर्गाप्रसादसिंह २॥)

बालोपयोगी

मोतीचूर का भुट्टा—अशोक बी० ए० ॥)
हिम्मत के फल—अबुल वासे असरी ।=)
ईमानदारी—डा० जाकिर हुसेन
नटखट कट्टो—ज्योतिलाल भार्गव ॥।)
उड़न खटोला—लक्ष्मीनारायण टंडन ।–)
चाँद सितारे—गिरीशनाथ दीक्षित ॥।)
विचित्र द्वीप—विमला देवी १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सात मूर्ख—गिरजाशंकर द्विवेदी |=)
विपुल—गंगाप्रसाद मिश्र ।।।)
नसीहत की कहानियाँ—शिवनाथ सिंह |=)
कौआ चला हंस की चाल— ,, ,, |=)
बाल विनोद—श्यामाचरण लवानियाँ १)
विपुल—सोहनलाल द्विवेदी ।)
कपड़ों का नाव—भगवानदास अवस्थी |–)
लेमन चूस की चोरी— ,, ,, |–)
कस्तूरबा गांधी—व्यथित हृदय |=)
म्याऊं की पूंछ—राजेन्द्रसिंह गौड़ ।।)
बारह बर्ष—लोकेश्वरनाथ सक्सेना १।)
गदहे राम विलायत को—शेखर ।।)
नया जादूगर—विष्णुदेव तिवारी |=)
लाल परी—विमलेश |=)
भूत से भेंट—विष्णुदेव तिवारी |=)
जादू का पहाड़—सत्यनरायन व्यास |=)
सात कहानियाँ—सोहनलाल द्विवेदी १)
विजय किसकी—शकुन्तला पाठक ।।)
सोन चिरैया—अशोक बी० ए० ।।)
वीरांगना लक्ष्मी—चन्द्रपालसिंह यादव ≡)
किससे क्या सीखें—कृष्णगोपाल माथुर २)
अंगूठी का मुकदमा—सुदर्शन १)
मनोहर कहानियां (तीन भाग)—सत्यजीवन-वर्मा ।।)
जादू का घोड़ा—रामरतन भटनागर |=)
सेठ धनपाल— ,, ,, |=)
परियों के देश में—शिवचन्द्र नागर |=)
खरगोश माया—इन्द्रेश कुमार |=)
जाउवरों का जादू— ,, ,, |=)
चन्द्रभान चूहे की कहनी—रामरतन भट० |=)
तुलसी दास— ,, ,, |=)

दर्शन और आचार-शास्त्र

मुक्ति का मार्ग—कानजी स्वामी |=)
भावत्रय फल प्रदर्शी—आ० कुन्थसागर
जड़ की बात—'जैनेन्द्र' २)
जीवन-सूत्र—(अनु०) रामनाथ सुमन १।।)
महापुरुषों के आदर्श उपदेश— २)
गौरवशाली जीवन—(अनु०) जगपति चतु० ।।)
बौद्धधर्म—बलदेव उपाध्याय ६)
मृत्यु और उसके बाद—गंगाप्रसाद गौड़ ३)

हास्य

अजीब दुनिया—सी० एल० विद्यार्थी |=)
जादूगर—नार्मन एम० एस० आई० एस० १।।)
न नर न नारी—श्री 'बैरिस्टर' ।।।)
चालीस साल बाद—(नाटक) विश्वनाथ ।।।)
गरम चाय—(कहानी) झपसटराय बनारसी १।।)

स्फुट

गीतालंकार—श्रीमद् वन्द्योपाध्याय ।।)
सम्पत्ति का राजमार्ग—दास और रावी ।।।)
मानव जीवन की सफलता—रामस्वरूप जैन १।)
बुद्धि परीक्षा—पं० जगदम्बाशरण शर्मा २)
हिन्दी टाईपराइटिंग—गोर्धनदास गुप्त १।।)
हिमालय—शिवपूजन सहाय १)
दिमागी खेल—राममूर्ति मेहरोत्रा |=)
मनन—हरिभाऊ उपाध्याय १।)
मेरी यूरुप यात्रा—राहुल १।।)
खटोला—आनन्दकुमार १)
सेक्स से सुख और आनन्द—मन्मथनाथगुप्त १।)
बंगाल में हिन्दू संस्कृति के नाश का प्रयत्न ।।)
क्या बिहारकाण्ड के लिये हिन्दू जिम्मेदार हैं? ।।)
भूखा बंगाल—ब्रह्मदत्त विद्यार्थी ४)
विश्व की विभूतियाँ—हरिभाऊ उपाध्याय १।।)
हवाई शिक्षा—श्रीराम वाजपेयी १)
विदेशों के महाकाव्य—गोपीकृष्ण ६।।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकत्ता, नोआखाली, बिहार आदि के दंगों से सबक़

इन शहरों में कुछ ही दिनों के अंदर हजारों आदमियों की मौत होजाना कितने खेद की बात है कि हमारे देश का ज़िन्दगी में आए दिन ऐसे दंगे और दुर्घटनाएँ देखने को मिलती हैं।

स्वदेशी बीमा कंपनी लि. आगरा

ऐसी अनेकों दुर्घटनाओं के लिए

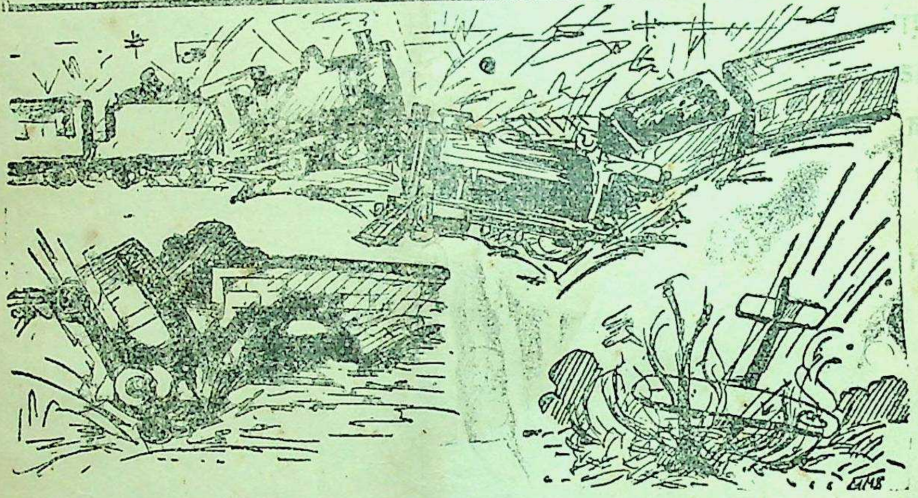

जीवन में केवल एक बार १०००) के लिये लगभग २५) देने पर

आपका बीमा करती है

नोट—इस योजना में कम्पनी एक व्यक्ति का १०,००० रु० से अधिक का बीमा स्वीकार नहीं करती

आवश्यकता है

भारत के हिन्दी भाषी प्रान्तों में वेतन अथवा कमीशन पर एजेण्ट, चीफ एजेण्ट और आर्गनाइजरों की आवश्यकता है। पुश्तैनी रिन्युअल कमीशन की अपूर्व सुविधा है— अपने अनुभव सहित आवेदन पत्र भेजिये।

श्रीचन्द दौनेरिया,
मैनेजिंग डाइरेक्टर

गोविन्द प्रसाद चतुर्वेदी,
जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

रामचरनलाल ने साहित्य-प्रेस, आगरा में छपवा कर साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित किया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—हिन्दी काव्य में नवारंभ—श्री सत्येन्द्र, एम०
२—प्रसाद की कहानियों का वर्गीकरण—श्री केदा
३—मुसलमान कवि 'रसखानि' जी का देशप्रेम—श्री
४—शेखर एक जीवनी, अनुशीलन—श्री गोपेश भ
५—गुप्त जी के काव्य पर एक दृष्टि—कुमारी कुसुम
६—युद्ध परवर्त्ती हिन्दी साहित्य—श्री रामकृष्ण
७—प्रकृति और महादेवी—श्री शिवप्रसाद लोहानी
८—सेठ गोविन्ददासजी के भाषण के कुछ अंश
९—साहित्य परिचय—विविध
१०—सम्पादकीय

लाबराय एम० ए०

nicable ways follow the desultory
et of "Death"—

"मृत्यु" ! एक स्तिमित कर देने वाली घटना । हल न होने वाली पहेली ।" यह है अधिकाश गों की मृत्यु की परिभाषा । जीवनी में 'मृत्यु' की रिभाषा मिलेगी जो मौलिक तो है ही—विचित्र ी है ।

"मृत्यु एक आपरेशन है जैसे दाँत उखड़वा देना । ुरसी पर बैठना पड़ता है, डाक्टर एक झटका देता , एक तीखा दर्द होता है और फिर शान्ति मिलती , छुटकारा मिलता है मृत्यु भी वैसी ही है........।" किन अच्छी डाढ़ निकलवाने पर रक्त बहता है और जन होती है । तब असमय में जीवन छीनने पर—" मृत्यु" कैसी सुन्दर परिभाषा है ।

'जीवनी' में रहस्यात्मक अनुभूतियाँ एवं दार्शनिक चारधारा भी इधर उधर बिखरी मिलेगी । 'जीवनी' नायक शेखर—कहीं तो जीवन और मृत्यु के स्य में उलझता है तो कहीं आत्मा-परमात्मा पर निक गम्भीरता लिए मनन करता है ।

प्रकृति के बदलते पटों में छिपे रहस्य उसके लिए भप्राय एवं अस्तित्वपूर्ण है शेखर भी रहस्यात्मक त के रहस्य के प्रति आकर्षित है । किसी-किसी पर ऐसा अनुभव होता है मानो उसकी आत्मा भौतिकता से उब गई है और.......

"तोड़दो यह क्षितिज,
देखलूँ उस पार क्या है ।
चल रहे जिस ओर युग, कल्प
उसका छोर क्या है
क्यों मुझे प्राचीर बन कर
आज मेरा श्वास घेरे
फिर विकल हैं प्राण मेरे ।

ा अनुभव करती है । वह सोचता है—'जो जीवन ह जी रहा है, वह बाधा के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं । आज उसे मौका मिला है उसके ब न से हुए वृक्षों का सहारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की नवीन पुस्तकें

सें की सूची दी जाती है जो हाल ही में 'प्रकाशित
ाहित्य-रत्न-भण्डार से मिल सकती हैं।

नाटक

दो पौराणिक नाटक—कन्हैयालाल माणिकलाल मुनशी १॥

समस्या का अंत—उदयशंकर भट्ट

उपन्यास

भगवान परशुराम—कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

राजनीति

काँग्रेस का संक्षिप्त इतिहास—किशोरीदास वाजपेयी

समाजवादी विधान आज ही क्यों नहीं?—नारायण गुप्त ॥

किसे कहा जाय—जे० सी० कुमारप्पा ॥

णा संवात—निज जाना १

जन—कौशल्या देवी

के घर—कृष्णकुमारी और अमृत कपूर

न का नवीनतम तृतीय संस्करण। मू० २॥) मात्र

के दो अनूठे प्रकाशन

ब्रज लोक संस्कृति

सत्येन्द्र एम० ए० ४)

न्तु मनोरंजक मौलिक प्रकाशन हैं।
नीय और प्रत्येक पुस्तकालय में संग्रहणीय हैं।

त्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

ारिचय के लिए ब्रज साहित्य मंडल मथुरा की
ी' पढ़ें। मूल्य २) मात्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पवा कर साहित्य-रत्न-भण्डार ... प्रकाशित किया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...nicable ways follow the desultory ...et of "Death"—

"मृत्यु" ! एक स्तिमित कर देने वाली घटना । ...क हल न होने वाली पहेली।" यह है अधिकांश ...गों की मृत्यु की परिभाषा। जीवनी में 'मृत्यु' की ...रिभाषा मिलेगी जो मौलिक तो है ही—विचित्र भी है।

"मृत्यु एक आपरेशन है जैसे दाँत उखड़वा देना। कुरसी पर बैठना पड़ता है, डाक्टर एक झटका देता है, एक तीखा दर्द होता है और फिर शान्ति मिलती है, छुटकारा मिलता है मृत्यु भी वैसी ही है.........।" ...किन अच्छी डाढ़ निकलवाने पर रक्त बहता है और ...जन होती है। तब असमय में जीवन छीनने पर—" "मृत्यु" कैसी सुन्दर परिभाषा है।

'जीवनी' में रहस्यात्मक अनुभूतियाँ एवं दार्शनिक ...चारधारा भी इधर उधर बिखरी मिलेगी। 'जीवनी' ... नायक शेखर—कहीं तो जीवन और मृत्यु के ...हस्य में उलझता है तो कहीं आत्मा-परमात्मा पर ...र्शनिक गम्भीरता लिए मनन करता है।

प्रकृति के बदलते पटों में छिपे रहस्य उसके लिए ...विभप्राय एवं अस्तित्वपूर्ण है शेखर भी रहस्यात्मक ...नंत के रहस्य के प्रति आकर्षित है। किसी-किसी ...ण पर ऐसा अनुभव होता है मानो उसकी आत्मा ...व भौतिकता से ऊब गई है और.......

"तोड़दो यह क्षितिज,
देखलूँ उस पार क्या है।
चल रहे जिस ओर युग, कल्प
उसका छोर क्या है
क्यों मुझे प्राचीर बन कर
आज मेरा श्वास घेरे
फिर विकल हैं प्राण मेरे।

...का अनुभव करती है। वह सोचता है—'जो जीवन ...वह जी रहा है, वह बाधा के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। आज उसे मौका मिला है उसके ब न से और इस...गने का। वह तीन कटे हुए वृक्षों का सहारा ...दे त...

भाग १०]

... यह ... यि... नहीं

[सुमि...ति' ...र ...

आज से पूर्व के पन्त को हम दो रूपों में पात ह... पहला रूप इस कवि का छायावादी है। छायावादी काव्य के प्रवर्त्तक प्रमुख कवियों में इनका महत्व-पूर्ण स्थान रहा। प्रसाद के साथ पन्त और निराला की जोड़ी की धूम थी। उस काल के नवोन्मेषी नवयुवक कवियों को पन्तजी ने सबसे अधिक प्रभावित किया। पन्त की शैली और भूषा दोनों ही की छाप नये हृदयों पर पड़ी।

छायावादी युग में इस कवि ने 'वेदना' के स्वर झंकृत किये;

'वियोगी होगा पहला कवि
आह से निकला होगा गान'

ये शब्द इसी कवि ने सुनाये। यह 'वेदना' सौन्दर्य की साधना के लिये थी। सौन्दर्य की...गा।" अनादि... अनुभूति की झाँकी के लिये कवि...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का गूढ़ प्रयोजन था कि इस कवि को गीत गा सकने का पुनः अवसर मिले। यह कवि पहले तो सौन्दर्य की अनुभूति के आकाशीय स्वर्ग में विचरण करता रहा था, 'भू' से उसे विरक्ति थी, वह वहाँ चरण भी नहीं रखना चाहता था, फिर अनायास ही वह भूपर 'नहुष' की भाँति आ पड़ा—अभिशप्त होकर। स्वर्ग के द्वार उसके लिए अवरुद्ध हो गये। यह कवि आदम की भाँति किसी हव्वा के बहकाने से 'ज्ञान-वृक्ष' के फल खा गया। विशेष प्रबुद्ध हुआ। ज्ञान पाकर उसे उस समय तक की अपनी स्थिति पर लज्जा आने लगी। और यह अब 'धरती' पर था। धरती को उसने देखा–समझा। दुःख की साँस लेकर रह गया। वह जान ... वह, न यह'। उसे अब नया रहस्य प्रकट ... वह अब उसी 'रहस्य' को गूढ़ प्रयोजन ... में भर लेना चाहता है।

× ×

...स नयी वाणी में न तो वह चपलता ...स्था की कविताओं में थी, न वह ...है जो बाद के काव्य में थी। कवि में ... 'आशा' का संचार हुआ है। आशा का ... वही 'स्वर्ण' है, जो पहले किरण की भाँति बाहर से आकर एक प्रसन्न परिवर्तन प्रस्तुत कर देता है। ...भी कवि उद्धत होकर स्वर्ण-किरण का 'अभिवादन' करते हुए गा उठा है—

हँसी, लो स्वर्ण किरण,

\+ \+ \+

स्वरों में हँसी लहर
ज्योति का जगा प्रहर,
चेतना उठी सिहर
स्वर्ण यह दिव्य अमर

\+ \+ \+

और कवि यह कामना करने लगा—

"युगों का तामस हरण
करे यह स्वर्ण किरण"

नव... नवोल्लास में वह यह स्वीकार कर है...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की नवीन पुस्तकें

की सूची दी जाती है जो हाल ही में 'प्रकाशित
ाहित्य-रत्न-भण्डार से मिल सकती हैं।

नाटक

दो पौराणिक नाटक—कन्हैयालाल माणिकलाल मुनशी १।।।
समस्या का अंत—उदयशंकर भट्ट

उपन्यास

भगवान परशुराम—कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ६

राजनीति

कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास—किशोरीदास वाजपेयी १
समाजवादी विधान आज ही क्यों नहीं ?—नारायण गुप्त

किसे कहा जाय—जे० सी० कुमारप्पा
णा संवात—निज जाना
जन—कौशल्या देवी
के घर—कृष्णाकुमारी और अमृत कपूर

न का नवीनतम तृतीय संस्करण। मू० २।।) मात्र

के दो अनूठे प्रकाशन

ब्रज लोक संस्कृति

सत्येन्द्र एम० ए० ४)

न्तु मनोरंजक मौलिक प्रकाशन हैं।
नीय और प्रत्येक पुस्तकालय में संग्रहणीय हैं।

त्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

परिचय के लिए ब्रज साहित्य मंडल मथुरा की
ी' पढ़ें। मूल्य २) मात्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

छपवा कर साहित्य-रत्न-भण्डार, ... शित किया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग १०]

[सुमि तिʼ

आज से पूर्व के पन्त को हम दो रूपों में पात ह
पहला रूप इस कवि का छायावादी है । छायावादी
काव्य के प्रवर्त्तक प्रमुख कवियों में इनका महत्व-पूर्ण
स्थान रहा । प्रसाद के साथ पन्त और निराला की
जोड़ी की धूम थी । उस काल के नवोन्मेषी नवयुवक
कवियों को पन्तजी ने सबसे अधिक प्रभावित किया
पन्त की शैली और भूषा दोनों ही की छाप नये हृदयों
पर पड़ी ।

छायावादी युग में इस कवि ने 'वेदना' के स्वर झंकृत किये;

'वियोगी होगा पहला कवि
आह से निकला होगा गान'

ये शब्द इसी कवि ने सुनाये । यह 'वेदना' सौन्दर्य
की साधना के लिये थी । सौन्दर्य की ...ना ।" अनादि
अनुभूति की झाँकी के लिये कवि ...

अंग का जहरीला फोड़ा सारे शरीर के लिए खतरनाक होता है ठीक उसी तरह समाज का यह निर्जीव अँग सम्पूर्ण समाज के लिये विनाश का कारण बन सकता है ।

हमारे समाज में स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय है । विशेष कर रूढ़िवादी एवं अशिक्षित लोगों की दृष्टि में तो उनका मूल्य 'जूते की तली' से बढ़ कर नहीं होता । 'जीवनी' में 'समाज में स्त्रियों की दशा' को लेकर कई सुन्दर विचार मिलेंगे ।

'शशि'—बिना किसी कारण के, अपने पति से तिरस्कृत् हो कर ठोकरें खाती है । उसके पति को अपने आपके पुरुषत्व का अभिमान है—अपनी पत्नी के जजबात उसकी भावनाएँ, अपने पुरुषत्व के मान के सन्तुनल में कोई महत्व नहीं रखते । उनकी दृष्टि में —इच्छाओं का बण्डल, और स्त्री, इच्छापूर्ति का सुन्दर साधन ? शशि की भारतीय नारी सहगई पीगई व अपमान व ठोकरें.......

इस तरह हमारे समाज में 'नारी' के दयनीय जीवन का सजीव चित्रण तो, 'जीवनी' में है ही किन्तु उसके साथ साथ उन पर अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार हैं जो—शेखर और शशि के वक्तव्यों और परस्पर विवादों में, सन्मुख आते हैं ।

शशि के 'नारी समस्या' पर दिये गये वक्तव्य में, आन्तरिक विद्रोह की तीव्रता लिए यह पंक्तियाँ कितनी सुन्दर है......"आदर्शों का अभिमान आसान है.... किन्तु अभिमान की कोई नीचे आदर्श का पानी क्या कभी बहता है कि बँधकर सड़ गया है ? गृहस्थ धर्म उभयमुखी होता है किन्तु आज के जीवन में पुरुष की ओर से देय कुछ भी नहीं है, मुख्य तो दूर, करुणा भी देय नहीं, और नारी केवल पुरुष के उपयोग का साधन रह गई है निरी सामग्री, जिसे वह जब चाहे जैसे चाहें, जहाँ चाहे, अपनी तुष्टि की आग में होमदे और इसकी कहीं अपील नहीं है, क्योंकि स्त्री कभी ...दे तो उत्तर स्पष्ट है कि और शादी की किसलिये यह आदर्श नहीं, आदर्शों की समाधि है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का गूढ़ प्रयोजन था कि इस कवि को गीत गा सकने का पुनः अवसर मिले। यह कवि पहले तो सौन्दर्य की अनुभूति के आकाशीय स्वर्ग में विचरण करता रहा था, 'भू' से उसे विरक्ति थी, वह वहाँ चरण भी नहीं रखना चाहता था, फिर अनायास ही वह भूपर 'नहुष' की भाँति आ पड़ा—अभिशप्त होकर। स्वर्ग के द्वार उसके लिए अवरुद्ध हो गये। यह कवि आदम की भाँति किसी हव्वा के बहकाने से 'ज्ञान-वृक्ष' के फल खा गया। विशेष प्रबुद्ध हुआ। ज्ञान पाकर उसे उस समय तक की अपनी स्थिति पर लज्जा आने लगी। और यह अब 'धरती' पर था। धरती को उसने देखा-समझा। दुःख की साँस लेकर रह गया। वह जान ... वह, न यह'। उसे अब नया रहस्य प्रकट ... वह अब उसी 'रहस्य' को गूढ़ प्रयोजन ... में भर लेना चाहता है।

× ×

...स नयी वाणी में न तो वह चपलता ...स्था की कविताओं में थी, न वह ...है जो बाद के काव्य में थी। कवि में ...'आशा' का संचार हुआ है। आशा का ... वही 'स्वर्ण' है, जो पहले किरण की भाँति बाहर से आकर एक प्रसन्न परिवर्तन प्रस्तुत कर देता है। ...भी कवि उद्धत होकर स्वर्ण-किरण का 'अभिवादन' करते हुए गा उठा है—

हँसी, लो स्वर्ण किरण,

\+ + +

स्वरों में हँसी लहर
ज्योति का जगा प्रहर,
चेतना उठी सिहर
स्वर्ण यह दिव्य अमर

\+ + +

और कवि यह कामना करने लगा—

"युगों का तामस हरण
करे यह स्वर्ण किरण"

नव... नवोल्लास में वह यह स्वीकार कर है...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जादू बिछा दिया इस भू पर ।
तुमने सोने की किरणों की,
जीवन हरियाली बो बो कर ॥

'स्वर्ण किरण' ने आकर जो प्रकाश दिया है, 'स्वर्णधूलि' में निज निर्माण के तत्व के रूप में प्र[…] हुई है, तभी कवि वहाँ यह उत्कण्ठा से पूछ बैठा है

स्वर्ण बालुका किसने बरसा दी
रे जगती के मरु थल में
सिकता पर स्वर्णाङ्कित कर
स्वर्णिक आभा जीवन मृग जल में

और यहाँ अब कवि यह चाहने लगा है कि—

बीज बनें नव ज्योति वृत्तियों […]
जन मन में स्वर्ण […]

तथा—

"चीर आवरण भू […]
स्वर्ण शस्य हों रश्मि […]
मानस के स्वर्णिम […]
धरणी के देशांतर गर्भि[…]

× × ×

आज कवि ने और भी गम्भीरता पूर्वक वि[…] करना आरम्भ कर दिया है उसने अपने इस काव्य[…] द्वारा उस विचार के फलस्वरूप कई समाधान प्र[…] कर दिये हैं । उसके समक्ष जो समस्यायें प्रस्तुत हुईं […] उन पर बहुत स्पष्ट और दृढ़ मत उसने प्रकट किया […] साथ में कला के राग का अवसान भी नहीं होने दि[…] है । जिस प्रकार 'भारत-भारती' के कवि ने […] आमन्त्रित किया कि—

हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और क्या अ[…]
आओ विचारें आज मिल कर ये समस्यायें स[…]

उसी प्रकार 'स्वर्ण-किरण' में यह कवि भी बु[…] रहा है—

"आओ सोचें द्विपद […]ा।"
कैसे बन सकत[…]

[…]अंग का जहरीला फोड़ा सारे शरीर के लिए खतरनाक होता है ठीक उसी तरह समाज का यह निर्जीव अँग सम्पूर्ण समाज के लिये विनाश का कारण बन सकता है ।

हमारे समाज में स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय है । विशेष कर रूढ़िवादी एवं अशिक्षित लोगों की दृष्टि में तो उनका मूल्य 'जूते की तली' से बढ़ कर नहीं होता । 'जीवनी' में 'समाज में स्त्रियों की दशा' को लेकर कई सुन्दर विचार मिलेंगे ।

'शशि'—बिना किसी कारण के, अपने पति से तिरस्कृत हो कर ठोकरें खाती है । उसके पति को अपने आपके पुरुषत्व का अभिमान है—अपनी पत्नी के जजबात उसकी भावनाएं, अपने पुरुषत्व के मान के सन्तुलन में कोई महत्व नहीं रखते । उनकी दृष्टि में […]—इच्छाओं का बण्डल, और स्त्री, इच्छापूर्ति का […]न्दर साधन ? शशि की भारतीय नारी सहगई पीगई […] अपमान व ठोकरें……

इस तरह हमारे समाज में 'नारी' के दयनीय जीवन का सजीव चित्रण तो, 'जीवनी' में है ही किन्तु उसके साथ साथ उन पर अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार […] हैं जो—शेखर और शशि के वक्तव्यों और परस्पर […]वादों में, सन्मुख आते हैं ।

शशि के 'नारी समस्या' पर दिये गये वक्तव्य में, […]न्तरिक विद्रोह की तीव्रता लिए यह पंक्तियाँ कितनी […]न्दर है……"आदर्शों का अभिमान आसान है…… किन्तु अभिमान की कोई नीचे आदर्श का पानी क्या कभी बहता है कि बँधकर सड़ गया है ? गृहस्थ धर्म […]भयमुखी होता है किन्तु आज के जीवन में पुरुष को […]ओर से देय कुछ भी नहीं है, मुख्य तो दूर, करुणा भी देय नहीं, और नारी केवल पुरुष के उपयोग का साधन रह गई है निरी सामग्री, जिसे वह जब चाहे जैसे चाहें, जहाँ चाहे, अपनी तुष्टि की आग में होमदे और इसकी कहीं अपील नहीं है, क्योंकि स्त्री कभी […]दे तो उत्तर स्पष्ट है कि और शादी की किसलिये […] यह आदर्श नहीं, आदर्शों की समाधि है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार का शिकार है। कवि का जिक्र ऊपर दिया जा का है। बुद्धि-प्राण जन तर्क, वाद और सिद्धान्त के टिल जाल में फँसा हुआ है; धर्म-प्राण जन नीति-तों, विविध सम्प्रदाय और उनके जन अनुष्ठानों से कुल है; नवशिक्षित स्त्री-प्रिय है, यह द्रव्य, भाव र पद-लोलुपता में उन्मत्त है। वैज्ञानिक और राज्य-तावादी जन महामृत्यु के पूजन में निरत है। समस्त ार के पर्यवेक्षण के उपरान्त यही यथार्थता कवि को दित हुई है। उसे इसमें 'मानव' का रूप सुरक्षित हीं दीखता। ऐसी अवस्था में उसे निराशावादी और ास्तिक हो जाना चाहिए था—किन्तु इस अस्वस्थ-र वृत्ति को ही उसने 'तमस्' की संज्ञा दी है। इस ह अत्र निकलता प्रतीत हो रहा है। स्वर्ण वाणी में आस्था और आस्तिकता का ास कमल कोष की भाँति विकसित र्णधूलि में पराग की भाँति अणु-अणु भाव से व्याप्त हो गया है।

व्य का सबसे प्रधान और प्रमुख स्तर आस्था और प्रतीति है—

ार हृदय के तम का गह्वर
स्वर्ण स्वप्न जो आते बाहर
गाते वे किस ज्योति प्रीति
आशा के गीत प्रतीति से मुखर ?

ज्योति, प्रीति, आशा और प्रतीति ये शब्द आस्तिक स्था के पर्याय हैं। तुलसी में जिस प्रकार राम रमा ा है, प्रत्येक पंक्ति और उसके भाव में आज पन्त ज्योति, प्रीति, आशा और प्रतीति अन्तर्व्याप्त है। आस्था इस प्रतीति का केन्द्र समन्वय से अनुप्राणित द्र-सत्ता भी है—यही 'ईश्वर' है। इस ईश्वर को ही ने 'मृत्युञ्जय' में देखा है, और घोषित किया है—

वर को मरने दो हे मरने दो,
फिर जी उट्ठेगा, ईश्वर को मरने दो !
क्षण ... ता, जी उठता,
र के ... स्वरूप धरने दो !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
साहित्य-रत्न-भण्डार, ... प्रकाशित किया

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर यह केन्द्र-सत्ता व्याप्त—समस्त सत्ता है—इसी कविता में कवि ने इस ईश्वर की परिभाषा दी है—

एक दृष्टि से, एक रूप में, देख रहे हम
इस भूमि को, जग को, औ'
जग के जीवन को निश्चल।
इसमें सुख दुख जरामरण हैं, जड़ चेतन,
संघर्ष शान्ति—यह रे द्वन्द्वों का आशय !

यह तो एक दृष्टि से दर्शन है। कवि कहता है—

परम दृष्टि से, परम रूप में यह है ईश्वर,
अजर अमर औ' एक अनेक, सर्वगत, अक्षर,
व्यक्ति विश्व जड़ स्थूल सूक्ष्मतर !

ईश्वर की इस व्याख्या से कवि ने 'ए… 'परम' दो दृष्टियों और दो रूपों के भेद को… दिया है और दोनों में 'सत्य' की प्रतिष्ठा क… 'मरने' और 'जीने' को एक ही रूप दिया… 'चिर' और 'अचिर' दोनों से आवृत्त '… 'विकास' नहीं मिल सकता 'परिणति' ही मि…

फलतः इस 'प्रतीति' ने उसे 'विकास-वा… विरुद्ध 'परिणति-वाद' का अनुयायी बनाया है—

नित्य पूर्ण यह विश्व चिरन्तन,
पूर्ण चराचर, मानव तन मन,
अन्तर्बाह्य पूर्ण चिर पावन !
केवल जीव वृद्धि पाते हैं,
वे परिणत होते जाते हैं,
जीवन-क्षण, जीवन के युग,
जीवन की स्थितियाँ
परिवर्तित परिवर्धित होकर
भव इतिहास कहाते हैं !
छाया प्रकाश दोनों मिलकर
जीवन को पूर्ण बनाते हैं !
यदि जैसा संग्राम
नाम जीवन का,
अमृत और विष ही परिणाम

…अंग का जहरीला फोड़ा सारे शरीर के लिए खतरनाक होता है ठीक उसी तरह समाज का यह निर्जीव अंग सम्पूर्ण समाज के लिये विनाश का कारण बन सकता है।

हमारे समाज में स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय है। विशेष कर रूढ़िवादी एवं अशिक्षित लोगों की दृष्टि में तो उनका मूल्य 'जूते की तली' से बढ़ कर नहीं होता। 'जीवनी' में 'समाज में स्त्रियों की दशा' को लेकर कई सुन्दर विचार मिलेंगे।

'शशि'—बिना किसी कारण के, अपने पति से तिरस्कृत हो कर ठोकरें खाती है। उसके पति को अपने आपके पुरुषत्व का अभिमान है—अपनी पत्नी के जजबात उसकी भावनाएँ, अपने पुरुषत्व के मान के सन्तुनल में कोई महत्व नहीं रखते। उनकी दृष्टि में …—इच्छाओं का बण्डल, और स्त्री, इच्छापूर्ति का …न्दर साधन ! शशि की भारतीय नारी सहगई पीगई …अपमान व ठोकरें……

इस तरह हमारे समाज में 'नारी' के दयनीय जीवन का सजीव चित्रण तो, 'जीवनी' में है ही किन्तु …के साथ साथ उन पर अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार … हैं जो—शेखर और शशि के वक्तव्यों और परस्पर …वादों में, सन्मुख आते हैं।

शशि के 'नारी समस्या' पर दिये गये वक्तव्य में, …न्तरिक विद्रोह की तीव्रता लिए यह पंक्तियाँ कितनी …न्दर है……"आदर्शों का अभिमान आसान है…. किन्तु अभिमान की कोई नीचे आदर्श का पानी क्या कभी बहता है कि बँधकर सड़ गया है ? गृहस्थ धर्म उभयमुखी होता है किन्तु आज के जीवन में पुरुष की ओर से देय कुछ भी नहीं है, मुख्य तो दूर, करुणा भी देय नहीं, और नारी केवल पुरुष के उपयोग का साधन रह गई है निरी सामग्री, जिसे वह जब चाहे जैसे चाहें, जहाँ चाहे, अपनी तुष्टि की आग में होमदे और इसकी कहीं अपील नहीं है, क्योंकि स्त्री कभी …दे तो उत्तर स्पष्ट है कि और शादी की किसलिये … यह आदेश नहीं, आदर्शों की समाधि है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी नहीं चेतन मानव से,
भू जीवन मर्यादित।
अभी प्रकृति की तमस शक्ति से,
मनुज नियति अनुशासित।"

इस विकृत और अत्याचार पूर्ण स्थिति को देखकर भी कवि के हृदय में कोमलता की शक्ति की जय का भाव प्रबलता पूर्वक उदय हुआ है। उसने हिंसा का विरोध किया है; उसने जड़ता का विरोध किया है, उसने मनुष्य के विभेदों का विरोध किया है। उसने नर-नारी के विभेद के प्रति घोर असन्तोष प्रकट किया है। वह 'अर्ध्वमानव' और 'मनुष्यत्व' के भावी रूप-दर्शन के आनन्द से ज्योतित हो उठा है, स्थान-स्थान ... चेतन मानव की कल्पना के मधु से उसके ... कटु भी मधुर हो उठा है—वर्गहीन और ...समाज से भी श्रेष्ठ समाज का भाव इस ... नारी' के साम्य को स्थापित करके दिया ...र-नारी को काम के अत्याचार से ऊपर ...देव्य उद्योग किया है।

...ई नहीं सकते हैं यदि जन।
...ारी मोह, पुरुष की दासी उसे बनाना,
देह द्वेष औं काम क्लेश के दृश्य दिखाना,
तो अच्छा हो छोड़दें अगर
इस समाज में द्वन्द्व स्त्री पुरुष में बँट जाना।"

इस महान कवि ने आज अपने काव्य के लिए कुछ स्थिर भूमि प्राप्त करली है। वह शुद्ध मानवता का पुजारी बन गया है, और कोमल मधुर कल्पनाओं से उसका काव्य मानव मन में सत, प्रिय और शान्त किन्तु कर्मठ संकल्पों का उन्मेश कर रहा है। कवि की यह वाणी अवश्य ही कल्याणकारिणी सिद्ध होगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसाद की कहानि...

ले०—केदार नाथ शुक्ल

प्रसाद के पाँच कहानी-संग्रह हैं और उनमें सत्तर कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ एक ही प्रकार की नहीं, कई प्रकार की हैं। इनके दो मुख्य विभाग किये जा सकते हैं—प्राचीन युग की कहानियाँ अथवा ऐतिहासिक कहानियाँ, और आधुनिक युग की कहानियाँ। स्वर्गीय आचार्य शुक्ल जी के अनुसार भी प्रसाद की कहानियाँ दो वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं:—

१—किसी मधुर या मार्मिक रचन... किसी ऐतिहासिक काल का खण्ड-चि... वाली कहानियाँ, यथा—'आकाश दीप'... 'स्वर्ग के खण्डहर में', 'नूरी', 'पुरस्कार'... आदि सभी ऐतिहासिक कहानियाँ इस... जायगी।

२—घटना और सम्वाद दोनों में गूढ़ ... और रमणीय कल्पना के सुन्दर समन्वय के साथ चल... वाली कहानियाँ, यथा 'भीख में', 'चित्र वाले पत्थर', 'बनजरा', 'समुद्रसंतरण', आदि सभी अनैतिहासिक कहानियाँ इसके अन्तर्गत आ जायगी।

वस्तु की दृष्टि से भी हम प्रसाद की कहानियों को दो स्थूल श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं, यथा (१) प्रेम कहानियाँ तथा (२) दुःख और करुणा की कहानियाँ।

प्रसाद को भारत का अतीत अत्यन्त प्रिय था, इसीसे इसका प्रचुर चित्रण भी उनके साहित्य में मिलता है। उनके नाटकों का अतीत हिन्दू-काल ही तक है, पराधीन भारत में नहीं। उसका प्रारम्भ वैदिक-काल, सत्य हरिश्चन्द्र के समय (करुणाल...) से और अन्त • जयचन्द की मृत्यु (प्रायश्चित...) ... है।

...अंग का जहरीला फोड़ा सारे शरीर के लिए खतरनाक होता है ठीक उसी तरह समाज का यह निर्जीव अँग सम्पूर्ण समाज के लिये विनाश का कारण बन सकता है।

हमारे समाज में स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय है। विशेष कर रूढ़िवादी एवं अशिक्षित लोगों की दृष्टि में तो उनका मूल्य 'जूते की तली' से बढ़ कर नहीं होता। 'जीवनी' में 'समाज में स्त्रियों की दशा' को लेकर कई सुन्दर विचार मिलेंगे।

'शशि'—बिना किसी कारण के, अपने पति से तिरस्कृत् हो कर ठोकरें खाती है। उसके पति को अपने आपके पुरुषत्व का अभिमान है—अपनी पत्नी के जजबात उसकी भावनाएँ, अपने पुरुषत्व के मान के सन्तुलन में कोई महत्व नहीं रखते। उनकी दृष्टि में ...—इच्छाओं का बण्डल, और स्त्री, इच्छापूर्ति का सुन्दर साधन ? शशि की भारतीय नारी सहगई पीगई ... अपमान व ठोकरें.......

इस तरह हमारे समाज में 'नारी' के दयनीय जीवन का सजीव चित्रण तो, 'जीवनी' में है ही किन्तु उसके साथ साथ उन पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विचार भी हैं जो—शेखर और शशि के वक्तव्यों और परस्पर वार्तालापों में, सन्मुख आते हैं।

शशि के 'नारी समस्या' पर दिये गये वक्तव्य में, आन्तरिक विद्रोह की तीव्रता लिए यह पंक्तियाँ कितनी सुन्दर है......"आदर्शों का अभिमान आसान है.... किन्तु अभिमान की कोई नीचे आदर्श का पानी क्या कभी बहता है कि बँधकर सड़ गया है ? गृहस्थ धर्म उभयमुखी होता है किन्तु आज के जीवन में पुरुष की ओर से देय कुछ भी नहीं है, मुख्य तो दूर, करुणा भी देय नहीं, और नारी केवल पुरुष के उपयोग का साधन रह गई है निरी सामग्री, जिसे वह जब चाहे जैसे चाहें, जहाँ चाहे, अपनी तुष्टि की आग में होमदे और इसकी कहीं अपील नहीं है, क्योंकि स्त्री कभी ... दे तो उत्तर स्पष्ट है कि और शादी को किसलिये ... यह आदर्श नहीं, आदर्शों की समाधि है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद की किसी कहानी को हम विशुद्ध सामाजिक कहानी नहीं कह सकते। वे प्रायः सभी समाज से दूर, एकान्त में घटित होने वाली हैं, एकान्तिक कहानियाँ हैं। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उद्गम-क्षेत्र विविध हैं, वह सतरङ्ग है, जो इन्द्र-धनुष रूपी प्रसाद की कहानियों का भव्य चित्र है।

प्रसाद की कहानियाँ हिन्दी-कथा-साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है, वे विश्व-साहित्य की वस्तु हैं। यदि कला को लीजिए तो प्रसाद हिन्दी के सर्व-श्रेष्ठ कहानीकार हैं, और यदि सर्व-प्रियता, उपयोगिता आदि का विचार किया जाय तो भी हिन्दी के महान [illegible]खकों में उनको एक उच्च स्थान मिलेगा! [illegible] प्रमुख प्रकार होते हैं—सहज और आरो- [illegible]भावात्मक और आलङ्कारिक। इन्ही को [illegible]ों में भाव-प्रधान तथा घटना-प्रधान कह[illegible] [illegible]ाद जी पहले प्रकार के कहनी-लेखक थे। [illegible]यों में विभिन्न भावों और मनोवेगों का [illegible]हुआ है—सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों की सफल [illegible]क्ति उनकी कहनियों में है। उनकी यह अपनी [illegible]शेषता थी कि उनकी कहानियाँ हमारे सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को जगाती चलती हैं और ले जाकर ऐसे स्थान पर छोड़ देती हैं कि हम कुछ बे-सुध से हो जाते हैं, किन्तु यह बे-सुधी क्षणिक होती है क्योंकि भावों को हृदयङ्गम करने के लिए हमें अंत में अपने अन्तस को भी सक्रिय बनाना ही पड़ता है। प्रसाद की कुछ अपनी मुख्य विशेषतायें इन कहानियों में हमें मिलती हैं—

प्रसाद की अधिकाँश कहानियाँ, प्रायः नब्बे प्रति-शत प्रेम-कहानियाँ हैं। प्रेम तो किसी-न-किसी रूप में उनकी प्रायः सभी कहानियों का विषय है। उनकी कहानियों में प्रेम के विभिन्न स्वरूपों के चित्र मिलते हैं। किसी में नर-नारी अथवा पुरुष-स्त्री का प्रेम है, [illegible] कि[illegible]मे की भावना है, किसी में पिता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति प्रेम है तो किसी में बच्चों के प्रति स्नेह प्रदर्शित किया गया है। संक्षेप में इन प्रेम कहानियों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया जा सकता है:—

(१) पुरुष-स्त्री के सफल प्रेम का रूप दिखला वाली कहानियाँ, यथा—'दासी', 'पुरुष्कार', 'सुनहल साँप', तथा 'इन्द्रजाल' आदि।

(२) पुरुष-स्त्री के प्रेम की असफलता को प्रकट करने वाली कहानियाँ यथा:—'मदन मृणालिनी 'आँधी', 'ग्रामगीत', 'आकाश-दीप', 'स्वर्ग के खंडह में', 'देवदासी', 'बनजारा' 'रूप की छाया', 'चित्र वाले पत्थर', 'गुंडा', आदि।

(३) दाम्पत्य प्रेम का प्रदर्शन करने वाली कहा नियाँ, यथा—'सहयोग', 'कलावती की 'सलीम' आदि।

(४) पूर्वानुरागिनी परकीया नायि झाँकी देने वाली कहानियाँ यथा—'

(५) मुग्धा नायिका के प्रेम की कहानियाँ, यथा—'समुद्र-संतरण'।

(६) हिन्दू-विधवाओं के प्रेम और पु ओर संकेत देने वाली कहानियाँ 'विजया'।

(७) इस बात का संकेत करने वाली कहा कि वैश्यायें भी प्रेम करना जानती हैं और अ मिलने पर वे भी सफल पत्नियाँ बन सकती हैं, यथा 'चूड़ीवाली', 'सालवती'।

(८) निम्न कोटि के प्रेम का रूप समुपस्थित कर वाली कहानियाँ, यथा—'सिकन्दर की शपथ' औ 'अशोक'।

(९) कुछ कहानियाँ यह प्रदर्शित करती हैं कि समाज की झोंपड़ियों की अवहेलना करके अभिजा कुल के लोग भी निम्न श्रेणी वाली जातियों कन्याओं से प्रेम कर सकते हैं और उनका पाणि-ग्रह कर सकते हैं, यथा —'नारी'।

ंग का जहरीला फोड़ा सारे शरीर के लिए खतरनाक होता है ठीक उसी तरह समाज का यह निर्जीव अंग सम्पूर्ण समाज के लिये विनाश का कारण बन सकता है।

हमारे समाज में स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय है। विशेष कर रूढ़िवादी एवं अशिक्षित लोगों की दृष्टि में तो उनका मूल्य 'जूते की तली' से बढ़ कर नहीं होता। 'जीवनी' में 'समाज में स्त्रियों की दशा' को लेकर कई सुन्दर विचार मिलेंगे।

'शशि'—बिना किसी कारण के, अपने पति से तिरस्कृत हो कर ठोकरें खाती है। उसके पति को अपने आपके पुरुषत्व का अभिमान है—अपनी पत्नी के जजबात उसकी भावनाएँ, अपने पुरुषत्व के मान के सन्तुनल में कोई महत्व नहीं रखते। उनकी दृष्टि में —इच्छाओं का बण्डल, और स्त्री, इच्छापूर्ति का न्दर साधन ! शशि की भारतीय नारी सहगई पीगई ह अपमान व ठोकरें.......

इस तरह हमारे समाज में 'नारी' के दयनीय जीवन का सजीव चित्रण तो, 'जीवनी' में है ही किन्तु उसके साथ साथ उन पर अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार हैं जो—शेखर और शशि के वक्तव्यों और परस्पर वादों में, सन्मुख आते हैं।

शशि के 'नारी समस्या' पर दिये गये वक्तव्य में, आन्तरिक विद्रोह की तीव्रता लिए यह पंक्तियाँ कितनी सुन्दर है......"आदर्शों का अभिमान आसान है.... किन्तु अभिमान की कोई नीचे आदर्श का पानी क्या कभी बहता है कि बँधकर सड़ गया है ? गृहस्थ धर्म उभयमुखी होता है किन्तु आज के जीवन में पुरुष की ओर से देय कुछ भी नहीं है, मुख्य तो दूर, करुणा भी देय नहीं, और नारी केवल पुरुष के उपयोग का साधन रह गई है निरी सामग्री, जिसे वह जब चाहे जैसे चाहें, जहाँ चाहे, अपनी तुष्टि की आग में होमदे और इसकी कहीं अपील नहीं है, क्योंकि स्त्री कभी दे तो उत्तर स्पष्ट है कि और शादी की किसलिये यह आदर्श नहीं, आदर्शों की समाधि है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—मैले कपड़े के टुकड़े पर सूखी हुई घार में तीन-चार केले, चार कच्चे पपीते, दो हरे नारियल और छः अण्डे थे।—विराम चिन्ह।

अन्यत्र उनकी भाषा का यह रूप है—

'सन्ध्या आ गई। नक्षत्र ऊँचे आकाश-गिरि पर चढ़ने लगे। आलिङ्गन के लिए उठी हुई बाहें गिर गईं। इस दृश्य जगत के उस पार से, विश्व के गम्भीर अन्तस्तल से एक करुण और मधुर अन्तर्नाद गूँज उठा।'
—चित्र-मन्दिर।

प्रसादजी प्राकृतिक-दृश्यों के बड़े प्रेमी थे। उनकी कुछ कहानियों का प्रारम्भ, विकास तथा अन्त आदि सभी कुछ पूर्ण रूप से प्रकृति की गोद में ही होता है, ...लय का पथिक', 'चित्र-मन्दिर' तथा ...र' आदि। वन्य-प्रकृति की ओर उनका ...ता है। यह प्रकृति-चित्रण सर्वथा रस

...क रङ्गीन संसार में अरुण किरणों ने ...पदार्पण किया और वे चमक उठीं, देखा ...किसलय और कुसुमों की पंखुरियाँ, वसन्ती-...क घरों के समान हिल रही थीं। पीले पराग का ...ग लगने से किरणें पीली पड़ गईं। वसन्त का ... था।'
—अपराधी।

प्रसादजी रूप और यौवन के अद्वितीय चित्रकार ...। उनका स्वयं का प्रारम्भिक जीवन विलास में बीता ..., इसी से उनके साहित्य में रूप, यौवन और विलास का रङ्ग अत्यन्त गाढ़ा है। उनके प्रायः सभी पात्र युवा भावुक और आकर्षक हैं। इसी से उनकी अधिकांश कहानियों का विषय प्रेम है और रूप तथा यौवन की झाँकी तो उनकी प्रायः सभी कहानियों में है। प्रेम-कहानियों में तो इसकी पूर्ण स्वतन्त्रता रहती ही है, किन्तु उनकी कुछ दुःख और करुणा की कहानियों में ... रूप और यौवन का चित्र है जैसे—'घीसू' में ...दो—...जली धोती में गोराई फूटी पड़ती।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री रामविलास शर्मा ने मार्च ३७ की 'माधुरी' के कहानी अङ्क में एक लेख लिखा है—'हिन्दी के तीन कवि कहानी-लेखक'। इसमें प्रसाद प्रमुख हैं। उनके विषय में कुछ विशेष बातें लेख में बतलाई गई हैं। लेखक को जो कुछ कहना था, उसने 'आँधी' के आधार पर कहा है। किन्तु जो कुछ 'आँधी' के लेखक प्रसाद पर कहा गया है वह 'आकाश-दीप' और 'इन्द्रजाल' के प्रसाद पर भी समान रूप से लागू होता है। लेखक ने बतलाया है कि प्रसाद की नायिकाएँ युवती हैं, सुन्दर हैं, और मृदुभाषिणी हैं। मैंने 'छाया' से लेकर 'इन्द्रजाल' तक निरीक्षण किया—वहाँ कोई बुढ़िया नहीं। 'छाया' में मृणालिनी का रूप देखिये—

'मृणालिनी' स्वामी की कन्या है। वह… सी जान पड़ती है। बड़ी-बड़ी आँखें उज्ज… मनोहर अङ्ग-भङ्गी, गुल्फ विलम्बित केश… और भी सुन्दरी बनाने में सहायता दे रहे… तेरह वर्ष की है, किन्तु वह बहुत गम्भी… नहीं

—म…ति'

अब 'इन्द्रजाल' की बेला का रूप देखि…

'बेला' साँवली थी। जैसे पावस की मेघ-मा… छिपे हुए आलोक-पिंड का प्रकाश निरखने की अ… चेष्टा कर रहा हो, वैसे ही उसका यौवन सुगा… शरीर के भीतर उद्वेलित हो रहा था। गोली के रं… की मदिरा से उसकी कजरारी आँखें लाली से भरी रहतीं। वह चलती तो थिरकती हुई, बात करती तो हँसती हुई। एक मिठास उसके चारों ओर बिखरी रहती।'

—इन्द्रजाल

रूप, यौवन और विलास की एक झाँकी औ… लीजिए—

'नूरो' काश्मीर की कली थी। सीकरी के महल में उसके कोमल चरणों की नृत्य-कला प्रसिद्ध थी। उस कालिका का आमोद मकरन्द अपनी सीमा… मचल रहा था। उसने समझा, मेरा…!" हँसी…

…ंग का जहरीला फोड़ा सारे शरीर के लिए खतरनाक …ोता है ठीक उसी तरह समाज का यह निर्जीव अँग …म्पूर्ण समाज के लिये विनाश का कारण बन …कता है।

हमारे समाज में स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय …। विशेष कर रूढ़िवादी एवं अशिक्षित लोगों की …ष्टि में तो उनका मूल्य 'जूते की तली' से बढ़ कर नहीं …ता। 'जीवनी' में 'समाज में स्त्रियों की दशा' को …कर कई सुन्दर विचार मिलेंगी।

'शशि'—बिना किसी कारण के, अपने पति से …रस्कृत हो कर ठोकरें खाती है। उसके पति को …पने आपके पुरुषत्व का अभिमान है—अपनी पत्नी के जजबात उसकी भावनाएँ, अपने पुरुषत्व के मान के सन्तुलन में कोई महत्व नहीं रखते। उनकी दृष्टि में —इच्छाओं का बण्डल, और स्त्री, इच्छापूर्ति का …न्दर साधन? शशि की भारतीय नारी सहगई पीगई …र अपमान व ठोकरें.......

इस तरह हमारे समाज में 'नारी' के दयनीय …वन का सजीव चित्रण तो, 'जीवनी' में है ही किन्तु …सके साथ साथ उन पर अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार … हैं जो—शेखर और शशि के वक्तव्यों और परस्पर …वादों में, सन्मुख आते हैं।

शशि के 'नारी समस्या' पर दिये गये वक्तव्य में, …न्तरिक विद्रोह की तीव्रता लिए यह पंक्तियाँ कितनी …दर हैं......"आदर्शों का अभिमान आसान है.... …न्तु अभिमान की कोई नीचे आदर्श का पानी क्या …भी बहता है कि बँधकर सड़ गया है? गृहस्थ धर्म …भयमुखी होता है किन्तु आज के जीवन में पुरुष की ओर से देय कुछ भी नहीं है, मुख्य तो दूर, करुणा भी देय नहीं, और नारी केवल पुरुष के उपयोग का साधन रह गई है निरी सामग्री, जिसे वह जब चाहे जैसे चाहें, जहाँ चाहे, अपनी तुष्टि की आग में होमदे और इसकी कहीं अपील नहीं है, क्योंकि स्त्री कभी …दे तो उत्तर स्पष्ट है कि और शादी की किसलिये … यह आदर्श नहीं, आदर्शों की समाधि है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'समुद्र-संतरण' तो बजरे की कहानी ही है। 'आँधी' का श्रीनाथ प्रायः उस छोटी सी झील में रात्रि में डोंगी चलाया करता था। 'अमित स्मृति' रखने वाले बाबूजी तो होली के दो दिन तक बजरे पर से उतरते ही न थे।

'आँधी' की लैला को सन्तरण में इतना आकर्षण था कि शीत काल की रात्रि में भी वह सोल्लास सन्तरण करती थी। यह सन्तरण-प्रेम 'समुद्र-सन्तरण' में भी देखा जा सकता है।

कहानियों के पढ़ने से ज्ञात होता है कि प्रसादजी ग्राम गीतों के बड़े प्रेमी थे। 'ग्राम-गीत' नामक कहानी इसका प्रमाण है। प्रसाद जानते थे कि 'वर जोगी' ...यनवाँ में', में कितना कवित्व है। उनकी ...हानियों में भी गीतों की एक-एक टुकड़ियाँ ...।

...हानियों में अनेक गद्य-गीत भी आये ...डहर में' के दो 'सलीम' में एक, ...क, 'नूरी' में एक, 'बनजारा' में एक, ...र की पुकार' में एक गद्य-गीत है। इस ...सात गद्य-गीत हैं, जो विशुद्ध गद्य काव्य की ...णी में आयेंगे।

बौद्ध-धर्म का प्रभाव जो प्रसाद पर पड़ा था उसका भी कुछ आभास उनकी इन कहानियों में मिलता है। उनकी कई कहानियाँ बौद्ध धर्म से सम्बन्धित हैं। 'आँधी' कहानी में यह विचार-धारा सिंहाली भिक्षु द्वारा स्पष्ट है। वे सर्वत्र अपने अनुकूल वातावरण बनाने में सक्षम थे। 'सन्देह' में भी इसका स्पष्ट आभास है'। किन्तु उन्होंने सनातन वैदिक धर्म के आगे उसकी महानता कभी न स्वीकार की। उनकी कहानियों में बौद्ध-धर्म का पतन ही मिलता है—उत्थान नहीं। ...व-रथ में तो उन्होंने पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया है ...कि पवित्र हिन्दू गार्हस्थ्य धर्म का विनाश करके कोई ...धर्म प... सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसलमान कवि 'रसख

लेः—श्री 'भाव

ब्रजभाषा, ब्रजभूमि और ब्रजराज के प्रेम में तन-मन न्यौछावर करने वाले रसखानजी दिल्ली के पठान थे। बादशाही खान्दान से सम्बन्ध विच्छेद कर वे जन-साधारण की तरह वृन्दावन की प्रेममयी भूमि में रहने लगे थे। वे बड़े प्रेमी व्यक्ति थे। प्रेम-सम्बन्धी अपने विचार उन्होंने अपनी पुस्तक 'प्रेम-वाटिका' में इस प्रकार प्रगट किये हैं—

'सास्त्रन पढ़ि पण्डित भये,
कै मौलवी कु
जु पै प्रेम जान्यो नहीं,
कहा कियो रसख

रता
वह
ल नहीं
भूति'

❀ ❀

(कृकर

प्रसाद-साहित्य से परिचित होने के लिए पहले हमें उनकी कहानियाँ पढ़नी चाहिए। उनके साहित्य की सभी धारायें यहाँ हैं, अतः पहले उनसे परिचय कर लेना चाहिए। प्रसाद की करुणा और आनन्द दोनों की धारायें यहाँ हैं। 'मधुआ', 'करुणा को विजय', 'पुखिया', 'घीसू', 'बेड़ी', 'आदि करुणा की कहानियाँ हैं। करुणा तो प्रायः नकी सभी कहानियों का अंग है। 'आँधी' और 'अपराधी' आदि में हमें एक दर्द, एक टीस और कसक मिलती है। 'मधुआ' की दयनीय दरिद्रता तो एक शराबी को भी उभार देती है—किन्तु इस करुणा में आनन्द है। ा-भङ्ग', 'पुरस्कार', 'देव-रथ', तथा 'सालवती' दि 'अजात-शत्रु', 'स्कन्दगुप्त' तथा 'चन्द्रगुप्त' दि के अध्ययन का मार्ग बतलाती हैं।

अन्त में प्रो० आचार्यजी के शब्दगा।" हना हूँगा कि प्रसाद की कोई भी कहा

अंग का जहरीला फोड़ा सारे शरीर के लिए खतरनाक होता है ठीक उसी तरह समाज का यह निर्जीव अँग सम्पूर्ण समाज के लिये विनाश का कारण बन सकता है।

हमारे समाज में स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय है। विशेष कर रूढ़िवादी एवं अशिक्षित लोगों की दृष्टि में तो उनका मूल्य 'जूते की तली' से बढ़ कर नहीं होता। 'जीवनी' में 'समाज में स्त्रियों की दशा' को लेकर कई सुन्दर विचार मिलेंगे।

'शशि'—बिना किसी कारण के, अपने पति से तिरस्कृत् हो कर ठोकरें खाती है। उसके पति को अपने आपके पुरुषत्व का अभिमान है—अपनी पत्नी के जजबात उसकी भावनाएं, अपने पुरुषत्व के मान के सन्तुनल में कोई महत्व नहीं रखते। उनकी दृष्टि में —इच्छाओं का बण्डल, और स्त्री, इच्छापूर्ति का न्दर साधन ? शशि की भारतीय नारी सहगई पीगई न अपमान व ठोकरें·······

इस तरह हमारे समाज में 'नारी' के दयनीय वन का सजीव चित्रण तो, 'जीवनी' में है ही किन्तु के साथ साथ उन पर अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार उ हैं जो—शेखर और शशि के वक्तव्यों और परस्पर भ ादों में, सन्मुख आते हैं।

बा शशि के 'नारी समस्या' पर दिये गये वक्तव्य में, न्तरिक विद्रोह की तीव्रता लिए यह पंक्तियाँ कितनी न्दर है······"आदर्शों का अभिमान आसान है···· किन्तु अभिमान की कोई नीचे आदर्श का पानी क्या भी बहता है कि बँधकर सड़ गया है ? गृहस्थ धर्म भयमुखी होता है किन्तु आज के जीवन में पुरुष की ओर से देय कुछ भी नहीं है, मुख्य तो दूर, करुणा भी देय नहीं, और नारी केवल पुरुष के उपयोग का साधन रह गई है निरी सामग्री, जिसे वह जब चाहे जैसे चाहें, जहाँ चाहे, अपनी तुष्टि की आग में होमदे और इसकी कहीं अपील नहीं है, क्योंकि स्त्री कभी दे तो उत्तर स्पष्ट है कि और शादी की किसलिये ह आदर्श नहीं, आदर्शों की समाधि है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत, अनुशीलन"

ड 'अरुण'

थार सुलझे विचार प्राकृतिक हृदय-चित्रण, भाव-भाषा
रगी एकलयता, अनुभूतियों की तीव्रता एवं घटना-
मी चित्र्य के सप्तरङ्गों से द्युतिमान इस सतरङ्गिनी की
ाप किसी भी पाठक पर पड़े बिना न रहेगी। 'शेखर
अएक जीवनी' के महत्व का मूल्याङ्कन करने के लिए,
इसमें निहित सभी विशेषताओं को विचारना होगा।

...यनी' की सफलता की नींव है उसके पात्रों का
...हानिनिक चरित्र-चित्रण। मानव-जीवन की
... । प्रतियों बचपन, यौवन व बुढ़ापे में
...दशा व विचारधाराओं का सूक्ष्म
...ए विभिन्न परिस्थितियों में संसार के

...क, 'सुधामयी भागीरथी,
...र की अब पथ्य-कुपथ्य बनैं तोहि पोसें ॥'

...सात ानि जी शान्ति प्रिय मनुष्य थे, वे नहीं
चाहते थे कि देश में घृणा का प्रचार हो। अशान्ति
फैलाने वालों का साथ देने से देश की ही हानि होती
है यही समझ कर उन्होंने दिल्ली के तख्त से मुँह
मोड़ लिया था। ये लिखते हैं:—

'देखि गदर हित साहिबी,
दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादसा बंस की,
ठसक छोड़ि रसखान ॥

दिल्ली छोड़ कर रसखानजी अपने मौला को
ढूने मदीने क्यों नहीं गये, यह हम नहीं जानते।
न्तु यह सत्य है कि उन्होंने अपने मौला (प्रियतम)
झाँकी स्वदेश में रह कर ही देखी, तभी तो "भार-
जी" ने ऐसे जन-जन प्रेमियों के लिए लिखा है-
"इ... सकत...न हरिजनन पै,
...टिन हिन्दू वारिये।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटनाचक्र का उसके (चरित्र) परिवर्तन में भा सुन्दरता से दर्शाया गया है। 'सम्पूर्ण जीवनी' में कि भी चरित्र को तोड़ मरोड़ कर किसी आदर्श के ढ में फसाने का उपक्रम नहीं किया गया है। प्रत्ये चरित्र का अस्तित्व मनोवैज्ञानिक है और घटनाओं प्रभाव भी उन पर, स्पष्ट रूप से होते गये हैं। 'जीवन की क्रम सूची में विभिन्न खण्डों का नामकरण अ क्रम भी मानव के क्रमशः उत्पन्न होने वाले विचा के द्योतक हैं। 'उषा और ईश्वर' मानव-जीवन के प्रारम्भ में उठने वाले ईश्वर के प्रति विचारों और अनेक क्रिया प्रतिक्रियाओं के पश्चात् ईश्वर ... स्थाई भाव का निर्देश करता है और ... दूसरा खण्ड 'बीज और अंकुर' वि...रता द्वारा, जीवन के प्रारम्भ काल में बालक वह की उत्पत्ति और संसार में आने के ... जिज्ञासा की ओर निर्देश करता है। ...ल नहीं परिस्थितियाँ ही उसमें 'जिज्ञासा' पैदा क...भूति' घटनाओं व परिस्थितियों ही से उसे उस...कर कुछ आभास भी होता है। इसी प्रकार बढ़... आयु के साथ कुछ तो परिस्थितियों से और कुछ प्रकृति से ही उसकी जिज्ञासा निरन्तर बढ़ती जाती है और आगे के 'प्रकृति और पुरुष', 'पुरुष और परिस्थिति', 'बन्धन और जिज्ञासा' 'धागे रस्सियाँ गुञ्झार' इत्यादि मानव की जिज्ञासा व घटनाओं द्वारा उन समस्याओं के विषय में स्थाई विचारों के निर्माण का प्रतिनिधित्व करते हैं।

जीवनी के आरम्भ का शेखर का बाल चरित्र-चित्रण, बाल मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का व्यवहारिक रूप दृष्टिगोचर होता है। बालक शेखर के चरित्र में हमें विचित्रता तो दीखती है किन्तु वह इतनी महत्वपूर्ण नहीं कि साधारण से असाधारण बन बाल-प्रकृति के मनोवैज्ञानिक अन्वेषणों से एक मत न ... सके। चरित्र में विचित्रता और विशेषता होते ...गा।" ... उन प्रभावों से प्रभावित है जिनसे ... हर बालक ... आवश्यक है

अंग का जहरीला फोड़ा सारे शरीर के लिए खतरनाक होता है ठीक उसी तरह समाज का यह निर्जीव अँग सम्पूर्ण समाज के लिये विनाश का कारण बन सकता है।

हमारे समाज में स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय है। विशेष कर रूढ़िवादी एवं अशिक्षित लोगों की दृष्टि में तो उनका मूल्य 'जूते की तली' से बढ़ कर नहीं होता। 'जीवनी' में 'समाज में स्त्रियों की दशा' को लेकर कई सुन्दर विचार मिलेंगे।

'शशि'—बिना किसी कारण के, अपने पति से तिरस्कृत हो कर ठोकरें खाती है। उसके पति को अपने आपके पुरुषत्व का अभिमान है—अपनी पत्नी के जजबात उसकी भावनाएँ, अपने पुरुषत्व के मान के सन्तुनल में कोई महत्व नहीं रखते। उनकी दृष्टि में ...—इच्छाओं का बण्डल, और स्त्री, इच्छापूर्ति का ...न्दर साधन? शशि की भारतीय नारी सहगई पीगई ...अपमान व ठोकरें·······

इस तरह हमारे समाज में 'नारी' के दयनीय जीवन का सजीव चित्रण तो, 'जीवनी' में है ही किन्तु ...के साथ साथ उन पर अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार हैं जो—शेखर और शशि के वक्तव्यों और परस्पर ...बादों में, सन्मुख आते हैं।

शशि के 'नारी समस्या' पर दिये गये वक्तव्य में, आन्तरिक विद्रोह की तीव्रता लिए यह पंक्तियाँ कितनी सुन्दर है·······"आदर्शों का अभिमान आसान है····किन्तु अभिमान की कोई नीचे आदर्श का पानी क्या कभी बहता है कि बँधकर सड़ गया है? गृहस्थ धर्म ...भयमुखी होता है किन्तु आज के जीवन में पुरुष की ओर से देय कुछ भी नहीं है, मुल्य तो दूर, करुणा भी देय नहीं, और नारी केवल पुरुष के उपयोग का साधन रह गई है निरी सामग्री, जिसे वह जब चाहे जैसे चाहें, जहाँ चाहे, अपनी तुष्टि की आग में होमदे और इसकी कहीं अपील नहीं है, क्योंकि स्त्री कभी ...दे तो उत्तर स्पष्ट है कि और शादी की किसलिये ... आदर्शों की समाधि है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में नहीं करते हैं तब निश्चय ही बालक उन सब पर
वा चता है, कुछ घटनायें उसे अपने दृष्टिकोण
उत्त बड़ी सहायता देती हैं और एक दिन पिता के
रने पर कि वह आज्ञानुसार 'देवी के मन्दिर' में
थ आया, उसका दृष्टिकोण यों प्रकट होता है—'मैं
रण्को नहीं मानता। मैं प्रार्थना भी नहीं मानता—
भी झूठ है। ईश्वर झूठ है। ईश्वर नहीं हैं।'
के भाई पैदा होता है। जिन्निया धाय से उसे यह
मिलती है। विस्मय से मुक्त होने पर वही जिज्ञा-
प्रश्नों की बाढ़ आती है। यह कैसे आया?" कहा
या? 'सब कोई ऐसे ही आते हैं? शेखर धाय से
... क्यों आते हैं? और उत्तर मिलता
... होती है वही होता है और तब
... शुरू से अन्त तक जो कुछ धाय
... ठ बताया गया है।" माता-पिता-
... नौकर कोई उसे ठीक उत्तर नहीं
... बात से भी वह नहीं समझ पाता
... झलाकर दर्पोतस्वर में कह उठता है—
... सात स्वर—नहीं हैं नहीं है।'

मृत्यु? क्या है मृत्यु? वह माँ से पूछ बैठता है—
... ! तुम कब मरोगी? और उत्तर में मिलते हैं पिता
... थप्पड़ और तब वह और भी अधिक सन्दिग्ध स्वर
पूछता है अपने आपको—'क्या मृत्यु इतनी
...नक है?

बालक के विचारों के निर्माण का मनोवैज्ञानिक
...त्रण, जितना, 'शेखर एक जीवनी' में मिलता है
...ना हिन्दी के इनेगिने उपन्यासों में भी नहीं मिलेगा।

शेखर बाल्यकाल को पार करके यौवनावस्था में
... करता है। मनुष्य की प्रकृति होती है कि वह
चीज की ओर अधिक आकर्षित होता है जिसको
छिपाया जाय या दूर रखा जाय—तो शेखर भी
... उसके पिता उसे न पढ़ने देने की
... में बन्द रखते हैं; चुराकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लैला मजनूँ' 'तोता मैंना' इत्यादि किताबों को वह पूरी पढ़ जाता है इसलिये नहीं की वह उसे प्रिय थीं वरन यह जानने को उनमें ऐसा क्या है, जो उससे छिपाया गया है।

वय सन्धिकाल में जो जो मानसिक संघर्ष होते हैं, उनका भी जोवनी में सुन्दर निरूपण किया गया है। 'जीवनी' में वय संधिकाल के प्रेम का चित्र देखिये—'नास्तिक जब विश्वास की सर्वग्राहिणी लहर के आगे सन्देह की कन्दरा, बुद्धि के पहाड़, सब समतल हो जाते हैं—'

वैसा ही है वयसन्धिका—व्यक्तिमात्र के प्रति घृणा और विद्वेष के काल का 'प्रेम'।

यौवन काल में प्रवेश करने के साथ ही मनुष्य में भावनाओं का श्रोत उमड़ पड़ा है एक अन... वेदना अन्तर में उठती है और उसकी धारा ...रता कुछ का कुछ सोचने लगता है। शेखर ... वह स्थिति होती है—अपने विषय में वह स... "I am like a reed throug... नहीं thy spirit breathes. It come... भूति' goelta" और साथ 'मानों जीवन के ...कर भूल से या गलत लिखे गये अक्षर की तरह ... मिटा देना चाहता था।'

यौवन काल में प्रवेश करते ही एक लड़का अपनी सम आयु की लड़की की ओर आकर्षित होता है और यह आकर्षण उस पर नशे की तरह छा जाता है। Sex की भावना उभर आती है। जोवनी में एक स्थल पर लिखा गया है—'और फिर उड़ जाता है वीणा के स्वर में घुली हुई अपनी कविता की उड़ान में, क्योंकि वय सन्धिकाल में कौन कवि नहीं होता।'

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। यौवन की आँधी नीरस से नीरस व्यक्ति के मानस-संसार में भी कल्पना का ज्वार उठा सकती है शेखर भी कल्पना से डूबता ... पेट की भूख बुझाने को जिस प्रकार भोजन की आ... श्यकता होती है उसी तरह 'कल्पना की भूख बु... के लिये 'कविता का कलेवर' आवश्यक...' ... जाता...

अंग का जहरीला फोड़ा सारे शरीर के लिए खतरनाक होता है ठीक उसी तरह समाज का यह निर्जीव अँग सम्पूर्ण समाज के लिये विनाश का कारण बन सकता है।

हमारे समाज में स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय है। विशेष कर रूढ़िवादी एवं अशिक्षित लोगों की दृष्टि में तो उनका मूल्य 'जूते की तली' से बढ़ कर नहीं होता। 'जीवनी' में 'समाज में स्त्रियों की दशा' को लेकर कई सुन्दर विचार मिलेंगे।

'शशि'—बिना किसी कारण के, अपने पति से तिरस्कृत् हो कर ठोकरें खाती है। उसके पति को अपने आपके पुरुषत्व का अभिमान है—अपनी पत्नी के जजबात उसकी भावनाएं, अपने पुरुषत्व के मान के सन्तुनल में कोई महत्व नहीं रखते। उनकी दृष्टि में ...—इच्छाओं का बण्डल, और स्त्री, इच्छापूर्ति का ...न्दर साधन ! शशि की भारतीय नारी सहगई पीगई ...व अपमान व ठोकरें.......

इस तरह हमारे समाज में 'नारी' के दयनीय ...वन का सजीव चित्रण तो, 'जीवनी' में है ही किन्तु ...सके साथ साथ उन पर अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार हैं जो—शेखर और शशि के वक्तव्यों और परस्पर ...वादों में, सन्मुख आते हैं।

शशि के 'नारी समस्या' पर दिये गये वक्तव्य में, ...आन्तरिक विद्रोह की तीव्रता लिए यह पंक्तियाँ कितनी ...सुन्दर है......"आदर्शों का अभिमान आसान है.... किन्तु अभिमान की कोई नीचे आदर्श का पानी क्या कभी बहता है कि बँधकर सड़ गया है ? गृहस्थ धर्म उभयमुखी होता है किन्तु आज के जीवन में पुरुष की ओर से देय कुछ भी नहीं है, मुख्य तो दूर, करुणा भी देय नहीं, और नारी केवल पुरुष के उपयोग का साधन रह गई है निरी सामग्री, जिसे वह जब चाहे जैसे चाहें, जहाँ चाहे, अपनी तुष्टि की आग में होमदे और इसकी कहीं अपील नहीं है, क्योंकि स्त्री कभी ...दे तो उत्तर स्पष्ट है कि और शादी की किसलिये ... यह आदर्श नहीं, आदर्श की समाधि है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाम्पत्य प्रेम होने पर भी एक दूसरे पर प्रकट नहीं हो देते। परिस्थितियों और घटना-चक्र शशि और शेखर का जीवन भर का साथ कर देती हैं किन्तु ऐसी स्थिति में भी वह यथार्थ को सम्पूर्ण शक्ति से दबाये—'भाई बहिन' के समान दिन गुजारते हैं।

कठिन संयम व नियमों से शेखर यौवन के उफान पर विजय पाना चाहता है किन्तु फिर भी राख में छिपी आग की तरह शेखर का शशि के प्रति वह प्यार जिसे वह समाप्त कर देना चाहता है। जिन्दा रहता है—मरता नहीं—मर-मर कर जी उठता है।"

और एक रोज प्रकृति की विजय होती है—शेखर घुटने टेक देता है। आवेश के वश हो उसके होट शशि के होट पर जा टिकते हैं। जीवन-दीप के बुझते ...यन... शशि के अन्तराल की गहराइयों में छिपा वह ...हा... ...खर ही पड़ता है।

...कहा जा चुका है कि 'जीवनी' के ...हा... को तोड़-मरोड़ कर आदर्श के ढाँचे ...ढँढ़ गया है। हरएक पात्र का अस्तित्व ...क, ... है—या अगर कहदे वह वास्तविक है, ...र की नहीं।

...जीवनी की मुख्य विशेषता है उसमें निहित मानव-जीवन का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। इसके बाद महत्व रखने वाली चीज है 'जीवनी' की मौलिक परिभाषायें, जो जीवन की जटिल विवादास्पद समस्याओं का सुन्दर विवेचन सी लगती है। उनकी 'शेखर एक जीवनी' में केवल मनोरञ्जन ही नहीं है, वह सब कुछ मिलेगा जो एक परिष्कृत मस्तिष्क चाहता है।

जीवनी के 'प्रवेश' का आरम्भ ही 'फाँसी' की ...वाली परिभाषा से हुआ है और यह है—"फाँसी। ...स जीवन को उत्पन्न करने में हमारे संसार की ... शक्तियाँ, हमारे विकास, हमारे विज्ञान, हमारी ...ता द्वारा निर्मित सारी क्षमताएँ या औजार ...र्थ हैं, ...सके जीवन को छीन लेने में उसी का!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनाश करने में, ऐसी भोली हृदय हीनता फाँसी!"

फाँसी से आरम्भ होकर फाँसी से अन्त होने वाली इस परिभाषा से लेखक ने फाँसी का नग्न चित्रण करते हुए दो प्रयोजन सिद्ध किए हैं। एक तो जीवन का सही सही मूल्यांकन और दूसरा मानव की उसकी (जीवन की) अदूरदर्शितापूर्ण अवहेलना की प्रतीति।

जीवन की महानता इसी में है कि वह मानव के हाथ की बात नहीं। वह अभी तक उसकी बुद्धि की दौड़ के परे है। ऐसी स्थिति में जिस चीज का हम निर्माण नहीं कर सकते उसे तोड़ने का, उसके नाश करने का हमें कोई अधिकार नहीं—यह अधिकार तो, केवल निर्माण करने वाले को होता है।

मनुष्य क्या है? इस विराट विश्व में मानव का अस्तित्व, उसकी विरासत क्या है? 'मान... भाषा' में जीवनी का सुन्दर उद्धरण देखि...

"मैं अपने पहले बीते हुए असंख्य युगों ... हूँ। एक निर्जीव धूम्रकेतु से इस पृथ्वी के ... उस पर अत्यन्त प्राथमिक जीवन की उद्भ... उससे उत्पन्न अनेक विभिन्न जातियों के ... अण्डज, स्वेदज और पिण्डज जीव-जन्तुओं ... वसीअत की छाप मुझ पर है। पिछले करोड़ों वर्षों से निरन्तर उन्नत होती हुई नृजाति के उच्चतम आदर्शों का केन्द्रीय भूत पुञ्ज भी मैं ही हूँ। इस दृष्टि से मैं जो कुछ हूँ, अपना कुछ नहीं हूँ, तथा कुछ नहीं हूँ। मैं किसी अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ का एक नया, संशोधित, संवर्धित और सटीक, सटिप्पण संस्करण हूँ जिसके मूल लेखक का पता नहीं........"मैं मरता हूँ क्योंकि मेरा जीवन केवल उस मरण की भूमिका है, जिसके लाखों और करोड़ों आगामी जीवन निहित हैं।"

उपरोक्त पंक्तियों में मानव की व्याख्या कितनी सजीव, तर्कपूर्ण और मौलिक है। भावों के अनुकूल भाषा का उपयोग भी उसके महत्व पर चार चाँद ...ा देता है—

"Who shall dare to search through ... sad mage Hence thei...

—प्रेम के नशे में मदहोश शेखर को भी दो चीजें ...ी हैं 'कविता और शारदा।' वह अपने भीतर के ...व को पढ़ लेता है, अपने भीतर छिपे सत्य को ...र करके वह स्वीकार करता है कि—'वह शारदा ...यार करता है।'

रवि ठाकुर की 'गीताञ्जली' की इन पंक्तियों को ... बार-बार पढ़ता है I shall ever try to keep my body pure, knowing that thy living touch is upon all my limbs....इस क्रिया द्वारा शेखर 'पवित्र प्रेम' के दृढ़ निश्चय को प्रकट करता है।

वय सन्धि के दिनों में लाख अपने आपको संभाल... पर भी मनुष्य मन के उठते हुये उफान को नहीं संभाल सकता है। वन्य प्रदेशमें—'शेखर व शारदा' दोनों अकेले दूब पर लेटे हुए हैं और तभी गम्भीरता ... पार कर-शान्ति को नष्ट करता-मानव में वह उफान उठता है—

'किन्तु वह पर्याप्त नहीं है—नहीं है, बिलकुल नहीं—उसका रक्त माँगता है कुछ और उत्कट अनुभूति'

और तब वह शारदा के पीछे जाकर-झपटकर दोनों हाथों से उसकी आँख मूद लेता है वह चौंक कर चुप रहती है—शेखर और भी जोर से आँखे दबाता है—शारदा का शरीर तनता क्यूँ है—काँपता क्यूँ है? उपरोक्त अनुभव, अपने वयसन्धिकाल में, हर एक प्राणी करता है।

मनुष्य जब किसी से प्रेम करने लगता है तो चाहता है-मन ही मन निश्चय करता है कि वह केवल उस 'किसी से' ही प्रेम करेगा, किसी और स्त्री की कल्पना भी न करेगा।

इस मनोभाव का कारण है "प्रेम का विश्वास" प्रेम विश्वास पर निर्भर है. या कहदो विश्वास ही प्रेम है। विश्वास की गहराई प्रेम की गहराई है। विश्वास प्रेम का मापदण्ड है, इसीलिए कोई किसी से प्रेम करता है तो विश्वास पैदा करता है, निश्चय करता है। "वह अपने विश्वास को कभी धोखा न देगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रेम ! प्रेम ! प्रेम और पाप ! पर-सतीत्व Chastity है क्या चीज ?'

शेखर के मन में प्रश्न उठते हैं–प्रश्न का हल निकाल सकने पर वह उलझा जाता है। इसी उसे "What all married people sh know" शीर्षक पुस्तक पढ़ने को मिलती है। उसको पढ़ने के साथ ही प्रेम का अर्थ–माँ का छाती पीटना, पिता का क्रोध, जिन्नियाँ की नाचती नंगी टाँगें, अमृतसर की वैश्या, रसोइये का व्यंग अत्ती का अपनी पीठ को उसके सामने जान बूझकर नंगी कर छिपे-छिपे मुसकराना, गीतगोविन्द के पद, छिन्नमस्ता के नीचे पुरुष और प्रकृति का चित्र.........और हाँ .... शशि का आग्रह.........शारदा का कम्पन, उसकी समझ में आगये—जिन्हें वह जानना चाहता था—और वह समझता है—"इन सबकी गति एक ही ओर है एक ही घृणित पाप के कर्म की ओर—जिसके उसके माता-पिता ने किया है। शशि के माता-पिता ने किया है और सृष्टि के आरम्भ से प्रत्येक माता-पिता करते आये हैं। यही है प्यार और यही है वह जिसके लिए वह शारदा को चाहता है—यही है ज्ञान, यही है सत्य वास्तव, यह है यथार्थता यह है ज्ञान।"

शेखर के भीषण मानसिक सङ्घर्ष एवं संसार के गुप्त-रहस्य जिन्हें जानना चाहता था नग्नरूप में उसके सम्मुख आते हैं।

दुनियाँ से उकताया, ठुकराया प्रेमी-शेखर निराश था ही किन्तु अब वह सब कुछ भूल आदर्श की ओर आकर्षित होता है—और उसके जीवन में दार्शनिकता का प्रादुर्भाव होता है—शशि के यहाँ बचपन का स्नेह, दिन-प्रतिदिन के सहवास से निरन्तर बढ़ता जाता है। शशि भी आदर्श की गहराइयों में पहुँच चुकी है। शेखर शशि दोनों के आदर्शवादी होने के कारण वे दोनों अपने-अपने अन्तर में उठी मधुर-झँकार की अवहेलना कर देते हैं और इसी तरह "उनका प्रेम"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाम्पत्व प्रेम होने पर भी एक दूसरे पर प्रकट नहीं हो देते। परिस्थितियों और घटना-चक्र शशि और शेखर का जीवन भर का साथ कर देती हैं किन्तु ऐसी स्थिति में भी वह यथार्थ को सम्पूर्ण शक्ति से दबाये—'भा बहिन' के समान दिन गुजारते हैं।

कठिन संयम व नियमों से शेखर यौवन के उफान पर विजय पाना चाहता है किन्तु फिर भी राख में छिपी आग की तरह शेखर का शशि के प्रति वह प्यार जिसे वह समाप्त कर देना चाहता है। जिन्दा रहता है—मरता नहीं—मर-मर कर जी उठता है।"

और एक रोज प्रकृति की विजय होती है—शेखर घुटने टेक देता है। आवेश के वश हो उसके होंठ शशि के होंट पर जा टिकते हैं। जीवन-दीप के बुझने ... शशि के अन्तराल की गहराइयों में छिपा वह ... हा... र ही पड़ता है।

... कहा जा चुका है कि 'जीवनी' के ... हा... को तोड़-मरोड़ कर आदर्श के ढाँचे ... ढाल गया है। हरएक पात्र का अस्तित्व ...क, है—या अगर कहदे वह वास्तविक है, ...र के नहीं।

...जीवनी की मुख्य विशेषता है उसमें निहित मानव-जीवन का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। इसके बाद महत्व रखने वाली चीज है 'जीवनी' की मौलिक परिभाषायें, जो जीवन की जटिल विवादास्पद समस्याओं का सुन्दर विवेचन सी लगती है। उनकी 'शेखर एक जीवनी' में केवल मनोरञ्जन ही नहीं है, वह सब कुछ मिलेगा जो एक परिष्कृत मस्तिष्क चाहता है।

जीवनी के 'प्रवेश' का आरम्भ ही 'फाँसी' की ...राली परिभाषा से हुआ है और यह है—"फाँसी। ...स जीवन को उत्पन्न करने में हमारे संसार की ... शक्तियाँ, हमारे विकास, हमारे विज्ञान, हमारी ... पटुता द्वारा निर्मित सारी क्षमताएँ या औजार ...र्थ हैं, ... सञ्जीवन को छीन लेने में उसी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनाश करने में, ऐसी भोली हृदय हीनता फाँसी !"

फाँसी से आरम्भ होकर फाँसी से अन्त होने वाली इस परिभाषा से लेखक ने फाँसी का नग्न चित्रण करते हुए दो प्रयोजन सिद्ध किए हैं। एक तो जीवन का सही सही मूल्यांकन और दूसरा मानव की उसकी (जीवन की) अदूरदर्शितापूर्ण अवहेलना की प्रतीति।

जीवन की महानता इसी में है कि वह मानव के हाथ की बात नहीं। वह अभी तक उसकी बुद्धि की दौड़ के परे है। ऐसी स्थिति में जिस चीज का हम निर्माण नहीं कर सकते उसे तोड़ने का, उसके नाश करने का हमें कोई अधिकार नहीं—यह अधिकार तो, केवल निर्माण करने वाले को होता है।

मनुष्य क्या है ? इस विराट विश्व में मानव का अस्तित्व, उसकी विरासत क्या है ? 'मानव की भाषा' में जीवनी का सुन्दर उद्धरण देखि—

"मैं अपने पहले बीते हुए असंख्य युगों हूँ। एक निर्जीव धूम्रकेतु से इस पृथ्वी के उस पर अत्यन्त प्राथमिक जीवन की उद्भ उससे उत्पन्न अनेक विभिन्न जातियों के अण्डज, स्वेदज और पिण्डज जीव-जन्तुओं ता, तो वसीअत की छाप मुझ पर है। पिछले करोड़ों वर्ष से निरन्तर उन्नत होती हुई नृजाति के उच्चतम आदर्शों का केन्द्रीय भूत पुञ्ज भी मैं ही हूँ। इस दृष्टि से मैं जो कुछ हूँ, अपना कुछ नहीं हूँ, तथा कुछ नहीं हूँ। मैं किसी अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ का एक नया, संशोधित, संवर्धित और सटीक, सटिप्पण संस्करण हूँ जिसके मूल लेखक का पता नहीं........"मैं मरता हूँ क्योंकि मेरा जीवन केवल उस मरण की भूमिका है, जिसके लाखों और करोड़ों आगामी जीवन निहित हैं।"

उपरोक्त पंक्तियों में मानव की व्याख्या कितनी सजीव, तर्कपूर्ण और मौलिक है। भावों के अनुकूल भाषा का उपयोग भी उसके महत्व पर चार चाँद लगा देता है—

"Who shall dare to search through
t sad mage Hence thei

अंग का जहरीला फोड़ा सारे शरीर के लिए खतरनाक होता है ठीक उसी तरह समाज का यह निर्जीव अँग सम्पूर्ण समाज के लिये विनाश का कारण बन सकता है।

हमारे समाज में स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय है। विशेष कर रूढ़िवादी एवं अशिक्षित लोगों की दृष्टि में तो उनका मूल्य 'जूते की तर्ला' से बढ़ कर नहीं होता। 'जीवनी' में 'समाज में स्त्रियों की दशा' को लेकर कई सुन्दर विचार मिलेंगे।

'शशि'—बिना किसी कारण के, अपने पति से तिरस्कृत हो कर ठोकरें खाती है। उसके पति को अपने आपके पुरुषत्व का अभिमान है—अपनी पत्नी के जजबात उसकी भावनाएँ, अपने पुरुषत्व के मान के सन्तुलन में कोई महत्व नहीं रखते। उनकी दृष्टि में —इच्छाओं का बण्डल, और स्त्री, इच्छापूर्ति का सुन्दर साधन ! शशि की भारतीय नारी सहगई पीगई अपमान व ठोकरें.......

इस तरह हमारे समाज में 'नारी' के दयनीय जीवन का सजीव चित्रण तो, 'जीवनी' में है ही किन्तु उसके साथ साथ उन पर अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार भी हैं जो—शेखर और शशि के वक्तव्यों और परस्पर संवादों में, सन्मुख आते हैं।

शशि के 'नारी समस्या' पर दिये गये वक्तव्य में, आन्तरिक विद्रोह की तीव्रता लिए यह पंक्तियाँ कितनी सुन्दर है......"आदर्शों का अभिमान आसान है.... किन्तु अभिमान की कोई नीचे आदर्श का पानी क्या कभी बहता है कि बँधकर सड़ गया है ? गृहस्थ धर्म उभयमुखी होता है किन्तु आज के जीवन में पुरुष की ओर से देय कुछ भी नहीं है, मुख्य तो दूर, करुणा भी देय नहीं, और नारी केवल पुरुष के उपयोग का साधन रह गई है निरी सामग्री, जिसे वह जब चाहे जैसे चाहें, जहाँ चाहे, अपनी तुष्टि की आग में होमदे और इसकी कहीं अपील नहीं है, क्योंकि स्त्री कभी ... दे तो उत्तर स्पष्ट है कि और शादी की किसलिये ... यह आदर्शों नहीं, आदर्शों की समाधि है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मृत्यु के भटके हुए उदास और द्वार-द्वार पर जाते हैं और यौवन मुरझा जाता है, और जीवन घुल जाता है, और वेदना है। अनन्त''''एक नीरवता का [illegible] आता है जिनमें उन 'श्याम पंखों' की उड़ान का [illegible] सुन पड़ता है जिन्हें देखना सो जाना है''''हर कोई ऊँघता है और सो जाता है, हर व्यक्ति और हर वस्तु केवल एक तृप्त न होने वाली भूख, यह किसी चरम ध्येय की पागल माँग, यह मुक्ति का विवश आकर्षण, यह नहीं बस होना''''मृत्यु के पङ्ख उस पर से बीत जाते हैं लेकिन उसकी छाया उसे नहीं ग्रसती वैसा ही उद्दीप्त छोड़ जाती है।........"

भारतीय जीवन-दर्शन के विषय में 'जीवनी' का यह [illegible] बड़ा महत्वपूर्ण है।''''"हमारा भारतीय जीवन [illegible] अन्तर्मुखी और व्यक्तिवादी है जैसे हम [illegible]न यही मानते हैं कि जहाँ तक हो सके [illegible]ाज से अलग खींच लें और 'आत्मा[illegible] [illegible]व्यक्तिवाद का परिणाम है कि हम पा[illegible] [illegible]क्तिगत ही समझते हैं तभी तो हमारे [illegible]ोग साँपों को दूध पिलाना भी पुण्य समझते [illegible]ामाजिक दृष्टि से यह हिंसा है। दूसरी ओर पश्चिम का जीवन और दर्शन हमारे बिलकुल विपरीत है। वह बहिर्मुखी और समाजवादी है। उसका मान दण्ड भिन्न है। इसकी समझ में हमारा दृष्टिकोण आध्यात्मिक कलाबाजी और कायरता है। हम उन्हें निकृष्ट पदार्थवादी कह सकते हैं वह हमें थोथे आध्यात्मवादी। खासकर हम लोगों को अपने आदर्शों में सुधार की जरूरत है क्योंकि हम नीचे हैं"—इस प्रकार भारत के व्यक्तिवादी फिलासफी की हानि बतलाते हुए पश्चिमी जड़वाद से तुलनात्मक विवेचना की गई है। वास्तव में भारतीय व्यक्तिवादी जीवन दर्शन ने भारत के सामाजिक जीवन पर बुरा असर डाला है।

'जीवनी' के राजनैतिक व सामाजिक समस्याओं पर महत्वपूर्ण वाद विवाद विचार-विमर्श एवं वक्तव्य बड़े [illegible] हैं। लीजिए इसके कुछ सुन्दर उदाहरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक भयंकर जहर हमारे समाज में है जो जाति-भेद की घृणित नींव पर खड़ा हुआ है और जिसे 'जीवनी' में यों प्रस्तुत किया गया है—

"शेखर आत्मरक्षा के लिये अपने साथी के साथ इधर-उधर भागा फिर रहा था। एक बार ज्येष्ठ की कड़ाके की धूप में वह और उसका साथी बीस मील चलकर आये थे। प्यास बहुत लगी थी और पानी कहीं दीख नहीं पड़ता था। सामने से गुजरते हुए एक व्यक्ति को उन्होंने पानी का स्थान पूछा। स्थान बहुत दूर होने से शेखर ने यह सोच कर कि यह यहीं-कहीं आस-पास रहता होगा और वहाँ पर पानी भी होगा ही, उससे उन्हें अपने स्थान पर लेजाकर पानी पिलाने की प्रार्थना की। इस पर उसने कहा था—बाबूजी! हम छोटी जाति के हैं। शेखर के यह समझाने— कि वे जाति-पाँति नहीं मानते। वह पानी पि[illegible] तैयार नहीं हुआ। घटना के प्रभाव से 'जी[illegible] नायक विचार करता है और अपनी विचार[illegible] यों व्यक्त करता है—"हमें पानी नहीं मिल[illegible] आगे चल पड़े····पर यदि सर्वत्र ऐसा ही होता, तो भी कुछ बात थी। मैं जानता हूँ कि यह नहीं है, कई जगह ऐसी अवज्ञा, यह आत्मभिमान नहीं है। वहाँ है केवल दैन्य, सम्पूर्ण दासत्व। वहाँ माता-पिता अपने बच्चों को बोध कराते हैं, अवज्ञा के लिये नहीं, स्वीकृति के लिये, झुकना सिखाते हैं, अभिमान से नहीं, दासत्व भाव से। उनकी आत्माएँ इस सम्बन्ध में इस तरह जकड़ी गई है कि वे स्वयं नहीं जानते वे किस शृंखला में बँधे हैं और स्वयं उसकी कड़ियाँ पक्की करने में सहायक होते हैं।

उपरोक्त कथन की यथार्थता को टाला नहीं जा सकता। इन प्रतिबन्धों ने हमारे समाज को जितनी हानि पहुँचाई है वह सर्व-विदित है। समाज का वह शासित एवं पद-दलित अङ्ग निष्क्रिय निर्जीव हो जाता है। हीनता की संकीर्ण भावना (Feeling of Inferiorty Complex) उन्हें [illegible]मान रहित चलती फिरती लाश बना देता है [illegible] अंग का जहरीला फोड़ा सारे शरीर के लिए खतरनाक होता है ठीक उसी तरह समाज का यह निर्जीव अँग सम्पूर्ण समाज के लिये विनाश का कारण बन सकता है।

हमारे समाज में स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय है। विशेष कर रूढ़िवादी एवं अशिक्षित लोगों की दृष्टि में तो उनका मूल्य 'जूते की तली' से बढ़ कर नहीं होता। 'जीवनी' में 'समाज में स्त्रियों की दशा' को लेकर कई सुन्दर विचार मिलेंगे।

'शशि'—बिना किसी कारण के, अपने पति से तिरस्कृत हो कर ठोकरें खाती है। उसके पति को अपने आपके पुरुषत्व का अभिमान है—अपनी पत्नी के जजबात उसकी भावनाएँ, अपने पुरुषत्व के मान के सन्तुनल में कोई महत्व नहीं रखते। उनकी दृष्टि में [illegible]—इच्छाओं का बण्डल, और स्त्री, इच्छापूर्ति का [illegible]न्दर साधन! शशि की भारतीय नारी सहगई पीगई [illegible] अपमान व ठोकरें·······

इस तरह हमारे समाज में 'नारी' के दयनीय [illegible]वन का सजीव चित्रण तो, 'जीवनी' में है ही किन्तु [illegible]के साथ साथ उन पर अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार [illegible] हैं जो—शेखर और शशि के वक्तव्यों और परस्पर [illegible]वादों में, सन्मुख आते हैं।

शशि के 'नारी समस्या' पर दिये गये वक्तव्य में, [illegible]न्तरिक विद्रोह की तीव्रता लिए यह पंक्तियाँ कितनी [illegible]न्दर है·······"आदर्शों का अभिमान आसान है···· किन्तु अभिमान की कोई नीचे आदर्श का पानी क्या [illegible]भी बहता है कि बँधकर सड़ गया है? गृहस्थ धर्म [illegible]भयमुखी होता है किन्तु आज के जीवन में पुरुष की ओर से देय कुछ भी नहीं है, मुख्य तो दूर, करुणा भी देय नहीं, और नारी केवल पुरुष के उपयोग का साधन रह गई है निरी सामग्री, जिसे वह जब चाहे जैसे चाहे, जहाँ चाहे, अपनी तुष्टि की आग में होमदे और इसकी कहीं अपील नहीं है, क्योंकि स्त्री कभी [illegible]दे तो उत्तर स्पष्ट है कि और शादी की किसलिये [illegible] आदर्श की समाधि है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देह नहीं सदियों की सूखी त्वचा में निर्जीव हड्डियों का ढाँचा है।"

बापू की शिक्षाओं में घृणा का परित्याग मुख्य है उन्होंने इनका राजनीति में भी प्रयोग किया। अँग्रेजों के विरुद्ध भारत के राष्ट्रीय संग्राम का नेतृत्व करते हुए भी उनके अन्तर में अँग्रेजों से व्यक्तिगत कोई घृणा न थी। उनके कई अँग्रेज मित्र थे, जो उन्हें बहुत प्रिय थे। घृणा और शत्रुता की भावना पर आधारित राष्ट्रीयता भी घातक विष से कम नहीं होती। बापू के इस अमर सिद्धान्त का प्रतिपादन "जीवनी" में सुन्दरता से किया गया ह।

शेखर के पिता शेखर के क्रान्तिकारी विचारों से अवगत होने पर उसे अपने क्रान्तिकारी जीवन का परिचय देते हुए कहते हैं।—"अँग्रेजों के ... जितना विष-वमन हमने किया आज के ... क्या करेंगे पर अंत में....सब निष्फल....... पर परिस्थिति की लाचारी है कि विनाश ... तुम्हारा आग्रत हो जावेगा। मैंने देखा कि सब ... अन्ततः घृणा का प्रचार है। क्योंकि घृणा श... प्यार में वह नहीं है। वैसे ही जैसे विष में शक्ति ... लड़ाई लड़ी जाती है, प्रहार होते हैं, तो ... के सहारे और घृणा सचमुच विष है। वह दूसरों को भी मारता हैं अपने को भी नहीं छोड़ती और जब दूसरों को नहीं मार पाती तब अपने को इतना जल्दी ... लेता है कि"........!

अन्य भाषा के साहित्यकों की विचार धाराओं का प्रभाव "जीवनी" में यत्र तत्र दृष्टिगोचर होता ...। अँग्रेजी साहित्यकार श्री लारेंस और ह... (Lawrance & Haxlay) एवं विश्व कवि रवीन्द्र की विचार धाराओं के लिये जाने पर भी 'जीवनी' की अपनी विशेषताऐं कम नहीं हैं।

अगर हम यह कहें कि "श्री अज्ञेय" की शे... एक जीवनी ही हिन्दी साहित्य का ऐसा उपन्यास है जो जीवन वृत के ढङ्ग पर लिखे गये—अन्य ... उपन्यासों के समकक्ष रखा जा सकता है—कोई अतिशयोक्ति न होगी। किन्तु हमारा दुर्भाग्य कि हमारे कुछ साहित्यिक ही उसको ठीक रूप में न समझ पाते। मई मास के 'मनोरञ्जन' में श्री उद... शङ्कर भट्ट के नवीन उपन्यास 'वह जो मैंने दे... की समालोचना करते हुए श्री चिरंजीत लि... हैं—"यह उपन्यास जीवन वृत के ढङ्ग पर हिन्दी लिखे गये दो अन्य उपन्यासों—श्री अज्ञेय के शे... और श्री अश्क के 'गिरती दीवारें' से सर्वथा भिन्न है।

अज्ञेय के शेखर और अश्क के चेतन की ... भट्टजी का अजय न तो घोर अहंवादी है और न ही ... भाव ग्रस्त तथा आत्मरत ही है। वह अपने आप ... कम और दूसरों को अधिक देखता है—!' और ... ... श्री चिरंजीत ने आगे चलकर जीवनी पर अ... ... एवं बन्धन हीनता का आरोप भी लगाया है।...

... अगर समाज की प्रत्येक कुरीति का दिग... ... हुए उन्हें सुधारने का व्यवहारिक तरीका ... वाला श्री अज्ञेय—का शेखर "हीन-भाव ग्रस्त ... आत्मरत" कहलाता है तो यह बड़े आश्चर्य की ... है। जीवन का यथार्थ एवं सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चि... "जीवनी" का मुख्य उद्देश्य है। ऐसी स्थिति में मनुष्य के जीवन की कुछ स्वाभाविक एवं अवश्यम... स्थितियों का यथार्थ चित्रण "अश्लीलता एवं ब... हीनता" नहीं कहा जा सकता। "अश्लीलता ... बन्धन हीनता" का आरोप-एक ऐसे व्यक्ति के ... पर-जो अपने आदर्शों की वेदी पर-शशि के ... अपने प्रेम को सदा दबाये रक्खें, अपने सुखमय ... को झोंक देता है—बड़ा विचित्र सा लगता ... 'जीवनी' में यथार्थ के पीछे आदर्श की हत्या नहीं ... गई है शेखर न तो—घोर अहँवादी है और न ... भाव ग्रस्त तथा आत्मरत। वह तो एक सामान्य ... है और अगर ठीक-ठीक कहें तो—अन्य साम... प्राणियों की तरह "परिस्थितियों का पुतला", ... "घोर ईमानदार।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्त जी के काव्य पर एक दृष्टि

लेखिका—कुमारी कुसुमवती वर्मा

गुप्तजी वर्तमान हिन्दी-काव्य-जगत के सबसे लोकप्रिय कवि हैं; कविता की ज्योति समय, समाज और आत्मा के अन्तस में देखने का श्रेय गुप्तजी को ही प्राप्त है, गुप्तजी राष्ट्रीय-कवि हैं, उन्होंने अपने समय की प्रायः समस्त राष्ट्रीय आकांक्षाओं एवं चिन्ताओं का सूक्ष्मता पूर्वक मनन कर उन्हें काव्य-वद्ध किया, उनके काव्य की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीयता का शङ्खनाद सबसे ऊँचा है, उन्होंने काव्य द्वारा भारतवासियों को राष्ट्रीयता का दिव्य सन्देश दिया। सत्येन्द्रजी के शब्दों में—

'वह अमर कवि हैं, उनमें कल्पना है ... रसमयता है, एवं है सबके लिये अमर सन्देश ...'

उनके काव्य पर विचार करने से हमारे समक्ष गुप्तजी की चतुर्मुखी धाराओं में प्रवाहित होती हुई प्रवृत्ति आती हैं, (१) राष्ट्रीय-विचारधारा (२) नारी-भावना, (३) भक्ति-भावना। (४) प्रकृति चित्रण।

(१) राष्ट्रीय-विचारधाराः—गुप्तजी की राष्ट्रीय भावना प्रायः सर्वत्र मुखरित हुई है, किन्तु उनमें प्राचीनता के प्रति श्रद्धा है, विश्वास एवं तन्मयता है, अतः वह राष्ट्रीय भावनाओं के होते हुए भी प्राचीनता के मोह को नहीं छोड़ सके हैं जहाँ कहीं भी उनकी राष्ट्रीय भावनाएँ मुखरित हुई हैं वहाँ उनकी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति अनन्यता की भावना भी दब न सकी।

राष्ट्रीयता कवि का विशेष उद्देश्य रहा है किन्तु कवि संस्कृति शून्य राष्ट्रीयता का पोषक नहीं।

—सत्ये...

किन्तु गुप्तजी गांधीयुग के प्रभाव से ... सके हैं। यही कारण है कि उनके ... विशाल एवं विस्तृत हो गई हैं। प्राचीन आर्य सभ्यता एवं संस्कृति के उपासक होते हुए भी उनके भावों में सङ्कीर्णता नहीं आने पाई है—

> हिन्दू, मुसलमान दोनों अब
> छोड़ें वह विग्रह की नीति।
>
> —हिन्दू

> धर्म के नाम पर कलह भली नहीं
> जाओ डर छोड़ कर तुम अपनी अजान दो,
> और गा बजाकर उतारें हम अपनी आरती।
>
> —सिद्धराज

वर्तमान युगीन पारस्परिक साम्प्रदायिक विद्वेष देखकर कवि हृदय स्वभावतया उद्वेलित हो उठता है और भावातिरेक से उसकी यही भावना कविता का रूप धारण कर लेती है। इस दृष्टि से यदि हम उन्हें समाज-सुधारक भी कहें तो अनुपयुक्त न होगा। अतीतकालीन सभ्यता एवं संस्कृति का स्मरण कराने में कवि की लेखनी सदैव सचेष्ट रही है। प्राचीन संस्कृति का पुजारी प्राचीन आदर्शों को निर्भयतापूर्वक ठुकराया जाता देख किस प्रकार मौन रह सकता है। वर्तमान काल की दैन्यता एवं प्राचीन वैभव का स्मरण कर कवि के भावुक हृदय में एक क्रान्ति सी मच जाती है और वह अपनी स्मरण शक्ति द्वारा पुरातन वैभव में आर्य जाति का विश्वास दृढ़ करने के लिए प्रेरित हुआ है, इसी लक्ष्य को समक्ष रख गुप्तजी ने भारतीय महापुरुषों के चरित्र को ही अपना काव्य विषय बनाया—

> 'हम कौन थे, क्या हो गये, क्या होंगे अभी'
>
> —हिन्दू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्न नहीं सत्य, किन्तु गत वे दिवस हैं
बात यह विक्रमीय द्वादश शताब्दि की।
—सिद्धिराज

सन्मार्ग का अनुसरण करने में अनेकानेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है, अतः सम्भव है कि मनुष्य भय खाकर स्वकर्तव्य मार्ग से विचलित हो जावे। इसीलिये गुप्तजी उन्हें पुनः प्रोत्साहित करते हैं; हिन्दू जाति के उद्बोधनार्थ उन्होंने 'भारतभारती' में भी प्राचीन गौरव का रूप सामने रखा है—

हे ब्राह्मणो, फिर पूर्वजों के
तुल्य तुम ज्ञानी बनो
भूलो न अनुपम आत्मगौरव
धर्म के ध्यानी बनो
क्षत्रिय सुनो अब तो कुयश
की कालिमा को मेंटदो
निज देश को जीवन सहित
तन मन तथा धन भेंट दो ?

भारतीय नवयुवकों को जाग्रत करने की जो प्रेर[णा] गुप्तजी के काव्य में प्राप्त है वह अतुलनीय है। वर्तम[ान] दैन्य दशा को देख कवि की आत्मा स्वयं रो उठती [है] और भगवान से मनुष्य को मनुष्यत्व एवं शक्ति [दे]ने की प्रार्थना करने लगती है—

भारत तुम्हारा आज यह कैसा भयंकर वेष है?
है और सब निःशेष केवल नाम ही अवशेष है
हा राम! हा कृष्ण! हा हा नाथ हा रक्षा कर[ो]
'मनुजत्व दो हमको दयामय! दुख दुर्बलता रहे'

गुप्तजी की काव्य-रचना का उद्देश्य केवल स्वा[न्तः] सुखाय रचना करना नहीं प्रत्युत प्रमुख 'सोतों हुओं क[ो] जगाना, और जागे हुओं में स्फूर्ति एवं प्रेरणा का संचार करना है। उनका यह उद्देश्य उन्हीं की पंक्तियों से स्पष्ट होता है—

'केवल मनोरञ्जन न कवि का कर्म होना चाहिये,

गुप्तजी हिन्दी के प्रतिनिधि कवि हैं, उनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी लेखनी की अ...

शक्ति एवं भाषा पर अधिकार। इतनी सुन्दर एवं स[रल] भाषा में रचना करना तथा उसमें कहीं भी शिथिल[ता] न आने देना, गुप्तजी की अद्भुद् कवित्व-शक्ति औ[र] चमत्कारिक प्रतिभा का परिचायक है।

नारी-भावना:—गुप्तजी के विशाल हृदय [में] महत्व के प्रति अनन्यता एवं श्रद्धा है, काव्योपेक्षि[त] जनों के चरित्रों का सूक्ष्मता पूर्वक अध्ययन कर उ[न] पर उत्कृष्ट रचना कर इस प्रकार पाठकों के सम[क्ष] रखना कि पाठक की सहानुभूति स्वतः पात्र के प्र[ति] जाग्रत हो उठें; यही गुप्तजी का विशेष लक्ष्य रहा है।

कवि श्रेष्ठों ने भी जिसे उपेक्षित किया, गुप्तजी [ने] उसे प्रीतिपूर्वक अपनाया, सत्येन्द्रजी के शब्दों में:—

"गुरु-वाल्मीकि भी जिस उर्मिला के प्रति मौ[न] रहे, उसी के प्रति श्रद्धापूर्ण **अञ्जलि** लिये गुप्तजी हमा[रे] ... आते हैं।"

...न्होंने प्रायः समस्त पात्रों में ही नवीनता ला[ने] ...टा की है, कौशिल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति, प्रायः समस्त पात्रियों के चरित्र में तथा तुलसीदासजी के 'मानस' [की] सब पात्रिय के चरित्र से कुछ अधिक दिव्यता आगई है, वन जाते समय राम लक्ष्मण को वन जाने [से] रोकने पर सुमित्रा के कथित शब्द एक वास्तवि[क] क्षत्राणी के मर्यादानुकूल ही है:—

"निश्चय पर वितर्क अब क्यों,
जैसे रहीं रहेंगी हम, जैसे सहे सहेंगी हम"

उर्मिला के हृदय में पति पर शासन करने की भावना नहीं वरन् उसकी यदि कोई आकाँक्षा है तो पति की सेवा करने की; वह जानती है कि उसके व[न] साथ जाने से उसके पति की उनके आराध्य की उपासना में बाधा पडेगी अतः वह स्वयं परिस्थिति का अनुमान लगा लेती है—कितना आदर्श चरि[त्र] है उसका, उसमें कितना त्याग है, इसकी प्रायः समस्त कवि... अवहेलना की किन्तु गुप्तजी की प्रवृत्ति ... आकृष्ट हुई और साथ ही आचार्य...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी जी की प्रेरणा प्राप्त कर अनेकानेक अमूल्य पुस्तकों का श्रजन किया, गुप्तजी की उर्मिला के विषय में सत्येन्द्रजी के विचार युक्ति संगत ही प्रतीत होते हैं—

"उनकी उर्मिला का जितना ह रोना है, उतना ही गाना है जितनी ही अवरुद्ध है, उतनी ही मुक्त है जितनी छिपी है, उतनी ही खुली है, उसने वीर रमणीत्व की एक अलौकिक दीप्ति उपस्थित कर दी है।"

उर्मिला और यशोधरा दोनों ही उपेक्षितायें है। अतः गुप्तजी ने अधिकाधिक उनके चरित्रों का अध्ययन कर उस अमूल्य साहित्य का सृजन किया जो हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है, 'अपनी पुस्तक' 'हिन्दी-साहित्य की बीसवीं शताब्दि' में श्री नन्ददुलारे वाजपेयी जी, उनके विषय में जो कुछ लिखते हैं उसका भी उल्लेख करदेना अनुपयुक्त न होगा।

"'साकेत' गुप्तजी का महाकाव्य था, उसे मा... काव्य की दृष्टि से देखना ही सङ्गत था, जो शता... में दो, एक लिखे जाते हैं गुप्तजी और ... मानस' आदि के महाकवियों में क्या अन्त... तुलना में ही गुप्तजी का गौरव व्यञ्जित है।" ...

भारतीय नारियों का आदर्श प्रायः शुष्क एवं नीरस सा क्षीण पड़ने लगा था, गुप्तजी ने अपनी समस्त नारी पात्रियों को सच्चे भारतीय आदर्श के साँचे में ढाल उनके चरित्रों में दिव्यता लाने का प्रयत्न किया है। उनकी उर्मिला तथा यशोधरा दोनों ही पति-विमुक्ता हैं; दोनों के ही अन्तर में एक असह्य वेदना की अग्नि धधक रही है किन्तु इस पर भी जिस धैर्य पूर्वक वे परिस्थितियों का सामना करती हैं, सराहनीय है। गुप्त जी के पात्रों की यह विशेषता है कि वे दुख झेलते हैं किन्तु हँसते हँसते, उनकी उर्मिला तथा यशोधरा सूरदासजी की गोपियों के सदृश उन्माद ग्रस्त स्त्रियों की भांति नहीं घूमतीं, न वृक्षों को ही उपेक्षित करती हैं—

'मधुवन—तुम कत रहत रहे
सूर, वियोग स्यामसुन्दर के ठाड़े क्यों न जरे

पूर्णमासी का चन्द्रमा देख उनका शरीर तप्त ... हो जाता है—जैसा कि हम गोपियों में ... —

"अब निसि देखत डर लागै
प्राची दिसि, देखि पूरन ससि है आयो तन तातें

वास्तव में वर्णन की दृष्टि से यह पंक्तियाँ सुन्दर हो सकती हैं परन्तु जैसा कि आचार्य शुक्लजी ने अपनी पुस्तक 'सूरदास' में लिखा है उससे कहीं ही कोई असहमत होगा—

"यदि परिस्थिति का विचार करें, तो वर्णन असङ्गत सा प्रतीत होगा, गोपियों के वियोग में वह गम्भीरता नहीं जो सीता के वियोग में है, उनका वियोग तो खालीं बैठे का काम सा दिखाई पड़ता है।"

गुप्तजी ने प्राचीन कथाओं को नवीन रूप देने का प्रयत्न किया है, यों तो उन्होंने अपने समस्त चरित्रों में कुछ न कुछ अवश्य ही नवीनता लादी है—उन्होंने कैकेयी के हृदय में उठती हुई प्रायश्चित की भावनाओं को पाठकों के समक्ष रखा है—

"युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी,
रघुकुल में भी थी—एक अभागी रानी।
निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा,
धिक्कार, उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।'

इतनी सफलता पूर्वक गुप्तजी ने उसकी भावनाओं का स्पष्टीकरण किया है कि पाठक गण स्वयं ही उसे क्षमा करे बिना नहीं रह सकते, इसके अतिरिक्त स्वयं राम के ही मुख से उसकी विशेषता कहलाई है—

"पागल सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई।
धन्य-धन्य वह एक लाल की माई।
जिसने भ भ ाई।

(साकेत)

गुप्तजी ने यह दिखाने का सफल प्रयास किया है कि एक भारतीय नारी परिस्थिति पड़ने पर क्या कुछ कर सकती है, पति का सुख ही उसका सुख और पति का दुख ही उसका दुख है, पति की मङ्गल साधना ही उसका आदर्श है यही हम यशोधरा के चरित्र में भी पाते हैं—वह पति के वियोग से दुखी नहीं क्योंकि उसका सुख है उसके भविष्यत की आशा के सफलीभूत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हान की प्रतीक्षा में, जिसके लिये उसके पति ने अपने अभीष्ट मार्ग का अनुसरण किया है, वह जानती है कि उनका मार्ग उनको संसार से बहुत ऊँचा उठा देने वाला है, अतः यह उसके लिये गौरवास्पद विषय है—यद्यपि उसके एक शब्द में करुणा है पर उसका हृदय स्वर्णकमलवत् है। जिस प्रकार सोने की कान्ति अग्नि में दग्ध होने पर अधिक दीप्त होती है, उसी प्रकार वेदना की अग्नि में दग्ध होते होते उसकी भावनायें और निखरती जाती है, उसे विश्वास है कि यदि उसका पति उससे कह कर भी जाता तो वह उन्हें रोकती नहीं, वरन् स्वयं प्रेरित करती, उसमें क्षत्रिय-कन्योचित भाव जाग्रत होते हैं:—

'स्वयं सुसज्जित करके रण में
प्रियतम को प्राणों के पण में
हमी भेज देती हैं रण में
क्षात्र धर्म के नाते
सखि वे मुझ से कह कर जाते।"

—(यशोधरा)

फिर भी उसकी प्राकृतिक नारी-हृदय की कोमल भावनायें प्रस्फुटित हो ही जाती हैं:—

"हुआ न यह भी भाग्य अभागा
जिसने अपनाया था, त्यागा
रहे स्मरण ही आते
'सखि वे मुझ से कह कर जाते'

—(यशोधरा)

वह पति की मङ्गल साधना में ही जीवन की सार्थकता समझती है, उसे यह भी इच्छा नहीं कि उसके पति उसे याद करते रहें, क्योंकि उसे भय है कि इससे वह अपने पथ से विचलित हो जावेंगे उसे विश्वास है कि यदि वह गये हैं तो कभी पुनः उसे उनके दर्शन अवश्य ही प्राप्त होंगे—

जाँय सिद्धि पावें वे सुख से
दुखी नहीं इस जन के दुखसे

× × ×

गये लौट भी वे आवेंगे
कुछ अपूर्व, अनुपम लावेंगे
रोते प्राण उन्हें पावेगें
पर क्या गाते गाते

—(यशोधरा)

गुप्तजी की सम्पूर्ण नारी भावना तो चार पंक्तियों में भी निहित हो गई है, नारी ममता दया वात्सल्य एवं करुणा की साकार मूर्ति है—

"अबला जीवन, हाय तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।"

भक्ति भावना:—गुप्तजी यद्यपि स्वयं वैष्णव हैं तथापि उन्हें अन्य धर्मों से भी जो अनुकरणीय सिद्धान्त मिलते हैं, उन्हें सहर्ष स्वीकृत कर लेते हैं—तुलसीदासजी की भाँति रामचन्द्रजी उनके भी अनन्य हैं, कहीं-कहीं पर तो उनकी भावना और तुलसीदासजी की भक्ति [भा]वना में बहुत कुछ सादृश्य मिलता है—

"धनुर्वाण या वेणु लो
श्याम रूप के सङ्ग
मुझ पर चढ़ने से रहा
राम दूसरा रङ्ग।"

वह मूर्त्ति-पूजा के विरोधी नहीं प्रतीत होते, उनक[ा वि]श्वास है कि यदि मनुष्य, पाषाण में भी भगवान [की] छाया का विश्वास रखे, तो वह निश्चय ही उसके [लि]ये उपास्य है—

[कि]न्तु भगवान में तो श्रद्धा-भक्ति ही भली
[ना]स्तिकों के हेतु लोष्ट मात्र है जो
[हो]ती है भगवान् को भावुकों की ही भावना
म[ा]नये तो शङ्कर है, कङ्कर है अन्यथा

(सिद्धराज)

वाच[ो] प्रथम सर्वत्र की 'जय जानकी-जीवन कहो
फिर [पू]र्वजों के शील की शिक्षा-तरंगों में वहो।'

(जयद्रथ वध)

प्रकृति-चित्रण:—प्रकृति वर्णन में भी गुप्तजी प्रायः पी[छे] नहीं रहे हैं, जिस सफलता पूवक उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति के मनोरम दृश्यों का वर्णन किया है, वह कुछ ही कवियों द्वारा संभव है, वर्णन पढ़ते ही पढ़ते समस्त चित्र मानों आखों के समक्ष आ जाता है, प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार, प्रसाद गुण केवल सिद्धहस्त कवियों में मिल सकता है, इस कसौटी पर कसने से भी गुप्तजी पूर्णतया खरे उतरे हैं, उनके प्रकृति वर्णन में प्रसाद गुण प्रायः सर्वत्र प्रचुर मात्रा में देख पड़ता है—

"सन्ध्या हो रही है नीलनभ में शरद के
शुभ्र घन तुल्य हरे वन में शिविर के"

(सिद्धराज)

"चारु-चन्द्र की चञ्चल किरण
खेल रही हैं जल-थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है
अवनि और आम्बर तल में"

—(पञ्चवटी)

"सूर्य का यद्यपि नहीं आना हुआ
किन्तु समझो रात्रि का जाना हुआ

(साकेत)

इन कतिपय उदाहरणार्थ दिये हुए स्थलों से ही गुप्तजी के वर्णन वैचित्र्य एवं बुद्धि कुशाग्रता का अनुमान लगाया जा सकता है, सन्ध्या एवं प्रभात होते हुए प्रकृति की नाना दशाओं का इतना स्वाभाविक एवं सरल भाषा में वर्णन कुछ ही कवियों में सुलभ होता है। शाब्दिक चित्र खीचने में गुप्तजी पूर्णतया सफल हुए हैं।

गुप्तजी के मौलिक तथा अनुवादित ग्रन्थों के संख्या अनेक है किन्तु उनमें से 'भारत-भारती' ने सबसे अधिक उनकी कीर्ति को विस्तृत कर दिया। 'भारत-भारती' में प्रायः उनकी राष्ट्रीय भावनाओं की एक सुन्दर झाँकी दर्शनीय है। उसकी प्रत्येक पंक्ति में कवि की आत्मा झाँकती देख पड़ती है, देश-प्रेम की भावनाओं का उनके हृदय में स्रोत सा प्रवाहित होता प्रतीत होता है 'भारत-भारती' को प्रारम्भ करते समय उनकी अभीप्सित आकांक्षा पूर्ण हुई हैं।

"मानस, भवन में आर्य जन-
जिसकी उतारें आरती,
भगवान, भारतवर्ष में
गूँजे हमारी भारती।"

'झङ्कार' की अधिकांश कवितायें रहस्यवादात्मक हैं, किन्तु उनकी रहस्यवादी कवितायें भी इतने सुन्दर रूपमें प्रस्फुटित हुई हैं कि रहस्यवादी कवियों ने भी उनकी श्रेष्ठता स्वीकार की है।

गुप्तजी मानव-हृदय के कुशल पारखी हैं सूक्ष्माति सूक्ष्म भावों तक उनकी पहुँच है, वर्तमान हिन्दी साहित्य का मस्तक ऊँचा करने का गौरव गुप्तजी को ही प्राप्त है।

(शेष पृष्ठ २२५ का शेषांश)

भाव दुर्बोध ही रह जाते हैं। उन्हें समझना और भी कठिन हो जाता है यदि हृदय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों के साथ उनकी तुलना की जाती है।

मनोवैज्ञानिक मानव विशेष के वाह्य आकृति के अवलोकन मात्र से उसकी मानसिक स्थिति का पता सुगमतया बता देता है। इसी भाँति सहृदय महादेवी जी के पुस्तकों के नाम से ही महादेवीजी के प्रकृति-प्रेम का परिचय पा जाते हैं। प्रकृति का वह चक्र जो रात-दिन में अपने स्थान पर वापस आता है उसके प्रमुख स्थल नीहार, रश्मि, नीरजा, सन्ध्या एवं यामिनी हैं। इन्हीं स्थलों के आधार पर अपनी पुस्तकों का नामकरण कर इन्होंने प्रकृति प्रेम का परिचय दे दिया है। जड़वाद के इस चाकचिक्य में कवि की प्रकृति तन्मयता वस्तुतः विशेष महत्व रखती है।' भले ही उनकी कविता से साधारण जन समुदाय लाभान्वित न हो इस क्षेत्र में आपका स्थान अप्रतिभ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध परवर्त्ती हिन्दी साहित्य

(ले०—श्री राम कृष्ण मिश्र)

परिवर्तित संसार के साथ मनुष्य की भावनाओं और विचारों में भी परिवर्तन होता है। युग विशेष की छाप मनुष्य के जीवन पर पड़ती है, जिससे मनुष्य के भावों और विचारों में विचित्रता आती है। यही भाव वैचित्र्य साहित्य में रस की सृष्टि करता है, जिससे साहित्य की स्निग्ध प्रस्फुटित धारा में एक वेग आता है और उस अक्षुण धारा में एक नये प्रकार के आलोड़न का सूत्र-पात्र हो जाता है। यदि मनुष्य की विचार धारा में परिवर्तन तथा इस प्रकार के नये आलोड़न का सूत्रपात न हो तो, उसके साहित्य की प्राणरस धारा, शुष्क हो जाती है और उसकी प्रगति रुक जाती है। इसीलिए परिवर्तन ही जीवन कहा गया है।

गत महायुद्ध के फलस्वरूप देश की राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थिति में जैसा परिवर्तन हुआ है उससे कहीं गहरा और स्थायी परिवर्तन मनुष्य के भाव जगत में हुआ है। इस विस्फोटक की गहरी छाप हमारे साहित्य पर पड़ी, जिसके परिणाम स्वरूप पाठक अवसन्न रह जाता है क्योंकि आज लेखक की पुकार किन्हीं खण्डहरों में लीन हो गई। वस्तुतः ऐसे लेखक के साहित्य में उस शक्ति का अभाव है जिसको पाकर मानव अवरोध को पी जाय और शिवत्व की स्निग्ध धारा पृथ्वीतल पर बहादे। आज इस अवरोध के कारण से ही लेखक अपनी संकुचित परिधि में चक्कर काटता है और वह इस बात की दुहाई देने लग गया है कि वह जो कुछ लिखता है, वह किसी बाहरी दबाव के कारण नहीं लिखता, वरन् स्वयं अपनी इच्छा से लिखता है। ये चीख की प्रतिध्वनियाँ आज भारतीय लेखक ही नहीं निकालता इस चीख से समस्त विश्व पीड़ित है, प्रताड़ित है और है संतप्त। इसका कारण ढूँढ़ने के लिए हमें अधिक गहरे में जाने की आवश्यकता नहीं। आज हमारी चेतना, बुद्धि, और मन पर बन्धन हैं। आज सामाजिक चेतना को उद्बुद्ध करने वाले सभी साधनों पर उन लोगों का अधिकार है, जो हमारी बुद्धि को गुलामी की जञ्जीरों में जकड़ कर हमें स्वाधीन करने का दम्भ भरते हैं। क्योंकि यदि ऐसा वे करें तो उनका स्वार्थ क्षणभर के लिए टिक नहीं सकता। आज हमें इस दानव से छुटकारा पाना है तो हम क्षय के कीटाणुओं द्वारा खाए शरीर की निर्बल हो जायँगी।

आज का लेखक धरती पर रहता है समाज के सुख दुःख में हिस्सा लेता है। वह भूख और गरीबी को झेलता है, इसी जगत की मिट्टी से उपजा हुआ अन्न खाता है और इसी मिट्टी पर अपना जीवन पालन करता है। यहीं के उन्मुक्त वायुमण्डल में वह खेला कूदा है। इसलिए आज का लेखक समाज के अस्तित्व को मान कर आगे बढ़ता है। वह समाज के विरुद्ध एक भी आचरण नहीं कर सकता। आज का लेखक उन लोगों का जीवन चित्रित करता है जिन्होंने कभी भाग्य को अपने साथ नहीं देखा। जो पगपग पर ठोकर खाते हैं, पददलित होते हैं। जिनके मस्तिष्क पर गरीबी और पीड़ा का साइनबोर्ड है, जो एक बार आगे बढ़कर पीछे नहीं हटते। जिन्हें अपनी भुजाओं पर अधिक विश्वास है। यह सब होते हुए भी जो सब कुछ प्रति अनास्था और अविश्वास का जयघोष करते । इसके लिए हम लेखकों को दोषी नहीं ठहरा रहते। आज समाज की स्थिति ही ऐसा करने के लिए बाध्य करती है। मनुष्य की जीवन धारा ने ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना प्रवाह इस ओर बदल लिया है तो फिर लेखक क्या करे ?

ज्यों-ज्यों समाज में विशृङ्खलता आती गई, त्यों-त्यों जीवन की जटिलतायें बढ़ती गईं। परिणाम स्वरूप हम देखते हैं, कि आज मनुष्य अपने गृह के सुख के अन्दर प्रसन्न नहीं रह सकता। आज उसे इतना अवकाश ही कहाँ कि वह घर में बैठा रहे। आज उसकी जगह क्षणिक सुख साधन और फिर उसे उसी चक्की में पिसना पड़ता है जिसमें समाज अब तक पिसता आया है। क्षणभर के विश्राम से मनुष्य को अपना जीवन यापन करना पड़ता है। आज हमारे उपन्यास चन्द्रकांता संतति की तरह २४-२४ भागों में नहीं लिखे जाते और न उसके पात्र प्रसाद के मङ्गल की तरह समाज के भय से, समाजसुधार और धर्म प्रचार लिए सङ्घविशेष की स्थापना करते हैं क्योंकि ... जीवन में इतना अवकाश ही कहाँ कि मनुष्य यह ... कुछ देखने को प्रस्तुत हो। मनुष्य के विद्रोह ... भावना आज सस्ते रोमांस तथा छायावाद में नह... प्रकट होती है।

आज के साहित्य में भावों धर्म और नीति का ... कोई स्थान ही नहीं रहा है। इनका मापदण्ड इतना बदल गया है कि हम इनके असली रूप को पहचान नहीं सकते। आज का युवक अपने माता पिता की, गुरु और अध्यापक की आज्ञा इसलिए मानने को तैय्यार नहीं कि वे वेद वाक्य हैं अथवा अपने से बुज़ु... के आदेश हैं, बल्कि वह आज उनको मानने के लि... तभी तैयार है जबकि उसका प्रत्यक्षीकरण उसने अप... आँखों से देख लिया हो। आज के शासन के न्याय और कानून तभी तक मान्य हैं जब तक वे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप नहीं करते हैं। आज के पण्डि... और विद्वानों के कथन तभी तक मान्य हैं जब तक ... तर्क पर स्थित हों। यदि तर्क से वे गिरे हुए हैं ... आज के लेखक को किसी भी हालत में मान्य नह...। आज 'कला कला के लिए' का स्थान '...ला जीवन के लिए' ने ले लिया है। वह क... सुन्दरम्' में सिर्फ सत्यं को स्वीकर करता है क्योंकि उसका विश्वास है कि यदि हम सत्यं का दर्शन न करायेंगे, तो हमारा समाज दूषित हो जायगा और मानव एक दूसरे का शोषण करने लगेंगे। सम्भव है एक दिन ऐसा आजावे कि मानवता पर दो आँसू बहाने वाले भी इस पृथ्वी पर शेष नहीं रहें। अस्तु, आज का लेखक सत्यं के पहलू को हृदयंगम करता है क्योंकि वह न्याय एवं तर्क पर स्थित है। 'प्रत्यक्षं किमाणोति' का सिद्धांत लागू हो जाता है। इस तरह से हम देखते हैं कि आज का लेखक पुरानी नीति एवं धर्म को छोड़ चुका क्योंकि वे तर्क पर नहीं ठहर सकते। जब तक वे तर्क पर नहीं ठहर सकते तब तक उन्हें अपने अस्तित्व का कोई अधिकार नहीं। अस्तु।

आज के साहित्य में—आधुनिक साहित्य में एक प्रकार की नास्तिकता स्पष्ट दिखाई दे रही है। इन नास्तिकों का ईश्वर में तो विश्वास है ही नहीं, धर्म को भी इन्होंने खूटी पर रख दिया है। धीरे-धीरे आज इनका पक्ष प्रबल होता जा रहा है, जिसके कारण समाज भौतिक सत्ता को स्वीकार करता जा रहा है। अ... के ... दल को देख कर भले ही लोगों के हृदय सशंकित हों, मगर वे कुछ कर नहीं सकते। कारण पहले ही बताया जा चुका है कि तर्क एवं युक्ति पर इनके विचारों की भीति खड़ी है। आज इसके कारण आत्म शक्ति (Spritual power) पर तो लोगों का विश्वास ही उठ गया दिखता है। आज की इस सामाजिक व्यवस्था में तो हमारे नैतिक मानदण्डों का इतना पतन हुआ है कि जिसका उदाहरण हमारे इतिहास में खोजने से शायद ही मिले। आज नैतिकता एक दुर्गुण हो गया है। लेखक एक सामाजिक प्राणी है और उसकी बुद्धि इस भयङ्कर स्थिति से इतनी कुंठित हो गयी है कि आज उसका अमोघ हथियार लेखन ही उसे व्यर्थ सा प्रतीत हो रहा है। न मालूम आज उसका आत्मविश्वास कहाँ चला ...या ? वही शक्ति जो उसे अधिकाधिक संघर्ष के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरणा दे रही थी आज उसे कुंठित एवं अवसन्न कर रही है। भला हमारी विषमताओं से बढ़ कर कौनसी प्रेरणा हो सकती है, जिससे हम अपनी काव्य शक्ति को सृजन में प्रयोग न कर सकें? गहराई में जाने पर मालूम पड़ेगा कि आर्थिक शोषण, साम्प्रदायिक विषैलापन, वैयक्तिक वैशम्य और अन्ततः हमारा नैतिक पतन ही हमें इतना निर्बल बना रहा है कि हम पलायन करने की चेष्टा करते हैं। अभाव अनाचार और जीवन की न्यूनतम सुविधायें ही हमें जीवन से पलायन करने के लिए वाध्य करती हैं। और स्पष्टतः वे ही हमारी आत्मिक पराजय की मूल भूत वृत्तियाँ हैं। इनमें समाज की बिखरी हुई चेतना संगठित परिष्कृत और उदात्त बनाने की शक्ति नहीं क्योंकि उसके पीछे अनुभूति कम हैं बौद्धिक विलास अथवा क्रांति अथवा ऐसे ही आवेग मूलक विचारों का चिन्तन अधिक।

आज का साहित्यकार अपनी कृतियों में जहाँ नायक और नायिकाओं को, जहाँ धर्म, नीति, न्याय आदि के प्राचीर को उखाड़ फेंकने को स्वतंत्र है, वहाँ वह उसके ये पात्र जीवन के किसी नवीन तत्वको प्रतिपादित करते नहीं दिखाई देते हैं। इसका कारण आज की जटिल समस्याओं के कारण समयाभाव ही है। आज हमारे पास इतना समय कहाँ कि हम जीवन की किसी फिलासफी के पहलू को पाठकों के सम्मुख रखें तथा उस तथाकथित आदर्श को प्रमाणित करें। आज के किसी भी उपन्यास को पढ़ जाइये, उसमें आप पात्रों को आगे ही बढ़ते पायेंगे, जबतक कि वे किसी निश्चित स्थान को प्राप्त न करलें। इस लिए आज के उपन्यास के पात्र आपके ऊपर कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ते। वे केवल वर्ग विशेष के प्रतिनिधि स्वरूप उपस्थित होते हैं। उनको पढ़ कर आपके मन में यही भावना उत्पन्न होगी कि क्या हुआ, इस तरह के समाज में न जाने कितने और हैं। प्रमाण के लिए उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द की 'प्रतिज्ञा' की पूर्णा यद्यपि विधवाश्रम के घरोंदे को मन्दिर कल्पना करके शांति पा गई पर 'प्रतिज्ञा' का पाठक आश्वस्त नहीं होता। वह पुस्तक समाप्त करके यही अनुभव करता रहा कि अभी तो इस देश में लाखों पूर्णायें पड़ी हुई हैं उनका क्या होगा? यह नहीं कि हम पूर्णा को आदर्शमान कर देश की अन्य विधवाओं को पूर्णा बनाने की सोचने लग जायँ।

इस तरह से वर्तमान साहित्य में हम एक प्रकार की चीख, वेदना, निराशा, अश्रद्धा, अविश्वास, विशृङ्खलता एवं अस्तव्यस्तता पाते हैं। आज हमारा देश एक संक्रांति काल से गुजर रहा है। साहित्य के पुरातन आदर्श, समाज की मर्यादा, तथा समाज की शृङ्खला आदि सबकी स्थिति डावाँडोल है। वस्तुतः आधुनिक साहित्य का दर्शन स्पष्ट नहीं हो रहा है। वह अ[illegible]कार से निहित है। आज हम आधुनिक साहित्य में [illegible] चीख, वेदना, निराशा, अश्रद्धा एवं अविश्वास, अ[illegible]ा देखते हैं, उसको विदीर्ण करने के लिए किसी म[illegible]तिभा की आवश्यकता है। इस प्रतिभा की प्र[illegible]करण की अरुण आभा के प्रकाश से ये तमाम प्र[illegible]तियाँ लुप्त हो जायगी तथा मानव सभ्यता की [illegible]पना नूतन सृष्टि के साथ होगी।

हिन्दी साहित्य के इन वृत्तियों से आच्छादित [illegible]गन में 'स्वर्ण किरण' झिलमिला रही है, जो इस [illegible]धकार को दूर कर हमें उस नूतन सृष्टि से परिचित [illegible]रायेगी जो अभी इन स्थूल चक्षुओं से ओझल है। [illegible]सकी आभा को पा इस पृथ्वी की धूल "स्वर्णधूल" में चमक उठेगी। आज हम अपने चमकीले भविष्य के लि[illegible] अपनी आँख झिलमिलाते प्रकाश की तरफ लगाये हुए हैं और ऐसा भान होता है कि यह प्रकाश हमें संदेश दे रहा है हमारे प्रशस्त और उज्ज्वल भविष्य का। और :—

लो, वह आई विश्वोदय पर
स्वर्ण-कलश वक्षोजों पर धर!
अर्ध-विवृत कर ज्योति द्वार-पट
ज्वलित रश्मियों की अञ्जलि भर!......

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति और महादेवी

(ले०—श्री शिवप्रसाद लोहानी, साहित्य-रत्न)

प्रकृति मानव की चिर-सङ्गिनी है। अनन्त काल से मानव प्राकृतिक उपकरणों से सुख प्राप्त करता आ रहा है। वह इतनी उदार मना है कि मानव उसे जैसा समझता है वह वैसी ही बन जाती है। सौन्दर्य प्रेमी विकसित चन्द्र को हँसता देख उससे स्वर्गीय सुख लाभ करता है किन्तु वही चन्द्र दुःख से जलती सीता के लिए है जलने वाली—'पावक मय शशि स्रवत न आगीं'।

किसी दुःखी के दुःख में दुःखी बन कर ही हम उसे संतोष लाभ करा सकते हैं। यदि दुःख का आश्रय छोड़ कर सुख के माध्यम से उसे सान्त्वना देने का प्रयास करेंगे तो वह उपहासास्पद ही होगा। प्रकृति हमें दुःख में दुःखी बन कर सान्त्वना देती है और सुख में आनन्द भी। उसके साहचर्य्य से हम अपना जीवन सरस बना सकते हैं। महादेवीजी कहती हैं—'रोगी की व्याधि विशेष के लिए शस्त्र विशेष उपयोगी हो सकता है, परन्तु उसके सिरहाने किसी सहृदय द्वारा रखा हुआ अधखुला गुलाब का फूल भी कम उपयोगी नहीं।'

वेद उपनिषद काल से लेकर आज तक प्रकृति के गीत गाये जाते रहे हैं क्योंकि वह अनन्त, नित्य एवं अखंड है। देशकाल का अवरोध इसमें नहीं। सुदूर अमेरिका हो या भारत, नास्तिक हो या आस्तिक, शेक्सपियर हो या कालिदास सर्वत्र प्रकृति की महत्ता परिव्याप्त है। किसी भी भाषा के उत्कृष्ट साहित्य में प्रकृति का वर्णन होना निश्चित है। कविवर कालिदास ने तो प्रकृति के एक अंश को लेकर मेघदूत नामक सरस काव्य की रचना ही कर डाली है जिसकी भाव-माधुरी पर लोग लट्टू हैं, और ल[illegible]—त[illegible] तक जब तक इस सृष्टि में प्राण और प्रकृति का अस्तित्व है।

वर्ग सङ्घर्ष के इस युग ने प्रकृति के विशाल कोष को हमसे छीन लिया है। आज हम अबाध गति से स्थूल की ओर बढ़ रहे हैं इतना कि हमारी दृष्टि और हमारा मन वहाँ भी नहीं रमता जहाँ मार्ग में प्रकृति अपनी निधि खोल कर सौन्दर्य का बाजार लगाये है। हम उसके स्थूलतम स्वरूप को अधिकाधिक प्राप्त करने के लिए व्यग्र हैं किन्तु उसकी सूक्ष्मता उसका सौन्दर्य और उसकी सहृदयता को फूटी आँखों देखना पसन्द नहीं करते। आज का कवि भी स्थूल की ओर इतनी तेजी से बढ़ रहा है कि काव्य का आवश्यक अंश रागात्मकता भी संदिग्ध होती जा रही है। किन्तु हमारा मन कोयला नहीं खा सकता, हमारी भावना यन्त्रों की खड़खड़ाहट में नहीं रम सकती।

जीवन की गाड़ी ठीक से नहीं चल सकती यदि उसमें स्थूल और सूक्ष्म, वाह्य और अन्तर दोनों पहिये समान न हों। यही कारण है कि आज भौतिक उपकरणों की प्रचुरता और वाह्य सुख के पर्याप्त साधन होने पर भी अन्तर की रागात्मक वृत्तियाँ तब भी नहीं खुलतीं जब हम अपने समक्ष असंख्य मानवों का आर्त्त क्रन्दन सुनते हैं। यदि प्रकृति की वाणी को स्रवण करने का अभ्यास रहता होता तो सम्भवतः ऐसी स्थिति नहीं होती। प्रकृति की आवश्यकता सामान्य जगत से अधिक भाव-जगत में है, क्योंकि हृदय की सूक्ष्म भावनाओं का भार भाषा सम्यक रूपेण सँभाल नहीं सकती। भावनाओं के क्रियाकलापों का सच्चा स्वरूप प्रकृति के क्रियाकलाप ही अभिव्यक्त कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं। प्रकृति का स्वरूप सनातन और अपरिवर्तनीय होने के कारण भाव की स्पष्ट प्रतिमूर्ति तब तक अनुभूत होती रहेगी जब तक प्रकृति विद्यमान है। सामयिक परिस्थितियों को भी यदि प्रकृति के सहारे परिव्यक्त किया जाय तो प्रकृति की अनश्वरता के कारण वे स्थायित्व पा सकेंगी अर्थात् उसी भाव की अनुभूति पाठक कभी भी कर सकेगा। पंत के प्रगतिवादी कवि ने जहाँ सामयिक शब्द चित्रों को प्रकृति के माध्यम से वर्णन करने का प्रयास किया है वहाँ हृदय को वृत्ति खूब रमती है। महादेवीजी के काव्य में तो प्रकृति का चोली दामन का सा सम्बन्ध है। सम्भवतः इनकी एक भी ऐसी कविता नहीं जिसमें प्रकृति का किञ्चिन्मात्र भी आश्रय न लिया गया हो। ऊषा की लालिमा की सूक्ष्मतम किरण कवियित्री के हृदय में आनन्द का स्रोत उमड़ा देती है मानो गीतों की निर्झरिणी बह रही हो—

चुभते ही तेरा अरुण बान
बहते कन कन से फूट फूट
मधु के निर्झर से सजल गान।

शाश्वत एवं नित्य भावनाओं की अभिव्यञ्जना महादेवीजी के काव्य में पायी जाती है। उन अविनाशी एवं चिरस्थायी भावनाओं के सम्यक् प्रत्यक्षीकरण के निमित्त वैसी ही उदात्त और सनातन स्वरूपों की अपेक्षा है जिनसे पाठक उन भावनाओं के मर्म को हृदयंगम कर सकें। मुझ (आत्मा) से तू (परमात्मा) बहुत बड़ा है इतना कह देने मात्र से हम किसी को उसकी (परमात्मा की) महानता की प्रतीति नहीं करा सकते। उसे यदि हम इस भाँति कहें—

तुम हो विधु के बिम्ब और मैं
मुग्धा रश्मि अजान

तथा—

तुम अनन्त जलराशि उर्म्मि मैं
चञ्चल सी अवदात

तो उसकी महानता की अनुभूति हम करा सकते हैं। साहित्य में गणित की तरह निश्चित और एक ही उत्तर तो हो नहीं सकता। साहित्य का सम्बन्ध तो हृदय से है, हृदय का माप तो हृदय ही कर सकता है, अन्तर ही अन्तर को पहचान सकता है। चूँकि प्रकृति हमारे अन्तर के कण कण में अनादि काल से व्याप्त है इससे उसके विभिन्न कार्यकलाप में हम अपना ही स्पन्दन देख सकते हैं। यदि हम कहें कि इन दिनों हमें बहुत कार्य हैं तो हमारे भाव की सम्यक् अभिव्यञ्जना नहीं होगी किन्तु यदि कहें कि इन दिनों हमारे यहाँ कार्यों का पहाड़ है तो भाव अधिक मर्मस्पर्शी होगा। महादेवीजी ने ऐसे स्थानों पर प्रकृति के सहारे इष्ट भाव को अभिव्यञ्जित करने की सफल चेष्टा की है—

ज्वाल पारावार सी है
शृङ्खला पतवार सी है
बिखरती उर की तरी में
आज तो हर साँस बनती
शतशिला की भार-सी है

ज्वाल को समुद्र सा कह कर अपनी व्यथा को तदनुरूप परिव्यक्त करने की सफल चेष्टा की गयी है।

प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों पर स्वतन्त्र रूप से कुछ कविताएँ महादेवीजी ने की हैं। उनके सूक्ष्म क्रियाकम्पनों के शब्द-चित्र बड़े मुखर एवं तलस्पर्शी हैं। प्रांजल और स्पष्ट भाषा में बड़ी खूबी के साथ उनके वर्णन किए गये हैं—

कहाँ से आये बादल काले
कजरारे मतवाले
शूल भरा जग धूल भरा नभ
झुलसी देख दिशायें निष्प्रभ
सागर में क्या सो न सके यह
करुणा के रखवाले

हिन्दी काव्य-साहित्य के प्राचीन और अर्वाचीन कवियों की कविताओं में भी प्रकृति के विविध स्वरूपों ... महादेवीजी की इन रचनाओं में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभूति का प्राचुर्य है। पूर्व के भावों को ही अपनी भाषा और छन्द में रखने का प्रयास नहीं किया। जिस रूपमें स्वानुभूति हुई उसी रूप में उसको वर्णित किया है—

सजल है कितना सवेरा
गहन तम में जो कथा
इसकी न भूला
अश्रु उस नभ के चढ़ा
शिर फूल फूला
झूम झुक झुक कर
रहा हर श्वास तेरा

महादेवी जी के काव्य में प्रकृति का मानवीकरण भी पाया जाता है। उनके शब्द चित्रों में मानवी कार्यों के भव्य वर्णन हैं—

नव मेघों को रोता था
जब चातक का बालक पन
इन आँखों में करुणा के
घिर घिर आते थे सावन

प्रकृति में मानवीकरण का इतना व्यापक रूप इन्होंने चित्रित किया है कि स्वयँ को प्रकृति से भिन्न नहीं मानते। प्रकृति की भाव भङ्गिमा को अपनी भाव-भङ्गिमा समझते हैं। उपालम्भ में कहती हैं—

दिया क्यों जीवन का वरदान ?
इसमें है झंझा का शैशव
अनुरञ्जित कलियों का वैभव
मलय पवन इसमें भर जाता
मृदु लहरों के गान

किन्तु ऐसे पद विरल हैं। लौकिक संसार की कल्पना आते ही भिन्नता का उदय होता है और कवि 'दुविधा' में पड़ जाता है। एक ओर प्रकृति का अनन्त सौन्दर्य और जीवन-रस तथा दूसरी ओर मानव का दुःखी और अस्थिर जीवन। कवि के अन्तर में द्वन्द्व चलने लगता है। वह शान्त हृदय से इन पर विचार करता है। वह कहता है—

देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को
तेरी चिर यौवन—सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ

कवि सामाजिक प्राणी भी तो है। संसार की अस्तव्यस्तता, असंख्य मानवों का करुणा क्रन्दन और बेवशी उसकी आँखों के सामने नाचती है, इधर प्रकृति की सुकोमल लतिकाएँ मस्त झूम रही हैं—

कलियों की घन जालो में
छिपती देखूँ लतिकायें
या दुर्दिन के हाथों में
लज्जा की करुणा देखूँ

और भी—

तुझ में अम्लान हँसी है
इसमें अजस्त्र आँसू जल
तेरा वैभव देखूँ या
जीवन का क्रन्दन देखूँ

यह सब होने पर भी कवि प्रकृति को नहीं भूलता। उसके सौन्दर्य एवं शक्ति से कवि इतना प्रभावित है कि प्रकृति के अञ्चल को छोड़ना उसके लिए असह्य है। प्रकृति उसे और भी विराट एवं चिन्मय चिदानन्द का व्यक्त स्वरूप दीख पड़ती है और सूर्य, चन्द्र, आलोक, तिमिर, झंझा प्रभृति उस चिन्मय के आ एवं भ्रूकटाक्ष—

रूपसि तेरा नर्तन सुन्दर
आलोक तिमिर सित असित जाल
सागर गर्जन रुनझुन मंजीर
उड़ता झंझा में अलक जाल
चपला विभ्रम स्मित इन्द्र धनुष
......आदि

महादेवीजी ने निस्सन्देह कहीं कहीं प्रकृति की इतनी सूक्ष्म क्रिया कम्पनों का वर्णन किया है कि उन्हें समझने के लिए पर्याप्त माथापच्ची करने पर भी

(शेष पृष्ठ २१६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरठ सम्मेलन के सभापति सेठ गोविंद दासजी के

भाषण के कुछ अंश

संस्कृत की व्यापकता—

संस्कृत की शब्द-सरिता भारतवर्ष की सभी साहित्यिक भाषाओं का पोषण करती है। उसकी उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं, अभिव्यञ्जनाओं और सूक्तियों से भारत की प्रत्येक भाषा के ग्रन्थ ओत-प्रोत हैं। वही भारत की सांस्कृतिक एकता की प्रतीक है। उसके शब्द प्रत्येक भाषा में इतने प्राचुर्य से प्रयुक्त हुए हैं कि कभी-कभी दो भारतीय भाषाओं में भेद करना कठिन हो जाता है।

साहित्य के दो विभाग—

साहित्य के निर्माण की ओर यदि हम दृष्टिपात करें और साहित्य शब्द को व्यापक से व्यापक अर्थ में भी लें तो साहित्य-निर्माण को दो भागों में बाँटा जा सकता है—एक शास्त्रीय साहित्य जिसके अन्तर्गत वैज्ञानिक साहित्य में विज्ञान, दर्शन, इतिहास, ज्योतिष आदि शास्त्रों का समावेश होता है। हमारे यहाँ इस प्रकार के साहित्य की भयंकर कमी है, यहाँ तक कि हमारा कोई प्रामाणिक इतिहास तक आज उपलब्ध नहीं है। विदेशी विद्वानों ने हमारे प्राचीन इतिहास की कुछ खोज अवश्य की है। मौर्यवंश से लेकर गुप्त-वंश तक हमारे प्राचीन इतिहास के अनेक अंश सामने आये हैं, परन्तु अब तक इस काल का भी कोई शृङ्खलाबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है। विक्रमीय संवत् जिस विक्रमादित्य के नाम से चलता है उसका भी हमें पता नहीं है। फिर विदेशियों ने एक ओर यदि हमारे इतिहास का पता लगाने का प्रयत्न कर हम पर उपकार किया है तो दूसरी ओर हमारे ही इतिहास में स्थान-स्थान पर हमें छोटा दिखाने का यत्न कर हमारा अपकार भी कम नहीं किया।

राष्ट्रभाषा—

अंग्रेजी इस देश की राष्ट्रभाषा हो नहीं सकती। हिन्दुस्तानी कोई भाषा है ही नहीं। उसका न कोई व्याकरण है, न साहित्य। झगड़ा हिन्दुस्तानी नाम का नहीं है, झगड़ा है हिन्दुस्तानी नाम में जो अर्थ निहित होगया है उसका। हिन्दुस्तानी का अर्थ वह भाषा है जिसमें इतने प्रतिशत शब्द संस्कृत, इतने फारसी, इतने [अ]रबी के हों, फिर वह नागरी और अरबी लिपियों में [लिख]ी जाने वाली भाषा है। कुछ महानुभावों का मत [है कि] भाषा का नाम हिन्दुस्तानी रखा जाय, पर वह [उसकी] ही लिपि नागरी में लिखी जाय। किन्तु भाषा केवल [लि]खने की न होकर बोलने की भी वस्तु है। यदि [न]ागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दुस्तानी राष्ट्र-[भ]ाषा घोषित हो तो भी उसमें कितने प्रतिशत शब्द [कि]केस भाषा के रहेंगे, यह प्रश्न उठेगा और रेडियो आदि में जहाँ भाषा लिखी न जाकर केवल बोली जाती है, सदा एक झगड़ा मचा रहेगा, जैसा आज मचा है।

जो लोग हिन्दुस्तानी का विरोध करते हैं, वे किसी [सा]म्प्रदायिक भावना से ऐसा करते हैं, यह मैं नहीं [म]ानता, वरन् मैं तो यह कहता हूँ कि हिन्दुस्तानी का समर्थन करने वाले उसका समर्थन साम्प्रदायिकता की भावना से करते हैं। जो देश में एक संस्कृति चाहते हैं वे भला दो लिपियों में लिखी जाने वाली भाषा का समर्थन कैसे करेंगे?

रा[ष्ट्र]भाषा का भावी स्वरूप—

भाषा के नाम और लिपि के प्रश्न के साथ ही हमारी राष्ट्रभाषा कैसी हो, यह प्रश्न हमारे सामने है। हमारी भाषा ऐसी होनी चाहिए जो सरल से सरल हो। [...] से सह[ज] [...] लोग समझ सकें। परन्तु जहाँ एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर भाषा की सरलता की ओर हमारा ध्यान रहना चाहिए वहीं दूसरी ओर हमें इस बात पर भी ध्यान रखना होगा कि हमारी भाषा में उपयुक्त शब्दों का प्रयोग हो, जो सूक्ष्म अर्थ का भी यथातथ्य बोध करा सकें। वैज्ञानिक और शास्त्रीय ग्रन्थों अथवा लेखों की भाषा बहुत सरल नहीं हो सकती। ललित-साहित्य में भी कहानी, उपन्यास, नाटक की भाषा जितनी सरल हो सकती है उतनी कविता की नहीं। यदि वैज्ञानिक और शास्त्रीय भाषा को हम सरल बनाने का प्रयत्न करेंगे तो भाषा में यथातथ्य बोध की शक्ति नहीं आ सकेगी। और यदि कविता में भी अत्यधिक सरलता लायी जायगी तो भाषासौष्ठव नष्ट हो जायगा। हमारी भाषा में जो शब्द बाहरी भाषाओं के आ गये हैं उसका बहिष्कार हमें नहीं करना है। वरन् हमें तो अन्य भाषाओं के और शब्द भी ग्रहण करने के लिए तैयार रहना चाहिए। आज जो अंग्रेजी भाषा इतनी उन्नत है उसका प्रधान कारण यही है कि उसने अपने शब्द-कोश को अन्य भाषाओं के शब्दों से समृद्ध किया है। हाल ही में आयर्लण्ड में गैलिक भाषा का किस प्रकार उत्थान हुआ आप इसका अवलोकन करें। परन्तु इसी के साथ अपनी भाषा के उद्गम और गठन को देखते हुए हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि हम नये शब्दों के निर्माण में प्रधानतया संस्कृत से ही सहायता ले सकते हैं। फिर तामिल-के सदृश एक दो प्रान्तीय भाषाओं को छोड़ शेष हमारी सभी प्रान्तीय भाषाओं की जननी संस्कृत ही है। संस्कृत से शब्द लेने पर हम अन्य प्रान्तीय भाषाओं के भी अधिक समीप रह सकेंगे।

नाटक और रङ्गमञ्च—

साहित्य के ललित-विभाग में इन वर्षों में यथेष्ट सृजन हुआ है। ललित साहित्य में नाटक का सर्वश्रेष्ठ स्थान है, यह सारे संसार के साहित्यज्ञ मानते हैं। हिन्दी में भारतेन्दु के पश्चात् बहुत समय तक नाटकों की बड़ी कमी रही; परन्तु इधर कुछ लेखकों ने नाटक लिखे हैं। नाटक-रचना तब तक पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकती जब तक रङ्गमञ्च की उचित व्यवस्था न हो। अच्छे रङ्गमञ्च हमारे निर्माण कार्य में अत्यधिक सहायता दे सकते हैं। इस सम्बन्ध में रूस का उदाहरण हमारे सामने है। इस दृष्टि से यह युग 'सिनेमा युग' कहा जाता है, परन्तु अमेरिका में जहाँ 'हाली-वुड' के महान सिनेमा स्टूडिओ हैं वहाँ भी नाटक का पुनरुत्थान हो रहा है। चित्र प्रत्यक्ष का स्थान सदा के लिए नहीं ले सकते। नाटक की अपनी 'विशेषता' है जो सिनेमा को प्राप्त नहीं हो सकती। मेरे मतानुसार हिन्दी में रङ्गमञ्च एक राष्ट्रीय आवश्यकता है।

ग्राम-साहित्य—

साहित्य-सृजन की ओर दृष्टिपात करते समय हम एक और बात को भी विस्मृत नहीं कर सकते। स्वतन्त्रता के पश्चात् हमें केवल बालकों को ही नहीं, अपने देश के प्रौढ़ों को भी शिक्षित करना है। इस देश की ८० प्रतिशत जनता ग्रामों में निवास करती है। अभी तक जिस साहित्य का सृजन और प्रकाशन हुआ है उसमें से अधिकांश साहित्य शहराती साहित्य है। हमें अब सबसे अधिक ध्यान गाँवों की ओर देना है।

विदेशी भाषाओं को प्रतिदान—

हमने विदेशी भाषाओं से हिन्दी में बहुत कुछ लिया है, पर अब वह समय आ गया है जब हम अपनी भाषा से भी विदेशों को कुछ दें। संसार में किसी देश की प्रतिष्ठा उसके विचारक तथा साहित्यिक ही बढ़ाते हैं। मैंने 'नोबल-पुरस्कार' विजेता कई साहित्यिकों की कृतियाँ पढ़ी और बिना किसी संकोच के कह सकता हूँ कि इस देश का साहित्य यदि संसार के सामने जाता तो हमारे अनेक साहित्य-स्रष्टा 'नोबल-पुरस्कार' प्राप्त करते। हमें अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य के निर्माण के लिए लक्ष्य और रचना-विधान दोनों में ही व्यापकता एवं उदारता की आवश्यकता है। हमारी परम्परा उदारता की परम्परा रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

ब्रजभाषा साहित्य का नायिका-भेद—ले०—प्रभुदयाल मीतल। प्रकाशक—अग्रवाल प्रेस, मथुरा। पृष्ठ संख्या ४६०, मूल्य ६)

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण 'ब्रजभाषा साहित्य में 'नायिका-निरूपण' के नाम से सन् १६४४ में प्रकाशित हुआ था। अब इसका परिवर्द्धित एवं परिष्कृत नवीन संस्करण हमारे सामने है। नायिका-भेद के विषय को अनेक वर्षों तक हिन्दी के विद्वान् उपेक्षा एवं निन्दा की भावना से देखते रहे थे। उनका विश्वास था कि इस विषय की कविता चरित्रहीन कवियों ने अपने विलासी आश्रयदाताओं के लिए लिखी है जो वासना-पूर्ण कृति है। इसी कारण इस विषय के वैज्ञानिक एवं आलोचनात्मक अध्ययन की ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया था। पर हर्ष का विषय है कि मीतलजी ने ऐसे (तथाकथित) गर्हित विषय पर लेखनी उठाने का साहस किया। डा० रामप्रसाद त्रिपाठी द्वारा लिखित नवीन संस्करण की विद्वत्तापूर्ण भूमिका से इस सम्बन्ध में फैली हुई समस्त भ्रान्तियों का पूर्ण निराकरण हो जाना चाहिए।

सच तो यह है कि मनुष्य के जीवन में शृङ्गार की भावना अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इसके परिणाम-स्वरूप हम देखते हैं कि केवल हिन्दी के ही नहीं, संसार की समस्त भाषाओं के साहित्य में शृङ्गार-सम्बन्धी रचना परिमाण से सर्वाधिक है, तथा राजा-महाराजाओं के लिये लिखे गए काव्य में ही नहीं, जन-साधारण के लिए लिखे गए लोक-गीतों में भी शृङ्गार की धारा ही अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हो रही है। भारतवर्ष के शृङ्गार में इतनी विशेषता और रही है कि यहाँ के मनीषी लेखकों ने परम पुरुष एवं प्रकृति पर क्रमशः नायक एवं नायिका का आरोप करके अपनी शृङ्गार भावना को धर्म और दर्शन के रङ्ग में रँग दिया है तथा मनोविज्ञान के आधार पर नायक-नायिकाओं का वैज्ञानिक विभाजन एवं विवेचन करके अपनी अध्ययन-प्रियता का परिचय दिया है। हिन्दी के नायिका भेद सम्बन्धी साहित्य की एक-दूसरी विशेषता यह है कि कला की दृष्टि से वह हिन्दी का सर्वोन्नत साहित्य है और उसे हिन्दी से अलग करने पर हमारी पूँजी आधी भी नहीं बचती। अतएव इस साहित्य वाटिका के अन्तस्थल में बहती हुई भक्ति-भावना की निर्मल पयस्विनी का अस्तित्व किसी को स्वीकृत न भी हो तो उसकी विशुद्ध कलात्मक एवं मनोवैज्ञानिकता ही इसे असाधारण गौरव एवं महत्व देने के लिए पर्याप्त है।

प्रस्तुत पुस्तक लेखक के अनेक वर्षों के परिश्रम-पूर्ण अध्ययन का परिणाम है। यह दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड के दस परिच्छेदों में लेखक ने नायिका भेद का रस से सम्बन्ध, ब्रज साहित्य की परम्परा, नायिका भेद का संस्कृत एवं हिन्दी में विकास, नायिका के विभेद एवं उनके क्रम के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विवेचन तथा ब्रज भाषा के नायिका भेद का ... आदि नायिका भेद से सम्बन्धित अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयों का सरल, सुबोध एवं तर्कात्मक शैली में विद्वता-पूर्ण परिचय दिया है। नायिकाओं के क्रम विवेचन एवं नायका भेद के उदाहरणार्थ काव्य सौष्ठव दिखलाने में लेखक की मौलिकता विशेष रूप से प्रस्फुटित हुई है। दूसरे खण्ड में संकलित नायिका भेद की कविताओं से उसकी रसज्ञता, सहृदयता एवं भावुकता का परिचय मिलता है।

इस खण्ड में उदाहरणों के संग्रह के अतिरिक्त प्रत्येक प्रकार की नायिका की परिभाषा तथा नायिका के प्रत्येक भेद एवं विभाजन के सम्बन्ध में अन्य प्रमुख लेखकों का मत भी यथावसर बड़ी सावधानी के साथ दिया गया है। इस प्रकार के निर्देश से पुस्तक की उपयोगिता एक संकेत-ग्रन्थ के रूप में बढ़ गई है, और नायिका भेद के जटिल विषय को मत-मतान्तर सहित एक दृष्टि में ही सरलता के साथ समझ सकना सुलभ हो गया है। पुस्तक के अन्त में अनेक उपयोगी परिशिष्ट एवं अनुक्रमणिकाएँ हैं। इनमें नायिका भेदों के नामों की एक और अनुक्रमणिका जोड़ा जाना कुछ आवश्यक सा प्रतीत होता है।

मीतलजी विश्व-विद्यालय की सीमा के बाहर कार्य करने वाले हिन्दी के अध्ययनशील लेखक हैं। उन्होंने विशेष रूप से ब्रजभाषा साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया है। हमें विश्वास है कि अभी वे अनेक विद्वत्ता पूर्ण ग्रन्थों की रचना के द्वारा हमारे साहित्य-भण्डार को पूर्ण बनायेंगे। —डा० छैलबिहारी गुप्त 'राकेश'

कहानी

पत्थर—लेखक—मुक्त, सम्पादक—कुमार, प्रकाशक—सुलभ प्रकाशन मण्डल, इन्दौर। पृष्ठ संख्या १६६, मूल्य १।।।)

यह एक भाव-प्रधान कहानियों का संग्रह है जिसकी बहुत सी कहानियाँ गद्य काव्य और कहानी के बीच की चीज हैं। गद्यकाव्य की सी लघुता इसकी अधिकांश कहानियों में है। इस संग्रह के सम्पादक भी लेखक के रूप में ही आते हैं। प्रत्येक कहानी के पूर्व में कुछ काव्यात्मक टिप्पणी हैं या सुन्दर उद्धरण हैं। कहीं-कहीं सम्पादक ने कहानी के अन्त में भी अपने विचार प्रकट किये हैं। कहानी-संग्रह का नामकरण उसके भीतर आने वाले पत्थर और यात्री के वार्तालाप से हुआ है। पत्थर मार्ग में रोड़ा अवश्य है किन्तु उन्हीं के लिए जो ऊपर सिर उठा कर चलते हैं। वह मनुष्य से अधिक सहनशील और उपयोगी है।

इसकी कुछ कहानियाँ जैसे स्वयंसेविका एक समस्या भी पैदा करती है—क्या नारी दूसरों के सुधार के लिए कुछ काल के वास्ते अपने सतीत्व का भी बलिदान कर सकती है? लेखक इस बलिदान के पक्ष में प्रतीत होता है। कुछ कहानियों में भाई बहन के प्रेम की भी जो रक्षाबन्धन और भैया दौज के टीके में व्यक्त होता है, झाँकी दिखाई गई है। ऐसी कहानियों में भी सामाजिक बन्धनों के कारण मिलन के प्रभाव की कसक दिखाई गई है। इन कहानियों में घटना की अपेक्षा भावुकता और कवित्व अधिक है।

—गुलाबराय एम० ए०

समर्पण—लेखक—श्री नारायणप्रसाद शुक्ल, प्रकाशक—सुलभ प्रकाशन मंडल, इन्दौर। पृष्ठ संख्या ८८, मूल्य सवा रुपया।

'समर्पण' में लेखक की १५ कहानियाँ संग्रहीत हैं। नारी का चित्रण, स्वस्थ प्रेम, तथा यथार्थवाद, इन तीन भित्तियों पर कहानियों की पृष्ठभूमि आधारित है। जिस स्थान पर लेखक, पाठक का साथ छोड़ कर दर्शन या भावना-क्षेत्र में जा पहुँचा है, वहाँ कहानियों में 'औत्सुक्य की भावना' का बिल्कुल अन्त हो गया है तथा पाठक के सम्मुख एक प्रश्न वाचक चिह्न आ जाता है।

संग्रह की 'जीवित रहूँ क्या' तथा 'निरुपमा' कहानी से जहाँ हमारे हृदय में रूढ़िगत समाज के प्रति विद्रोह उत्पन्न होता है, वहीं ग्रेन-कन्ट्रोल' 'काठ का घोड़ा' तथा 'मिस्त्री' कहानी द्वारा हमारे हृदय में यह भावना उठती है कि ऐसी व्यवस्था को हम एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दम उलट दें, जहाँ इतना वैषम्य है। कहानियों में भाषा वातावरण के अनुकूल और प्रवाहपूर्ण है। छपाई सफाई उत्तम है।

पद्मचन्द गर्ग, बी० ए०, साहित्य-रत्न

स्वर्ग का अतिथि—लेखक—श्री श्यामसुन्दर व्यास, प्रकाशक—दीनानाथ बुक डिपो, ६४, खजूरी बाजार, इन्दौर, पृष्ठ संख्या ५० (डिमाई साइज) मूल्य दस आना।

उक्त पुस्तक में लेखक की ११ रचनायें हैं, जिन्हें लेखक ने कहानियों की संज्ञा दी है। परन्तु उनमें से कुछ रचनाओं को तो 'रेखाचित्र' ही कहा जा सकता है। अधिकाँश रचनायें किसी ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित हैं।

विगत ३-४ माह से इधर जो 'बापू स्मृति साहित्य' निकल रहा है उसमें 'स्वर्ग का अतिथि' अपने ढंग का अनूठा संग्रह है। 'दो महल' और 'राजघाट के फूल' संग्रह की सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ हैं। पुस्तक पठनीय है।

—पद्मचन्द गर्ग, बी० ए०, साहित्य-रत्न

उपन्यास

उस पार—लेखक—श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी'। प्रकाशक—कल्याण साहित्य मन्दिर, प्रयाग। पृष्ठ संख्या ३४०, मूल्य ४॥)

प्रस्तुत उपन्यास एक ऐसे व्यथित-हृदय की जीवनगाथा है जिसका लेखक के ही शब्दों में "दुःस्वप्न की तरह बचपन बीता हो, गर्द भरी हुई आँधी की तरह जिसकी जवानी बीती हो और अतीत की भयावनी स्मृतियों के वन में जिसके बुढ़ापे का आरम्भ हुआ हो।" दुर्भाग्य से हमारे वर्तमान समाज में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं, पर उनके उत्थान-पतन मय जीवन का सच्चा एवं मार्मिक चित्र श्री 'वियोगी' जैसे लेखक का कवि-हृदय ही खींच सकता है। पुस्तक प्रायः आदि से अंत तक करुण रस से ओत-प्रोत है। एक आदर्श भारतीय पत्नी किस प्रकार पति-प्रेम से वंचित रह कर गृहस्थी की दुर्दान्त यातनाओं में अपना जीवन खपा देती है, उच्छृङ्खल तथा विलासी जीवन किस भाँति मानवता को तिलाञ्जलि देने में नहीं हिचकता, मातृहीन बच्चे के जीवन के अमूल्य वर्ष किस प्रकार नीरसता एवं दैन्य-जनित कटुता में व्यतीत होते रहते हैं। एक भोली-भाली नारी जिसका हृदय सच्चे प्रेम के लिए आजन्म तरसता रहे पर जिसे अन्त में प्राप्त हो प्रेम का अभिशाप; उस विकासोन्मुख युवक का चित्रण जिसे दरिद्रता, पंगु तथा पतित तक बना देती है और उन लक्षाधीशों का वर्णन जिन्हें धन मदांध कर देता है—ये सभी इस उपन्यास में प्रदर्शित किए गये हैं। भारतीय समाज की विषमताओं का तथा उन विषमताओं से छुटकारा पाने के लिए भावुक हृदय में उठे हुए अन्तर्द्वन्द्व का मार्मिक चित्रण किया गया है।

पुस्तक एक सफल सामाजिक उपन्यास है। 'वियोगी' जी की सरल किन्तु प्रभावपूर्ण वर्णन-शैली पाठक के ऊपर अमिट छाप छोड़ती है। आशा है प्रस्तुत उपन्यास का हिन्दी-समाज आदर करेगा।

—कृष्णदत्त वाजपेयी, एम० ए०

राजनीति

कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास—ले०—पं० किशोरीदास वाजपेयी, प्रकाशक—हिमालय एजेन्सी, कनखल। पृष्ठ संख्या ६२, मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक को लिखकर पं० किशोरीदास वाजपेयी ने राजनीति साहित्य में नया कदम रखा है। शायद इसीलिए पुस्तक के आरम्भ में हमें कोई मौलिकता प्रतीत नहीं होती वरन् जल्दी-जल्दी में तथ्यों का ठीक वर्णन भी नहीं हो सका है। शायद पुस्तक कांग्रेस के जयपुर अधिवेशन के प्रचारार्थ हड़बड़ी में छपी है इसीलिए हैडिङ्ग तक अशुद्ध छप गये हैं। पृष्ठ २७ पर 'रावी-तट पर स्वातन्त्र्य घोष' में 'पर' के स्थान पर 'हर' छपा है। पुस्तक की दो ही विशेषता हैं (१) इसमें श्रद्धेय पं० पुरुषोत्तमदास टण्डन का दृष्टिकोण बड़े उचित ढङ्ग से स्पष्ट किया गया है और विगत राष्ट्रपति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुनाव में डा० पट्टाभि द्वारा लिए गये रुख की वाजपेयीजी ने व्यङ्गपूर्ण चुटकी ली है। (२) इस पुस्तक में कांग्रेस का नवम्बर, ४८ तक का विवरण आ गया है और साथ ही कांग्रेस हाई कमाण्ड की भी अच्छी खबर ली गई है। प्रस्तुत पुस्तक को इतिहास नहीं कहना चाहिए। वह वाजपेयीजी का अपने दृष्टिकोण से लिखा गया विवरण है। लेखक ने पुस्तक को स्वयं 'घी का बना हुआ टेढ़ा लड्डू' कहा है। क्योंकि आजकल शुद्ध घी मिलता नहीं है और वाजपेयीजी गाय भैंसें रखते नहीं होंगे इसीलिए उनकी बात ठीक कही जा सकती है। —रामनारायण अग्रवाल

चेतना-प्रेरणा-संवात—लेखक—नरेन जाना, प्रकाशक—प्रफुल्लकुमार गुप्त, ६, खुदीराय बोस रोड, कलकत्ता। पृष्ठ संख्या १२६, मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक लेखक के विचारात्मक राजनीतिक निबन्धों का संग्रह है। लेखक ने इसमें महात्मा गांधी, मार्क्सवाद, समाजवादी पार्टी का इतिहास आदि कई विविध विषयों पर सुन्दर निबन्ध संगृहीत किये हैं जो उसके सुलझे हुए दृष्टिकोण के परिचायक हैं। पुस्तक में तथ्य निरूपण के साथ ही अपने दृष्टिकोण को व्यक्त करने की भावना प्रधान है। इस पुस्तक को लिखने का उद्देश्य लेखक के निम्न शब्दों से प्रकट होता है; वह चाहता है कि "चरमतम दुर्दिन आज हमें समस्त आत्मवंचना तथा प्रतारणा के दिवा स्वप्न से जाग्रत करदें" इसीलिये पुस्तक का सर्व प्रथम लेख है 'वर्तमान स्वाधीनता की नैतिक दुर्वलता' पुस्तक मे भारतीय नागरिकता के नैतिक पहलू को बार-बार दुहराया गया है। पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है।

—रामनारायण अग्रवाल

हास्य

हास्य और विनोद—लेखक—श्री प्रेमनारायण टण्डन, प्रकाशक—विद्यामन्दिर रानीकटरा, लखनऊ। पृष्ठसंख्या ७८, मूल्य ।।।)

इस संग्रह में कुछ तो टण्डन जी हास्य के व्यङ्गय पूर्ण स्केच हैं और कुछ दूसरों के, जैसे भारतेन्दुजी, प्रेमचन्दजी आदि के हास्य-व्यङ्गय की परिचयात्मक आलोचना है टण्डनजी ने हिन्दी के सम्पादकों, लेखकों और प्रकाशकों के चित्र दिये हैं। उनमें हास्य तो वाजिवी मात्रा में है ही किन्तु इन लोगों की धर्तताओं का तथा समाज की आँखों में धूल झोंकने वाली, नीति का अच्छा उद्घाटन हुआ है। इनके द्वारा हमको उन बातों का भी पता चल जाता है जिनके कारण पत्रों और पुस्तकों का स्तर इतना नीचा रहता है। 'पुरोहितजी की दलील' सर्वथा समर्थन के अयोग्य बातों के समर्थन की विषमता द्वारा हास्य की सृष्टि अवश्य करती है किन्तु यदि उसको कहानी का रूप दे दिया गया होता तो वह अधिक सरस बन जाती। 'संस्थाओं का चुनाव' शीर्षक निबन्ध में संस्थाओं की ढोल की पोल दिखाई गई है। सब तो नहीं किन्तु पर्याप्त संख्या में सार्वजनिक संस्थाएँ ऐसी ही उदर निमित्त चलती हैं।

—गुलाबराय

स्फुट

हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ—सम्पादक—सर्वश्री अखिल विनय तथा गीराडा राय वर्मा चंचल, प्रका०—हिन्दी-साहित्य-समिति, बिड़ला कालेज, पिलानी। मूल्य ३॥)

हिन्दी के समाचारपत्रों का इतिहास यद्यपि बहुत पुराना नहीं है तथापि वह अब पर्याप्तरूपेण सम्पन्न है। हिन्दी में अनेकों पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही हैं और उनमें विषय की विविधता भी पर्याप्त मात्रा में है। सम्पादकों ने इन पत्र-पत्रिकाओं का वर्गीकरण कर उनका संक्षिप्त परिचय दिया है। पत्रकला के क्रमिक विकास के अध्ययन की दृष्टि से यह पुस्तक विशेष उपयोगी है। इस कार्य में श्री कन्हैयालाल सहल ने योग देकर उसको विशेष आकर्षक और उपादेय बना दिया है।

—गुलाबराय एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय—

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का मेरठ अधिवेशन कुछ तो मेरठ के ऐतिहासिक महत्व के कारण, कुछ दिल्ली के सामीप्य के कारण और कुछ सम्मेलन के अध्यक्ष सेठ गोविन्ददासजी के वैयक्तिक प्रभाव के कारण देश की साहित्यिक और राजनीतिक विभूतियों के आकर्षण का केन्द्र बन गया था। सम्मेलन के भूतपूर्व सभापतियों में सर्वश्री राहुल सांकृत्यायन, वियोगी हरि, माखनलाल चतुर्वेदी, कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, गोस्वामी गणेशदत्त थे और देश के राजनीतिक सत्ताधारियों में मध्यप्रान्त, युक्तप्रान्त, आसाम और बिहार के प्रधान मन्त्री और विधान सभा के उपाध्यक्ष श्री अनन्त शायन आयनगर और कांग्रेस के अध्यक्ष श्री पट्टाभि सीतारमैया ने सम्मेलन को अपनी उपस्थिति से गौरवान्वित किया था। इनके अतिरिक्त हिन्दी के और भी अनेकानेक गण्य मान्य साहित्यिक उपस्थित थे। इतने लोगों की उपस्थिति राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति बढ़ते हुए उत्साह की परिचायक थी। प्रायः सभी प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने हिन्दी के पक्ष का समर्थन किया।

सेठजी के भाषण में हिन्दी के प्रति उत्साह और भावुकता के अतिरिक्त गम्भीर विवेचन था। इसके साथ सरकार से कुछ व्यावहारिक माँगें भी थीं, जैसे सरकारी अफसरों को हिन्दी में काम सिखाने का एक ट्रेनिङ्ग कालेज। इनके पूरा कराने में यदि सम्मेलन सतत प्रयत्नशील रहे तो हिन्दी का पक्ष बहुत ऊँचा उठ सकता है। सरकार का तो कर्तव्य है ही कि देश के लिए राष्ट्रभाषा को समुन्नत और व्यावहारिक बनाने में योग दे, किन्तु उसके साथ सम्मेलन का भी कार्य है कि वह आदर्श उपस्थित करने में अग्रसर रहे। जब तक सरकार कोई हिन्दी का विश्व विद्यालय नहीं स्थापित करती तब तक सम्मेलन को एक पढ़ाने वाला विश्व-विद्यालय स्थापित कर इस कार्य में अग्रसर होना आवश्यक है। फिर उसको सरकार से भी सहायता मिल सकती है।

इस वर्ष परिषदों में संस्कृत सम्मेलन की और वृद्धि की गई। हिन्दी का अपने मूल स्रोत से सम्बन्ध बनाये रखने तथा भारत की संस्कृति रक्षा के लिए इस सम्मेलन का होना परम आवश्यक था। साहित्य-परिषद् में स्वागताध्यक्ष तथा सभापति के भाषणों के अतिरिक्त निबन्ध पाठ भी हुआ और वर्तमान साहित्य विशेषकर प्रगतिशील कविता के सम्बन्ध में थोड़ा विचार-विनिमय भी हुआ। निबन्ध पाठ में श्री राजेश चतुर्वेदीजी ने रेडियो से प्रचारित फिल्मी गानों की घोर निन्दा की।

विज्ञान-परिषद् में यद्यपि किन्हीं वैज्ञानिक तथ्यों अथवा सिद्धान्तों पर तो विचार नहीं हुआ तथापि वैज्ञानिक मनोवृत्ति और वैज्ञानिक शब्दावली पर स्वतन्त्र रूप से एक गम्भीर और स्वस्थ विवेचन हुआ। उस विवेचन में डाक्टर रघुवीर और राहुल सांकृत्यायन दोनों ही उपस्थित थे। दो एक विज्ञान के अध्यापक भी थे जिन्होंने अपनी व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी उपस्थित कीं। सम्मेलन कई दृष्टियों से बहुत सफल रहा। सम्मेलन यदि साल के भीतर भी साहित्य-सम्बन्धी समस्याओं लिपि की समस्याओं और शब्दावली के सम्बन्ध में समय-समय पर विद्वानों की गोष्ठियाँ का आयोजन करता रहे तो बहुत सी उलझनें सुलझ जाने की सम्भावना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[काल] में सेवन योग्य

आयुर्वेद प्रणीत

शारंगधर की औषधियां

❀ पूर्ण चन्द्रोदय रस ❀

(अनुपान मिश्रित गोलियाँ)

बल्य, रसायन और शक्तिप्रद हैं।

❀ स्वर्ण घटित मकरध्वज रस ❀

दीपन, पाचन करने वाला, क्षय, खाँसी, कमजोरी को दूर करने वाला रसायन है।

❀ च्यवनप्राश अवलेह ❀

(अष्ट वर्ग युक्त)

बल और बुद्धि वर्द्धक, स्वादिष्ट और पौष्टिक खुराक।

जामनगर शार्ङ्गधर लेबोरेटरी लि०, जामनगर (सौराष्ट्र)

स्वदेशी बीमा कं० लि० आगरा

स्थापित १९३१

प्रधान कार्यालय : स्वदेशी बीमा नगर, आगरा।

१—सन् १९४७ में पूरा किया हुआ नया कार्य			३६,००,००० रु० से ऊपर
२—चालू बीमे	...	...	१ करोड़ रु० से ऊपर
३—जीवन बीमा फण्ड	...	...	लगभग १९,००,००० रु०
४—पूँजी (एसेट्स)	...	...	„ ३०,००,००० रु०

हमें अपना काम बढ़ाने के लिये कमीशन अथवा वेतन पर कुछ योग्य तथा उत्साही कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है, बीमे की दरें व नियम अति उदार हैं।

स्मरण रहे कि "स्वदेशी" संयुक्त प्रान्त की सर्व प्रथम एवं प्रमुख बीमा कम्पनी है। हिन्दी में पत्र व्यवहार एवं पालिसी जारी करने वाली यह अकेली बीमा कम्पनी है।

कृपया लिखें या मिलें—

पं० गोविन्दप्रसाद चतुर्वेदी, जनरल मैनेजर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी० जी० फ्रूट प्रिजर्व

गर्मी और जाड़े

हर मौसम में

जी० जी० ब्रान्ड

वस्तुएँ

व्यवहार में लाइये

गुण लाभ, स्वाद कोई कमी नहीं होती

फल पेय
नारङ्गी
लेमन
लेमन वार्ली
आम
लाइमजूस कार्डियल जाम, केला, ...
स्ट्रबेरी, रसभरी, मिक्सड फ्रूट, नाशपाती, ...
अमरूद जेली और नवरंजी मर्मालेड (Orange Marmalade) तथा
चटनी व टुमाटो सञ्जीवनी इत्यादि पके फलों
सुमधुर रसों द्वारा तैयार किये जाते हैं

... का विश्व विद्यालय
...न को एक पढ़ाने
...र इस का...

जी० जी० चाकलेट फैक्टरी

जी०जी० ब्रान्ड

स्वास्थ्य वर्धक

विशेषज्ञ द्वारा सफाई व वैज्ञानिक रीति से तैयार की जाती है।

इनके बनाने के लिये कन्डेन्स्ड मिल्क क्रीम, मक्खन, ग्लूकोज, गिरी, मेवा इत्यादि काम में लाये जाते हैं ॥

गिरधरगोपाल टिन फैक्टरी में

चार गैलन के टिन के अतिरिक्त

बाल्टियाँ, एक गैलन फिनायल के टिन, पालिश की डिबियाँ व अन्य प्रकार के टिन भी बनते हैं

हवा यंत्र द्वारा टिनों की जाँच की जाती है जिससे कभी चूने की सम्भावना नहीं रहती

जी० जी० टॉय फैक्टरी

फुटबाल, क्रिकिट बाल, जाल इत्यादि के अतिरि...

आपके बच्चों की

शिक्षा तथा मनोरञ्जन के लिये

सामग्री प्रस्तुत करती है।

खिलौने देखने में सुन्दर तथा व्यवहार में मजबू...

जी० जी० इन्डस्ट्रीज

जी० जी० सेल्स डिपो:—

...बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, बरेली, ... पटना, देहरादून।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

] आगरा—नवम्बर, १९४८ Ram Prakash [अङ्क ५

विषय-सूची

१—प्रसादकालीन नाट्य-साहित्य : प्रभाव और प्रक्रियाएँ—प्रो० वी० बी० योहन बी० ए० (आनर्स) एम ए० १५३

२—हिन्दी कविता में शृंगार रस—श्री सत्येन्द्र एम० ए०, १६१

३—जायसी और रामकथा—श्री ओमप्रकाश एम० ए०, एल-एल० बी० १६७

४—चित्रलेखा एक परिचय—कु० शकुन्तला सक्सैना एम० ए०, विशारद १७१

५—सोहनलाल द्विवेदी और 'कुणाल'—श्री श्याम भटनागर बी० ए० १७५

६ हमारे उपन्यास साहित्य का विकास—प्रो० गोपीनाथ तिवारी १७८

७—साहित्य परिचय—विविध १८४

८—सम्पादकीय—श्री गुलाबराय एम० ए० १९२

—गुलाबराय एम० ए०

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

वार्षिक मूल्य रुपया
इस अङ्क का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हिन्दी साहित्य की नवीन पु...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची प्रकट की जाती ... हुई हैं। इनमें से अधिकांश पुस्तकें आगरा के साहित्य-रत्न-भण्डार ...

साहित्य-समालोचना—

पुरानी हिन्दी चन्द्रधर शर्मा गुलरी २)

आधुनिक कवियों की काव्य-साधना—

राजेन्द्रसिंह गौड़ ३)

कविता—

मुक्तिगान—श्रीकृष्ण 'सरल' १॥)

खादी के फूल—सुमित्रानन्दन पन्त ५)

कहानी—

होनहार बालक—श्री विश्वनाथ अय्यर ।≡)

नरहिति:—हँसराज रहबर २॥)

आँसू और पसीना—डा० रामप्रताप बहादुर २)

यह मेरी मातृ भूमि है—

श्री रामायणशरण एम० ए० १॥)

बुन्देलखण्ड की ग्राम्य कहानी—

श्री शिवसरण चतुर्वेदी ५॥)

चट्टान और लहर—रतनलाल बसंल ॥)

नाटक—

भारत छोड़ो—राधाकृष्ण २)

फूलों की बोली—वृन्दावनलाल वर्मा १)

नारद की वीणा—लक्ष्मीनारायण २)

बालोपयोगी साहित्य—

राजकुमारी चाँद और सात धाँने—

कु० स्नेहलता भार्गव ।≈)

गड़रिया राजा—विजय शर्मा ।–)

मोहनभोग—अशोक बी० ए० ।≈)

मौज मजे—कृष्णकांत तैलंग ।≈)

नीलमपरी—विजय शर्मा ...

बालकहानी—मदनमोहनला...

हँसते-हँसते—मनोरञ्जन सहा...

शेर की जिन्दगी—गिरजाश...

उपन्यास—

नंगे पाँव—श्रीइतिसार कोलकवि ...

जीवनी—

जयप्रकाश की विचार धारा— ४)

जयप्रकाश—रामवृक्ष बेनीपुरी ५)

बापू के आर्शीवाद—श्री गांधीजी १०)

मेरा जीवन प्रवाह—श्री वियोगी हरि ६॥)

बापू के चरणों में—श्री ब्रजकृष्ण २।)

राजनैतिक—

दुनिया के विधान—डा० पट्टाभिसीतारमैया ३॥)

पाकिस्तान और भारत के आर्थिक सम्बन्ध—

दयाशंकर नाग ।≈)

ऐतिहासिक—

भारतीय सिक्के—वासुदेव उपाध्याय ५)

प्राचीन भारतीय शासन पद्धति—

प्रो० अनन्त सदाशिव अलतेकर ५)

कृषि शास्त्र—

खाद्य विज्ञान—गुप्तनाथसिंह १॥)

धार्मिक—

महावीर वर्द्धमान—जगदीशचन्द्र जैन १)

बालोपयोगी साहित्य—

बालसुधा—शकुन्तला श्रीवास्तव ॥≈)

घोड़े का सवार—लक्ष्मीनारायण टण्डन ।≈)

मिलने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

...का विश्व विद्यालय ...न को एक पढ़ाने ... इस का...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग १०] आगरा —नवम्बर, १९४८ [अङ्क ५

प्रसाद-कालीन नाट्य साहित्य : प्रभाव और प्रक्रियाएँ

प्रो॰ वी॰ बी॰ योहन, बी॰ ए॰ आनर्स, एम॰ ए॰ (हिन्दी, इंग्लिश)

कला को मानसिक दृष्टि में सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण कहा गया है। ललित कलाओं में लोकरञ्जनकारिणी शक्ति के अतिरिक्त सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण अनिवार्य है। साहित्य का ललित-कलाओं में सर्वोच्च स्थान है। साहित्य का ललित कलात्व तथा लोक-हित संपादन उसके मनस्तत्व पर ही निर्भर है। इसीलिए साहित्य को मानवता का मस्तिष्क कहा गया है। साहित्य हित की भावना के साहित्य का द्योतक है। अथवा वह लोक-हित संपादन की भावना का द्योतक है, मानववाणी का वह लोक कल्याणकारी चिरंतन कोष है जो देश अथवा काल की सीमा में सीमित नहीं। यद्यपि साहित्य प्रतिभा की सृष्टि है और प्रतिभा में अनुकरण (Imitation) नहीं तथापि एक की प्रतिभा से निःसृत कलागत सौन्दर्य दूसरे प्रतिभावान कलाकार के लिए प्रेरक-शक्ति का रूप धारण कर सकता है। उदाहरणार्थ एक साहित्यकार के विचार हमारे मानस को प्रभावित कर सकते हैं और एक नवीन दिशा में हमें प्रेरित करने में भी समर्थ हो सकते हैं। निष्कर्ष यह कि काव्यगत सौन्दय प्रेरक हो सकता है। वास्तव में यही तो उसकी उपादेयता है। यह प्रेरणा-शक्ति नवीन दिशा में चिंतन अथवा साहित्य-सृजन का कारण हो सकता है। एक अन्य दिशा में भी प्रेरणा का ग्रहण हो सकता है। अभी मैंने कला के एक ही पक्ष का निर्देश किया है। कला की पूर्णता (Perfection of art) के लिए उसका वाह्य-तत्व सुषमा (Symmetry) भी अनिवार्य है। कला के वाह्य-रूप अथवा शरीर पर भी कलागत सौन्दर्य अपना प्रभाव डाल सकता है, अपनी अमिट छाप छोड़ सकता है। दोनों ही दिशाओं में यह प्रभाव साहित्य के [illegible] [illegible]-विकास का कारण हो सकता है। प्रथम दिशा में केवल [illegible] में करण से अथवा प्रक्रिया के [illegible] में निष्कर्ष दूसरी दिशा में [illegible] के [illegible] में आदर्श तथा शैली बाह्य अनुकरण से [illegible] परिलक्षित नहीं होती जो 'प्रसाद'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वस्थ-विकास में बाधा हो सकती है।

पूर्वकृत विवेचन में मैंने कला-सम्बन्धी आदान-प्रदान का रूप बतलाया है। अब हम उसके प्रकट रूप का साहित्य के उदाहरणों में प्रत्यक्षीकरण करें। दो क्षेत्रों में प्रत्यक्ष उदाहरण प्राप्त होते हैं, प्रथम एक भाषा अथवा एक जातीय साहित्य पर दूसरी भाषा या दूसरे साहित्य अथवा विदेशी साहित्य का प्रभाव, तथा द्वितीय एक ही भाषा के साहित्य में या एक ही जातीय साहित्य में एक व्यक्ति का या उसके व्यक्तित्व का काल विशेष पर प्रभाव। प्रथम क्षेत्र में प्रभाव की क्रिया दोनों ओर या एक ही ओर हो सकती है, द्वितीय में यह क्रिया उभयमुखी होती है। दोनों प्रभावों के प्रतिफलन से कला का स्वतन्त्र विकास सम्भव है। प्रथम क्षेत्र में सब साहित्य एक दूसरे के ऋणी हो सकते हैं किन्तु यह आवश्यक नहीं कि परस्पर दो भाषा के साहित्यों में आदान-प्रदान की दुहरी क्रिया पाई जाय। द्वितीय क्षेत्र में प्रतिभाशाली और प्रभा-वान्वित के सम्बन्ध में यही बात कही जा सकती है पर प्रतिभावान साहित्यकार का उसके काल या युग-विशेष से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है। साहित्य में युग-प्रवर्तन तथा सम्प्रदाय (School) का जन्म इसी दुहरी प्रक्रिया (Double process) से होता है।

अब हिन्दी-साहित्य के प्रत्यक्ष उदाहरणों का निरी-क्षण करें। आधुनिक-काल के नवीन विकास में मूल चेतना सम्पूर्ण जीवन की सर्वाङ्गीण आलोचना है जो हमें पाश्चात्य साहित्य से प्राप्त हुई है। विशेषकर आंग्ल-साहित्य का हिन्दी के जातीय-साहित्य पर जो प्रभाव पड़ा है वह दोनों रूपों में परिलक्षित होता है, साहित्य की आत्मा-भाव में तथा बाह्य रूप-कला में। …साहित्य की सभी श्रेणियों में यह उभयमुख प्रभाव … दृष्टिगोचर होता है। रीति-कालीन युग का … संकुचित दृष्टि का परिचायक है। …का प्रयोग तथा गद्य का …परिणाम है। गद्य …अत्यधिक

प्रयोग एक ही मूल-चेतना … स्वरूप गद्य और पद्य दोनों ही म… हुई वह गत एक सहस्त्र वर्षों के … पूर्व है। दृष्टि-विस्तार से हिन्दी के …का विश्व विद्यालय युगल विशेषताएँ (गद्य और पद्य … को एक पढ़ाने करण और गद्य का अधिकाधिक प्र… इस कार्य… साहित्य की अनिवार्य विशेषताएँ हो गईं। बुद्धि तथा विज्ञान के इस युग में इन विशेषताओं की उपादेय… कौन नहीं जानता? जीवन के सम्बन्ध में दृष्टि-विस्तार तथा तदनुरूप परिवर्तित साहित्यिक दृष्टिकोण ही साहित्य की विभिन्न श्रेणियों के सर्वतोमुख विकास का उत्पादक कारण (Productive cause) है। उदाहरण अत्यन्त स्पष्ट है। रीति-कालीन युग में दृष्टि शृंगार की ओर थी और नारी कविता-केन्द्र थी। तथापि नारी का सम्पूर्ण चित्रण उस काल के साहित्य में दुर्लभ है। नारी-चरित्र की दुर्बोधता, उसके जीवन के विभिन्न पार्श्वों तथा शक्ति की विशद और गम्भीर आलोचना तत्कालीन साहित्य में प्राप्त न होगी। उसके शृंगार का विवेचन तथा प्रेमी जीवन के चित्र अवश्य सुलभ होंगे। नवीन-युग के आगमन ने साहित्य तथा जीवन के नवीन मूल्यों की सूचना दी। फलस्वरूप साहित्य के आदर्श बदले। नाटकों का तो इसी युग में कायाकल्प हुआ और भारतेन्दु-काल से ही उनका सूत्रपात आरम्भ हुआ। उपन्यास और आख्यायिका का भी, अर्थात् समस्त कथा-साहित्य का विकास पाश्चात्य आदर्श के अनुकरण पर हुआ। मेरा आशय यह नहीं कि उपन्यास और आख्यायिका भारतीय साहित्य में अप्राप्य या नवीन वस्तुएँ थीं। उनका बाह्य रूप अवश्य पश्चिम से ग्रहण किया गया है। यही बात एकांकी नाटकों के सम्बन्ध में है। भाषा, प्रहसन, वीथी और अंक (उत्सृष्टिकांक) एकांकी के ही उदा-हरण हैं। तथापि आधुनिक एकांकी का बाह्य ढाँचा तथा उसके आदर्श पश्चिमीय ही हैं। कविता के संबंध में पाश्चात्य प्रभाव तथा साथ ही अनुकरण से आया हुआ दोष भी स्पष्टतया वर्तमान है। आधुनिक-युग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...का यह अनु... श्रेष्ठ प्रबन्ध-काव्य... युग की विभिन्न ...के प्रगीत मुक्तकों में ...ग्री में युग की आधारित है, किन्तु बाह्य- ...शैली ...ने से कला की पूर्णता नहीं ...गुप्त ने गीति-शैली का भी ... किन्तु उनकी सारी प्रतिष्ठा ...व काव्य ...रूप में ही है। जयशङ्कर 'प्रसाद' हिन्दी ...में छायावाद के प्रवर्तक हुए जिनके गीतों में ...युक्त भावाभिव्यञ्जना है, शब्द-शक्ति का विकास भी है परन्तु गीतोपयोगी माधुर्य्य और प्रसाद-गुण का अपेक्षाकृत अभाव पाया जाता है। इस दृष्टि से सुमित्रानन्दन पन्त का प्रयत्न अभिनन्दन के योग्य है। महादेवी और निराला में भाव-प्रवणता है किन्तु पन्त का-सा माधुर्य्य नहीं। हिन्दी प्रगीत मुक्तकों में स्वतन्त्र भावनाओं की सुन्दर व्यञ्जना तो पाई जाती है पर ऐसे गीतों की संख्या अल्प ही है जिनमें भावना तीव्रता की सीमा को पहुँचाई गई हो। यही विशेषता गीति-काव्य की अनिवार्य विशेषता है जो न तो अनुकरण से सम्भव है न कला के बाह्य उपकरण की पूर्ति से। वह तो प्रतिभा तथा साधना से ही संभव है।

आंग्ल-साहित्य के प्रभाव का दिग्दर्शन करते हुए उदाहरण-स्वरूप मैंने गीति-काव्य का विवेचन किया है। अब इसी सम्बन्ध में हिन्दी नाट्य-क्षेत्र पर एक दृष्टि डाली जाय। हिन्दी नाट्य-साहित्य का इतिहास अर्वाचीन है, वह आधुनिक विकास ही की कहानी है। नाट्य-साहित्य के अध्ययन के अनन्तर इस निष्कर्ष में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि आधुनिक हिन्दी नाटकों के विकास की इतिहास-सामग्री नाट्य-क्षेत्र में विभिन्न प्रयोगों का विवेचन ही है। यह बात बिना किसी सङ्कोच के हिन्दी के पूरे नाट्य-साहित्य के विषय में कही जा सकती है। फिर बीसवीं शताब्दी के हिन्दी-नाट्य-साहित्य का इतिहास अथवा वर्तमानकालीन इतिहास तो ऐतिहासिक नाटक, दुःखान्त नाटक, सामाजिक नाटक, समस्या नाटक, प्रहसन, प्रभृति विभिन्न दिशाओं में विविध प्रयोगों का ही इतिहा... शैली से सम्बद्ध विभिन्न प्रयोगों में सबसे व्यापक और प्रभावशाली प्रयोग 'प्रसाद' का है और उनकी शैली का विकास पूर्णता को पहुँच चुका है। शेष प्रयास अभी विकास की अवस्था में है। 'प्रसाद' जी युग-प्रवर्तक नाटककार हैं। उनके प्रयोग की पूर्णता उनकी प्रतिभा, अध्ययन और साधना पर निर्भर है। उनमें कई विशेषताएँ हैं जो अन्य नाटककारों में दुर्लभ हैं—कवित्व, दार्शनिकता और प्राचीन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक ज्ञान। उनका नाट्य-शैली सम्बन्धी प्रयोग समन्वय-मार्ग का है जिसमें उन्होंने मार्ग-प्रदर्शन भी किया है। अन्य प्रयोग इतने सशक्त नहीं। उदाहरणार्थ हिन्दी प्रहसन कोरे अनुकरण पर अवलम्बित हैं, उनमें कला की पूर्णता दृष्टिगोचर नहीं होती। दुःखान्त नाटकों के क्षेत्र में राय महोदय का प्रयोग भी बहुत अंशों में सफलता के साथ किया गया है पर यहाँ भी कवित्व-शक्ति की अपेक्षाकृत कमी है। राय की शैली का आदर्श 'नूरजहाँ' में है जिसमें हृदय के आन्तरिक द्वन्द्व पर ही नाटक का सारा आकर्षण और सौन्दर्य आधारित है। 'प्रसाद' की भावुकता की सीमा उक्त नाटक में पाई जाती है। भावुकता के इस आतिशय्य के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया आरम्भ हुई उसका प्रयोग भी अनुकरण पर आधारित है। पश्चिम के समस्या नाटक के अनुकरण पर जो प्रयोग आरम्भ हुआ उसमें उक्त विशेषता कुछ अंशों में रह ही गई है। अतएव भावुकता हिन्दी नाटकों की अनिवार्य विशेषता हो गई है। अस्तु, स्वाधीनता (प्रतिक्रिया-जन्य) इस प्रकार के नाटकों की शैलीगत-नवीनता (Novelty in technique) है। 'प्रसाद' के प्रयोग से इस प्रयोग की तुलना करें तो इस नवीन प्रयोग में स्थिरता की कमी परिलक्षित होगी। न आदर्श की वह पूर्णता दृष्टिगोचर होती है और न शैली की वह पूर्णता जो स्थिर रूप को प्राप्त हो, नाट्य-क्षेत्र में मार्ग-प्रदर्शन का कार्य करती है। संक्षेप में निष्कर्ष यह कि इस श्रेणी के नाटकों में आदर्श तथा शैली दोनों की वह पूर्णता परिलक्षित नहीं होती जो 'प्रसाद'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नाट्य-साहित्य में होती है।

आगे के विवेचन को हम दो भागों में विभक्त करेंगे, प्रथम हिन्दी नाट्य-साहित्य की प्रेरक शक्तियाँ तथा द्वितीय हिन्दी नाट्य साहित्य के युग-प्रवर्तक तथा हिन्दी-नाट्य-क्षेत्र में उनकी साहित्यिक सेवा। आरम्भ में तो भारतीय-नाट्य-साहित्य का ही उल्लेख किया जा सकता है जिसकी विख्याति प्राचीन काल में उच्चतम अवस्था (Zenith) को पहुँच चुकी थी। भरत मुनि के नाट्य-शास्त्र जैसे उच्चकोटि के प्रामाणिक ग्रन्थ के अस्तित्व से ही ईसा के पूर्व संस्कृत के नाटकों के विकास का पता चलता है। धर्म-भावना से ये नाटक विकसित हुए तथा गीत और नृत्य का सदा सहयोग रहा। हिन्दी का सारा नाट्य-साहित्य इन्हीं विशेषताओं के विकास का जीता जागता उदाहरण है। भारतेन्दु के पूर्व जो काव्यात्मक नाटक उपलब्ध होते हैं वे संस्कृत के उत्तरकालीन नाटकों के अनुकरण पर रचे गये हैं। विषय धर्म तथा भक्ति-भावना हैं और चरित्र भी पूर्व परिचित राम और कृष्ण ही हैं। भारतेन्दु की नाट्य-कला का आदर्श प्राचीन ही रहा अतएव प्राचीन भारतीय-नाट्य-कला का प्रतिनिधित्व उनके नाट्य-साहित्य में पाया जाता है। पाश्चात्य प्रभाव के आगमन के पूर्व तक यह आदर्श पूर्व-प्रतिष्ठित ही रहा। तृतीय उत्थान के पूर्व विदेशी प्रभाव का आगमन आरंभ हुआ जो प्रस्तावना के क्रमशः लोप तथा नवीन शैली के क्रमशःग्रहण में व्यक्त हुआ और इस प्रकार भारतीय शैली के एकाधिपत्य का क्रमिक अवसान हुआ।

'प्रसाद' के नाट्य-साहित्य में शैली और नाटकीय आदर्शों का जो समन्वय पाया जाता है उसके मूल तन्तु इसी, भारतीय नाट्य-साहित्य में पाये जाते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि भारतीय शैली की अनेक विशेषताओं को बचाये रखने के द्वारा ही 'प्रसाद' का समन्वय मार्ग स्थिर हुआ है। ऐसी विशेषताओं के चिह्न उनकी नाट्य-शैली में अवश्य वर्तमान हैं। किन्तु

समन्वय का आदर्श सा‌ना के... षता भारतीय रस-विधान तथा मे... के समन्वय की है। दूसरी मह... पर्य्यवसान के सम्बन्ध के आद... का विश्व विद्यालय आनन्द में पर्य्यवसान के लक्ष्य ... को एक पढ़ाने शान्तिमय वैराग्य की भावना ... इस कार्य तीय रुचि और आदर्श का द्योतक हैं। ... इनसे ... महत्त्व की अन्य बात है 'प्रसाद' की भारतीयता ... उनका भारतीय संस्कृति-प्रेम उनकी अन्य विशेषता ... में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है। अपने ऐतिहासिक नाटकों में भारतीय जीवन के आदर्शों की पुनः प्रतिष्ठा करके भारत के उन्नत काल के वीरोचित और उच्च आदर्श उपस्थित करके उन्होंने अपनी राष्ट्रीयता, भारतीयता तथा संस्कृति का परिचय दिया। यही 'प्रसाद' के नाट्य-साहित्य का लोकोपकार है। नाट्य-कला के बाहरी विषय अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व नहीं रखते और काल के साथ परिवर्तित होते जाते हैं। यही कारण है कि साहित्यालोचन में नियमों की अपेक्षा सिद्धान्तों का अधिक मान रहता है। अतएव भारतीय शैली के नियमों के पालन की आशा करना तथा नाट्य-कला की भारतीय विशेषताओं का अन्वेषण नाट्य-कला के ज्ञानोपार्जन में ही लाभदायक होगा, नाटककार को समझने में, उसकी वैयक्तिक और साहित्यिक विशिष्टता, उसके जीवन-मूल्यों तथा सामाजिक और सांस्कृतिक आदर्शों के अन्वेषण में उससे अधिक लाभ न होगा। 'प्रसाद' जी ने नाट्य-शैली के समन्वय में पाश्चात्य आदर्शों को अधिकता से अपनाया है यह एक बड़ी मनोरञ्जक और महत्त्वपूर्ण बात है। उनके नाटकों में विरोध पश्चिमीय नाटकों जैसा ही है। उसकी अतिरञ्जना न कर उन्होंने अपनी समन्वय भावना का परिचय दिया है। अतः उनके नाटकों में भारतीय-वस्तु-विकास के सिद्धान्तों को घटाने से अथवा उनका आरोप करने से अधिक लाभ नहीं और न इससे शैली सम्बन्धी किसी नवीनता का ही उद्घाटन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[illegible] [illegible]धियों और काय-[illegible] [illegible]कते हैं। यदि ऐसा पूर्ण [illegible] जिस प्रकार कविता का अर्थ [illegible]नुकूल कर लिया जाता है [illegible]निक अपने विचार या तर्क [illegible] लिए सिद्धान्त विशेष से [illegible] का अर्थ निकाला करते हैं उसी [illegible] हम भी नाटक की कथा-वस्तु में तथा उसकी [illegible]रचना में इन विशेषताओं का आरोप कर सकते [illegible]। मेरे मन में 'प्रसाद' की भारतीयता उनके मूल और प्रधान आदर्श उनके समन्वयवाद में ही व्यक्त हैं। अन्य प्रवृत्तियों को आत्मसात् करने की क्षमता भारतीयता की एक मौलिक विशेषता है। भारतीय धर्म में वर्णन, कवित्व, नीति आदि का समन्वय है; 'प्रसाद' के समन्वय में भारतीय संस्कृति अक्षुण्ण है, भारतीय आदर्श वर्तमान हैं, भारतीय दृष्टि सुरक्षित है, भारतीय जीवन-मूल्य स्थिर हैं; कला में परिवर्तन हो गया है, पाश्चात्य सिद्धांतों का मूल्यांकन कर समयानुकूल शैली में परिवर्तन कर दिया गया है और सभ्यता और संस्कृति पर आधारित भारतीय-रुचि का ध्यान रख नाट्य-शैली में परिवर्तन कर दोनों शैलियों का समन्वय किया गया है; किंतु जैसा मैंने निवेदन किया समन्वय से पूर्वात्य (Oriental) तथा आँग्ल (Anglican) साहित्यिक आदर्शों के संतुलन (Equilibrium) का अर्थ अभीष्ट नहीं। अतएव समन्वय का कथन एक व्यापक कथन है जिसका विस्तार नाट्य-कला के समस्त आदर्शों तथा नाट्य-कला के समस्त नियमों तक है यद्यपि वह एक साधारण कथन (Generalisation) नहीं जो नाट्य-कला के सम्बन्ध में दोनों शैलियों के संतुलन के अर्थ का द्योतक हो। अतः समन्वय से संतुलन का अर्थ न समझा जाय क्योंकि न तो वह लक्ष्य है और न उसकी प्राप्ति का प्रयत्न ही किया गया है।

अस्तु, प्राचीन भारतीय नाट्य-साहित्य का समुन्नत भांडार सुरक्षित रहने पर भी देशगत प्रेरक शक्ति के [illegible]र्य करने पर भी, रंगमंच के अभाव के कारण हिंदी नाट्य-साहित्य की उन्नति अवरुद्ध रही है। पारसी रंगमंच के द्वारा उर्दू के कुरुचिपूर्ण नाटक अपनाये जाते थे। हिंदी-प्रेमियों द्वारा स्थापित नाटक-मंडलियों को स्थायी प्रोत्साहन प्राप्त न हुआ। पं० राधेश्याम 'कविरत्न' नारायणप्रसाद 'बेताब' और बाबू हरिकृष्ण जौहर के नाटकों द्वारा पारसी रंगमंच पर हिंदी नाटकों को स्थान मिला। 'कविरत्न' तथा 'बेताब' के नाटक पारसी रंगमंच के उपयुक्त ही पौराणिक नाटक थे। जौहर ने सामाजिक नाटकों की रचना की। रंगमंच तथा नाटक दोनों ही एक दूसरे के विकास के लिए बाधक सिद्ध हुए हैं। अच्छे नाटकों की परिमित संख्या के कारण हिंदी-नाटकों का अभिनय असंभव था और रंगमंच की अविकसित अवस्था नाट्य-साहित्य के निर्माण में बाधक सिद्ध हुई है।

पाश्चात्य प्रभाव का अध्ययन तीन धाराओं में किया जा सकता है—शेक्सपियर का नाट्य-साहित्य, मौलियर का साहित्य तथा शॉ और इब्सन के नाटक। अँगरेजी के नाट्य-साहित्य विशेषकर शेक्सपियर के नाटकों का प्रभाव एक तो बङ्ग साहित्य के माध्यम से तथा द्विजेन्द्रलालराय के नाटकों के अनुवाद से आया, दूसरे अंगरेजी नाटकों के अनुवाद से तथा तीसरे प्रत्यक्ष रूप से शेक्सपियर के अध्ययन से। यह प्रभाव प्रथम नाटकों के बाहरी ढाँचे में हुआ तथा अनन्तर क्रमशः आदर्शों में। प्रस्तावना का लोप, अँगरेजी नाटकों के अनुकरण पर अंक-विभाजन और दृश्य-विधान अर्थोपक्षेपकों और भरत-वाक्य इत्यादि का का लोप तथा नियत-श्राव्य वस्तु का लोप (अथवा अपेक्षाकृत कम प्रयोग) आदि लक्षण पाश्चात्य प्रभाव के परिचायक हैं। वस्तु-तत्त्व अथवा अर्थ-प्रकृतियाँ तो वर्तमान हैं किन्तु कार्य-व्यापार की अवस्थाओं का तथा संधियों का आदर्श अवश्य परिवर्तित हुआ। यद्यपि इनका अन्वेषण हम वर्तमान पाश्चात्य ढंग के नाटकों में कर सकते हैं, 'प्रसाद' के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटकों में इनकी खोज और इनका दिग्दर्शन किया गया है, तथापि इनमें इस प्रकार के अन्वेषण की आवश्यकता ही नहीं। कारण स्पष्ट है और इसका विवेचन हम कर भी चुके हैं—आधुनिक नाटक, पश्चिमीय नाटकों में विरोध को अपना कर चलते हैं। नाटक के ढांचे में विरोध को प्रधानता मिलने से कार्य व्यवस्थाएँ अंग्रेजी नाटकों के सदृश विभक्त होती हैं—आरंभ, विकास, चरम-सीमा, विगति और समाप्ति। नाटक-रचना के सिद्धांतों में वस्तु-विकास तथा विरोध-विकास का जो प्रधान भेद है वह केवल दृष्टिकोण का है। एक में विरोध को प्रधानता दी जाती है दूसरे में लक्ष्य-प्राप्ति की। अतः एक का क्षेत्र सीमित हो जाता है, दूसरे का अत्यन्त विस्तृत। भारतीयों ने जहाँ आदर्शों की प्रतिष्ठा को महत्त्व देकर नाटकों को अर्थ, धर्म और काम की वृद्धि अथवा लोकोपकार की वृद्धि के लिए माना है वहाँ पाश्चात्य लक्ष्य यथार्थ-प्रदर्शन का रहा है। पश्चिम के लोग यह देखना चाहते हैं कि वास्तव में समाज का जीवन कैसा है। इसी से संबद्ध प्रश्न नाटकों के पर्यवसान का है। भारतीय नाटकों का लक्ष्य जहाँ आनन्द में समाप्ति का है वहाँ पाश्चात्य आदर्श सुखान्त और दुःखान्त का है। प्राचीन भारतीय नाटकों में आनन्दवाद के लक्ष्य ने दुःखान्त नाटकों की रचना न होने दी। आदर्शों में भेद है पर समन्वय संभव है और किया भी गया है। साहित्यालोचन के अनुसार वस्तु, चरित्र, कथोपकथन, देश, काल, शैली और उद्देश्य—ये छः नाटकीय तत्त्व बतलाये गये हैं जो भारतीय आलोचना में निर्दिष्ट तीन तत्त्वों—वस्तु, नायक और रस के विकसित रूप हैं। पाश्चात्य शील-वैचित्र्य के आदर्श तथा भारतीय रस—सृष्टि के आदर्श में भी समन्वय संभव है। अँगरेजी तथा भारतीय साहित्यालोचन में सङ्कलन-त्रय (three untities) में से वस्तु-सङ्कलन को ही महत्त्व दिया गया है, शेष दो अन्वितियों का मनमाना उल्लङ्घन किया गया है क्योंकि उनके पालन में नाटकीयता नहीं। भारतीय नाट्य-शास्त्र में 'नायक' और 'नायिका' शब्द

प्र... कार्य-शृङ्खला को आगे ... वह नायक है, यह व्युत्पत्ति में ... जो भेद भारतीय नाट्य-शास्त्र ... जो विशेषताएँ आवश्यक बता... का विश्व विद्यालय मूल्य नहीं। नायिका नायक क... को एक पढ़ाने आवश्यक नहीं। प्रधान भाग ... इस कार्य ... नायिका का निश्चय होता है। नायिका-भेद को आ... नाटकों में महत्व नहीं दिया जाता और न उसकी ... चना की ही आवश्यकता समझी जाती है। नाटक... वृत्तियों का आज भी मान होना चाहिये। ये वृत्तियाँ नायक, नायिका आदि के विशेष ढङ्ग अथवा व्यवहार पर आधारित होती हैं। भारतीय नाट्य-शास्त्र के अनुसार वृत्तियाँ नाटकीय रस की अनुभूति में सहायक होती हैं। नाटकों का अनिवार्य गुण अभिनय ही है और अभिनय तथा दृश्यों के प्रदर्शन से सम्बद्ध वृत्तियों का मूल्य सहज समझा जा सकता है। ये वृत्तियाँ आज भी पूर्ववत् आवश्यक हैं। इनके प्रयोग से प्राचीन नाट्य-साहित्य से हमारा सम्बन्ध स्थिर होता है। अतएव आधुनिक काल में नाटकों को पश्चिम से उत्तेजना (impetus) मिली हो पर इसीलिए वे न तो नवीन वस्तु हैं न पाश्चात्य देन कैशिकी वृत्ति में गीत, नृत्य, विलास और रति आते हैं। यह मधुर वृत्ति है। अन्य वृत्तियाँ भारती, सात्वकी, और आरभटी हैं जो भारतीयता की परिचायक हैं।

अर्थोपक्षेपकों का प्रयोग अनिवार्य है। यह दूसरी बात है कि विष्कंभक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य, अंकावतार आदि नामों का प्रयोग न किया जाय। साधारण दृश्यों के प्रयोग से अभीप्सित कार्य निकाल लिया जाता है। इनके द्वारा ऐसी बातों की सूचना दी जाती है जिनके रंगमंच पर प्रदर्शित करने में बखेड़े हों। उदाहरणार्थ रथ या रेलगाड़ी दौड़ाना, जिनका प्रदर्शन शिष्टाचार के विरुद्ध हो जैसे सन्तानोत्पत्ति, स्नान आदि का प्रदर्शन अथवा जो इतनी महत्त्वपूर्ण या रस-पूर्ण न हों कि प्रदर्शित की जायँ। संक्षेप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[illegible] होता है। 'पताका- [illegible] ही नाटकीय है किन्तु अब [illegible] कम दिखाई पड़ता है। [illegible]व से नाट्य-कला के आदर्शों [illegible] हुए। शेक्सपियर के नाटकों [illegible]टकों में भावुकता का विकास [illegible] अंतर्विरोध को प्राधान्य मिला और करुणा-पूर्ण [illegible] की सृष्टि हुई। जिस प्रकार साहित्य की अन्य [illegible]यों में उसी प्रकार नाट्य-साहित्य में बँगला व अँगरेजी की शैली तथा कला के आदर्शों का अनुकरण हुआ। शेक्सपियर के नाटकों के सम्पूर्ण आदर्शों को अपनाकर नाट्य-साहित्य का प्रणयन करने वालों में श्रेष्ठ कलाकार द्विजेन्द्रलाल राय हुए जिनके नाटकों का अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत किया गया। ऊपर उल्लिखित विशेषताएँ सर्वांश में इनके नाटकों में उपलब्ध होती हैं, हाँ, शेक्सपियर की सी कविता-शक्ति यहाँ अवश्य दुर्लभ है। सबसे अधिक प्राधान्य अंतर्विरोध, भावोन्माद तथा कारुण्य को दिया गया है। 'सीता' नाट्य-काव्य है। 'ताराबाई' नाट्य-काव्य शेक्सपियर के ही अनुकरण पर अतुकान्त पद्य में है। चारित्रिक दुर्बोधता के साथ करुणा का सम्मिश्रण भी शेक्सपियर के दुःखान्त नाटकों की विशेषता है। नूरजहाँ और हैमलेट के चरित्रों के अनुशीलन से द्विजेन्द्रलाल राय के आदर्श के विषय में कोई संदेह नहीं रह जाता। मोलियर के साहित्य का प्रभाव विशेषकर जी० पी० श्रीवास्तव के अनुवादों में है। इस प्रकार की उच्चकोटि की स्वतन्त्र रचनाएँ प्राप्त नहीं होतीं।

ऊपर पूर्वात्य और आँग्ल प्रेरक शक्तियों का विवेचन कर मैंने इस बात का निर्देश किया है कि युग-प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्राचीनता के प्रतीक थे। इनकी नाट्य-कृतियों ने नाट्य-साहित्य में प्राणों का संचार किया। 'प्रसाद' ने समन्वय मार्ग का अवलंबन कर नाट्य-साहित्य में एक नवीन युग की सूचना दी। ये नाटककार-द्वय हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ कवि और नाटककार हुए। हिन्दी साहित्य पर इनके उपकार का विवेचन आगे किया जायगा। भारतीय तथा पाश्चात्य शैली के समन्वय को अपनाकर तथा भावुकता का आश्रय लेकर जो नाट्य-कला विकसित हुई उसकी प्रतिक्रिया के स्वरूप यथातथ्यवाद को लेकर तथा विषयगत नवीनता को अपनाकर शॉ और इब्सन के अनुकरण पर सामाजिक और राजनीतिक नाटकों की रचना हुई। समस्या-नाटक, लिखनेवालों में सर्वश्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, पृथ्वीनाथ शर्मा उदयशङ्कर भट्ट तथा गोविंदवल्लभ पंत हैं। मिश्रजी ने यौन-समस्या को प्रधानता दी है और सेठजी ने सामाजिक और राजनीतिक समस्या को। समस्या-नाटकों में विचार को प्रधानता दी जाती है, भावोन्माद का स्थान गौण रहता है पर ये सब नाटक भावुकता को साथ लेकर चले हैं। समस्याओं के बौद्धिक समाधान सभी नाटकों में प्राप्त होते हैं। मिश्रजी और सेठजी दोनों के नाटकों में विचारात्मकता का प्राधान्य है और कवित्व का नितान्त अभाव है। सेठ गोविन्दास के नाटकों में स्थान स्थान पर शुष्कता अनिवार्यतः आ जाती है। लम्बे रङ्गसंकेत (Stage directions) जहाँ वास्तु-कला मूर्तिकला, चित्र-कला तथा नृत्य सम्बन्धी सूक्ष्म बातें व्यंजित करते हैं वहाँ बहुत से स्थलों पर अनावश्यक ही प्रतीत होते हैं। 'हर्ष' में तो राजनीतिक विषयों का वार्तालाप नीरस वाग्जाल ही है। इस नाटक में कार्य (Action) की कमी भयङ्कर दोष की सीमा को पहुँच गई है। नाटक यथार्थ में एक विस्तृत कथोपकथन ही है अभिनायात्मक तत्व जिसमें अल्प ही है। नाटकीय सरस स्थलों की अपेक्षा राजनैतिक चर्चा को प्राधान्य दिया गया है। नाटक की सफलता या असफलता बहुत कुछ पात्रों के चरित्र-चित्रण पर निर्भर रहती है। हमें विदित ही है कि चरित्र-चित्रण का प्रधान साधन कथपोकथन ही है। यह कथोपकथन जितना ही स्वाभाविक, उपयुक्त और अभिनयात्मक होगा नाटक उतना ही उत्तम कोटि का होगा। यद्यपि इस नाटक में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुष्क राजनीतिक वार्तालाप की कमी नहीं तथापि यह नहीं कह सकते कि सर्वत्र ऐसी ही बात है। उदाहरणार्थ दूसरे अङ्क के दूसरे दृश्य में राज्यश्री और अलका तथा विशेषकर हर्ष (शिलादित्य) और उनकी कनिष्ठा भगिनी राज्यश्री का वार्तालाप बहुत ही रोचक है। इसी प्रकार तीसरे अङ्क के दूसरे दृश्य की (आदित्यसेन, माधवगुप्त तथा शैलबाला) की बात-चीत भी उपयुक्त और सुन्दर है। आदित्यसेन का हर्ष के प्रति स्वाभाविक क्रोध है। शैलबाला का पुत्र-प्रेम अत्यन्त स्वाभाविक है। नाटक का अन्त भी अभिनयात्मक है। माधवगुप्त का अपने पुत्र को पकड़कर प्राणदण्ड के लिए देना बहुत ही कारुणिक प्रसंग है। पुत्र तथा माता (शैलबाला) का वार्तालाप आकर्षक है। करुणामय प्रसङ्ग को लेकर विद्रोहियों की अग्नि के साथ नाटक का अन्त होता है। माधवगुप्त के इन वचनों से—'इस अग्नि के साथ ही आर्यावर्त के साम्राज्य के प्रति विद्रोहियों की अग्नि भी सदा के लिए शान्त हो जायगी'—नाटक की करुणा शान्ति में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार 'प्रसाद' के प्रयोग का व्यापक प्रभाव प्रतिक्रिया-जन्य इन नाटकों में भी परिलक्षित होता है, न केवल भावुकता के क्षेत्र में पर नाटकीय अन्त के सम्बन्ध में भी।

हिन्दी-नाट्य-क्षेत्र में युगप्रवर्तक नाटककार-द्वय 'भारतेन्दु' और 'प्रसाद' का विवेचन प्रसङ्गवश हो चुका है। अब हिंदी-नाट्य-साहित्य पर इनके उपकार का अवलोकन करें। भारतेंदु ने हिंदी-साहित्य में मौलिक नाटक रचना कर हिंदी में नाटकों का सूत्रपात किया तथा साथ ही संस्कृत, बंगला तथा अँगरेजी के नाटकों के अनुवाद से युग को प्रेरित किया। उन्होंने परिमार्जित और व्यवस्थित गद्य का प्रयोग कर न केवल गद्य-भाषा के भावी रूप और विकास की सूचना दी, पर साहित्य को नवीन विषय भी दिये। उनके प्रयत्न के फल-स्वरूप उनके जीवनं-काल में उनके अन्य समसामयिकों ने उनसे प्रेरणा ग्रहण कर अनेक नाटकों

...नारायण चौधर... तोताराम, अंबिकादत्त व्या... आदि सब नाटककार हरिश्चन्द्र... हैं। रामकृष्ण वर्मा ने बंगला के... प्रस्तुत किये। हरिश्चन्द्रकाल में ...ा विश्व विद्यालय नाट्य-कला का अपूर्व विकास ... को एक पढ़ाने नाट्य-साहित्य में प्राचीन भारतीय नाट... इस कार्... प्रभाव, कविता का चमत्कार, अलंकार-मय भाषा, प्रसार, अभिनय-कला तथा नाटकीय-वृत्तियों (उदाहरणार्थ 'चन्द्रावली' नाटिका में कैशिकी वृत्ति) का विकास दृष्टिगोचर होता है।

भारतेन्दु के नाट्य-साहित्य में हमें मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, आन्तरिक संघर्ष, भावोन्माद, कथोपकथनों की उपयुक्तता तथा नाटकीयता और चरित्रों की दुर्बोधता आदि सब गुण यथार्थ मात्रा में चाहे न प्राप्त हों, पर इससे नाट्य-साहित्य पर उनके उपकार में किसी प्रकार की कमी नहीं पड़ती। नाटक-रचना के उद्भव-काल में हम विकास की महान् विशेषताओं के पाने की आशा नहीं करते। अङ्गरेजी के रोमेन्टिक ड्रामा तथा राय के नाटकों के प्रभाव-स्वरूप जो भावोन्माद हिन्दी नाट्य-साहित्य में आया और जिसका पूर्ण प्रभाव 'प्रसाद' के कथोपकथनों और गीतों में दिखाई पड़ता है वह इस काल में स्वाभाविकता दुर्लभ ही है। तथापि भारतेन्द्र के नाटक अभिनेय हैं और नाटकों के सूत्रपात और विकास की दृष्टि से, विषयों की नवीनता और अनेक रूपता की दृष्टि से, गद्य के प्रवर्तन और परिमार्जन की दृष्टि से नाटक क्षेत्र में उनकी प्रतिभा और प्रेरणा की दृष्टि से अनूदित तथा मौलिक नाटकों की महत्त्वपूर्ण देन की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य पर भारतेन्दु का उपकार सदैव स्मरणीय रहेगा।

भारतेन्दु के पश्चात् नाटकों का धारा-प्रवाह अवरुद्ध हो गया। कारण स्पष्ट हैं—एक तो हरिश्चन्द्र जैसे युग-प्रवर्तक कवि और नाटककार का लोकान्तरगमन,

(शेष पृष्ठ १६६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी कविता में शृङ्गार रस

श्री सत्येन्द्र, एम० ए०

...शोध में प्रवृत्त हुआ तो उसने ... भी पहचान लिया। रस ही काव्य आत्मा है। रस की संस्थिति से ही काव्य यथार्थ ...र्थक होता है देव ने कहा है:

...य सार शब्दार्थ कौ, रस तिहि काव्या सार।

संसार के समस्त साहित्य में काव्य की इससे ऊँची परिभाषा नहीं हो सकी। रस नौ माने गये हैं। उन रसों में शृंगार रस सबसे प्रथम और सबसे प्रमुख रस है। भारतीय आचार्यों ने गम्भीर विचार के उपरांन्त यह माना है कि शृंगार रस रसराज है। रसों का राजा है। शास्त्रीय दृष्टि से तो यही वह रस है जिसमें सभी संचारी आ सकते हैं। इन तेतीस संचारियों में से शृंगार रस के अतिरिक्त अन्य रसों में कुछ गिनती के ही संचारी आ सकते हैं। देव ने तो शृंगार रस को समस्त रसों का मूल माना है:

नव रस मुख्य शृंगार महँ,
उपजत विनसत सकल रस।
ज्यों सूक्ष्म थूल कारन प्रगट,
होत महाकारन विवस।

शृंगार रस में रचना की प्रेरणा हिन्दी को उसके पूर्व की संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की दीर्घ परम्परा से थाती के रूप में मिली है। उसको हिन्दी ने विशेष मनोयोग, मेधा और मौलिक उद्योग से पाला पोसा है, फलतः हिन्दी में शृंगार रस का एक प्रमुख स्थान होगया है। शृंगार रस की आन्तरिक सरसता में हिन्दी काव्य के प्रत्येक अक्षर को सरस, कोमल, मृदु मधुर और सजीव कर दिया है।

शृंगार रस का सम्बन्ध सृष्टि के दो मूल महान् जीवन तत्वों से है। एक है सौन्दर्य दूसरा है प्रेम। सौन्दर्य के सम्बन्ध में अंग्रेजी के महाकवि कीट्स की ये अमर पंक्तियां यथार्थ और सत्य हैं कि सौन्दर्य की एक एक वस्तु अनन्त आनन्द प्रद है। सौन्दर्य का सम्बन्ध रूप विधान से है। यह दृश्य है। रूप दर्शन से जब सौन्दर्य की अनुभूति होती है तो भाव जाग्रत हो जाते हैं। ये भाव प्रेम में परिणत हो जाते हैं। सौन्दर्य की अनुभूति से प्रेम जाग्रत होता है। प्रेम सौन्दर्य का ही प्रतिरूप है। भारतीय काव्य में इन दोनों के आकर्षण संभोग की क्रिया प्रक्रिया को व्यक्त करने के लिये एक शब्द चुन लिया है.... वह शब्द है रति। रति शृंगार रस का स्थायीभाव है। रति की स्थिति के लिये आलम्बन विभाव में नायक और नायिका अवलम्ब और आश्रय माने गये हैं। इस रस में ये आलम्बन और आश्रय परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। अवलम्ब सौन्दर्य का पात्र है तो आश्रय प्रेम का। सौन्दर्य भाव वस्तु है, प्रेम भाव है।

हिन्दी में अवलम्ब और आश्रय की दृष्टि से शृंगार रस सम्बन्धी रचनाओं का विश्लेषण किया जाय तो यह स्पष्ट विदित होगा कि सौन्दर्य पक्ष अथवा अवलम्ब पक्ष में बाह्य रूप वर्णन और नख शिख का विकास हुआ।

रूप विधान में आकृति, भूषा, अलंकार, चेष्टाओं, हाव, भाव, तथा मुद्राओं और अंग प्रत्यंगों का वर्णन हुआ है।

आकृति वर्णन में कवियों ने यदि भक्त हुए तो नख से शिख तक अन्यथा शिख से नख तक का रूपांकन किया है। शिख से नख तक शरीर में मिलने वाले प्रत्येक अंग प्रत्यंग की शोभा और उसका सौन्दर्य अलंकारों के द्वारा चित्रित करने का उद्योग किया गया है। ऐसे रूप विधान के अलंकारों के लिये उपादान प्रकृति से लिये गये हैं। देखिये सूरदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधा का नख शिख किस अलंकार योजना के साथ प्रस्तुत कर रहे हैं :

राजति राधे अलक नली री
मुकुता मांग तिलक पन्नगि नासि,
सुत समेत मधु लेन चली री
कुंकुम आड श्रवन जल श्रम मिलि,
मधु पीवत छवि छींट अली री
चारु उरोज ऊपर यों राजत,
अरुझे अलि कुल कमल कली री
रोमावलि त्रिबली पुर परसत,
बंस बढै नट काम बली री
प्रीति सोहाग भुजा सिर मंडन,
जघन सघन विपरीत कदली री
जावक चरन, पंच सर नायक,
समर जीति लै सरन चली री
सूरदास प्रभु को सिख दीन्हो,
नख सिख राधे सुखनि फली री ॥

मणिधारी सर्प, मधु पायी भ्रमर, अलिकुल संवलित कमल कली, कदली आदि प्रकृति के उपमान हैं, जिन्हें यथा क्रम व्यवस्थित करके कवि ने राधा के रूप को हृदयंगम कराया है। पद्मावत प्रेमगाथा प्रबन्ध काव्य के रचयिता जायसी ने नख शिख का वर्णन खूब डट कर किया है। एक एक अंग के लिये वे जितनी भी सम्भव उक्तियाँ जुटा सके हैं सभी का उल्लेख कर देने की चेष्टा उनमें मिलती है। माँग के इस वर्णन को लिजिये :

बरनी मांग सीस उपराहीं
सेंदुर अबहिं चढा जेहिं नाहीं
बिन सेंदुर अस जानहु दीआ
उजियर पंथ रैनि महँ कीआ
कंचन रेख कसौटी कसी
जनु घन महँ दामिनि परगसी
सुरुज किरिन जनु गगन बिसेखी
जमुना माँझ सुरसुती देखी

...ी प्रकट की जाती।
...हित्य रत्न-भण्डार ...

करवत लेह बेनी...

यह अंग प्रत्यंग वर्णन ... की प्रवृत्ति रीतिकाल में जब स्... हुई तो नेत्र, अलक, तिल आ... विश्व विद्यालय की रचना हुई। एक एक अंग के ... को एक पढ़ाने से अद्भुत उक्तियाँ, दूर की सूझ ... इस कार्... इनमें क्रीडायें करती हैं। मुबारक के अलक दोहे देखिये :

अलक मुबारक तिय वदन, उलटि परीयो साफ
खुश नसीब मंशी मदन, लिख्यौ काँच पर काफ

रूप विधान की दृष्टि से सूर ने कृष्ण और राधिका के जो चित्र प्रस्तुत किये हैं वे विशद हैं और अद्वितीय हैं। उनमें रूप योजना के साथ भूषा और अलंकारों की भी संयोजना है। समस्त वर्णन कृष्ण अथवा राधा का सजीव चित्र प्रस्तुत कर देता है। जायसी की रूप योजना में हमें उक्ति और सूझ का प्राधान्य मिलता है, उसमें रूप सौंदर्य तो पीछे पड़ जाता है जगत् का वैविध्य और विराट् उक्ति और उपमानों के सहारे उतरने लगता है। तुलसी भी रूप संविधान में पीछे नहीं रहे हैं। उन्होंने ऐसे प्रत्येक वर्णन को अपने प्रबन्ध कौशल के अनुकूल रखते हुए भाव संपृक्त रखने में सफलता प्राप्त की है। 'सिय मुख समता पाव किमि चन्द्र वापुरो रंक' में सीता की मुखाकृति के सौन्दर्यांकन का प्रयास है। तुलसी ने अपने समस्त रूप वर्णन को, नख शिख वर्णन को, विशद तो किया है साथ ही कथा को आवश्यकता की सीमा के भीतर ही रखा है। रीति काल से पूर्व के कवि के समक्ष इस रूपधारी व्यक्ति का नाम रूपात्मक व्यक्तित्व था, वह राम, कृष्ण, सीता, राधा में से था। रत्नसेन पद्मावती में से कोई था। उन जैसा ही कोई नामधारी हो सकता था रीतिकाल में यश नामरूप लुप्त हो गया, या नाम मात्र को रह गया। अब तो नायक और नायिका का साधारण भाव ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...का यह ... में कवि ... गुण की विभिन्न ... आवश्यकता नहीं रह ... में गुण की ... विस्मयकारी सौन्दर्य का ...

...हवावन नाइनि,
... सूधे सुभाइन।
... उतै उबटैबे को,
...र से अंग की सुखदाइन।
...सरूप की रासि निहारत,
...पाँय ते सीस लौं सीस ते पांइन।
...है रही ठौर ही ठाडी ठगी सी,
हंसे कर ठोडी दिये ठकुराइन॥

यह तो प्राचीन कवियों के रूप वर्णन की साधारण शैली रही। आधुनिक हिन्दी कवियों ने शुद्ध सौन्दर्य वादिनी दृष्टि के साथ रूप का अवांछनीय वर्णन अपने काव्यों में प्रस्तुत किया है। जयशंकर प्रसाद जी की कामायनी में श्रद्धा का यह सौन्दर्य दर्शनीय है :

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ बन बीच गुलाबी रंग।

प्राचीन कवि उपमानों को गूँथ कर रूप में विलक्षणता भर देते थे। आधुनिक कवि उपमानों की विलक्षणता के साथ रूप सौन्दर्य के चित्र को रंगीन तूलिका से यथावत् चित्रित करके, उसमें काव्य का स्पन्दन भी उत्पन्न कर देता है।

मुद्रायें और हाव भाव इस रूप सौन्दर्य की विशेष झांकी कराने के बड़े प्रबल साधन हैं। हिन्दी के कवियों ने इसमें अद्भुत कौशल प्राप्त किया है। राधा ने कृष्ण की बांसुरी चुरा ली है इसी बहाने कृष्ण से वह कुछ बातें करने का आनन्द प्राप्त करना चाहती है... इस सम्बन्ध में उसकी चेष्टाओं का बिहारी ने कैसा चलचित्र दिया है :

...तरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
भौंह हंसे, सौहनि करै, देन कहै नटि जाय॥

यह तो कृष्ण को छेड़ने के लिये चेष्टायें की गई हैं। कवि पद्माकर ने एकान्त में एक नायिका की एक मुद्रा का चित्र दिया है। वह इसलिये देखने योग्य है कि कवि ने कैसे प्रत्येक अंगभङ्गी का साक्षात् चित्र प्रस्तुत कर दिया है—

आई खेलि होरी घरै नवल किसोरी कहूँ,
बोरी गई रंग में सुगन्धनि झकोरै हैं।
कहै पद्माकर इकन्त चलि चौकी चढ़ि,
हारन के बारन ते फन्द चन्द छोरै हैं॥
घाँघरे की घूमनि सु ऊरुज दुबीचै दाबि,
आँगी हू उतारि सुकुमारि मुख मोरै है।
दंतनि अधर दाबि, दूनरि भई सी चालि,
चीधर पचौवर कै चूनरि निचोरै है॥

आश्रय पक्ष में हिन्दी कवियों ने नायक और नायिकाओं के विविध स्वभाव और गुणों के आधार पर उनका वर्गीकरण करके उनका चित्र दिया है। इसका यथार्थ परिपाक आश्रय में ही प्रतीत होता है। अतः संचारी और अनुभावों का संचार भी आश्रय में परिस्फुट मिलता है।

नायक नायिकाओं के निरूपण में हिन्दी के रीतिकालीन कवियों ने विशेष प्रवृत्ति दिखाई है। रीतिकाल से पूर्व के कवियों में भी नायिका-निरूपण का अभाव नहीं। प्रबन्ध काव्य लेखक को तो महाकाव्य के चरित्र की दृष्टि से नायिका का वर्णन किसी विशेष दृष्टि से करना पड़ा है। पद्मावती पद्मिनी नायिका हैं। नागमती और पद्मावती दोनों ही स्वकीया हैं। सूर के काव्य में विविध नायिकायें मिल जाती हैं। परकीया नायिका का भी अभाव नहीं है। वैष्णव सम्प्रदाय के राधाकृष्ण उपासकों ने वस्तुतः श्रृङ्गार रस का धार्मिक और मनोवैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करके उसे धर्मतः शास्त्रीय दृष्टि से बहुत ऊँचे धरातल पर पहुँचा दिया। नायिका और नायक का वर्गीकरण वस्तुतः प्रेम के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध रङ्ग और गहराई का वर्गीकरण है। यही सफलता का सिद्धान्त सिद्ध होता है। नायक अथवा नायिका अपने स्वभाव के अनुसार प्रेम का ग्रहण करते हैं। तभी यहीं आकर यह प्रश्न प्रस्तुत हुआ कि स्वकीया का प्रेम या परकीया का प्रेम।

अतः यह स्पष्ट है कि प्रेम की मान्यता का मूल्याङ्कन ही नायक नायिकाओं के विविध विभेदों का कारण बना है। यह प्रवृत्ति इतनी सूक्ष्मता की ओर बढ़ी है कि हिन्दी में देव ने नायिकाओं की संख्या ३८४ तक पहुँचा दी। ये भेद जाति, कर्म, वय, अवस्था, स्वभाव, गुण यहाँ तक कि स्थल भेद पर भी निर्भर करते हैं। इन सब पर यहाँ सरसरी दृष्टि से भी विचार नहीं किया जा सकता। शृङ्गार रस के आश्रय विधान में निश्चय ही इसका महत्वपूर्ण स्थान है और कुछ महाकवियों के नायिका वर्णन तो साहित्य की अमूल्य निधि हैं। हरिश्चन्द्र की एक स्वकीया मुग्धा नायिका के इस दर्शन का आनन्द लीजिये—

सिसुताई अजौं न गई तनतैं,
तऊ जोवन जोति बटोरै लगी।
सुनि कै चरचा हरिचन्द की कान,
कछूक दै भौंह मरोरै लगी॥
बचि सासु जेठानिन सों पिअते,
दुइ घूँघट में हम जौरै लगी।
दुलही अलही सब अंगन तें,
दिन द्वै ते पिऊस निचोरै लगी॥

इस प्रकार हिन्दी कवि सौन्दर्य और प्रेम का अवलम्ब और आश्रय के प्रतिफलन कर आलम्बन विभाव का विकास करता है। पर इससे तो सृष्टि का बीजारोपण होता है। इसके परिपाक के लिये उसे उद्दीपन विभाग को और परिपुष्ट करना होता है। शृङ्गार रस के उद्दीपन में हिन्दी कवियों ने प्रकृति की उद्दीपक स्थितियों के चित्र दिये हैं। ये उद्दीपन संभोग शृङ्गार में सुखदायक होते हैं और आनन्द वृद्धि करते हैं। वही उद्दीपन वियोग शृङ्गार में दुख-...क होते हैं। दोहर... में उद्दीपनों की इस विरोध... है। गोपियाँ ऊधो से कह रहीं...

बिनु गुपाल...
तब ये लता लगति अति सी...
अब भई विषम...
वृथा बहति जमुना, खग बोलत,
वृथा कमल फूले अलि गु...
पवन, पानि, घनसार सजीवनि,
दधिसुत किरन भानु भई भुञ्जें।
ए ऊधौ, कहियो माधव सौं,
बिरह करद कर मारत लुञ्जें।
सूरदास प्रभु कौ मग जोवत,
अँखियाँ भईं बरन ज्यों गुञ्जें॥

हिन्दी कवियों ने वियोग शृङ्गार ही नहीं लिखा, संयोग शृङ्गार भी उनका प्रमुख विषय रहा है। रसखान की एक रचना देखिये :—

छूटौ गृह काज लोक लाज मनमोहनि कौ,
मोहन को छूटि गयौ मुरली बजायबौ।
अब 'रसखान' दिन द्वै में बात फैलि जैहै,
सजनी कहाँ लौं चन्द्र हाथन दुरायबौ
कालि ही कालिन्दी तीर चितये अचानक ही।
दोहुनि की ओर दोऊ मुरि मुसिकायबौ।
दोऊ परैं पैयाँ दोऊ लेत हैं बलैया,
उन्हें भूलि गई गैयां उन्हें गागरि उठायबौ।

उद्दीपन किसी भी रस के परिपाक की पृष्ठभूमि में रहते हैं। वे रस के अंकुर को अथवा चिनगारी को और अधिक उत्तेजित करते हैं, और सौन्दर्य विधान के परिपोषण में एक तत्त्व का भी काम करते हैं। उद्दीपन में चन्द्रमा और उसकी चन्द्रिका, बसन्त ऋतु, कोकिल और उसकी कूक, भ्रमर की गुञ्जार, नदी का तट, सरोवर, चातक, शुक, सारिका, कमल बन, कुँज, वृक्ष समूह, शीतल उपचार, ऐश्वर्य और विलास की सामग्रियाँ आदि का विशेष वर्णन रहता है। ऋतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...का यह अनु... ...के ... ...गुण की विभिन्न ... रस को मानव के ...यों में गुण की ... अभिव्यक्ति बना दिया है। ...देनी ... विभाव के दोनों रूप आल-... ...रखते हैं। संचारी भाव मनः ...मुद्रायें हैं। सात्विक भाव ...शायें हैं। श्रृङ्गार रस के सौन्दर्य में ये आन्तरिक सहयोग प्रदान करते हैं।

...ङ्गार रस के निरूपण में अनुभावों का उल्लेख ...आवश्यक है। अवलम्ब पक्ष में रसाप्त की ...ष्टायें होती हैं वे हाव भाव हेला आदि नामों से ...कारी जाती हैं। आश्रय पक्ष में भी रसानुभूति से ...शारीरिक चेष्टायें उत्पन्न हो जाती हैं। ये रस की अभि-व्यक्ति में सहायक होती हैं। भृकुटि विलास, भुजाक्षेप, आलिंगन आदि कितनी ही कायिक, वाचिक एवं मानसिक चेष्टायें अनुभाव के अन्तर्गत आती हैं।

साकेत में उर्मिला के पास लक्ष्मण आकर खड़े हो गये हैं उस समय उर्मिला में प्रेम का विकास अनुभावों द्वारा कवि मैथिली शरण ने यों प्रकट किया है :—

प्रीति से आवेग मानो आ मिला।
और हार्दिक हास आँखों में खिला॥
मुस्करा कर अमृत बरसाती हुई।
रसिकता में सुर सरसाती हुई॥
उर्मिला बोली....

इस हास्य के अंत में हमें नायक की ओर से रसाभिव्यक्ति के एक अनुभाव का चित्र मिलता है।

हाथ लक्ष्मण ने तुरन्त बढा दिये
और बोले एक पर्यरसण प्रिये
सिमिट सी सहसा गयी प्रिय की प्रिया
एक तीक्ष्ण अपांग ही उसने दिया

...ने किया
आदि ही फिर प्रणय अपना ले लिया।

एक कविने तो नायिका सौन्दर्य विन्यास को संभालते संभालते इतना रस विकल कर दिया है कि महावर लेकर पैरों में लगाने को सन्नद्ध हो गया है।

द्वै मैं रस बस लाल लाई है महावरि को
दीके कों निहारि रहे चरन ललित हैं।
चूमिकें हाथ नहि के लगाई रही आँखिन सों
एहो प्राननाथ यह अति अनुचित है।

यह हिन्दी के रसवादी कवियों की श्रृङ्गार रस विधान की स्थूल रूप रेखा है। इसमें यह सिद्ध होता है कि रस परिपाक में हिन्दी कवियों ने प्रेम और सौन्दर्य के प्रत्येक पहलू को लिया है और उसमें गहरे बैठे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि श्रृङ्गार रस बहुत सुकुमार रस है। यह एक ओर ब्रह्मत्व की अनुभूति से प्रोज्जवल है और दूसरी ओर मानव की मलिनता और अश्लीलता की कीचड़ में समाया हुआ है। तभी कवि ने यह स्पष्ट कर दिया था कि :—

तंत्री नाद कवित्त रस सरस रास रस रंग,
अन बूढे बूढें तरे जे बूढे सब अंग।

वस्तुतः इसकी गहनीयता व्यवहार पक्ष के कारण है। रस दृष्टि से इसमें मलिनता वहीं है जहाँ इसका समुचित परिपाक नहीं हो सका। जो कुछ भी हिन्दी कवि ने इसकी ऊँचार्य से आतंकित हुआ है। न इसकी कालीनता से भयभीत। उसने इस रस पर खूब लिखा है। श्रृङ्गार रस की दृष्टि से ही यदि हिन्दी साहित्य की परीक्षा की जाय तो हम समस्त हिन्दी साहित्य को तीन भागों में बाँट सकते हैं। पूर्व रीति कालीन श्रृङ्गार रस, रीति कालीन श्रृङ्गार रस और आधुनिक काल। पूर्व रीति कालीन काव्य ने श्रृङ्गार के सौन्दर्य विधान को भगवान का साधक बना दिया। उसमें आध्यात्मिक अनुभूति प्रवल हो उठी है। उसके मर्त्य मूर्त अंकने ये भी अमर्त्य और अमूर्त ने अपना व्यापक स्थान बना रखा है। रीति कालीन श्रृङ्गार रस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व कालीन श्रृङ्गार की आध्यात्मिकता की भी रक्षा नहीं कर सका न तत्कालीन उद्दम ऐन्द्रिकता की ही। आधुनिक काल ने प्राचीन की समस्त थाती को दादुर वृत्ति बता कर दुत्कार दिया। नये उमेष में नय कविता नये सौन्दर्य विधान की चेष्टा करने में ये प्रवृत्त हुए पर श्रृङ्गार के उस शव पास से मुक्त न हो सके। प्रकृति को उन्होंने प्रेयसि का रूप दिया और उस पर मुग्ध हो गये। उसके अन्तः सौन्दर्य को देखने के लिये रहस्य में भी ये कवि कूदे पर आज आलोचकों का कहना है कि ये रसवादी कवि नये मन की कुंठा से विवश थे। उसमें डूबने की चेष्टा कर रहे थे। जो कुछ भी हो इन कवियों ने शास्त्रीय ज्ञान की चिन्ता न की। इन्होंने अवलंब बनाया प्रकृति को। वह नायिका होगयी। ये कवि स्वयं नायक अथवा आश्रय हो गये। प्रकृति प्रेयसी के मनोरम और कोमलतम चित्र इन्होंने खींचे हैं। ... दृग वंद किये।

तरुणी रूप में जुही की ... नायिका से कम है ? ऐसे अने... युग में मिल सकते हैं। इ... विश्व विद्यालय संचारी का शास्त्रीय दृष्टि से सब को एक पढ़ाने सब सौन्दर्य विधायक तत्व में भी मि... कार्य और मिल जाते हैं वे नयी संश्लिष्ट कल्पना से प्र... की सद्यता से स्फूर्ति बन कर और कभी कभी ... आवेगों से अतिमांसल बन कर। हिंदी का श्रृंगा... रस काव्य के लिए एक महान देन है। और अपनी दीर्घ परंपरा से परिपुष्ट है।

(शेष पृष्ठ १६० का)

दूसरे नवीन मार्ग-प्रदर्शक किसी दूसरे अत्यन्त प्रतिभाशाली नाटककार का अभाव तथा साथ ही एक और शक्तिशाली कारण, रंगमञ्च का अभाव। इन कारणों से भारतेन्दु-काल में प्रवाहित धारा लुप्त हो चली। द्वितीय उत्थान अनुवादों का युग था जिसमें संस्कृत, अँगरेजी और बंगला के नाटकों के अनुवाद हुए। तृतीय उत्थान में जयशङ्कर 'प्रसाद' की सर्वतोमुखी प्रतिभा तथा विशेषकर कवित्व और नाटकीय पर्य्यवेक्षण के सम्मुख उल्लिखित बाधाएँ न ठहर सकीं और लुप्त-प्राय धारा का प्रवाह समस्त वेग के साथ बह पड़ा। भारतेन्दु के नाट्य-साहित्य का बहुत ही विकसित और समृद्धिशाली रूप 'प्रसाद' के नाट्य-साहित्य में दिखाई पड़ता है। भारतेन्दु-काल के विवेचन में परिगणित अभावों का पूर्ण निराकरण 'प्रसाद' के नाटकों में हुआ। उनके नाटकों में भारतीय-इतिहास का जो पुनुरुत्थान हुआ है, प्राचीन संस्कृति के जिन उज्जवल चित्रों की अवतारणा हुई है, इतिहास के साथ जिस कवित्व और दार्शनिकता का योग हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनके नाटकों में अन्तर्विरोध की प्रधानता अवश्य है चरियांकन को प्रथम स्थान दिया गया है। शील-वैचित्र्य दर्शाया गया है। कुछ चरित्रों (उदाहरणार्थ मागंधी, सुरमा, विजया) की सृष्टि तो कौतुक-प्रदर्शन के लिए ही की गई है परन्तु रस-विधान का लक्ष्य विस्मृत नहीं हुआ। इस दृष्टि से 'प्रसाद' के नाटक साहित्य की चिरंतन सामग्री हैं। आधुनिक नाट्य-साहित्य उनकी प्रतिभा तथा व्यक्तित्व से प्राणान्वित है। समस्या-नाटकों में जो भावुकता पाई जाती है वह 'प्रसाद' का प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त प्रमाण है। ऐतिहासिक नाटकों में तो उनका प्रवाह निर्विवाद है। उनके पश्चात् आज भी हिन्दी-नाट्य-क्षेत्र में वैसे प्रतिभाशाली नाटककार का स्थान रिक्त ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकथा

(...ो०, एम० आर० ए० एस०)

...हाँ प्रबन्ध-काव्य के ...आचार्यों ने साहित्यिक ...otifs) का स्पष्ट शब्दों में ...न जाने क्यों यह कहना भूल ...यण, महाभारत आदि की ...होना चाहिए, सम्भवतः 'इति... वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्'* तथा 'क्वचिन्निन्दा ...सतां च गुणकीर्तनम्'† कह देने से ही उन्होंने ...कर्तव्य की इतिश्री समझी हो। प्राचीन प्रबन्ध-...व्यों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ...पि आचार्यों ने इस प्रकार का कोई उद्देश्य निश्चित ...हीं किया था, फिर भी कविवर अप्रत्यक्ष रूप से इस ...यम का पालन करते थे कि जनता की सर्वप्रिय ...थाओं—रामायण और महाभारत के प्रसङ्गों से ...नका काव्य वंचित न रह जावे। यदि उत्तरकालीन ...स्कृत साहित्य से ही उदाहरण लिये जावें तो कालि-...दास का सर्वप्रसिद्ध काव्य 'रघुवंशम्' माघ का लोक-विख्यात काव्य 'शिशुपालवधम्' तथा भारवि का तत्प्रतिद्वन्द्वी काव्य 'किरातार्जुनीयम्' इस नियम का प्रत्यक्ष पालन करते हैं क्योंकि इनमें कथावस्तु भी इन महाकाव्यों (Epics) से ली गई है। बाण कवि की 'कादम्बरी', सुबन्धु की 'वासवदत्ता' तथा कालिदास के 'मेघदूतम्' आदि में यद्यपि कथावस्तु कल्पित है, फिर भी अलङ्कार रूप में इन महाकाव्यों की महा-कथाओं का पर्याप्त निर्देश मिलता है। किन्तु समय के साथ परिवर्तन हुआ और संस्कृत के स्थान पर प्राकृत काव्यभाषा होगई तथा साथ ही साथ कवियों के आदर्श भी 'संस्कृत' न रहकर 'प्राकृत' रह गये—वे 'प्राकृत जन गुन-गाना' में थोड़ा भी संकोच न करते थे। फिर एक खलबली का अशान्तिपूर्ण युग चलता रहा जिसमें एक ओर तो 'षट्भाषाओं' का पारस्परिक मिश्रण था। दूसरी ओर रसद्वय का अपूर्व सम्मेलन; कवि लोग यह भी न निश्चय कर पाते थे कि उनको युद्ध करना चाहिए या काव्यरचना। अस्तु, हिन्दी कविता का यह प्रारम्भिक युग गम्भीरता का कोई परिचय नहीं देता; जितना अव्यवस्थित समाज का व्यवस्थित प्रतिबिम्ब इस काल की साहित्यपरम्परा में मिलता है उतना शायद आजकल के वादग्रस्त कवियों में भले ही हो, भारतीय साहित्य में पहिले कभी न दिखलाई दिया था।

भक्तिकाल के प्रारम्भ होते ही साहित्य में फिर गम्भीरता दिखलाई पड़ने लगती है और साहित्य का इतिहास लिखने वाला अकस्मात् चमत्कृत होकर देखता है कि इस काल की चार शाखाओं ने चार विभिन्न मार्गों का पूर्ण अनुशीलन करके जनता को इहलोक तथा परलोक को सुधारने के प्रशस्त मार्ग बत-लाने का पूर्ण सफल प्रयत्न किया। इनमें से दो शाखाएँ तो क्रमशः राम और कृष्ण को आदर्श मान-कर भारतीय परम्परा को नवीन रूप में दिखलाती हुई चल रही थीं, शेष दो भी (यद्यपि इनके प्रवर्तक अहिन्दू थे) भारतीयता का सहारा लेकर ही अपने 'मजहब' का प्रचार करती थीं। कबीर यद्यपि—

> दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।
> राम नाम का मरम है आना॥

कह कर 'राम' शब्द का कोई 'आना' अर्थ लगा रहे थे, फिर भी उनको यह ज्ञात था कि इस 'राम नाम' का आश्रय लिए बिना उनका 'मरम' कोई भी न जानना चाहेगा; अस्तु। उन्होंने 'उपदेशयुजे' का यह

---

* साहित्य-दर्पण—कथावस्तु या तो इतिहास प्रसिद्ध हो या सज्जनों में (६ परिच्छेद) आश्रित (प्रचलित)।

† सा० द०—कहीं-कहीं पर दुष्टों की निन्दा और सज्जनों का गुण गान होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नया ढङ्ग निकाल दिया कि 'राम' को लोगों के सामने से न हटाया जावे केवल उस 'राम नाम' का अर्थ ही बदल दिया जावे। अस्तु,

अब प्रस्तुत प्रसङ्ग पर आने के लिए जायसी की ग्रन्थावली पर विचार करना चाहिए। यह तो कथावस्तु का नाम जानकर ही पता लग जाता है कि 'पद्मावत' 'अखरावट' या 'आखिरीकलाम' में उन महाकाव्यों—रामायण तथा महाभारत—की किसी भी कथा या अन्तःकथा को आधार नहीं माना गया। हाँ, 'क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्' को स्वीकार करते हुए नल-दमयन्ती, ऊषा-अनिरुद्ध, बलि, विक्रम तथा राम-रावण का निर्देश कवि ने अवश्य किया है—

१—विक्रम धँसा प्रेम के बारा।
सपनावति कहँ गयउ पतारा॥

❀ ❀ ❀

ऊषा लाग अनिरुद्ध वर बाँधा।
२—बलि विक्रम दानी बड़ कहे। (७)
३—जैस दसंतहि साकुन्तला।
मधवानलहिं कामकन्दला॥
भा बिछोह जस नलहि दमावति।
मैना मूँदि छपो पदमावति॥ (८६)

अब यह देखना चाहिए कि अलंकार-रूप में रामकथा "पद्मावत" के किन-किन स्थलों पर आई है। दो स्थलों पर सादृश्यमूलक अलंकारों का आश्रय लेकर कवि ने इस कथा की ओर संकेत किया है। उदाहरण के लिए—

"जुरी राम-रावन कै सैना।
बीच समुद्र भए दुइ नैना॥ (५३)

(नायिका की बरुनी मानो राम और रावण की एक दूसरी के आमने-सामने खड़ी हुई सेना हैं, जिनके बीच दीर्घ लोचन वह समुद्र है जिसका राम ने सेतु बाँधा था)।

कहाँ लोचन और कह...
को राम-रावण की से...
स्थल पर :—

"लंका बुझी आगि ...
यह न बुझाइ आँच...

में व्यतिरेक अलंकार द्वारा वि... कार्य... शयतापूर्ण जो व्यञ्जना की गई है उसमें "लं... शब्द के प्रयोग द्वारा कोई विशेषता नहीं ... अस्तु, सादृश्यमूलक अलंकार का आश्रय ले... रामकथा की चर्चा न होने के ही सामान है, क्योंकि उससे किसी विशेषता का उद्भव नहीं होता।

अब अलंकाररूप से रामकथा की चर्चा की दूसरी प्रणाली का अवलोकन कीजिए। 'राम', 'सीता' और 'अयोध्या' इन तीन इतिहास प्रसिद्ध नामों का लाक्षणिक अर्थों में प्रयोग करके कवि ने कुछ सादृश्यमूलक अलंकारों की अपेक्षा अधिक चमत्कार उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। रत्नसेन की मृत्यु पर—

"गढ़ सौंपा बादल कहँ, गए टिकठि बसि देव।
छोड़ी राम अजुध्या, जो भावै सो लेव॥" (२६५)

कहकर कवि ने "राम" और "अजुध्या" को लाक्षणिक अर्थों में क्रमशः "रत्नसेन" और "चित्तौड़" के लिए प्रयुक्त कर मानो नायक के प्रति बड़ी श्रद्धा प्रकट की है। इसी प्रकार आगे चलकरः—

"तौ लगि सो अवसर होइ बीता।
भए अलोप राम और सीता॥" (३००)

इस चौपाई में "राम" और "सीता" का लाक्षणिक अर्थ क्रमशः "रत्नसेन" तथा "पद्मिनी" है; एवं इस लाक्षणिक प्रयोग द्वारा नायक और नायिका में महत्त्व की स्थापना की गई है।

किन्तु इस पुस्तक में इस कथा के कुछ पात्रों का श्लिष्टार्थ बड़ा अनोखा दिया गया है। खोज करने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

... के अर्थ में "राव..." ...) के अर्थ में; "लंका" ... के अर्थ में तथा "लक्ष्मण" ... (शृङ्गार) के अर्थ में श्लिष्ट ... में इस प्रकार के कम से कम ... ङ्कारों (विशेषतः 'श्लेष') पर ... मिलते हैं—

...म अयोध्या अपने, लछन बतीसो संग।
दीप... ...ावन रूप सौं भूलिहि, दीपक जैस पतंग॥"

(२) "हौं रामा तू रावन राऊ।" (३६)

(३) "लंक जो पैग देत मुरि जाई।
कैसे रही जो रावन राई॥" (१४२)

(४) "काल्हि न होइ, रही महि रामा।
आजु करहु रावन संग्रामा॥ (१४८)

(५) "खीन लंक टूटी दुखभरी।
बिनु रावन केहि बर होइ खरी॥" (१७८)

(६) "हुलसी लंक कि रावन राजू।
राम लखन दर साजहिं आजू॥" (१२३)

(७) "ससि-मुँह सौंह खडग देइ रामा।
रावन सौं चाहै संग्रामा॥" (२१२)

ध्यान देने पर इन उदाहरणों में कुछ नई बातें दिखलाई पड़ेंगी—

(क) 'राम" शब्द का श्लिष्टार्थ सर्वदा स्त्रीलिंग का—रामा—है, जिससे पुरुषोत्तम भगवान् राम के प्रति जनता की जो पुरुषार्थ के कारण उत्पन्न होने वाली श्रद्धा है उसको बड़ी गहरी ठेस पहुँचती है। पाठक त्रिलोकसुन्दरी पद्मावती के लिए 'राम' (रामा) शब्द का प्रयोग इसीलिए अनुचित समझता है कि ऐसा करने से 'राम' का महत्व घटता है—हमें उनका 'मदन-मनोहर-वेशम्'* तो अप्रिय नहीं लगता किन्तु यह जननापन भी सह्य नहीं।

(ख) 'रावन' शब्द का श्लिष्टार्थ सदा 'रमण' होने से रावण के पराक्रम तथा असाधारण सर्वगुण-सम्पन्नता का ऐसा रूप दिखलाई पड़ता है जिसके कारण 'रामादिवत् प्रवर्तितव्यम्, न रावणादिवत्'† की पूर्ति की कोई सम्भावना ही नहीं दिखलाई पड़ती—यह समझ में नहीं आता कि कौन 'रामा' (= राम) बनना चाहेगा और कौन 'रमण' (= रावन) बनना न चाहेगा?

(ग) 'लछन' शब्द का प्रयोग केवल शब्द चमत्कार के लिए ही है; श्लिष्टार्थ 'शृङ्गार' होने से 'लक्ष्मण' का गौरव न तो घटता है न बढ़ता है। –

(घ) छठवें उदाहरण का प्रसङ्गानुकूल अर्थ होगा—कमर (लंक) प्रसन्न हुई कि आज राजा रमण (रावण) उस स्त्री (राम) के शृङ्गार (लखन) को लूटते हुए उस कमर की शोभा बढ़ावेंगे। (श्लिष्टार्थ—लंका प्रसन्न हुई कि राम तथा लक्ष्मण आज राजा रावण को नष्ट करके उसे सुशोभित करेंगे)।

विशेष—यह स्पष्ट है कि श्लिष्टार्थ इस प्रकार भी हो सकता है—लंका प्रसन्न हुई कि राजा रावण आज राम-लक्ष्मण को नष्ट करके उसे सुशोभित करेंगे। (कौनसा श्लिष्टार्थ अधिक उपयुक्त है इसका निर्णय हम इस समय पाठकों के ऊपर छोड़ते हैं)।

---

* गीतगोविन्दम्।

† काव्य-प्रकाश—राम के समान हमको कार्य करना चाहिए रावण आदि के समान नहीं। (पृष्ठ ३)

– तुलना कीजिए—

पांडव की प्रतिमा सम देखौ।
अर्जुन भीम महामति पेखौ॥
(रामचन्द्रिका)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तु 'श्लेष' अलङ्कार के इस प्रयोग के अध्य... से यह स्पष्ट होगया कि जायसी ने केवल शब्दों प... खिलवाड़ करने ही के लिए—जातीय परम्परा और जातीय भावों की स्पष्ट अवहेलना करते हुए—'राम' और 'रावन' शब्दों का इतना सदोष प्रयोग किया है कि 'राम' का आदर्शचरित्र एक उपहास का विषय बन जाता है और 'रावण' का घृणोचित चरित्र, इस काव्य में नायक के समकक्ष होने से, आदर्श बन बैठता है।

अंत में हम "पद्मावत" के तीन स्थलों को उद्धृत कर यह बतला देना चाहते हैं कि जायसी ने राम को चरित्र का पतित और रावण के चरित्र को उज्ज्वल चित्रित किया है। रावण की वीरता इन शब्दों में कितनी स्पष्ट दिखलाई पड़ती है:—

"भाट कहा धनि गोरा! तू भा रावन राव।
आँत समेट हाथ करि तुरइ देत है पाँव॥"

(भाट ने प्रशंसा करते हुए गोरा से कहा कि हे गोरा! तू धन्य है, वीरता में तू राजा रावण के समान हो गया, क्योंकि तू ने अपनी बाहर निकली हुई अंतड़ियों को हाथ से इकट्ठा करके घोड़े पर सवार हो युद्ध की तैयारी कर दी) इसे अधिक रावण की और क्या प्रशंसा होगी? यहाँ 'गोरा' उपमेय है और 'रावण' उपमान (=अप्रस्तुत); तब अनुमान लगाइए गोरा की इस वीरता से रावण की उस वीरता का!!

इसके विपरीत राम का ऐसा हास्यास्पद चित्र इस कवि ने खींचा है कि उसमें गंभीरता तो रहती ही नहीं भारतीय जनता के संस्कारों को भी चोट पहुँचती है। पद्मावती के वियोग में विकल रत्नसेन के प्रति ये शब्द यद्यपि एक राक्षस द्वारा कहे गये हैं फिर भी कवि के विचार इसमें छिपे नहीं हैं (यह फिर विचारने की बात है कि किस पात्र का कथन कवि की विचार धारा का द्योतक है, किस पात्र का नहीं)—

"तुही एक मैं बाउर भेंटा।
जैस राम दशरथ कर बेटा॥

...प्रकट की जाती ...
...त्य रत्न-भण्डार ...

एहि समु...

इस कथन में आ... तो भी यह मानना पड़ेगा ... कथन से—जिसके कारण सी... इस कथन में कम व्यंग्य नहीं ...

अन्तिम उदाहरण उस ... रावण के दुर्भाग्य पर दुःख प्रकट ... रहा है कि जब तक सीता रावण के पास तक तो वह उसका (सीता का) भोग कर न युद्ध जीतने तक के लिए स्थगित करता रह... फिर बेचारे का जीवन ही न रहा (और उसकी अभिलाषा अधूरी ही रह गई):—

तौ लगि भुगुति न लेइ सका,
रावन सीय जब साथ।
कौन भरोसे अब कहौं,
जीउ पराये हाथ॥"

(लेखक इस बात को जानता है कि इस दोहे में "रावन" का अर्थ "रत्नसेन" और "सीय" का अर्थ "पद्मावती" है; फिर भी श्लिष्टार्थ वही होगा जो ऊपर दिया हुआ है।)

तो क्या सचमुच जायसी यह चाहते थे कि रावण की इच्छा पूरी हो जाती तो अच्छा था? कोई 'गुनगाहक' भले ही इस छन्द में "रावण की वाटिका में इतने दिन रहकर भी सीता पूर्ण पतिव्रता थीं" इस बात की व्यंजना पाकर जायसी की भूरि-भूरि प्रशंसा कर उठे, किन्तु इतना मानना ही पड़ेगा कि जायसी ने जनता की पूत भावनाओं के विरुद्ध यह 'प्रगतिशील' कदम उठाया है—'राम' और 'सीता' जैसे पात्रों को इतना हीन रूप देना, श्लेष द्वारा ही सही, उनकी 'कान्तासम्मित' निन्दा है। "'पद्मावत' की हस्तलिखित प्रतियाँ अधिकतर मुसलमानों के ही घर में पाई गई हैं" और वह भी केवल फारसी अक्षरों में, कौन कह सकता है कि इसका एक प्रधान कारण भारतीय संस्कारों के प्रतिकूल जायसी की ऐसी प्रवृत्तियाँ ही हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा : एक परिचय

कु० शकुन्तला सक्सेना एम० ए०, विशारद

... न केवल उपन्यासकार हैं, ...यायिका लेखक हैं और दार्श-... ...विवतया ही उनकी प्रस्तुत रचना ...त्मक कवित्व एवं उनकी दार्शनिकता का पुट भी ...ा है। 'चित्र लेखा' को 'समस्या उपन्यास' दी... ...ी अनुचित न होगा। आद्योपान्त उपन्यास एक ...नोरञ्जक एवं सुनहला सा चित्र खींचता चला जाता है—कथावस्तु की रंजकता में पाठक को आत्म-विस्मृति भी होने लगती है। पर साथ ही वह यह भी नहीं भूलने पाता कि लेखक एक पहेली को लेकर चला है जिसे सुलझाना ही उसका उद्देश्य है। पाप और पुण्य सुख और दुःख अनुराग और विराग—ब्रह्म और माया—सब पर ही लेखक के अपने दार्शनिक विचार हैं और लेखक की सफलता भी यही है कि उसके विचार अनायास ही औरों को अपने साथ सहमत कर लेते हैं। यत्र तत्र विचार गांभीर्य एवं दार्शनिकता का समावेश होने पर भी रचना दुर्बोध नहीं होने पाती। साधारण पाठक भी उससे अपना मनोरंजन कर सकता है और मनन-शील पाठक भी अपनी ग्रहण-शक्ति के अनुसार उसमें अधिकाधिक रस पा सकते हैं। लेखक के अपने ही शब्दों में 'चित्रलेखा' की व्याख्या सबसे स्पष्ट है। "..................चित्र लेखा में एक समस्या है—मानव-जीवन को तथा उसकी अच्छाइयों और बुराइयों को देखने का मेरा अपना दृष्टिकोण है—और मेरी आत्मा का अपना संगीत भी है"।

कथावस्तु :—चित्रलेखा पतिव्रता ब्राह्मण-विधवा है। उसके जीवन में एक 'कृष्णादित्य' प्रवेश कर उसके संयम को नष्ट कर देता है और समाज की भर्त्सना के बीच उसे अकेली छोड़ जाता है। उसे आश्रय मिलता है एक नर्तकी का। अतुल-सौन्दर्य की स्वामिनी नर्तकी चित्रलेखा पर समस्त पाटलिपुत्र का उच्चवर्ग पतिंगे की भाँति मर मिटने को अपना सौभाग्य समझता है—पर वही वह नर्तकी होकर भी 'संयम-दीक्षिता' ही रही आती है। और तब कालचक्र-समूह में रह कर भी व्यक्ति से परे रहनेवाली चित्रलेखा के जीवन में एक व्यक्ति को ले आता है—'सामन्त बीजगुप्त'। सुख को जीवन और जीवन को यौवन का आनन्द मानकर—अपने आप को एक रूप में खोकर-विद्वान बीजगुप्त और विदुषी चित्रलेखा बहते चलते हैं। पर अचानक नौका टकरा जाती है। योगी कुमार-गिरि का व्यक्तित्व इन दोनों के जीवन में बवंडर की भाँति उठता है और संसार-सागर में चित्रलेखा और बीजगुप्त पथभ्रष्ट हो प्रथक-प्रथक बहने लगते हैं।

संसार से ऊपर उठा हुआ इन्द्रियजित योगी और संसार में डूबी हुई अटल-आत्मविश्वासिनी नर्तकी—दोनों एक दूसरे से पराजित होते हैं। प्रेमी बीजगुप्त के हृदय में भी यशोधरा को लेकर जीवन को सुखी बनाने की चाह जाग्रत होती है और तभी एक ओर मुड़ता हुआ घटनाचक्र दूसरी ओर घूम जाता है। बीजगुप्त में देवता जाग्रत हो जाता है और वह अपना सारा वैभव अपने सेवक एवं गुरुभाई को देकर 'यशोधरा' को भी उसे दे देता है। संसार को सदा के लिये छोड़ कर जाते हुए बीजगुप्त को अपनी राह में एक रोड़ा सा मिलता है—उसके जीवन का अभिशाप 'चित्रलेखा' और 'भिखारी' अपनी 'निधि' को लेता हुआ आगे बढ़ जाता है। पाठक को सोचना पड़ता है। पापी कौन?"

चरित्र-चित्रण :—उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक नहीं है—जिससे चरित्र-चित्रण सफलता पूर्वक किया जा सका है। जैसा नाम से ही स्पष्ट है—'चित्रलेखा' प्रमुख पात्री है, कथावस्तु उसी के साथ बँधी हुई है। अन्य चरित्र हैं सामन्त-बीजगुप्त-श्वेतांक,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगी कुमार गिरि–विशालदेव, यशोधरा उसके पिता ... मृत्युञ्जय और गुरू रत्नाम्बर। लेखक एक समस्या लेकर चला है—कोई आदर्श स्थापित करना उसका अभीष्ट नहीं इसीलिये हम पाते हैं कि किसी चरित्र को आदर्श-वादी बना देने के फेर में वह नहीं पड़ा है। पापों में अपनी दुर्बलतायें हैं और सबलतायें भी। नर्तकी-चित्रलेखा का हृदय किसी वेश्या का नहीं है और न योगी कुमार-गिरि पत्थर के बने हैं। उपन्यास में वाह्य-संघर्ष नहीं के बराबर है। जितना है वह मानसिक ही, और पात्र उस संघर्ष के थपेड़ों में जिस प्रकार उलझते एवं सुलझते दिखाये गये हैं वह अत्यन्त स्वाभाविक है। चित्रलेखा और कुमारगिरि के एक दूसरे से जीत कर भी हार जाने में वाह्य दृष्टि से विषमता भले ही हो—पर उनके हृदयों का यह सबसे बड़ा सत्य है। बीजगुप्त केवल चित्रलेखा को ही प्यार कर सकता है—पर 'यशोधरा' से वह एक दम अछूता भी नहीं रह पाता। हमें यह सुनकर आश्चर्य नहीं होता कि "चित्रलेखा बिना उसकी इच्छा के ही उसके जीवन से चली जाती है और यशोधरा बिना उसकी इच्छा के ही उसके जीवन में आ जाती है"—क्योंकि जीवन ऐसी वस्तु नहीं जिसे नियमों की शृङ्खला में आबद्ध किया जा सके..............। लेखक को अपनी ओर से कुछ कहना नहीं पड़ा—पात्रों के वार्तालाप और उनके कार्यों से ही हमारे सन्मुख उनका चरित्र-चित्रिण होता चलता है। चित्र धुँधले हों, ऐसा भी नहीं। उनकी सजीवता का यही प्रमाण है कि वे हमारे मानसिक नेत्रों के आगे सजीव से दिखाई पड़ते हैं। बीजगुप्त को अन्य पात्र भले ही देवता कहें पर उसके हृदय की स्वाभाविक विशालता को ध्यान में रखते हुए—उसका त्याग 'देवत्व' नहीं कहा जा सकता।

श्वेतांक को हम जैसा पाते हैं वैसा उसकी परिस्थिति में रहने वाला कोई भी मानव होता, यह असंदिग्ध सा है। हाँ—यशोधरा का भोलापन कुछ अंश तक तो नहीं अखरता। पर आगे चलकर स्वाभाविकता ... प्रकट की जाती ... रत्न-भण्डार ... एक स्पन्दन करत... सरल या भावना-शून्य ब... अनुरूप नहीं लगता और न लक्ष्य की पूर्ति ही करता है। स्थिरता का अभाव खटकता है विश्व विद्यालय स्वरूप को देखने के बाद उनको एक पढ़ाने ... कार्... में नहीं आती। अपनी एकमात्र कन्या ... दत्तक पुत्र पर ही अपनी अतुल धनराशि अर्पि... देने की भावना का भी कारण स्पष्ट नहीं है। प... पात्रों के चित्रण की कुशलता इन त्रुटियों को भी ढ... लेती है यह सच है।

'रत्नाम्बर' सच्चे अर्थ में 'महात्मा' हैं। 'पाप' की पहेली सुलझाने का उनका साधन और फिर 'पाप की व्याख्या' दोनों ही अद्भुत् होते हुए भी उपयुक्त और विवेकपूर्ण हैं।

कथोपकथन—उपन्यासों एवं आख्यायिकाओं की सफलता का अधिक भार 'कथोपकथन' को ही उठाना पड़ता है। चित्रलेखा में भी हम ऐसा ही पाते हैं। वार्तालाप स्वाभाविक है। अतएव सुन्दर भी। दार्शनिक सिद्धान्तों का विश्लेषण करते समय भी कोई पात्र भाषण सा नहीं देने लगता। तर्क की जिस शैली को लेखक ने अपनाया है वह पाठक के बुद्धि-तत्व को छूती रहने के कारण प्रभावशाली बन गई है। जिस विद्वत्मण्डली के प्रमुख पात्र हैं उसका ध्यान में रखते हुए उनके कथोपकथन 'सुबोध' ही हैं। उपन्यासकार कहीं भी दार्शनिक ही नहीं हो जाता, यह विशेषतया सराहनीय है।

कथोपकथन वातावरण-चित्रण, चरित्र-चित्रण और कथावस्त को आगे बढ़ाने में पूर्णरूपेण सफल है। श्वेताङ्क ने कहा—'और पाप?' दो शब्द ही एक पूरा चित्र उपस्थित कर देते हैं। थोड़े में बहुत कह देने की क्षमता ने सम्भाषणों को चुभता हुआ और अत्यन्त प्रभावोत्पादक बना दिया है। इसी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...का यह अनु... युग की विभिन्न... नी में युग की... ...ान तीक्ष्ण हो गया ...त्रों पर प्रकाश डालता ...हीं भी स्वयं बोलना नहीं ... जो तन्मय बना लेने की ... अंशों में कथोपकथन को ...लम्बा, अनावश्यक और नीरस ...ा कथन नहीं मिलती। हर शब्द की अपनी ...है। वार्तालाप में विचार-गाम्भीर्य होते हुए ... जटिलता नहीं आने पाई है और भाषा साहि-...क होने पर भी क्लिष्ट नहीं है।

वातावरण—इसके निर्माण के लिए लेखक को कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं करना पड़ा है। पात्रों के वार्तालाप, घटनाओं के चित्रण एवं कथा-वस्तु के विकास के साथ-साथ वातावरण का भी परिचय मिलता चलता है। रचना में 'अन्तर' का महत्व 'बाह्य' से कहीं अधिक है। फल स्वरूप हम पाते हैं कि वातावरण का भी विशेष महत्व नहीं है। कम से कम लेखक उसके चित्रण के चक्कर में नहीं पड़ा है। स्थान चाहे बीजगुप्त का केलिग्रह हो या कुमारगिरि की कुटी हम उसके विषय में उतना ही सुनते हैं जितना आवश्यक है। न लम्बे वर्णन कहीं हैं और न उनकी अपेक्षा ही है।

शैली—प्रस्तुत रचना में वर्माजी की शैली की प्रमुख विशेषता उनकी दार्शनिकता एवं कवित्व ही हैं। उपन्यास पढ़ते समय भी हम यह नहीं भूलने पाते कि लेखक मूलतः कवि ही है। जीवन की जटिलता एवं गम्भीरता इतनी महान् है कि लेखक उसकी विवेचना करते समय दार्शनिक सा हो जाता है। भावों में कहीं छिछलापन नहीं आने पाता और हास्य-व्यंग के लिये भी उपन्यास में स्थान नहीं है। कथावस्तु को रोचक बनाये रखने में और पात्रों के संघर्षमय उत्थान पतन के चित्रण में लेखक ने पूर्ण दक्षता से काम लिया है। भाषा विशुद्ध साहित्यिक हिन्दी होने पर भी संस्कृत-मयी नहीं है। वह पात्रों के अनुरूप है ...ं क्योंकि पात्र सभी एक श्रेणी के हैं अतएव ...नकी भाषा में भी भिन्नता अपेक्षित नहीं है। संघर्षों और समस्याओं को साथ लिये रहने पर भी लेखक कहीं स्वाभाविकता एवं सुरुचि की सीमा को पार नहीं कर जाता। शैली वैसी ही है जिसे 'प्रसाद-स्कूल' की शैली कहा जा सकता है।

उद्देश्यः—जैसा प्रारंभ में ही विदित हो जाता है "पाप क्या है" यही प्रश्न लेखक को हल करना है। सच तो यह है कि लेखक ने अपने मत की पुष्टि में ही सम्पूर्ण रचना प्रस्तुत की है। वह जो कुछ भी समझता है उसको समझाना चाहता है—वह बलात् नहीं। हमारी कोई भी शंका ऐसी नहीं रह जाती जिसका निवारण लेखक की 'खंडन-मंडन' की शैली में न हो जाता हो। लेखक अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल रहा है—और क्योंकि "पाप क्या है" लेखक की ही नहीं मानव-हृदय की समस्या है इसलिये अन्त में हमें ऐसा ज्ञान होता है कि रत्नाम्बर के शब्दों में हमें अपनी ही समस्या का हल मिल गया। लेखक की कुशलता इसी में है कि वही विचार जो रत्नाम्बर अंत में प्रकट करना है—प्रारंभ में इसी लिये अव्यक्तरक्खे जाते हैं कि 'स्वानुभव' का अपना महत्व है। श्वेतांक और विशाल देव के साथ हम भी खोजते हैं 'पाप' और संभवतः अपनी धारणाएँ भी स्थिर करते हैं पर 'पाप' की सच्ची व्याख्या हमें इन शब्दों में ही मिलती है:—

"संसार में पाप कुछ भी नहीं है—वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है ......मनुष्य अपना स्वामी नहीं है—वह परिस्थितियों का दास है। विवश है, वह कर्ता नहीं है वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा ?"

"मनुष्य में ममत्व प्रधान है। प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है। केवल व्यक्तियों के सुख के केन्द्र भिन्न-भिन्न होते हैं। कुछ सुख को धन में देखते हैं कुछ मदिरा में देखते हैं; कुछ सुख को व्यभिचार में देखते हैं और कुछ

[शेष पृष्ठ १७७ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ान पु...
...प्रकट की जाती...
...य रत्न-भण्डार...

सोहनलाल द्विवेदी और 'कुणाल'

श्री श्याम भटनागर बी० ए०

'कुणाल' द्विवेदीजी की 'भैरवी' तथा 'वासवदत्ता' के पश्चात् की काव्य-रचना है। इसका स्वरूप तो महाकाव्य सा है; किन्तु यह महाकाव्य न होकर एक खण्ड-काव्य ही है। 'कुणाल' की कथा अशोक पुत्र कुणाल के जीवन की एक ही प्रमुख घटना,—सम्राज्ञी विमाता तिष्यरक्षिता का कुणाल से प्रणय-निवेदन तथा अस्वीकृत होने पर विमाता का भयंकर प्रतिशोध ही है। इसी कथा को कहने के हेतु कवि ने सोलह सर्गों का निर्माण किया है।

द्विवेदीजी में राष्ट्रीयता, देश-प्रेम, कूट-कूट कर भरी हुई है। अपने देश के गौरव को सदा ध्यान में रखते हुए ही द्विवेदीजी कथा-निर्वाचन करते हैं; चाहे वह नवीन हो या पुरातन।

जब तक देश पराधीन है तब तक देशवासी अपनी उन्नति नहीं कर सकते। उन्हें अपने आदर्शों के अनुरूप मार्ग निर्मित करने की भी स्वतन्त्रता नहीं होती। मानव को अगर उन्नति करनी है तो उसे सर्वप्रथम स्वदेश स्वतन्त्र करना होगा। उसी पर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता निर्भर है। पराधीनता मानव के हेतु अभिशाप है, एक महान् बाधा है। अतः कवि कहता है—

पराधीनते सर्वनाश हो तेरा जग में।
कुछ न सोचने देती तू मानव को मन में॥

द्विवेदीजी की दूसरी विशेषता है उनकी वीर पूजा। वीर-पूजा के अन्तर्गत वे चरित्र की महत्ता को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। कुणाल का चरित्र इसी हेतु चुना है। यह चरित्र आद्योपान्त भारतीय है। कुणाल की विमाता तिष्यरक्षिता, सर्वाङ्गसुन्दरी, कुणाल के सन्मुख प्रणय निवेदन लेकर उपस्थित होती है। कुणाल दृढ़ निश्चयी तथा उन्नत चरित्र-प्रधान व्यक्ति है। वह क्षणिक ललचाव (Temptation) से अपने चरित्र की महत्ता को विश्व विद्यालय कलङ्कित नहीं करता। साथ ही एक पढ़ाने छद्माज्ञा को शिरोधार्य करता है। कार्... अपमान नहीं करता, यद्यपि वह चाहता ... सकता था क्योंकि समस्त सचिवगण तथा ... उसके साथ थी।

तीसरी विशेषता द्विवेदीजी की है पात्रों का पूर्ण मनोविश्लेषण। पात्र के मनोभावों का पूर्ण परिचय स्पष्ट प्राप्त होता है। इस विश्लेषण द्वारा पात्र का व्यक्तित्व पूर्णतया स्पष्ट होकर पाठक को सरलता से ग्राह्य हो जाता है। चर का तथा तिष्यरक्षिता का मनोविश्लेषण पूर्णरूपेण है। चर के मनोभाव व्यक्त कर कवि ने अपनी राष्ट्रीय विचारधारा व्यक्त करदी है।

भावों की सरलता जो साथ ही गम्भीरता लिए है द्विवेदीजी की एक अपनी विशेषता है। गम्भीर से गम्भीर भाव उन्होंने इतने सरल ढङ्ग से व्यक्त कर दिए हैं कि पाठक को दो बार पढ़ने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। 'कुणाल' का 'पथ-गीत' सर्ग आदि से अन्त तक भाव-गीतों से परिपूर्ण है। एक गीत में एक ही भाव है जो अत्यन्त ही सरल ढङ्ग से व्यक्त किया गया है। भावों के सरलता से व्यक्त होने का एक विशेष कारण है। वे बालकों के प्रिय कवि हैं। अतः उनकी भाषा तथा अभिव्यञ्जना शैली अत्यन्त सुलझी तथा सरलता लिए है।

द्विवेदीजी पाठकों के सन्मुख एक आदर्श की स्थापना करना चाहते हैं। आदर्श के योग्य एक महान व्यक्ति, पात्र की आवश्यकता होती है और ऐसे पात्र वर्तमान युग की अपेक्षा गत युग में अधिक मिलते हैं। इसी कारण द्विवेदीजी प्राचीन कथानक का आश्रय लेते हैं। परन्तु उस प्राचीन कथानक में भी वर्तमान युग पूर्णतया झलकता है। घटनाएँ पुरातन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

... लिए हैं। इस प्रकार ... र वर्तमान का अद्भुत साम-

... तीन सर्ग तो केवल भूमिका ... र्ग में पाटलिपुत्र जो उस समय ... का वैभव तथा मौर्यशासनादि का ... त है। द्वितीय सर्ग में कुणाल का जन्म एवं नाम ... रण और बालकेलि प्रधान है। तीसरे सर्ग में ... और कुणाल के तारुण्य का मनोरम चित्रण है। इस प्रकार तीन सर्गों तक कार्य-व्यापार लुप्त प्रायः है।

चतुर्थ सर्ग से कार्य का आभास प्राप्त होता है तथा उत्तरोत्तर गतिशील होता जाता है। प्रमुख कथा इसी सर्ग से प्रारम्भ होती है। एक नाटक की योजना हुई। उसका नायक था कुणाल। दर्शक समस्त अन्तःपुर वासी तथा राज्याधिकारी थे। रङ्गमञ्च पर कुणाल कुसुमायुध बन कर आता है और उसके पीछे रति। कुणाल का सौन्दर्य उस काल द्विगुणित होगया था। समस्त दर्शक अपनी चेतना खोकर देख रहे थे। किन्तु दो रागरञ्जित नेत्र कुमार कुणाल पर जमे थे। वे नेत्र उस अभिनेता को देखकर विकल हो रहे थे—

वातायन औ' सुन्दर गवाक्ष,
थे देख रहे मादक कटाक्ष,
हो रहे रागरञ्जित युगाक्ष,
थे विकल किसी के बने प्राण।

इस स्थल से कार्य गतिशील लक्षित होता है। वे रागरञ्जित नेत्र तिष्यरक्षिता के थे।

पञ्चम सर्ग में सम्राज्ञी के रागमय उर का विश्लेषण है। उसके हृदय में कामनाएँ उठ रही हैं—

आज क्यों मन है बहक रहा?
विकसा कौन पद्म मानस में
तन मन महक रहा?

सम्राज्ञी का समस्त राग कवि की इन दो पंक्तियों में पूर्णतया व्यक्त है। यथा—

तिष्यरक्षिता रागरंजिता
थी कविता की परिभाषा।

षष्ठ सर्ग में सम्राज्ञी कुणाल के पास प्रणय निवेदन करने गई परन्तु उसे निराश होना पड़ा। वह विक्षिप्त सी तथा साथ ही एक भयंकर निश्चय के साथ अपने कक्ष को चली जाती है। इस सर्ग से कार्य व्यापार अपनी चरम सीमा की ओर अग्रसर है।

सप्तम सर्ग में तिष्यरक्षिता का अनुताप है। कभी वह अपने नेत्रों को दोषी ठहराती है, कभी स्वयं को व कभी भगवान को—

क्या न है, इन चपल चञ्चल दृगों का सब दोष?

× × ×

दोष किसका, नयन का, मन का, कि देव विधान?
किया क्यों पास इतने रूप का निर्माण?

अष्टम सर्ग में सम्राज्ञी के मनः और बुद्धि का द्वन्द्व है। अंत में बुद्धि विजयी होती है। और उसका निष्कर्ष निकला कुणाल को अन्धा करना और अपने उर को शान्ति देना तथा मार्ग का कण्टक दूर करना।

नवम सर्ग एक विशेषता लिए हैं। इसमें कवि ने स्वयं के विचार पूर्ण स्वतन्त्रता से व्यक्त किए हैं। वह अपनी विचारधारा चर के मुख से कहला रहा है। पराधीनता मनुष्य को इस प्रकार जकड़ देती है कि वह अपनी स्वयं की विचारधारा को कार्यान्वित भी नहीं कर पाता। वह मानव को अपना पथ निर्माण करने का समय भी नहीं प्रदान करती।

मनुष्य का कर्त्तव्य उसकी भावुकता से अधिक महत्त्वपूर्ण है। जिसका जो कर्त्तव्य है उसे वह पूर्ण करना ही चाहिए। अगर वह कर्त्तव्य पूरा न कर विश्वासघात करता है तो वह एक महान् पातक का भागी होगा। चर आज्ञा पत्र ले जारहा है। वह यह पूर्णतया जानता है कि यह एक छल है, परन्तु वह अपने कर्त्तव्य से बँधा है। वह अपने स्वामी के साथ विश्वासघात नहीं कर सकता क्योंकि वह उसके परिणाम से परिचित है—

सेवक का कर्त्तव्य कार्य सेवा का करना।
स्वामी के संतोष कोष को श्रम से भरना;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

× × ×

किन्तु आह ! विश्वासघात मुझसे न बनेगा।
अनुचर का यह कपट और अघ अधिक बनेगा।

कुणाल उस छद्माज्ञा द्वारा अन्धा कर दिया गया। उस घटना से समस्त तक्षशिला निवासी व्यथा में डूब गए। व्यथा कवि के शब्दों में है—

क्रूर नियति ने ली निकाल अंबुज सी आँखें,
उड़े न ऊपर प्राण रह गईं कंपती पाँखें।
उन आँखों की कथा व्यथा बनकर मँडराई,
एक अछोर वेदना बन प्राणों में छाई॥

इस सर्ग में कार्य-व्यापार चरम सीमा पर पहुँच गया है। तिष्यरक्षिता का प्रतिशोध पूर्ण हो गया।

दशम् सर्ग में कुणाल और कंचना व्यथित जनता को छोड़ अपनी एक बीन ले भिक्षुक वेष में नगर त्याग करते हैं। इस सर्ग के पठन समय तुलसी के राम और सीता का स्मरण हो आता है। कुणाल के साथ कँचना उसी प्रकार जाने को उद्यत होती है जिस प्रकार बन गमन के समय सीता। कुणाल द्वारा बन की कठिनाइयों के बताने पर भी उसका दृढ़ निश्चय नहीं डिगा। एकादश सर्ग में अनन्त पथ पर चलते हुए कुणाल और कंचना भिक्षुक-पथिक के रूप में सम्मुख आते हैं। उनका कौन ठिकाना है? कुणाल गा रहा है—

मुझको बड़ी दूर है जाना।
सबने अपनी सीमा बाँधी,
सब चलते हैं बच कर आँधी।
मेघों में बिजली में घुलमिल,
मुझको चरण बढ़ाना।
मुझ को बड़ी दूर है जाना!

कुणाल अपनी पत्नी को प्रसन्न रखने के हेतु उसी प्रकार इस घोर दुख में भी प्रसन्न रहता है जिस प्रकार राम सीता को प्रसन्न रखने के लिए रहते थे। इस सर्ग तक कार्य-व्यापार अपनी समान गति से चल रहा है।

द्वादस सर्ग में वे दोनों पथिक एक दीर्घ काल स्मृति ने आघेरा। प्रकृ[illegible] है। समय एक सा नहीं रहत[illegible]

यह समय का स्रोत है ब[illegible]
कल नहीं जो आज है यह निश्व विद्यालय

कुणाल ने अपनी स्मृति को [illegible] एक पढ़ाने संयमित रखने का पूर्ण प्रयत्न किया। [illegible] कार्[illegible] भी कुणाल मानव था। स्मृति ने उसका पीछा छोड़ा। वह अपने गत युग को याद कर विह्वल उठा। वेदना ने उसे अधीर कर दिया—

हैं कहाँ आज मधु की बहार ?
मेरे वैभव का इन्द्र चाप।
तनता था जो बन कर अमाप
किसने इसको कर दिया भंग
प्रत्यंचा भी दी उतार ?
है कहाँ आज मधु की बहार ?

इस सर्ग से कार्य व्यापार पुनः पतन की ओर अग्रसर हो रहा है।

त्रयोदश सर्ग में अनन्त पथ के पथिक भ्रमण करते पाटलिपुत्र में आ गए। उषाकाल में करुण स्वर में गाते जा रहे हैं। उन्हें क्या ज्ञात था कि आज उनका पथ सीमित होने वाला है। गंधवाह वह करुण स्वर लहरी अशोक के कानों तक ले गया। अशोक ने उन्हें बुलाया। कुणाल के मुख पर कठोर रेखाएँ थीं जो समस्त इतिहास निहित किये थीं।

कठिन रेखायें छिपाए।
विगत आँसू हास।
लिखा आनन में निठुर॥
निर्वास का इतिहास।

अशोक को समस्त कथा ज्ञात होती है। इस सर्ग में कार्य व्यापार लगभग अपने धरातल पर आगया है।

आगामी तीन सर्गों में क्रम से, कुणाल का अपनी विमाता को मुक्ति दिलाना, कुणाल का अभिषेक तथा अशोक का काषाय ग्रहण है। कार्य व्यापार अपनी पूर्व स्थिति पर आजाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

... ...यता ...
... है, यथा कुणाल, ... कांचना का चित्रण ... हैं। चर अपना एक ...

... चरित्रवान व्यक्ति है। वह ... य निवेदन को स्वीकार कर ... चरित्र को कलुषित नहीं करता। इस पात्र के ... कवि ने पूर्ण ध्यान रखा है। यह पात्र ... आदर्श पात्र है। उसको कवि ने पूर्ण तया कठिन परिस्थितियों में से निकाल कर पाठकों के सन्मुख एक आदर्श स्वरूप रखा है। विनय और दृढ़ चरित्र उसकी विशेषताएँ हैं जिन्हें वह अंत तक नहीं त्यागता।

तिष्यरक्षिता रूपगर्विता और मानिनी के रूप में सामने आती है। उसमें स्त्री सुलभ अनुताप भी है परन्तु साथ ही दृढ़ प्रतिशोध भावना भी जो प्रत्येक नारी में तिरस्कृत होने पर जाग्रत हो उठती है, है। अन्त में वह राजमहिषि के रूप में सन्मुख आती है।

अशोक सम्राट के वैभव सहित सन्मुख आता है। यह पात्र कथा एवं कार्य को आगे बढ़ाता है; इस पात्र का इतना ही महत्व है। यह पात्र वातावरण निर्माण में पूर्ण सहायता प्रदान करता है।

कांचना एक धर्मपत्नी के रूप में सन्मुख आती है। यह पात्र अत्यन्त ही धूमिल है।

चर का महत्व इसलिए है कि कवि ने उसका मनोविश्लेषण कर अपनी विचार धारा व्यक्त की है। इसी हेतु चर का वर्णन दो अथवा चार पंक्तियों में न कर कवि ने उसे लगभग आधा सर्ग दिया है।

देशकाल, कथानक का ऐतिहासिक तथा प्राचीन है। अशोक के समय की समस्त विशेषताएँ काव्य में लक्षित हैं। परन्तु एक स्थान पर कालभंग दीखता है। उस काल में यद्यपि दिल्ली नगर होगा परन्तु उसका वर्तमान नाम न था।

...........माँ देको मैं छल पल
घोले पल दिल्ली श्रो आया।

परन्तु पाठक को यह कालदोष अधिक नहीं खटकता। पाठक इस स्थान पर एक पल रुक आगे बढ़ जाता है और उसे विस्मृत कर देता है।

काव्य में वैसे तो शृंगार, रौद्र तथा करुण रस के दर्शन होते हैं परन्तु समस्त काव्य में शांत रस ही प्रवाहित है।

काव्य का मुख्य उद्देश है पाठकों के सन्मुख दृढ़ चरित्र का आदर्श उपस्थित करना। कवि की यह इच्छा है कि पाठक इस चरित्र को पढ़ कर स्वयं के चरित्र को भी उतना ही आदर्श व उन्नत बनाएँ।

[पृष्ठ १७३ का शेषांष]

त्याग में देखते हैं, पर सुख प्रत्येक व्यक्ति चाहता है। कोई भी व्यक्ति संसार में अपनी इच्छानुसार वह काम न करेगा जिसमें दुःख मिले। यही मनुष्य की मनःप्रवृति है और उसके दृष्टिकोण की विषमता है।

संसार में इसीलिये पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकी और न हो सकती है। हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं—हम केवल वह करते हैं जो हमें करना पड़ता है।" —लेखक का 'नियति-वाद' यहाँ अपनी चरमसीमा पर पहुँच जाता है और उसी के साथ कथा वस्तु का अन्त भी हो जाता है।

दो शब्द लेखक के 'नियति-वाद' पर भी। कर्म करने में मनुष्य स्वतंत्र है या नहीं—वह 'कर्ता' है या केवल 'साधन' इस विवादास्पद समस्या को सुलझाना 'दर्शन' का विषय है, पर इसमें सन्देह नहीं कि हमारे 'बहु-शाखी दर्शन' में इस मत को भी आश्रय मिला है। जब हम 'कर्म-वाद' को और 'पुनर्जन्म' को मानेंगे तो हमें यह भी मानना ही होगा कि हम बहुत अंशों में वही करते हैं जो हमारे 'प्रारब्ध कर्म' हम से करवाते हैं वे प्रारब्ध कर्म जिनके फल से उपभोग से बचना मनुष्य के लिये संभव ही नहीं है।

अस्तु—लेखक ने अपने उद्देश्य की पूर्ति में जिस मत की प्रतिष्ठा की है वह भी भ्रामक नहीं है यदि उसे समझने में भूल न की जावे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...प्रकट की जाती...
...य रत्न-भण्डार...

हमारे उपन्यास साहित्य का विकास

प्रो० गोपीनाथ तिवारी

संस्कृत साहित्य में 'कादम्बरी' एक प्रसिद्ध उपाख्यान-पुस्तक है। इसे जी चाहे तो आत्मतुष्टि के लिए 'उपन्यास' कह लें किन्तु वास्तव में यह उपन्यास है नहीं। 'दशकुमार चरित' तो एक विस्तृत साधारण कथा मात्र है। उसकी अपेक्षा 'कादम्बरी' उपन्यास नाम के अधिक निकट है। 'कादम्बरी' को छोड़ स्वयं संस्कृत में कादम्बरी जैसी दूसरी पुस्तक नहीं। अनेक प्रतिभाशाली साहित्य-निर्माताओं ने नाटक-निर्माण पर हस्तकौशल दिखाया। किन्तु, दुख है, गद्य की अद्भुत प्रगति होने पर भी, अनेक गुणों से युक्त एवं सरस गद्य के लिखे जाने के बाद भी किसी ने 'उपन्यास' या उपन्यास जैसी वस्तु संस्कृत संसार को न दी। अतः हिन्दी में 'उपन्यास' का अवतार पूर्व प्रचलित संस्कृत परम्परा से नहीं हुआ। जैसे संस्कृत नाटकों से प्रेरणा पाकर हिन्दी में उनके आधार अथवा संकेत पर नाटक लिखे गए, वैसे ही उपन्यास के विषय में नहीं कहा जा सकता। 'कहा निचोरे नग्न जन स्नान सरोवर कौन'। जब स्वयं संस्कृत माँ का आँचल 'उपन्यास' से रिक्त था, तो वह हिन्दी सुपुत्री को कहाँ से दान करती? अतः जो संस्कृत साहित्य से हिन्दी उपन्यासों की परम्परा जोड़ते हैं, संस्कृत उपन्यास 'कादंबरी' के प्रांगण में हिन्दी उपन्यास के बिरवे को लगाते हैं, उनके इस साहस को महाब्राह्मण शब्द की नाईं महासाहस ही कहना पड़ेगा।

वास्तव में हिन्दी उपन्यास का जन्म पश्चिमी गोद में हुआ। अंगरेजी के उपन्यासों तथा बंगला के उपन्यास-सहोदरों को देख हिन्दी में भी ऐसी वस्तु लाने की इच्छा हिन्दी प्रेमियों को हुई। पंडित रामचन्द्र शुक्ल किशोरीलाल गोस्वामीजी को हिन्दी का प्रथम उपन्यासकार स्वीकार करते हैं। उधर पदुमलाल ...विश्व विद्यालय नामक पुस्तक में इस पद पर ...ी एक ... पढ़ाने करना चाहते हैं। दोनों के उपन्यास ... कार्य ... में प्रकाशित हुए। किन्तु किशोरीलाल गोस्वामी... उपन्यास दो वर्ष पूर्व (१८८६ में) जनता के ... आ गया। यहाँ एक प्रश्न स्वभावतः उठता है, भारतेन्दुजी जिन्होंने हिन्दी की सर्वतोमुखी उन्नति में सहयोग दिया, हिन्दी माँ के चरणों में धन के साथ-साथ कविता, आलोचना, नाटक, निबन्ध, पत्र-पत्रिकाएँ दीं, उन्होंने उपन्यास से क्यों माँ को वञ्चित रक्खा?

भारतेन्दुजी का ध्यान इस ओर भी था। भारतेन्दु जी ने अमृतसर निवासी सन्तोष को लिखा था 'जैसे भाषा में अब कुछ नाटक बन गए हैं अब तक उपन्यास नहीं बने हैं। आप या हमारे पत्र के योग्य सम्पादक जैसे बा० काशीनाथ व गो० राधाचरणजी कोई भी उपन्यास लिखें तो उत्तम हो।'

—भारतेन्दु-युग, पृष्ठ १३२

हिन्दी के उन्नायक भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्रजी ने स्वयं भी उपन्यास लिखने का प्रयत्न किया। किन्तु 'विधि गति वाम सदा सब काहू।' हिन्दी के भाग्य में यह सुख न था। उनका उपन्यास 'अपूर्ण' रह गया। या तो उन्होंने स्वयं प्रयत्न त्याग दिया अथवा काल ने छुड़ा दिया। भारतेन्दु युग में कुछ उपन्यास, परीक्षागुरु (ले० श्रीनिवासदास), श्यामा स्वप्न (ले० ठा० जगमोहनसिंह), आश्चर्य वृतान्त (ले० अम्बिकादत्त व्यास), सौ अज्ञान एक सुजान (ले० बालकृष्ण भट्ट), निःसहाय हिन्दू (ले० राधाकृष्ण) निर्मित हुए। किन्तु निस्सन्देह ये सब उपन्यास की साहित्यिक संज्ञा के योग्य नहीं। इनमें परीक्षागुरु अवश्य दूसरों से बढ़कर है। नहीं तो सभी उपदेश वृत्ति अथवा चमत्कार प्रदर्शन के लिए लिखे गए साधारण ग्रन्थ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...आठ-वड़े ६५ उप-... गोस्वामीजी के विषय ... से हिन्दी का पहिला ... ों ने भी उपन्यास लिखा, ...कार न थे। और चीजें ... की ओर भी जा पड़ते थे। ... घर करके बैठ गए। गोस्वामीजी ...स श्रृङ्गार-भावना से तरङ्गित हैं। पारसी ...ल कम्पनियों की नाई वे भी जनता को ...जों' का गरमागरम मसाला देना चाहते थे। ...नके उपन्यासों के शीर्षक ही प्रकट करते हैं कि ...हारी की भाँति कृष्ण को छोड़ राधिका उनके ...द्देश्य-चित्र में है। कुछ नाम ये हैं—

चपला या नव्यसमाज चित्र, तारा, रजिया बेगम, मल्लिका देवी वा बंग सरोजिनी, लीलावती वा आदर्श सती, राजकुमारी, स्वर्गीय कुसुम वा कुसुमकुमारी, तरुण तपस्विनी वा कुटीर वासिनी, हृदयहारिणी वा आदर्शरमणी, लवंगलता या आदर्श बाला, कनक कुसुम या मस्तानी, प्रेममयी, गुलबहार, इन्दुमती या वनविहंगिनी, लावण्यमयी, प्रणयिनी-परिणय, चन्द्रावती वा कुलटा, कुतूहल, हीराबाई या बेहयाई का बुरका।

नामों को सार्थक करने वाली घटनाएँ ही नहीं, गोस्वामीजी ने अपने उपन्यासों के परिच्छेदों का नामकरण भी श्रृङ्गार-भावना के अनुकूल किया है। 'मदनमोहिनी' में परिच्छेदों के नाम इस प्रकार हैं—अंकुर, पल्लव, शाखा, पुष्प, सुरभि, पराग, फल, मधु, आस्वादन, परितृप्ति। काम-शास्त्र या कोक-शास्त्र के ज्ञाता इन नामों के अर्थ भी समझ जाएंगे। महाराणा अमरसिंह की पुत्री, प्रातःस्मरणीय वीराग्रणी, प्रसिद्ध देशभक्त प्रताप की पौत्री 'इश्क बाजी' के खेल खेलती फिरती है। वह हुस्न के बाजार में लुटती और लूटती फिरती है। एक एक स्थान पर कहती है—

"जनाब शाहजादा साहब! अगर नाजनियाँ नाजो नखरे या रुखाई जाहिर न करें तो फिर आशिकों के सच्चे इश्क का जौहर क्योंकर मालूम हो"

ठीक, नाजोनखरों से इश्क की परीक्षा की जाती है! गो० जी के उपन्यासों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की भाँति पात्रों के अनुसार भाषा बदलती है। मुसलमान ही उर्दू नहीं बोलते; मुसलमानों से वार्त्तालाप करने वाले हिन्दूपात्र भी उर्दू का रंग चढ़ा कर हिन्दी बोलते हैं। प्रेमचन्द जी ने भी इस परम्परा को ग्रहण किया। इन उपन्यासों में चरित्र चित्रण का प्रयास नहीं। भारतेन्दु युग के समान इस उपन्यासकार ने भी भक्ति एवं रीतिकाल का सम्मिश्रण किया है। शृंगार के साथ साथ आदर्श को उपदेश का बहुत ध्यान रक्खा है। प्रत्येक उपन्यास में पर्वताकार उग्रादर्श अवश्य आ खड़ा होगा; उपदेश अवश्य दिया जाएगा। प्रेमचन्द जी ने भी आदर्श का ध्यान बराबर रक्खा है, किन्तु गुप्त रूप से यथार्थ की नींव पर आदर्श-अट्टालिका खड़ी की है जो चारों ओर प्रकाश की तीव्र किरणें अपने पास से फेंक रही है। जहाँ आदर्श गुप्त रूप से अपने आप चुपके से आ खड़ा हो, वहाँ कला की उत्तमता है। किन्तु जहाँ उपदेश देने की प्रवृत्ति मुँह बाए आ खड़ी हो, वहाँ कला का वास्तविक रूप न रहेगा। गो० जी ने आदर्श के सामने कोई पर्दा नहीं रक्खा।

इसी समय हिन्दी संसार में श्री देवकी नन्दन खत्री ने चन्द्रकांता ४ भाग एवं चन्द्रकांता संतति २४ भाग द्वारा युगांतकाल ला दिया। यह समय ही ऐसा था कि हिन्दी में उपन्यास पाठक बनाने थे और खत्रीजी ने समयोचित चीज दी। न सही उसमें चरित्र विकास, न सही फड़कते वाक्य और सजीव वार्त्तालाप, न सही द्वंद्वात्मक भावों का संघर्ष; पर उनमें एक बात है, एक बड़ी विशेषता है। वह है कथानक की मनोरञ्जकता। बस हाथ में लेने की देर है कि आप खाना-पीना, सोना-पढ़ना सब भूल जाएंगे। ऐसा शृङ्खलाबद्ध मनो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रञ्जक तथा साथ ही इतना विशाल कथा क्षेत्र अन्य कोई भी उपन्यासकार नहीं दे सका है, हिन्दी ही में नहीं, अन्य आधुनिक सम्पन्न भाषाओं में भी। असंख्य अहिन्दी उपन्यास-प्रेमियों ने खत्री जी की 'चन्द्रकांता एवं संतति' के आकर्षक पूर्ण अध्ययन के लिए हिन्दी सीखी। यदि प्रसिद्धि के विचार से किसी लेखक का स्थान निर्द्धारित किया जाय तो तुलसीदास के बाद सबसे अधिक पाठक खत्री जी के ही पाये जाएँगे। डा० श्री कृष्णलाल के शब्दों में 'चन्द्रकांता हिन्दी का प्रथम साहित्यिक उपन्यास है" । खत्री जी के भूल-भुलय्या जैसे मस्तिष्क की प्रशंसा अवश्य ही करनी पड़ेगी। कहते हैं, उनका मस्तिष्क था भी ऐसा ही। रास्ता चलते एक स्थान पर बैठ कर आगे की कथा लिखकर सिर पर खड़े छापेखाने के नौकर को दे दिया करते थे। चन्द्रकान्ता एवं संतति तिलिस्म और ऐय्यारों का उपन्यास है जो हमारे जीवन से दूर पृथ्वी के गर्भ में अथवा कल्पना की सीढ़ियों पर उतरता-चढ़ता चलता है।

इस तिलस्मी वातावरण का मानवीकरण कर गोपालराम जी गहमरी हमारे सामने आए। खत्रीजी के ऐयार यहाँ गुप्त चर बन गए जिनको 'जासूस' कहा गया है। तिलिस्मों का स्थान चक्करदार मकान या दूकानें ले लेती हैं। अन्यथा कौतुहल-वर्द्धक घटनाएँ यहाँ भी वैसी ही हैं, भूल-भुलय्या का वातावरण यहाँ भी है। यह बात अवश्य है, गहमरी जी, खत्री जी की अपेक्षा वास्तविक जीवन के अधिक निकट आ गए। 'लखलखा' सुँघाने वाला भूतनाथ हमारे संसार में नहीं, पर रहस्यमयी मृत्यु का पता लगाने वाला हाड़-माँस का पुतला—जासूस—हमारे मध्य का है। इङ्गलैंड में फिलिप ओपेनहम, शरलाक, होम्स, एडगर वैलेस इ० कई प्रसिद्ध जासूसी उपन्यासकार हो गए हैं। वहाँ ब्लेक सिरीज, सिक्सपैंस सिरीज, फोर पेंस सिरीज जैसी कम मूल्य की जासूसी पुस्तकें धड़ाधड़ निकलीं। उसी प्रकार गहमरीजी हमारे हिन्दी के जासूसी उपन्यासकारों में श्रेष्ठतम हैं जिनका पत्र 'जासूस' एवं जिनकी रोमांच-कारी पुस्तकें खूब बि[illegible] थे। चरित्र विकास की [illegible] जैसे गाँव में रात्रि को एक बू[illegible] तक घुमावदार कहानी 'अना[illegible] तख्त' सुनाता है, उससे अधि[illegible] जी तथा गहमरी जी के उपन्या[illegible] विस्तार प्राप्त आख्यान ही, गाँव की लम्बी क[illegible] ही जैसे!

हिन्दू समाज पर तरस खाकर लज्जाराम मेहत[illegible] कुछ उपन्यास लिखे। श्री मेहताजी सफल सम्पादक [illegible] पर आपने उपन्यास क्षेत्र में भी टाँग अड़ाई, कुछ बटोर-बटार के ऊँघे सूँघे बीज बोए। फल लगे 'धूर्त-रसिक लाल', हिन्दू गृहस्थ, आदर्श दम्पत्ति, बिगड़े का सुधार, आदर्श हिन्दू। पता नहीं इनके द्वारा मेहताजी हिन्दुओं का कितना सुधार कर सके, या किसे आदर्श हिन्दू बना सके, किन्तु उपन्यास साहित्य का न कुछ सुधार हुआ, न कोई उपन्यास का आदर्श ही खड़ा हुआ। वास्तव में मेहताजी में न उपन्यास लिखने की प्रतिभा थी, न शक्ति। बंगला उपन्यास तथा उस भाषा से अनूदित ग्रन्थों की चकाचौंध में आकर बा० ब्रज-नन्दन सहाय ने कुछ भाव प्रधान उपन्यास भी रचे। सौन्दर्योपासक, राधाकांत, राजेन्द्रमालती आदि उनके कुछ उपन्यास हैं। 'मुलम्मा', मुलम्मा है। उसी प्रकार अनुकरण कभी २ सफल हो पाता है। थोड़ी सी असा-वधानी से अनुकरण द्विगुण हानि पहुँचाता है। पश्चिम के अनुकरण के भ्रामक बवण्डर में पड़ बहुत से भार-तीय अपना पन भी भूल बैठे थे। ब्रजनन्दन सहायजी के ये उपन्यास भी नितान्त असफल रहे। उपन्यास का प्रधान तत्त्व—मनोरंजक कथानक—इनमें दिखाई ही नहीं पड़ता। घटनाओं का बड़ा अभाव है। यहाँ तो एक सौन्दर्य प्रेमी का मन घबड़ाता, चिहुँकता, रोता, कल-पता, टीस मारता, तड़पता फिरता है। मन की भावु-कता का ही प्रदर्शन है। स्वयं लेखक भी इस बात को जानता था कि मेरे उपन्यास जनता को अच्छे लगेंगे। सौन्दर्योपासक के उपसंहार में वह लिखता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...का यह ऋतु
युग की विभिन्न
...यों में युग की
...रहेगी

... तुलसी से अधिक ... से अधिक लोक रंजक

... हिन्दी उपन्यास का स्वर्ण-... एवं गौरवशाली युग का ... व्यक्ति जिसकी टक्कर का उप-...र अभी तक तो हिन्दी माँ की कोख से जनमा ...जिसकी यश-भित्ति पर हमारा मान-मन्दिर बन ...है, जिसके नाम पर हमें गर्व है, जिसके बल पर हमारा मस्तक ऊँचा है। वह है हमारा औपन्यासिक सम्राट स्व० प्रेमचन्द जिनके विषय में जैनेन्द्रजी कहते हैं "प्रेमचन्द्जी हिन्दी के सबसे बड़े लेखक हैं....मैं फिर भी प्रेमचन्द्जी को हिन्दी का नहीं संसार का लेखक मानता हूँ"।

प्रेमचन्दजी ने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से कुछ लिया और परवर्ती औपन्यासिकों को कुछ दिया। बा० देवकीनन्दन के सदृश उन्होंने अपने उपन्यासों को विस्तार दिया। खत्री जी तथा गहमरी जी की नाईं अपने उपन्यासों को घटना-प्रधान बनाकर मनोरंजकता भी भरी। पारसी थियेटर नाटकों में दो कहानी समानान्तर चलती थीं, एक गंभीर और एक हास्यरस की। प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में भी दो कथाएं चलती हैं तथा पारसी थियेटर-नाटकों के समान इन दोनों कहानियों का सम्बन्ध बहुत क्षीण हैं। बंगला की सस्ती भावुकता से उन्होंने हिन्दी का पीछा अवश्य छुड़ाया, किन्तु चित्रों को कहीं कहीं भावुकता अवश्य दी और सुन्दर बनाया। किशोरी लाल गोस्वामी के खुले शृंगार को तो नहीं अपनाया किन्तु प्रत्येक उपन्यास में प्रणय को अवश्य प्रमुखता दी। उनका प्रत्येक उपन्यास एक वा अधिक प्रणय गाथाओं से भरा है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पात्रों में स्वाभाविकता लाने के लिए कई भाषाओं का प्रयोग किया। किशोरीलाल गोस्वामी तथा पारसी थियेटर नाटकों में हिन्दू मुसलमानों की बोली में ...भिन्नता थी। इसी भिन्नता को प्रेमचन्द जी ने स्थिर रक्खा। उनके मुसलमान पात्र यह भाषा बोलते हैं—"जब से हुजूर तशरीफ ले गए, मैंने भी नौकरी को सलाम किया। जिन्दगी शिकम पर्वरी में गुजरी जाती थी। इरादा हुआ कुछ दिन कौम की खिदमत करूं। इसी गरज से 'अंजुमन इत्तहाद' खोल रक्खी है।"

(प्रेमाश्रम)

उनका हिन्दू कहता है—भाई मैं प्रश्नों का कायल नहीं। मैं चाहता हूं, हमारा जीवन हमारे सिद्धान्तों के अनुकूल हो। आप कृषकों के शुभेच्छु हैं, (गोदान)

उन्होंने परवर्ती उपन्यासकारों से जितना लिया उससे अधिक दिया। प्रेमचन्द जी का आदर्श सामने रख हिन्दी के सैकड़ों लेखक अच्छे उपन्यासकार बन गए। विश्म्भरनाथ शर्मा कौशिक तथा चतुसेन शास्त्री ने उनकी शैली को अपनाया। वृन्दावनलाल वर्मा ने उनकी वर्णन-पद्धति को ग्रहण किया। भगवतीचरण वर्मा ने उनके समान 'समस्याऐं' सामने रक्खीं, हाँ उनके सुलझाने के मार्ग में वे दूसरी ओर गए। सुदर्शन जी, अश्क जी आदि अनेक लेखकों ने उनकी भाषा को आदर्श मान लिया। हिन्दी में आदर्श पूरक उपन्यास अधिक मात्रा में आए, यहाँ प्रेमचन्द जी के प्रभाव ने भी बड़ा काम किया। अनेक नवयुवक उनके उपन्यासों व कहानियों को पढ़ कर कुछ लिखने बैठ गए।

प्रेमचन्दजी की अपनी देन हिन्दी को बहुत बड़ी है। उन्होंने अपूर्ण 'मङ्गलसूत्र' सहित १२ उपन्यास दिए। ११ की संख्या खत्रीजी या गोस्वामीजी के सामने कुछ नहीं। मात्रा का मूल्य नहीं, मूल्य है उन उपन्यासों की गरिमा का। हिन्दी ही नहीं भारत के वे सबसे पहिले उपन्यासकार थे जिन्होंने नागरिक जनता का ध्यान ग्राम्यजीवन की कठिनाइयों की ओर आकर्षित किया। हिन्दी में प्रेमचन्दजी के समय तक धार्मिक तथा सामाजिक उपन्यास बन चुके थे। प्रेमचन्दजी पहिले लेखक थे जिन्होंने राजनीतिक उप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यास इतनी प्रचुरता से लिखे। उस समय तक कृषकों की दयनीय दशा का चित्रकार न हुआ था। प्रेमचन्दजी ने अपनी सजीव तथा मनमोहक लेखनी से कृषकों की वाह्य तथा आन्तरिक दशा का पूर्ण चित्र उतारा; उनकी जीवन सम्बन्धी प्रायः सभी समस्याओं को सामने लाए; जमींदार, महाजन एवं राज्यकर्मचारी के असह्य अत्याचारों का ढिंढोरा पीटा; पण्डा, पुजारी, उच्च वर्गीय गाँव के महापुरुष, सामाजिक भटमानी—सबों का पर्दा फास किया तथा ग्रामीणों की पारस्परिक, कौटुम्बिक, सामाजिक तथा धार्मिक त्रुटियों की ओर ध्यान खींचा। यही प्रेमचन्दजी की विशेषता है। इसके साथ हिन्दू समाज की सभी बुराइयों को भी लिया। दहेज, विधवा विवाह, मूर्ति पूजा, ऊँच-नीच का भाव, अनमेल विवाह, अन्ध विश्वास, परम्परा मोह, कौटुम्बिक कलह, अशिक्षा, आधुनिक शिक्षा, खान-पान में छूत, विप्र-भय, ज्योतिष इत्यादि असंख्य समस्याएँ सामने लाए हैं। आज की महाजनी सभ्यता को भी भूले नहीं हैं जिसकी नींव है 'यन्त्रीकरण'। गाँव के किसान मजदूर जन किस प्रकार इस यन्त्रीकरण से नष्ट-भ्रष्ट कर दिए जाते हैं, यह रङ्गभूमि में अच्छी प्रकार प्रदर्शित किया।

प्रेमचन्दजी से पूर्व के उपन्यासों में 'नाटकत्व' की मात्रा बहुत ही कम थी। प्रेमचन्दजी ने इस पर विशेष ध्यान दिया। उनके पात्र मनोवैज्ञानिक हैं और हैं हमारे संसार के। प्रेमचन्द जब स्वयं लिखते हैं—"मैं उपन्यास को मानव जीवन—का चित्र मात्र समझता हूँ", तब उनसे यही आशा थी कि वे यथार्थ जीवन—हमारे वास्तविक जीवन की पूर्ण झाँकियाँ दिखायेंगे। सौभाग्य से हुआ भी ऐसा ही। प्रेमचन्द्रजी ने अपने उपन्यासों का विस्तृत, गौरवान्वित एवं आकर्षक भवन यथार्थ की भित्ति पर खड़ा किया। किन्तु यह नग्न यथार्थ न था। कोरा यथार्थ हमारे जीवन के लिए हितकारी नहीं। "अमंगल यथार्थ अग्राह्य है, मङ्गल मय यथार्थ संग्रहणीय है यदि वह अपवाद रूप भी हो" यह प्रेमचन्दजी का दृढ़ सिद्धान्त था। अतः [illegible] प्रकट की जाती [illegible] रत्न-भण्डार [illegible] मङ्गलमय बना [illegible] गन्तव्य स्थान पर पहुँच [illegible] मङ्गलकारी, सुख शान्ति दा[illegible] यही है प्रेमचन्दजी का आदर्श[illegible] जैसे यथार्थवादी उपन्यास में [illegible]विश्व विद्यालय [illegible] ऋषि समाज की मङ्गल कामना [illegible] को एक पढ़ाने [illegible]

अनेक समालोचकों ने प्रेमचन्दजी [illegible] कार्[illegible] आदर्श[illegible] पर आक्षेप किए हैं। कोई उन्हें उपदेशक बता[illegible] तो कोई प्रचारक कह उनके ऊपर कीचड़ उछाल[illegible] कोई आदर्श-भावना पर कठोर आघात करता है, कोई उन्हें 'भूतकाल वासी' कह खिल्ली उड़ाता है। इन समालोचकों के मत में यदि प्रेमचन्दजी में आदर्श स्थापन की हठ न होती तो बहुत उत्तम होता। श्रीलक्ष्मी-सहाय सिनहा (सा० सन्देश जुलाई ४८) में प्रेमचन्द के आदर्शवाद पर कुठाराघात करते हुए कहते हैं—प्रेमचन्द की यथार्थवादिता उनके आदर्शवाद का पोषक बनकर उनकी कला को सजीवता देने में समर्थ रही, इसमें बहुत सन्देह है। किन्तु यदि प्रेमचन्द में से आदर्शवादिता निकाल दीजिए, प्रेमचन्द प्रेमचन्द न रहेंगे जिस प्रकार तुलसी में से भक्ति और सामाजिक धर्म निकाल देने से कुछ नहीं बचता। प्रेमचन्द की यथार्थवादिता के पीछे छिपी आदर्शवादिता ने ही उन्हें एक विशेष स्थान दिया, जिस प्रकार टालस्टाय को मिला। प्रेमचन्द रवीन्द्र तथा टालस्टाय की श्रेणी के लेखक हैं, शरत् तथा डिकेंस की कोटि में प्रवेश नहीं करते। यही भारतीयता है और यही है प्रेमचन्दवादिता। प्रेमचन्द ने हिन्दी का मस्तक उन्नत किया। संसार के श्रेष्ठ उपन्यासकारों में उनका स्थान है और हिन्दी के ज्ञान-विस्तार के साथ वह पद ऊँचा ही होता जाएगा।

प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में उपन्यास-कहानियों की बाढ़ सी आगई। आज सबसे अधिक लेखनी की गति उपन्यास कलेवर पर वेगवान है। उपन्यासकार बरसाती कृषि के समान बढ़ गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

... करने में काठ-... लिखे। कवि तथा ... उपन्यास लिखा है। कवि-... ी इस दिशा में कई पुस्तक ... गोविन्द बल्लभ 'पंत' ने ... ा की है। इलाचन्द्र जोशी, ...कुमारी ..., निराला जी भगवतीचरण वर्मा ...चरण गुप्त आदि अनेक कवि हैं जो उपन्यास दीप... ी पग बढ़ा रहे हैं। इससे उपन्यास प्रियता ... अनुमान हो सकता।

पर प्रश्न है, आधुनिक युग में उपन्यास-साहित्य ...ा मूल्य क्या है? उपन्यास प्रगति पथ पर अग्रसर ...या नहीं? क्या प्रेमचन्दजी का स्थान रिक्त ही रहेगा ...हमारा उपन्यास-साहित्य प्रगति पथ पर है, इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं। प्रेमचन्दजी के स्थान की पूर्ति करने वाला उपन्यासकार अभी तक तो नहीं दिखाई दिया किन्तु भविष्य उज्ज्वल है। आज अनेक उपन्यासकार आगे बढ़ रहे हैं। आज के उपन्यास-युग का सार्थक नाम होगा 'वर्मा युग'। वर्मा बन्धु आज के उपन्यास संसार में सबसे अलग खड़े दीप्ति बिखेर रहे हैं। वे हैं 'वृन्दावनलाल वर्मा' तथा 'भगवती चरण वर्मा'। वृन्दावनलाल वर्मा में चित्रण शक्ति बड़ी प्रबल है। उन्होंने ऐतिहासिक रोमाञ्च लिखे हैं। उनके 'गढ़-कुण्डार' पर पुरस्कार मिल चुका है! उनके ऐतिहासिक रोमांच हिन्दी की एक बड़ी कमी को पूरा कर रहे हैं। इनके उपन्यास बड़े लोकप्रिय हुए हैं। प्रेमचन्द की-सी 'उच्च वर्णन शक्ति' रोचक कथानक एवं उत्तम चरित्र-चित्रण के साथ कहीं भाषा की प्रवाहमय प्रबल शक्ति भी साथ होती तो सोने में सुहागा मिल जाती। भगवतीचरण वर्मा ने दूसरा क्षेत्र ग्रहण किया ... ये समस्यामूलक उपन्यास लिख रहे हैं। जीवन ... सार्व-भौम सामाजिक (पाप-पुण्य) तथा राजनैतिक (गान्धीवाद, समाजवाद, साम्यवाद) समस्याओं की अपने ढङ्ग से व्याख्या कर चुप हो जाते हैं। हमें आशा है कि शैली की अधिक प्रौढ़ता तथा विचारों को अधिक स्पष्टता के साथ लेखक की तीन वर्ष की भूमिका में की गई आशा ("संसार के सर्व-श्रेष्ठ उपन्यासकारों में गणना") पूरी होगी।

शैली की दृष्टि से 'उग्रजी ने हिन्दी जगत में भूकम्प ला दिया था। यदि उग्रजी अँग्रेजी के 'रेनाल्ड' का अनुगमन कर समाज के अश्लील भाग पर दृष्टि न डालकर, 'महात्मा ईसा' तथा 'चिनगारियाँ' की क्यारियाँ सजा पाते तो आज संभवतः वे हिन्दी के श्रेष्ठतम उपन्यासकारों में स्थान पागए होते। इसी प्रकार श्री चतुरसेन जी शास्त्री ने सुन्दर भाषा में सरल प्रवाह से गतिवान मनोरंजक उपन्यास दिए। यदि अधिक संयत हो शास्त्रीजी चारित्रिक विशेषताओं को पनपा देते तो बड़ा उपकार होता। जैनेन्द्रजी अपनी अलग सत्ता रखकर उपन्यास-पाठकों को एक विशेष वस्तु दे रहे हैं। उनके उपन्यासों में कथानक की छटा नहीं। वे 'विश्लेषणात्मक' उपन्यास हैं। मानवी प्रवृति के विश्लेषण पर उनका ध्यान रहता है। प्रेमचन्दजी ने भी जैनेन्द्रजी की इस नूतनता का आदर किया था। हिन्दी उपन्यास के एक अंग की पूर्ति जैनेन्द्रजी उद्योग के साथ कर रहे हैं। इसी प्रकार अन्य अनेक उपन्यासकार आज हिन्दी माँ का आँचल अपने-अपने दृष्टिकोण से भर रहे हैं। उनमें कई उच्चस्थान पर आ विराजे हैं। रांगेय राघव, राहुल सांस्कृतायन, राधिकारमण प्रसाद-सिंह, सर्वदानन्द वर्मा, यशपाल अज्ञेय जी आदि अनेक लेखक हमारी भविष्य आशाओं का प्रदीप बन रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता —

पद-चिह्न—सम्पादक-श्री महेश शरण जौहरी "ललित"। प्रकाशक-सुलभ प्रकाशन-मंडल इन्दौर। पृ० सं० ८०। मूल्य ।।।)।

यह पुस्तिका स्वर्गीय कविवर श्री रमाशंकर शुक्ल "हृदय" के प्रति उनकी तृतीय श्राद्ध-तिथि के अवसर पर उनकी पुण्य-स्मृति में 'मंडल' की ओर से प्रस्तुत की गई है। पुस्तक में छोटे २ तेतालीस गीतों का संग्रह है। कुछ गीत स्वर्गीय 'हृदय' जी के प्रति हैं और सब स्वतन्त्र गीत हैं। प्रायः सभी गीत करुण रस से ओत-प्रोत हैं। आरम्भ में 'हृदय' जी की एक कविता दी गई है। संग्रह बहुत ही सरस सुन्दर और पठनीय है।

—सरोज

हरिऔध सतसई—लेखक-श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध", प्रकाशक – हरिऔध-प्रकाशन-मन्दिर, काशी। पृ० सं० १२४। मूल्य १।।)।

हिन्दी साहित्य में आरम्भ-काल से ही दोहा छन्द बहुत प्रचलित रहा है। वीरगाथा काल में 'दूहा' नाम से यह छन्द लिखा गया। भक्ति काल के कवियों ने नीति के उपदेशों के लिये इसी छन्द को अपना माध्यम बनाया। कबीर और तुलसी के दोहे जनता के बीच बहुत ही प्रचलित हैं। रीति काल में शृंगार-वर्णन के लिए भी इसे चुना गया। सतसई परम्परा में यह छन्द इतना अपनाया गया कि आ[illegible] प्राचीन काल के कवियों से अब तक के कवि दोहा छन्द में अपनी सतसई रचते आ रहे हैं। वर्तमा[न] युग में भी कई सतसई दोहों में लिखी गई हैं। हरिऔध जी ने भी उस परम्परा में यह सतसई लिख कर एक और वृद्धि की है।

इस सतसई के दोहों को पढ़कर अत्यन्त निराशा हुई। हिन्दी के पाठक दोहा पढ़ने के इतने आदी हो गये हैं कि थोड़ी सी शिथिलता भी कानों को खटकती है। इसमें छन्द की शिथिलता एक-दो नहीं अनेकों दोहों में भरी पड़ी है। कहीं कहीं दोहे गद्य से ही बन पड़े हैं और किसी किसी दोहे में तो मात्रा भी पूरी नहीं हैं। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी—

चुप रहते हैं ना समझ,
भी न बन समझदार।
हो अपने उद्योग में,
क्यों नहिं उनकी हार॥

× × ×

जो महि में होतो नहीं,
माता ममता भौन।
ललक बिठाता पुत्र को,
नयन पलक पर कौन॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...नहीं,
...फ भौन।
...ठाता पूत को,
...तक पर कौन॥

× ×

...याता उद्योग का,
फल सारा धन-धाम।
है जीवन के वास्ते,
जड़ी सजीवन काम॥

दोहे की तीसरी पंक्ति में मात्रा भी कम है और 'वास्ते' का प्रयोग भी खटकता है।

दोहे नीति संबंधी या राष्ट्रीय ही अधिक हैं। महाकवि हरिऔध से जैसे व्यंग्य प्रधान सरस दोहों की आशा थी वैसे दोहे न पाकर हमें तो निराशा ही हुई। पुस्तक "हाई स्कूल-स्टैण्डर्ड" की है। —सरोज

किसान सतसई ले०—जगनसिंह सेंगर, प्रकाशक—हिन्दुस्तानी बुक डिपो, अलीगढ़। मूल्य १॥)

हिन्दी में सतसई ग्रन्थों की रचना की प्रथा बड़ी प्राचीन है। रीतिकालीन मुक्तक काव्यकार कवियों ने नायिकाओं के हाव-भाव और चेष्टाओं के वर्णन के लिए सतसई प्रणाली को विशेष रूप से अपनाया था। कविवर बिहारीलालजी की सतसई इस क्षेत्र में अद्वितीय है, जिसकी परम्परा इस काल तक भी चलती रही और श्री 'दुलारे दोहावली' की रचना इसी के अनुकरण पर हुई है। परन्तु श्री वियोगी हरिजी ने सतसई-प्रणाली को शृङ्गार रस के लिए ही सुरक्षित न रखकर 'वीर सतसई' का निर्माण किया और अब श्री जगनसिंह सेंगर ने भारतीय जीवन के मूलाधार किसान के जीवन के विविध अङ्गों पर प्रकाश डाल कर इस ओर एक और अभिनन्दनीय प्रयत्न किया है। ब्रजभाषा साहित्य में ग्रामीण किसान को लेकर लिखी गई सेंगरजी की यह सतसई अपने ढङ्ग की प्रथम ही रचना है।

'किसान सतसई' के सब दोहे अपने आप में पूर्ण हैं, उनका सम्बन्ध एक दूसरे से नहीं है। इसलिये किसान जीवन का पूरा चित्रमय वर्णन इस सतसई में नहीं मिलता। परन्तु किसान जीवन की समस्याओं पर लेखक ने स्फुट रूप से अच्छा प्रकाश डाला है। उदाहरण के लिए किसान के पास पैसा न होने पर लगान लेने के लिए आने वाले जमीदार के भृत्य उसे यमदूतों से भी भयङ्कर लगते हैं। इस बात को कवि ने इस प्रकार अपनी अलङ्कारिक भाषा में लिखा है—

राजदूत आवत समुझि, तजे प्रथम ही प्रान।
पुनि पल भर हँसि जी उठ्यौ, जमदूतनु पहिचान॥

अलङ्कार योजना भी सेंगरजी ने बड़ी कुशलता से की है और अलङ्कार रसोद्रेक में पूर्णतः सहायक हुए हैं। रीतिकाल में नायिकाओं के विदेशी पति की प्रतीक्षा और मनोती मानने के अनेक हृदयग्राही वर्णन हुए हैं परन्तु यहाँ सेंगरजी की 'प्रोषित भर्तृका' किसान बाला को नौकरी पर गये अपने पति के काम छोड़ कर लौट आने की आशङ्का मात्र से ही घूँसा सा लगने लगता है क्योंकि—दुधमुँहे बच्चों के पालन की समस्या उसके सामने मुँह बाँये खड़ी है। उसकी विडम्बना कवि ने यों लिखी है—

पिया दूर दुरभिच्छ दुख, धंधौ लयौ टटोल।
घूँसा से उर में लगहिं, बालहि वाय स-बोल॥

सतसई में कला पक्ष और हृदय पक्ष दोनों का सुन्दर समन्वय हुआ है। हम यहाँ केवल चार दोहे उद्धृत करते हैं—

लोल पवन महि उर्बरा,
प्रकृति रितुमती बाल।
कृषक तपोधन-बन निरखि,
बिधि बिरची धनमाल॥
नव रस, तिय-रति-रस सकहिं,
अरसिक असक न जान।
कृषि षटरस नहिं जान जो,
को अस जीव जहान॥
हल फल विकल जयंत-लौं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुवन छुधासुर छान।
गह्यौ चरन राख्यौ सरन,
पेटु लखाय किसान॥
काह कहत निसि मसक श्रुति,
सार आप तजि भौन।
'सिव सम दानी सुनि रुधिर,
आये पियन' 'पियौ न॥'

सेंगरजी का भाषा पर पूर्ण अधिकार है और इनके दोहे कम में बहुत कहने की शक्ति रखते हैं यह उक्त उदाहरणों से प्रकट है। हमारा विश्वास है कि कवि की इस रचना का हिन्दी में स्वागत होगा और 'किसान सतसई' ब्रजभाषा सतसइयों में अपना उचित स्थान प्राप्त करेगी। —रामनारायण अग्रवाल।

मुक्तिगान—ले० श्रीकृष्णसरल, प्रकाशक—समाज प्रकाशक, गुना। मूल्य छपा नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक कवि के २० गीतों का संग्रह है सभी गीत राष्ट्रीय हैं। पुस्तक की पृष्ठ संख्या ८७ है। यद्यपि गीतों में कला की प्रौढ़ता नहीं किन्तु भावों की सचाई अवश्य है। कवि के कई गीतों पर 'दिनकर' का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। कहीं-कहीं हँसिया हथोड़ा का प्रभाव भी अधिक उभर उठा है जैसे—

भेद भाव को आज भूलकर।
रंक और धनवान उठें॥
लिये हथौड़ा हँसिया कर में।
जागें श्रमिक किसान उठें॥

परन्तु कवि में यह होते हुए भी आदि से अन्त तक भारतीयता ओत-प्रोत है। आगे कवि से अधिक पुष्ट रचनायें प्राप्त होने की आशा की जानी चाहिए।

—रामनारायण अग्रवाल

आलोचना

गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय-साधना—लेखक—श्री० व्यौहार राजेन्द्रसिंह, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० सं० २१२, मूल्य ४)।

[illegible] इस [illegible] महात्मा तुलसीदास जी [illegible] की रचना हुई उसमें सदा [illegible] ध्यान रखा गया। तुलसीदास [illegible] विश्रुत 'रामचरित-मानस' की विश्व विद्यालय के उन अमर-रत्नों का भली [illegible] एक पढ़ाने के पश्चात् और उनका सार ले[illegible]। [illegible] रामायण में यह स्वयं ही स्पष्ट कर दिया [illegible] मेरा यह ग्रन्थ 'नाना पुराण निगमागमसम्मत' ऐसी दशा में पुराण, वेद, शास्त्रादि में जो समन्वय भावना अन्तर्निहित है उसका आभास गोस्वामी जी के मानस में होना स्वाभाविक ही है। लेखक महोदय ने वैदिक-काल के साहित्य से लेकर कृष्ण-साहित्य और सन्त-साहित्य तक लिखे जाने वाले सम्पूर्ण साहित्य की समन्वय-भावना का विवेचन करके तुलसीदास जी की समन्वय साधना की पृष्ठभूमि पर अच्छा प्रकाश डाला है। सारे ग्रन्थ में पढ़ते समय एक कमी बहुत खटकती है कि लेखक ने जिस काल के साहित्य में समन्वय-भावना को दिखलाया है उसके साथ साथ उसी भाव को प्रकट करने वाले तुलसीदास के मानस के उपयुक्त स्थलों का निर्देश नहीं किया न उपयुक्त उद्धरण ही दिये हैं। यदि ऐसा किया होता तो ग्रन्थ अधिक उपयोगी सिद्ध होता। वास्तव में सारा ग्रन्थ पढ़ने के पश्चात् पुस्तक का नाम—'गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय-साधना'—उपयुक्त नहीं जँचता। इसका नाम 'भारतीय-दार्शनिक-समन्वय' ही उपयुक्त था। पुस्तक के आरम्भ में उपोद्घात रूप में आचार्य क्षितिमोहन सेन लिखित बँगला पुस्तक "भारतीय संस्कृति" के कुछ अंश को उद्धृत कर दिया है; जो पुस्तक के विषय के अत्यन्त अनुरूप है और उस पर अच्छा प्रकाश डालता है। सारा ग्रन्थ लेखक द्वारा प्रौढ़ एवं विद्वत्तापूर्ण शैली में लिखा गया है मननशील पाठकों के लिये पुस्तक में सुन्दर सामग्री प्रस्तुत की गई है। —सरोज एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...लेखक–श्री भोलानाथ ...न। प्रकाशक–कल्याण- ... सं० १९५२। मूल्य २)।

... सामाजिक उपन्यास है। ...समस्याओं को उठाया गया है। ...समस्या है—वृद्ध-विवाह। चन्द्रा बालिका है। ...के वृद्ध से उसका विवाह हो जाता है। ...कुछ दिन पश्चात् ही वह विधवा हो जाती ... विधवा होने पर उसके स्वर्गीय पति का पुत्र ...श उसे भ्रष्ट कर देता है तथा उसे गर्भिनी जान ... से भाग जाता है, परन्तु अन्त में लेखक उसके ...थ विवाह कराके कथा को सुखान्त बना देता ...। दूसरी समस्या है शिक्षित युवकों द्वारा रूपवती ...वती को प्रेमपाश में फँसाना और रूपविहीन होने ...र उन्हें त्याग देना। इसका हल भी नारी के स्वाभि-मान और उनकी बढ़ती हुई शिक्षा के द्वारा उत्पन्न ...साहस से कराया है। अन्त में नारी की विजय होती है। उपन्यास में जो घटनाएँ चुनी गई हैं वे अत्यन्त करुण हैं। पुस्तक का नाम भी बात का अच्छा संकेत कर देता है। परन्तु लेखक का यह नया ही प्रयास प्रतीत होता है। जिस घटना को 'निर्मला' में चित्रित कर प्रेमचन्द जी अपने पाठकों को रुलाने में समर्थ हुए उसी घटना को लेकर शैली की शिथिलता के कारण प्रस्तुत उपन्यास का लेखक पाठक को कहीं भी रुला न सका। भाषा में प्रयोग की स्थानीय बोली का बहुत प्रयोग है, जो पढ़ते समय बहुत खटकता है। लेखक ने प्रत्येक पुरुष पात्र के नाम के साथ 'जी' का घोर प्रयोग किया है। ऐसा लगता है कि शायद नया परिचय होने के कारण लेखक पात्रों से डरता है कि कहीं बिना 'जी' लगाये बिना वे अप्रसन्न न हो जावें। इस प्रकार यह रचना साधारण कोटि की ही है।

—सरोज

सरला—लेखक–इन्द्र विद्यावाचसति। प्रकाशक–...विजय पुस्तक भंडार, श्रद्धानन्द बाजार, देहली। पृ० सं० ३३६, मूल्य ३॥)।

प्रस्तुत उपन्यास 'सरला की भाभी' का दूसरा भाग है। अतः इसकी कथा-वस्तु प्रथम उपन्यास से सम्बद्ध है। सरला की भाभी से तात्पर्य सरला की माँ से है, जो घर के वातावरण से क्षुब्ध हो कुछ समय अज्ञातवास में बिताती है। इस उपन्यास की रंगस्थली में वह कथा वस्तु के तारतम्य को बनाए रखने के लिए ही आती है। उपन्यास अंत तक रोचक है—प्रथम भाग को बिना पढ़े ही इसे पढ़ा जा सकता है—न तो कोई तार टूटा हुआ मिलेगा और न उलझा हुआ ही।

इन्द्रजी ने अपने उपन्यास को 'धार्मिक दम्भ का भंडाफोड़' कहा है। हिन्दू धर्म का पाचन अत्यन्त तीव्र है, बड़े-बड़े पापों को वह सरलता से पचा लेता है। प्रो० प्राणजीवन, इस उपन्यास का नायक, एक प्रतिभाशाली व्यक्ति है। धर्म का आश्रय ले वह मान अर्जित करता है। सरला पर वह मुग्ध है, पर अपने प्रेम को वह 'प्लेटाँनिक' संज्ञा दे उसे 'भगवान् की न्याईं शुद्ध, सूर्य की भाँति निष्कलंक और हिमाचल की तरह ऊँचा' मानता है। व्यक्ति ने अपने चारों ओर दम्भ का जो स्तूप खड़ा कर लिया है, सत्य के एक हल्के से धक्के से वह ढह जाता है। बुद्धि और विद्या का दूकानदार सचाई का उपासक नहीं होता।

इन्द्रजी ने धार्मिक दम्भ का भंडाफोड़ करने में परोक्ष रूप से धर्म का ही सहारा लिया है। 'साधना समाज' प्राणजीवन को दंडित करता है, पर दैव भी अपना कर्त्तव्य नहीं भूल गया है। उस पर ठीक समय पर लकवे का आक्रमण होता है। सरला की भाभी ऋषिकेश की यात्रा में अपनी सारी पूँजी और जेवर ठगा जाती है। पर एक पहुँचे हुए महात्मा के दर्शन उसे मिल ही जाते हैं। उनसे उसे घर वापस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने की प्रेरणा मिलती है—"तुम्हें संसार से ... नहीं हुआ, इस कारण तुम्हें घर से भागने का कोई अधिकार नहीं था। जो परिस्थितियाँ पैदा हो गई हैं, उन्हें अपने अनुकूल बना कर दूरदर्शिता और धैर्य से ही तुम मानसिक शाँति प्राप्त कर सकती हो" उपन्यासकार ने इस प्रकार दैवी न्याय और सहायता (Dei-ex-machina) को आवश्यक माना है। इसके अतिरिक्त, उसने उपन्यास-लेखन की उस आख्यायिका-परिपाटी को अपनाया है, जिसमें एक कथा के समाप्त होते ही दूसरी कथा के लिए कुतूहल पैदा किया जाता है। सरला की शेष कथा लेखक फिर कभी सुनाना चाहता है। पाठक प्रतीक्षा करें।

उपन्यास में कुछ प्रयोग और कुछ वाक्यों की रचना ठीक नहीं। उन पर ध्यान दिया ही जाना चाहिए, जैसे—

१. जिधर को वह चले उधर रास्ता बनने लगा।

२. काम का लंगड़ा बहाना करना।

३. प्रो॰ प्राणजीवन ने अत्यन्त काला झूँठ बोला है।

४. प्रमाणस्वरूप सरला का पाकेट और एक पुस्तक जो मुझे समुद्र के किनारे पर पाये हैं, वह भी पुलिस में दाखिल कर दिये हैं। आदि।

लंगड़ा झूँट जैसे शब्द अँगरेजी 'लेम एक्सक्यूज' का अनुवाद प्रतीत होता है। ऐसे शाब्दिक अनुवाद हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नहीं पड़ते।

—मोहनलाल एम॰ ए॰ सा॰ रत्न।

इतिहास और राजनीति

भारतीय संस्कृति और अहिंसा—लेखक—स्व॰ धर्मानन्द कोसाम्बी, अनुवादक श्री पं॰ विश्वनाथ दामोदर शोलापुर का अवलोकन लेखक श्री सुखलालजी संघवी, प्रकाशक—श्री नाथूराम प्रेमी, हेमचन्द-मोदी-पुस्तकमाला। मूल्य २) पृष्ठ संख्या २४४

यह पुस्तक श्री नाथूराम प्रेमी द्वारा सस्थापित स्वर्गीय हेमचन्द मोदी-पुस्तक-माला का प्रथम पुष्प है। ... हिन्दी में कराया ... अहिंसा की समस्या ... काल से आज तक ... इतिहास आगया है। ... करने में लेखक महोद... की मान्यताओं से प्रभावित हु... अभिप्राय नहीं है कि विदेशी लोगों के मत ... रूप से झूँठ ही होते हैं पर छोटे से समान... एक या दो सूत्रों को लेकर पूरी कल्पना कर ... विरुद्ध है। आर्यों में घुडसवार होते थे और घोड़े ... कहलाते थे और केशी जाति का बेबलोनियर से ... सम्बन्ध था इसी बादारायण सम्बन्ध से आर्यों का ... लोनियाँ से सम्बन्ध माना गया है। वृत्रासुर की ... पर सप्त-सिंधु की विजय की कल्पना की गई है। देश... भी विरोधी शक्तियों का दमन किया जाता है। जो आर्य... समाजी वेदों में इतिहास नहीं मानते उनकी युक्तियों ... कोई विचार नहीं किया गया है। पक्ष चाहे जितना ... पुष्ट हो उसके विपक्ष का ध्यान रखना सच्चा बुद्धिवाद है। श्री मद्भगवद्गीता का निर्माण काल भी लेखक ... गुप्तकाल ही माना है। इसका मूल आधार ... श्रीमद्भगवद्गीता में ब्रह्म सूत्रों का उल्लेख। पहले ... यह निश्चित नहीं कि यहाँ पर बादारायण के ब्रह्म सू... से ही तात्पर्य है या और कोई-सूत्रों से फिर बादाराय... के ही सूत्रों का काल निश्चित नहीं है। क्या उस... भी कोई पूर्व रूप न रहा हो। इस प्रकार कि... संदिग्ध और अनुमानित बात को निश्चय का रूप दे... तर्क विरुद्ध है।

लेखक महोदय ने भगवान कृष्ण जैन तीर्थङ्... और भगवान बुद्ध को अहिंसा का प्रचारक माना है... लेखक ने अहिंसा का महत्व स्वीकार किया है इस... प्रचार का महात्मा गाँधी को भी श्रेय दिया है किन्... वे महात्मा गाँधी की जमीदारों और राजाओं ... समझौते की नीति से सहमत नहीं है। लेखक मार्क्स... वाद से प्रभावित है लेकिन मजदूरों का संघ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

... का यह ... के राष्ट्रीयता ... है। ... और बौद्ध साहित्य से ... परिचय दिया है यद्यपि लेखक ... सहमत नहीं है (बहुत सी ... बलाल जी भी जिन्होंने पुस्तक ... अवलोक लिखा है, सहमत नहीं है) तथापि ... की विद्वता की प्रशंसा करनी होगी। हमारी ... यह है कि विपक्ष की सम्भावित प्रक्रियाओं ... लेखक ने ध्यान देने का कष्ट नहीं किया।

—गुलाबराय,

खाद्य-संकट और उसका हल—लेखक—राधाकृष्ण विशारद 'ग्रामीण'। प्रकाशक—ग्राम हितैषी कार्यालय, श्याम बाग, हाथरस। पृष्ठ संख्या २८। मूल्य छः आना।

प्रस्तुत पुस्तक में ग्रामीण जनता तथा सरकार दोनों से ही लेखक को बहुत कुछ कहना है; "देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद के ६४ वें जन्मदिवस पर" इसका समर्पण भी यही बतलाता है कि यह पुस्तिका प्रचार की दृष्टि से लिखी गई है। पुस्तक की भाषा और शैली इस बात को स्पष्ट कर देती है कि इसका प्रसार ग्रामीण जनता में ही वांछनीय है, अधिक ऊँचे स्तर की जनता में नहीं; अन्यथा प्रान्तीयता की भाषा में इतनी बहुलता न होती, और विषय के अध्ययन में कुछ अधिक गंभीरता भी मिलती।

लेखक का उत्साह अवश्य ही अनुकरणीय है।

—ओम्प्रकाश

पाकिस्तान और भारत का आर्थिक समझौता—लेखक—दयाशंकर नाग। प्रकाशक—साहित्य प्रकाशन मंडल, वर्धा। पृष्ठ सं० १३, मूल्य छः आना।

"अर्थसाहित्य प्रकाशन मंडल" की सेवायें जहाँ एक ओर अर्थसाहित्य पर भारतीय दृष्टिकोण के लिए प्रशंसनीय हैं, वहाँ दूसरी ओर हिन्दीभाषा की शब्द-शक्ति और अर्थशक्ति के बढ़ाने में भी सहायक हैं। प्रस्तुत पुस्तिका में विद्वान् लेखक ने एक महत्वपूर्ण समस्या को आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखा है और हिंदीवालों को हिंदी के द्वारा ही सोचने को प्रेरित किया है।

यद्यपि "रोलिंग स्टॉक" के लिए "घूर्ण स्कन्ध" "बुक वैल्यू" के लिए "पुस्त मूल्य" तथा "डेट-रीपेमेंट" के लिए "ऋण-प्रतिदान" के प्रयोग—जिसमें अँग्रेजी के पर्यायवाची शब्द भी साथ रक्खे हों—अत्यन्त प्रशंसनीय हैं; फिर भी "पेन्शन" के लिए "पूर्व-सेवा-वेतन", "रेलों" के लिए "संयानों" तथा "फंड" के लिए "प्रणीवि" आदि शब्दों के प्रयोग का समय अभी शायद आया नहीं है।

—ओम्प्रकाश

शरणार्थियों का पुनःसंस्थापन—लेखक—आचार्य भगवतशरण अधोलिया। प्रकाशक—गोविन्दराम सेकसरिया, अर्थ-साहित्य-प्रकाशन-मंडल, वर्धा। प्रथम संस्करण। मूल्य आठ आने मात्र।

विद्वान् लेखक की वर्त्तमान पुस्तिका अपने ३३ पृष्ठ के सूक्ष्म शरीर में ही देश की विभाजनोद्भव एक महान् समस्या को सुलझाने का स्तुत्य प्रयत्न है। जिस प्रकार सामयिक समस्याओं (Current topics) का सुझाव देकर जनसम्मति (Public openion) को एक विशेष दिशा में मोड़ने के लिए ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी अपनी पैमफ्लेट निकाला करती है, उसी प्रकार लगभग उसी आदर्श पर लिखी गई प्रस्तुत पुस्तिका भी जनता को बड़ी लाभदायक होगी, ऐसी आशा है।

दो बातें विशेषतः ध्यान देने योग्य है—प्रथम तो यह है कि लेखक ने पुस्तक को मौलिक बनाया है और तर्कपूर्ण भी (हिन्दी की इन विषयों पर लिखी गई अन्य पुस्तकों के समान 'इत उत अच्छर काटि' इसे केवल संमति-संग्रह' (Collection of openions) ही नहीं बने रहने दिया)। दूसरे, यह कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेजी नाम भी देवनागरी लिपि में ही देने के कारण राष्ट्र-भाषा का वास्तविक रूप भी इन पृष्ठों में मिलता है।

जीवनी

बा—लेखक–नारायणप्रसाद शुक्ल। प्रकाशक–सुलभ प्रकाशन मंडल, बिल्टौर, कानपुर, इन्दौर। पृ० सं० १०२, मूल्य १॥)।

पुस्तक के सम्बन्ध में यह मान्यता रखी गई है कि उसमें बा की 'जीवन-झाँकी, संस्मरण, तथा संसार की क्राँतिकारी वीर महिलाओं के जीवन के साथ एक अध्ययनपूर्ण दृष्टिकोण' है। इस मान्यता को स्वीकार करने में पाठक को कोई विशेष आपत्ति नहीं होगी। जहाँ तक बा की जीवन झाँकी का सम्बन्ध है, लेखक ने कितनी ही स्मरणीय घटनाओं को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। पुस्तक के आरंभ में लेखक ने अनेकों देशी-विदेशी, आधुनिक-प्राचीन, महिलाओं का उल्लेख दिया है, जिनकी लगन और तपस्या नारी जाति के लिए यश और गौरव भी वस्तु रहेगी। बा की महानता इसमें है कि उसने अपने मूक व्यक्तित्व को बापू में निहित किया है।

पुस्तक पठनीय है। इसे स्वदेशी बनाने के लिए लेखक और प्रकाशक ने हाथ के बने कागज का ही प्रयोग किया है।

—मोहनलाल, एम० ए०, सा० रत्न।

बालोपयोगी

होनहार बालक और अन्य कहानियाँ—लेखक–विश्वनाथ अय्यर। प्रकाशक–सरल हिन्दी पुस्तकमाला, ट्राबन्कोर। मूल्य ।≋) पृ० सं० ३६,।

पुस्तक बालकों के लिए लिखो गई है। इस संग्रह में सब मिला कर दस कहानियाँ है कुछ ऐतिहासिक कुछ लौकिक सभी कहानियाँ रोचक और सुन्दर हैं और स्वस्थ मनोवृत्ति की सूचक भी। 'कौआ क्यों काला हो गया?' एक अच्छी सूझ है। बालोपयोगी साहित्य की हिन्दी में अभी अ...

पुस्तक बच्चों क...

—मोहन...

सांख्यकी शब्दकोष

...ms) रचयिता–आचार्य ...श्व विद्यालय ...शरण अधोलिया, अध्यापक ... पढ़ाने ...शक–गोविन्दराम सेकसरिया, अर्थसाहित्य प्रका... मण्डल वर्धा। मूल्य २) पृष्ठ संख्या ६५, ...

आजकल सांख्यकी अथवा गणना श... महत्व बढ़ता जाता है। यह अर्थ शास्त्र, वाणिज्य ... गणित तीनों में ही महत्व रखता है। इसकी ... भाषिक शब्दावली होना आवश्यक ही था। इ... रचयिताओं में दो वाणिज्यशास्त्र के भी विद्वान ... किन्तु इनमें भी डाक्टर रघुवीर की अन्य कृतियों ... भाँति प्रचलित शब्दों तथा सुबोध शब्दों की ... प्रवृत्ति नहीं है। 'औसत' शब्द उर्दू का था उसके ... माध्य दे दिया, उसका स्वागत किया जा सकता ... किन्तु Variation के लिए घट-बढ़ या घटा-बढ़ी छोड़ कर 'विचरण' देने में कोइ विशेष लाभ ... दीखता है। Mean के लिए मध्यमान जो प्रचार ... आ गया था बहुत अच्छा था। उसके लिए म... बनाना नवीनता और पाण्डित्य का अनुचित लोभ है ... यह दुर्बोध तो नहीं है किन्तु बेढङ्गा अवश्य है ... Regression के लिए प्रतीपगमन रक्खा है। प्र... का अर्थ (उल्टा) बहुत कम समझते हैं या तो ... गति रख लिया तो ठीक था या पीछे हटना ही रहता ... Reduction के लिए प्रहासन है। यह शाब्दि... अर्थ तो होगया लेकिन यह कठिन हैं और शायद ... से प्रचलित अर्थ का बोध भी नहीं होता है। Who...lesale prices Index numbers बहुशों मू... देशनाकें Wholesale के लिए थोक शब्द ... प्रचलित हैं उसने क्या बिगाड़ा है? Sphere ... लिए गोल दिया है। गोला हिन्दी प्रकृति के अ... अनुकूल होता। Reviosn के लिए पुनरावृत्ति ... गया है। यदि Revison प्रचलित अर्थ में ही लि...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...पद्मा संशोधन अधिक ...क Repeated के लिए ... पुनरावृत्ति का उससे अधिक ... है। हम आचार्य त्रय के परिश्रम ...ई। उन्होंने हिन्दी के एक अभाव ...तु इतना निवेदन करेंगे कि पारिभाषिक शब्दावली को भी सुबोध और लोक भाषा के निकट लाना चाहिए और प्रचलित शब्दों का यथासम्भव मान करना चाहिए। —गुलाबराय

धर्म

प्रार्थनावली—प्रकाशक–प्रकाशन-मन्दिर, गुरुकुल काङ्गली हरिद्वार। पृष्ठ ३४, मूल्य ।)

इस संग्रह में सरल अर्थों के साथ वैदिक प्रार्थनाएँ हैं और लोक भाषा के प्रार्थना-गीत हैं। इसमें एक गीत श्री मैथिलीशरणजी गुप्त का भी संग्रहीत है। और सब गीत यद्यपि आर्यसमाजी दृष्टिकोण से लिखे गये हैं तथापि उनमें साम्प्रदायिकता नहीं है।

स्फुट

मेवाड़ की कहावतें भाग १—सम्पादक–पंडित लक्ष्मीलाल जोशी एम० ए०, एल० एल० बी०। प्रकाशक–प्राचीन साहित्य शोध संस्थान हिन्दी विद्यापीठ उदयपुर, मूल्य २) पृष्ठ संख्या १६६।

कहावतें लोक-साहित्य का एक मुख्य अङ्ग है। उनमें लोकानुभव सूत्र रूप से आवद्ध रहता है। यद्यपि सब प्रान्तों की लोकोक्तियों में कुछ न कुछ भिन्नता रहती है तथापि भाषा का स्थानीय आवरण हटाने पर वे भेष बदले हुए मित्र की भाँति परिचित सी निकलती हैं। कुछ परिचित कहावतों के उदाहरण—

घोड़ा सूँ घर कईं दूरा, बारा बामणं ने तेरा चूला, हाथी हाथी चल्यौ जाय अर गंडक गंडक भुस्याँ जाय (गंडक = कुत्ता) कुछ कहावतें संयुक्तप्रान्त के लोगों को नई सी लगेंगी जैसे—दलाल के दीवालो नी, मसीद को तालोनी (मसीद = मसजिद) चोरी की खाज अट पीर की आश कदानी मरे (पीर = पीहर। मरे = मिटे)।

इस संग्रह में कहावतों का अर्थ तो दिया ही गया है। अन्त में शब्दकोष भी दिया गया है वह बहुत उपयोगी है। —गुलाबराय

मधु मक्खी पालन—ले० शंम्भुनाथ सक्सेना प्रकाशक, नूतन मण्डल, लश्कर (ग्वालियर) मूल्य !!)

भारत कृषि प्रधान देश होते हुए भी मधु मक्खी पालन के उद्योग धन्धे में बहुत पिछड़ा है। उस ओर ध्यान आकर्षित करने के लिये यह पुस्तक लिखी गयी है। पुस्तक में कुल १८ पृष्ठ हैं जिनमें लेखक ने बड़ी कुशलता से संक्षेप में मधु-मक्खियों के विभेद, देश विदेशों में मधुमक्खी पालन की प्रगति का परिचय दिया है। साथ ही भारतीय मधु मक्खियों की नस्लों का परिचय, उन्हें पालने की प्राचीन व आर्वाचीन विधि का विवरण और रानी मक्खी की विशेषताओं का मनोरञ्जक वर्णन दिया है। पुस्तक पढ़ लेने के बाद पाठक को मधु-मक्खी पालन की सम्पूर्ण-प्रणाली ज्ञात हो जाती है, फिर भी इस कार्य के संचालन के लिये व्यवहारिक ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। स्वयं लेखक ने भी इस बात पर जोर देकर सोदपुर मधु-मक्खी क्षेत्र के अध्यक्ष श्री क्षितिज बाबू का यह मत उद्धृत किया है कि "केवल मधु मक्खी विषयक साहित्य पढ़कर काम प्रारम्भ कर देना फालतू काम है।" फिर भी तत्सम्बन्धी शास्त्रीय ज्ञान के लिए पुस्तक अत्यन्त उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक है। —रामनारायण अग्रवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

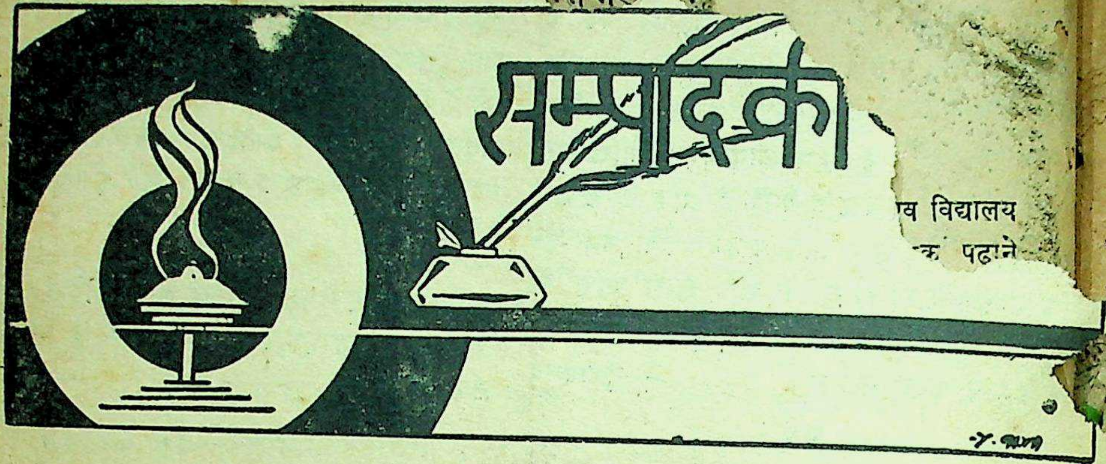

श्री गुप्तजी का सम्मान—आगरा-विश्व-विद्यालय इस वर्ष राष्ट्र-कवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त को डाक्टरेट दे रहा है। यह पहली ही बार है कि किसी साहित्यिक को केवल साहित्यिक होने के नाते सम्मानार्थ पद प्रदान किया जारहा है। अधिकारियों में भी साहित्यिक हो सकते हैं किन्तु उनको जो पद दिये जाते हैं उनमें सरस्वती पूजा की अपेक्षा शक्तिपूजा अधिक रहती है। गुप्तजी के इस मान में सरस्वतीजी का मान है क्योंकि वे माता शारदा के लाड़िले पुत्रों में से हैं। आगरा विश्वविद्यालय की इस सद्बुद्धि के लिए हम हृदय से बधाई देते हैं।

गुप्तजी की साहित्य साधना द्विवेदी काल से चल रही है। भारतीय संस्कृति को जितना उनके ग्रन्थों में मान मिला है उतना किसी जीवित कवि के ग्रन्थों में नहीं मिला है। फिर भी वे चिर पुरातन होते हुए भी चिर नवीन हैं। वे समय के साथ क़दम मिलाये हुए चलते रहे हैं किन्तु उनकी राम के प्रति अनन्यता अक्षुण रही है। उनके साकेत में रामभक्ति और राजनीति का अपूर्व समन्वय हुआ है। यद्यपि राम का चरित स्वयं काव्य है और किसी का कवि बन जाना सहज सम्भाव्य है तथापि प्रत्येक कवि उस पावन चरित की महानता से लाभ नहीं उठा सकता है। राम के अनन्य रह कर भी गुप्तजी ने अपूर्व साम्प्रदायिक उदारता दिखाई है। इनकी इस साम्प्रदायिक उदारता में ही सच्ची राष्ट्रीयता है। उन्होंने हिन्दू, बुद्ध, सिक्ख, मुसलिम, ईसाई सभी प्रमुख धर्मों की मूल चेतनाओं को पुष्ट करने वाले ग्रन्थ लिखे हैं। साकेत और पञ्चवटी में उनकी रामभक्ति प्रस्फुटित हुई है। द्वापर में कृष्णोपासना को मान मिला यशोधरा, अनघ और कुणालगीत में बौद्ध संस्कृति का उद्घाटन हुआ है। गुरुकुल में सिक्ख गुरुओं का यशगान है, काबा-कर्बला में मुसलिम संस्कृति की कष्ट सहिष्णुता और अर्जन-विसर्जन में ईसाई क्षमा का प्रकाश है। राष्ट्रीय चेतना के अग्रसर करने में जो गुप्तजी का हाथ रहा है वह विस्मरण करने की बात नहीं है। उनकी भारत-भारती कोटि-कोटि कण्ठों का कण्ठहार रही है। गुप्तजी नव-युग के अग्रदूत हैं और उन्होंने राष्ट्रोत्थान में सक्रिय भाग भी लिया है। साहित्य में गान्धीवाद के प्रचारकों में वे अग्रगण्य हैं। मुन्शी प्रेमचन्दजी ने जो कार्य अपने उपन्यासों द्वारा किया वही कार्य गुप्तजी ने अपनी कविता में किया। गुप्तजी सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय और राष्ट्र कवि हैं। उनका मान करके विश्वविद्यालय ने अपना मान बढ़ाया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवन योग्य

आयुर्वेद प्रणीत

शारंगधर की औषधियां

❀ पूर्ण चन्द्रोदय रस ❀

(अनुपान मिश्रित गोलियाँ)

बल्य, रसायन और शक्तिप्रद हैं।

❀ स्वर्ण घटित मकरध्वज रस ❀

दीपन, पाचन करने वाला, क्षय, खाँसी, कमजोरी को दूर करने वाला रसायन है।

❀ च्यवनप्राश अवलेह ❀

(अष्ट वर्ग युक्त)

बल और बुद्धि वर्द्धक, स्वादिष्ट और पौष्टिक खुराक।

जामनगर शार्ङ्गधर लेबोरेटरी लि०, जामनगर (सौराष्ट्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी० जी० फ्रूट

गर्मी और जाड़े
हर मौसम में
जी० जी० ब्रान्ड
वस्तुएँ
व्यवहार में लाइये

गुण लाभ, स्वाद कोई कमी नहीं होती

फल पेय
नारङ्गी
लेमन
लेमन वार्ली
आम
लाइमजूस कार्डियल

मिक्स्ड फ्रूट
जाम, केला,
स्ट्रबेरी, रसभरी, मिक्सड फ्रूट, नाशपाती,
अमरूद जेली और नवरंजी मर्मालेड (Oran
Marmalade) तथा
चटनी व टुमाटो सञ्जीवनी इत्यादि। पके
के सुमधुर रसों द्वारा तैयार किये जाते हैं।

जी० जी० चाकलेट फैक्टरी

जी० जी०
ब्रान्ड

स्वास्थ्य वर्धक

विशेषज्ञ द्वारा सफाई व वैज्ञानिक रीति से तैयार की जाती
इनके बनाने के लिये कन्डेन्स्ड मिल्क क्रीम, मक्खन, ग्लूकोज, गिरी, मेवा इत्या
काम में लाये जाते हैं॥

गिरधरगोपाल टिन फैक्टरी में

चार गैलन के टिन के अतिरिक्त
बाल्टियाँ, एक गैलन फिनायल के टिन, पालिश की डिबियाँ व अन्य प्रकार के टिन भी बनते हैं
हवा यंत्र द्वारा टिनों की जाँच की जाती है
जिससे
कभी चूने की सम्भावना नहीं रहती

जी० जी० टौय फैक्टरी

फुटबाल, क्रिकिट बाल, जाल इत्यादि के
आपके बच्चों की
शिक्षा तथा मनोरञ्जन
सामग्री प्रस्तुत कर
खिलौने देखने में सुन्दर तथा व्यवहार

जी० जी०
इन्डस्ट्रीज

आ
ग

जी० जी० सेल्स डिपोः—
आगरा, बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर
ग्वालियर, अजमेर, पटना, देहरादून।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगरा—सितम्बर, १९४८

विषय-सूची

१—'कामायनी' में प्रसादजी की नारी भावना—श्री नन्दलाल जोशी एम० ए० ... ७३
२—अजातशत्रु के गीत—श्री कृष्णकुमार सिन्हा एम० ए० ... ७७
३—हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ—श्री हरिनरायण वर्मा लखनऊ यूनीवर्सिटी ... ८४
४—बा० गुलाबरायजी की नूतन देन—प्रो० श्री नागरमल सहल एम० ए० ... ८६
५—'निर्मला' पर एक दृष्टि—श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ... ९५
६—'स्कन्द गुप्त' में त्रिकोणात्मक प्रणय—श्री हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव बी० ए० ... १००
८—साहित्य-परिचय— ... ६०

गुलाबराय एम० ए०
वार्षिक मूल्य ४) रुपया
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य की नवीन पु

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची प्रकट की जाती है जो हा
हुई हैं। इनमें से अधिकांश पुस्तकें आगरा के साहित्य-रत्न-भण्डार से मिल सकती हैं विद्याल

साहित्या समालोचना—

अशोक के फूल—श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी २।।)

लोक-वार्त्ता—

धरती गाती है—श्री देवेन्द्र सत्यार्थी १)

कविता—

कारागार—श्री देवीदास शर्मा 'निर्भय' १)
रसिक-रसाल—कविवर पं० कुमार मणि शास्त्री १।।)

कहानी—

रात की रानी—कुंवर आर्पी एम० ए० २)
जय-सन्धि—श्री जैनेन्द्र कुमार ३)
हँसते-हँसते जीना—श्री छगनलाल जैन एम० ए० १)
घूँघटवाली—विश्वम्भरनाथ जिज्जा २।)

उपन्यास—

नकाब का रहस्य—श्री सव्य साची और अरुणकुमार १।।)
नाता-रिश्ता—श्री ओंकारनाथ 'शरद' २।।)
अभिशाप—श्री कन्हैयालाल मुंशी ५)

जीवनी—

स्वाधीनता के पुजारी—श्री सुरेन्द्र शर्मा १।।)
रहस्य और विनोद—श्री प्रेमनारायण टन्डन ।।।)
रेखाचित्र— " " ।।=)

सामाजिक—

अनल-कुण्ड—श्री मदन १।)
साम्प्रदायिक झगड़े और स्काउटों का कर्त्तव्य—श्री डी० एल० आनन्दराव ।-)

दार्शनिक—

श्री अरविन्द का पूर्णयोग—श्री नारायण प्रसाद 'विन्दु' ।।।)

वैज्ञानिक—

तुलसी—श्री रामेश वेदी २)

धर्म-शास्त्र—

प्रार्थनावली— ।)

स्वास्थ्य-विज्ञान—

क्षय-चिकित्सक—श्री रामनारायण दुबे २)

बालोपयोगी—

वीर-बालक—श्री रघुवीर शरण १)

मिलने का पता—साहित्यरत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग १०] आगस्त—सितम्बर, १९४८ [अङ्क ३

"कामायनी" में प्रसादजी की नारी-भावना

श्री० नन्दलाल जोशी एम० ए०

"कामायनी" प्रसादजी की अतल चिन्तन शक्ति की अमूल्य देन है। अतीत की सृष्टि-आरम्भ की कथा के आधार पर इसका आरम्भ होता है और तदनन्तर कथा का विकास होता रहा है। काव्य-विकास की धारा में कवि कल्पना ने पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। कल्पना-मयी एवम् चित्रमयी भाषा द्वारा महाकवि ने इस महा-काव्य को युग का प्रमुख काव्य बना दिया है। मानव मस्तिष्क और हृदय के दो रूपकों के रूप में जिस प्रकार मानव विश्लेषणात्मक पृष्ठ-भूमि में कथा का सूत्र पल्लवित हुआ है वह निबंध का विषय नहीं है, रूपक और मनो-विश्लेषणात्मक पृष्ठ-भूमि का आधार छोड़ केवल साधारण कथा रूप में कामायनी की कथा को आँकते समय हमारे सामने तीन पात्र आते हैं। यथा मनु-श्रद्धा (कामायनी) और इड़ा! 'कामायनी' कथा की मुख्य धुरी है। जिसके द्वारा कथा का निर्वाह एवम् विकास हुआ है। 'नारी' रूप में कामायनी श्रद्धा के रूप में अवतरित होती है, और यहीं से 'नारी-भावना' का आरम्भ होता है।

प्रलय-दृश्य के समक्ष मानव सृष्टि का सूत्रधार मनु दग्धहृदय, उदासीन, अपने अतीत की स्वर्णिम स्मृतियों में उलझता हुआ प्रतीत होता है। फिर भी मनु में पुरुषत्व शेष है। अपने शेष पुरुषत्व के बल मनु जीवित अवश्य है परन्तु किसी अज्ञात अभाव की स्मृति में वह चिन्ताकातर है। जीवन के इस अवसाद-पूर्ण प्रभात काल में नवाशा बन कामायनी वरदान सदृश, जीवन सदृश अन्तर्चेतना एवं प्रेरणा की भाँति अवतरित होती है। महाकवि ने मनु के दिव्य शब्दों में प्रेरणामयी नारी के अस्तित्व का दिग्दर्शन इन शब्दों में इस प्रकार स्पष्ट किया है। यथाः—

> कौन हो तुम बसन्त के दूत!
>   विरस पतझड़ में अति सुकुमार।
> घन तिमिर में चपला-सी रेख।
>   तपन में शीतल मन्द बयार।

इन शब्दों में महाकवि ने कोमल करुणा-सी सजीली नारी स्वरूप की गात रेखा का सचित्र चित्र प्रस्तुत किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। महाकवि के शब्दों में नारी आधुनिक अर्थ संघर्ष में पिसते रहने वाले पुरुष समाज की गुड़िया नहीं, मनोरञ्जन का साधन नहीं, शोषण की वस्तु नहीं, वह जीवन की अन्तर्प्रेरणा सदृश पुरुष को चेतना और नव-जीवन प्रदान करने वाली युग युग की छाती चीर अन्तः सलिला सी प्रवाहित होने वाली दिव्य शक्ति है, तभी तो जीवन के प्रथमकांड प्रथम चरण में ही नारी स्नेह और साधना की सजीव मूर्ति बन उतरती हुई दृष्टिगत होती है। मनु के स्वरों में नारी का अस्तित्व कितने मधुर स्वरों में निर्झर की भाँति स्वतः उद्घोषित हुआ है। उसका अस्तित्व पुरुष जीवन की पूर्णता का सम्बल है, नारी वस्तुतः नीरस जीवन की साकार सरसता है।

पुरुष के प्रति 'नारी' का त्याग, समर्पण अपनी उसकी सबसे बड़ी महत्ता है। उसके त्याग और समर्पण का पुरुष समाज शोषण कर बैठे—उसे अपनी इच्छा पूर्ति का साधन ही मान बैठे यही पुरुष समाज की क्रूरता है एवम् महान् निर्बलता है। नारी का त्याग उसके जीवन का सर्वस्व है। उसके उत्सर्ग में नारी का नारीत्व निखर उठता है—वह पुरुष-जीवन का सबल विश्वास बन जीवन-क्षेत्र की सफलता का प्रतीक है अपने दान के प्रतिदान में उसे कुछ भी वांछनीय नहीं हृदय की कोमल और करुण सुमनांजलियों को पुरुष-चरणों में अर्पित कर वह पुरुष-जीवन की सफलता का बल है। अतीत के उक्तियों के आधार पर नारी का उत्सर्ग नारी की निर्बलता का चिन्ह नहीं, वह यह उसका त्याग है, उत्सर्ग है—तभी तो—कामायनी के शब्दों में ही नारी जीवन की व्याख्या इस प्रकार है :

समर्पण लो सेवा का सार,
दया, माया, ममता लो आप॥
मधुरिमा लो अगाध विश्वास,
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ॥
तुम्हारे लिये खुला है पास !!

इस उत्सर्ग का तात्पर्य पुरुष समाज की इच्छा ज्वाला में जल कर वेदना और उसांसों के भरे हुए वक्षःस्थल से केवल आँसू बहाने मात्र के लिये नहीं है—उसका जन्म त्याग और सहन के अर्थ है सही परन्तु नारी का यह महत्व पूर्ण रूप पुरुष समाज की निर्ब[illegible] की पूर्ति [illegible] है—उसे और भी निर्बल बनाने [illegible] सबल उद्घोषित करना केवल [illegible] वस्तुतः स्वच्छ निर्झरिणी की भाँति [illegible] अनुपम त्याग और उत्सर्ग ही पुरुष [illegible] सार्थकता स्तंभ हैं। तभी तो कामायनी के निम्न शब्दों में नारी के उत्सर्ग मूर्तिमान है :—

इस अर्पण में कुछ और नहीं,
केवल उत्सर्ग छलकता है।
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ,
इतना ही सरल झलकता है।

कितना निर्मल, निष्काम, पवित्र एवम् करुण उत्सर्ग है—'नारी' का यही स्वरूप पुरुष का पुरुषत्व और बल है। तितली की भाँति रंग बिरंगे फूलों की गंध पर मोहित होने वाले वायु के झोंके में बहने वाली नारी का स्वरूप कामायनी का आदर्श नहीं, रीति-कालीन नायिकाओं की भाँति नारी नायिका नहीं—नारी 'नर' की पूर्ण सहचारिणी है। नारी का यह समर्पण अब आधुनिक बुद्धिजीवी युग के लिये प्रखर प्रकाश पुंज है। उसका यह 'त्याग' हार्दिक त्याग है—नारी के इन शब्दों में नारी का य[illegible] करुण चित्र कितना सजल, सरल, और करुण है :

आँसू से भीगे अंचल पर,
मन का सब कुछ रखना होगा।
तुमको अपनी स्मित रेखा से,
यह संधि-पत्र लिखना होगा।

यह है नारी की कहानी गुप्तजी के शब्दों में यशोधरा का दिव्य रूप भी ऐसा ही है :—

अबला नारी हाय ! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥

करुणा से सजल पलकें और दूध से भरा आँचल नारी के व्यक्तित्व की महान् निधि हैं, सचमुच रमणी का रहस्य उसके मुस्कान भरे ओठों में नहीं अपितु उसकी आँसू भरी पलकों में है। पाश्चात्य रंग में रँगी नारियों के लिये आदि कथा के आधार पर आधुनिक कवि का यह दिव्य सन्देश जीवन की सार्थकता का महान् सूत्र है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय गरिमा भारतीय संस्कृति एवम् नारी धर्म की ... का यह अनुपम प्रतीक है।

युग की विभिन्न "समस्याओं से" व्यग्र महाकवि ने कामायनी में युग की प्रमुख समस्या 'नारी' और जीवन की मुख्य पहेली 'पुरुष-नारी' पर इस काव्य द्वारा अत्यन्त सुन्दर मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रकाश डाला है। जिसके आधार पर पुरुष की कामेच्छा उसकी नारी-शिखा में पतंग की भाँति जलने के स्वाँग की निरर्थकता सिद्ध की है। 'नारी' का सबसे निकृष्ट विकृत मूल्य जो आदिकाल से ही पुरुष समाज करता चला आया है वह है 'नारी का केवल मात्र क्रीड़ा-कन्दुक पुतली मानना नारी वासनाओं को तृप्त करने का एक साधन मात्र है। वह पुरुष की परछाई है, उसकी इच्छा के बल पर नाचने वाली एक पुतली है! यह धारणा निराधार है। नारी क्रय-विक्रय का साधन नहीं, वह इच्छाओं की रंगीन कल्पनाओं में मादक लहरी बन, सुरा बन, पियाला बन, सर्वस्व लुटा देने वाला नहीं। उसका जन्म निर्माण हेतु है। जीवन की गति बन, प्रेरणा बन, सदैव बहते रहने में ही उसकी सार्थकता है। प्रणय की वासना मयी ज्वाला बन रहने में नहीं। यह पुरुष समाज की भूल है। उसकी महान् शोषण वृत्ति का प्रतीक है। युग की विभिन्न उपेक्षित समस्याओं में से प्रमुख समस्या आज नारी के स्वरूप की सार्थकता को सिद्ध करने की ओर उसे समाज में निर्मातृ का रूप देने ... है। उसे इस प्रकार भूखी, उपेक्षिता रखने में पुरुष-समाज का अपना स्वार्थ है और वह उसका निकृष्ट स्वार्थ है, उसकी निर्बलता है तभी तो वह उसे केवल प्रणय ज्वाला ... ठा है। दीप शिखा सी मान—जिसमें से वासनाओं की, तृप्त इच्छाओं का धूम निकल रहा है—पुरुष अपने को ... सा मान जला देने में ही प्रेम की सार्थकता मान बैठता है यह नारी के प्रति अन्याय है और यही अत्याचार युगों की मूक-वेदना का मुखरित स्वर आज युग-कवि प्रसादजी ने कामायनी में स्पष्ट घोषित किया है। नारी का मूक-रुदन, ... क पीड़न, युग स्वरों में स्वतः फूट पड़ा है। पुरुष ... के प्रति नारी का यह सबल उद्घोष आज के सहानुभूत ... न केवल बुद्धिजीवी संसार के समक्ष एक अमर सन्देश सा है।

पुरुष के प्रति

तुम भूल चुके पुरुषत्व मोह में,
कुछ सत्ता है नारी की।

नारी का परिचय नारी क्या है :—

वह हृदय प्रणय से पूर्ण सरस,
जिसमें जीवन का भरा भान।
जिसमें चेतनता ही केवल,
निज शान्त प्रभा से ज्योतिमान।
पर तुमने तो पाई सदैव,
उसकी सुन्दर जड़ देह मात्र।
सौन्दर्य जलधि से भर लाये,
केवल तुम अपना गरल पात्र॥

तुमने जो प्राणमयी ज्वाला का,
प्रणय प्रकाश न ग्रहण किया।
हाँ जलन वासना को जीवन,
भ्रम तम में पहला स्थान दिया॥

वासनाओं के प्रति कामुक पुरुष समाज ... की विश्लेषणात्मक स्थिति का कितना यथार्थ चित्र प्रसाद ने 'नारी' के इन रूपों में पुरुष के प्रति स्पष्ट व्यक्त किया है। वस्तुतः नारी का स्वाभिमान केवल धूल बन 'पिसते रहने में ही नहीं' उसका त्याग पुरुष समाज की दृष्टि में उसकी असहायावस्था नहीं है वह उसकी महानता है, उसे पुरुष समाज अपना अधिकार सा घोषित कर उ... मनमाने अत्याचार कर बैठता है। काम-पिपासा से ... मनु कामायनी "मातृत्व-मान" से क्षुब्ध-सा हो उठता है। और उसका पुरुषत्व जिसका आधार केवल अहंमन्यता है और जो नारी में केवल एक वासना तृप्ति की छाया ... देखता है, जाग्रत हो उठता है। मातृत्व मोह से ... कामायनी के स्नेह भरे शब्द मनु को अप्रिय से ... अपनी काम-पिपासा शान्त करने वासना की होली ... कामायनी को त्याग यह कह कर चल पड़ता है—

तुम फूल उठोगी लतिका सी,
कंपित कर सुख सौरभ तरंग।
मैं उसमें खोजता भर दूँगा,
वन वन बन कस्तूरी कुरंग॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है पुरुष का नारी के उत्सर्ग का मोल दान का प्रतिदान उसके प्रेम का प्रतिकार सचमुच प्रसादजी ने इन शब्दों में भौतिक युगीन पुरुष समाज की केवल इस 'काम वासना वृत्ति का' स्पष्ट एवम् यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। फिर भी कामायनी की अवस्था 'नारी' आदर्श की व्याख्या वह समर्पण की प्रतिमूर्ति स्थिर है। पुरुषत्व की भावनाओं पर सर्वस्व बिछा देने वाली, न्यौछावर कर देने वाली, शुद्ध प्रेम की भावनाओं में नारी का यही समर्पण निहित है। नयनों की अथाह करुणा नारी मुस्कान की मूक लिपि में बिखेर देती है। इसलिए कि इस अपरूप वर्षा में पुरुषत्व अपनी अमर शांति को प्राप्त करे। मानवता विजयिनी बने और सृष्टि मंगल-मयी भावनाओं से लहलहा उठे। उसका आत्म-समर्पण बलि के बकरे की भाँति नहीं है, उसमें 'चिर' तक अगाध विश्वास का स्रोत है।

अतृप्त वासनाओं से पिपासित मनु 'इड़ा' के समीप जाता है इसमें उसकी वासना प्रबल हो उठती है अन्तर तिक्त वासना से जल उठता है—उधर इड़ा-यामिनी सी है वह श्रद्धा अथवा कामायनी सी विश्वास और दया की साकार मूर्ति नहीं नारी सुलभ सौंदर्य के दान की गरिमा, सुकुमार्य की सरलता एवम् अगाध विश्वास का पूर्ण अभाव सा खटक रहा है। वह देने के पूर्व लेना चाहती है वह नारी की जगह पुरुष का आत्म समर्पण चाहती है और मृग मरीचिका से मनु उस पर मोहित हो उठता है। इड़ा अपना मोल उतना ही महँगा बना लेती है जीवन की दया, सरलता, प्रणय की वास्तविकता से शून्य उसका हृदय है उसका प्रणय घातक है, उसमें भीषणता है, मृत्यु है, अवसाद है, चिन्ता है, अभाव है, अपूर्णता है। मनु यही पाता है—वह कामायनी की भाँति अपना समर्पण नहीं करती, मूक पशु की भाँति अपना सर्वस्व अर्पित नहीं करती। उसमें वह अपना मोल समझती है तभी तो मनु को लड़खड़ा कर गिरना पड़ता है। उधर कामायनी फिर इस असहायावस्था में मनु का संबल बन पुनः अवतरित होती है मनु कामायनी को पाकर 'नारी' के महत्व को मन ही मन स्वीकार कर नत मस्तक हैं। उसकी महानता के सामने अपना अपराध स्वीकार कर मनु आत्म ग्लानि क्षोभ से भर जाता है और सच्चे हृदय नारी की वास्तविकता का मोल इन शब्दों में स्वतः फूट पड़ता है

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पगतल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के समतल हृद् तल में—"

नारी के प्रति पुरुष समाज की यह शङ्कामय स्वीकृति है जिसमें नारी का मान स्वतः उतर रहा है। महाकवि ने इस आख्यान द्वारा आज के बुद्धिजीवी समाज के नेत्र खोलने का प्रयत्न किया है एक नारी द्वारा ही प्रताड़ित मनु (पुरुष का दर्प दलन कर जहाँ एक ओर उन्होंने नारी के व्यक्तित्व का परिचय दिया है दूसरी ओर उससे भी महान 'कामायनी' के रूप में नारी के आदर्श, त्याग, मधुरिमा, लज्जा, करुणा, विश्वास आदि महान् गुणों की स्पष्ट व्याख्या कर नारी के मान, स्वाभिमान की रक्षा कर उसके व्यक्तित्व की अमर छाप युग को प्रदान की है। मनु (पुरुष) के इन शब्दों में नारी का यही शाश्वत स्वरूप कामायनी के कलाकार ने युग के समक्ष रखा है जो आज के बुद्धिजीवी युग के लिये अमर वरदान सदृश है और जिसे पाकर मानवता विश्व-मंगल विधायनी बन सकती है क्योंकि विश्वनाट्य का आरम्भ नारी-पुरुष के सम्यक सम्बन्ध पर ही अवलम्बित है। यथा—

मनु—तुम अजस्र वर्षा सुहाग की,
और स्नेह की मधु रजनी।
चिर अतृप्त जीवन यदि था
तो तुम उसमें सन्तोष बनी।

इन पंक्तियों में नारी अतृप्त वासना की तृप्त नहीं वह अतृप्त जीवन की तृप्ति (करुणा-विश्वास) अपूर्ण जीवन की पूर्णता (श्रद्धा) और अभाव युत जीवन भावना (मधुरिमा) है तभी तो नारी के ही शब्दों में उसका स्वरूप और भी निखर उठा है यथा—

जहाँ मरु ज्वाला धधकती,
चातकी कन को तरसती।
उन्हीं जीवन-घाटियों की,
मैं सरस बरसात रे मन!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजातशत्रु के गीत

श्री० कृष्णकुमार सिन्हा एम० ए०

नाटक की रचना में गीत का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। गीत के द्वारा ही मानव अपने हृदय की भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है क्योंकि उसके हृदय में जिस प्रकार की भावनाओं का उद्रेक होता है ठीक उसी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति गीत में होती है। मानव-हृदय में दो प्रकार की भावनाएँ निहित हैं—एक सुख की और दूसरी दुःख की। जहाँ एक ओर वह अपनी जीवन-तरनी को सुख और आनन्द के सागर में हिलोरें लेने को छोड़ता है वहाँ दूसरी ओर वही जीवन-तरनी जीवन की जटिल एवं विकट समस्याओं में अपना साँस गिनती रहती है। यों तो गीत की उत्पत्ति का एकमात्र आधार है—जीवन का आनन्द, पर जैसे जैसे मानव जीवन के आनन्द को अपनाने की चेष्टा करता है, वैसे-वैसे वह दूर का चाँद बन जाता है, जिसके फलस्वरूप मानव दुःख-दर्द की दुनियाँ में टिक जाता है तथा यही है—मानव-हृदय का स्पन्दन। इन दो भावनाओं के अलावे भी, मानव के हृदय में अनेक प्रकार की भावनाएँ कार्य करती हैं, पर उनका जन्म इन्हीं भावनाओं से हुआ है।

इस विश्व में विज्ञान के क्रमिक विकास के साथ सभ्यता का विकास तो हुआ अवश्य, पर नैराश्य की सघन कालिमा पूर्ण रूप से आच्छादित रही। इसी नैराश्य के बीच हमारे आनन्द का अंकुर पनपा, पर करुणा के स्रोत से पल्लवित रहा। मानव-जीवन का अधिकांशत भाग इसी वेदना में पल कर आगे बढ़ा है, क्योंकि आनन्द के अनुसंधान में ही वेदना की भीख मिली, जिसका परिणाम मानव-जीवन पर बीत रहा है। यही कारण है कि जिस प्रकार संसार और मानव सुख-दुःखमयी यातनाओं के चक्र में पड़ी रही है, उसी प्रकार गीत का सृजन भी सुख-दुःख के तानोंबानों से हुआ है। गीत मानव-हृदय का एक राग है, जो आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए प्रेरणा देता है। वस्तुतः वेदना जब अपनी सीमा पर पहुँच जाती है तब ही गीत गाया जाता है। जान डिंक वाटर का कहना है कि—Lyric is projected through a mood of higher intensity. बात भी सत्य है। जब हमारे हृदय से गीत निःसृत होता है तब हमारा हृदय भी कराह उठता है। सुतरां, वेदना की संगीतात्मक अभिव्यंजना ही गीत है। गीत को अंग्रेजी में लिरिक (Lyric) कहते हैं, वहाँ भी हमारे भारतीय सिद्धान्त लागू होते हैं। 'लिरिक' के सम्बन्ध में विलियम हेनरी टडसन ने लिखा है कि—

Lyric Poetry, in the original meaning of the term, was poetry composed to be sung to the accompaniment of lyre or harp. In this sense, the poet is principally occupied with himself—An Introduction to English Literature, Page 126.

इस प्रकार हम देखते हैं कि उन्होंने भी गीतों में आत्मनिष्ठ भावना का पाया जाना अनिवार्य माना है तथा गीतों का उपयोग संगीत के लिए होता है। सारांश यह है कि एक के अभाव में दूसरा प्रभाव हीन तथा निरर्थक है अर्थात गीत और संगीत का अटूट सम्बन्ध है।

हाँ, गीतों का ऐतिहासिक महत्व भी है, जिसकी एक मनोरंजक कहानी है। भरत मुनि ने नाटक की उत्पत्ति दैवी बतलाई है। जब सृष्टि की रचना हुई तब कुछेक देवताओं ने ब्रह्मा के पास आकर 'मनोरंजन के अभाव' की चर्चा की। इस पर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से कथनोपकथन, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय कला और अथर्ववेद से रस लेकर उनके मनोरंजन के लिए नाटक का सृजन किया। विश्वकर्मा द्वारा रंगमंच का निर्माण हुआ। त्रिपुर दाह के अवसर पर शंकर की आज्ञा से ताण्डव की योजना हुई और पार्वती ने लास्य नृत्य बतलाई। तथा विष्णु ने चार नाट्य-शैलियाँ प्रदान की। इस प्रकार इस-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वज के अवसर पर देवताओं द्वारा नाटक का अभिनय हुआ। वस्तुतः बीज रूप में नाटकीय हमारे वेदों में ही वर्तमान हैं। उस समय यज्ञों के अवसर पर नाटक का अभिनय हुआ करता था। नाटक का आदि रूप यमयमी तथा पुरुर्वा-उर्वशी के संवाद में है। गायन, नृत्य और अभिनय प्राचीन काल की वस्तु है—['यस्यांगायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां—पृथ्वीसूक्त]। उसी युग से आज तक के नाटकों में गीत का प्रयोग होता आया है। [नाटक के जन्म और विकास के लिए हमारा 'हिन्दी नाट्य साहित्य' निबन्ध पढ़िये] यही है इसका ऐतिहासिक महत्व इस प्रकार नाटक की रचना कथनोपकथन संगीत और नृत्य पर ही निर्भर करता है।

रंगमंच पर मनोरंजन का सबसे सुन्दर साधन है गीत। इससे मनोरंजनी वृत्ति की तृप्ति होती है। यों तो अभिनय द्वारा ही क्रिया-कलाप का दिग्दर्शन होता है, पर अन्तःकरण के सूक्ष्म मनोभावों का व्यक्तिकरण गीतों के द्वारा ही होता है। परिस्थितिनुसार मनुष्य की अन्तरात्मा जिस प्रकार की भावनाओं से उत्प्रेरित है, उसी का सजीव चित्रण गीत में होता है। अगर गीत में प्राणमय प्रकाशन की क्षमता न रही तो नाटक का महत्व ही नहीं रह जाता है। इसीलिए यह कहा गया है कि चित्रमय गीत ही नाटक का सार तत्व है। सुतरां गीत के अभाव में नाटक अधूरा है, क्योंकि नृत्य, गीत, चित्र तथा काव्य की संधि का नाम ही 'नाटक' है। गीतों की उपयोगिता का यही मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण है।

और अब है—गीतों की उपयोगिता का शास्त्रीय दृष्टिकोण। नाटक एक प्रकार का गद्य-काव्य है और मानव एकरसता प्राणी न होने के कारण कुछ रसात्मक गीतों की बहार लूटना चाहता है, जिससे उसकी मानसिक थकान दूर हो जाय। अगर इसके अभाव में थकान दूर न हुई तो नाटककार की असफलता साफ नजर आ जाती है। शान्तिप्रिय द्विवेदी ने प्रसंगवश ठीक ही लिखा है—'नाटक में गीतों की आवश्यकता है और रहेगी, जीवन-यात्रा के शुष्क मरुप्रदेश में चलकर मनुष्य किसी न किसी तरह कुछ गुनगुनाना चाहेगा ही।' सचमुच सात्विक विराम देने के लिए गीतों का प्रयोग अपेक्षित है, कदापि इसका यह अर्थ नहीं कि नाटकों में गीतों की संख्या अधिक रहे, बल्कि उनकी स्थानीय उपयुक्तता और भाव-प्रदर्शन नाटक के दृश्यों को और भी अधिक तीव्र एवं आकर्षक बना देते हैं। भरतमुनि ने भी नाटकों में अत्यधिक गीत-नृत्य का स्थान देने के लिए मना किया है—

गीत वाद्ये च नृत्ते च प्रवृत्तेऽति प्रसंगतः।
खेदो भवेत् प्रयोक्तृणां प्रक्षेकाणाम् तत्रैव च।

प्रसादजी ने भी 'अजातशत्रु' में गीतों की योजना की है, वह किसी विशेष उद्देश्य या धारणा को लेकर नहीं बल्कि गीतों के ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक तथा शास्त्रीय महत्व को समझकर ऐतिहासिक महत्व को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि भारत के प्राचीन नाटकों में भी गीत अवश्य रहे हैं, परन्तु आधुनिक नाटकों में गीतों की अधिकता अधिक रहती है। इसका कारण यह है कि हम हिन्दी नाटककारों ने पारसी नाटककारों की इस प्रवृत्ति का अनुकरण किया है। यों, बात जो भी हो, प्रसादजी ने भी भारतीय परम्परा का अनुकरण किया है। शास्त्रीय दृष्टि से यह दीखता है कि नाटकों में गद्यमय सम्वादों के रहने से जो शिथिलता छाई रहती है, उससे पाठक या दर्शक का मन ऊब जाता है, इसलिए नाटकों में गीत का रहना अनिवार्य है। गीतों के अभाव में जो दुष्टता नाटकों में आ जाती है, वही गीतों के रहने से दूर हो जाती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ये गीत चरित्र-चित्रण में भी सहायक हैं, क्योंकि वह पात्रों के प्रवृतियों का दिग्दर्शन करता है। गीत ही पात्रों का प्राण है। चौथी बात यह है कि ये गीत रस के उद्रेक और परिणाम की परिगति में भी सहायक हुए हैं। पाँचवीं बात यह है कि प्रसादजी ने काव्य प्रकृति के वश में होकर गीतों का उपयोग करना आवश्यक समझा। गीतों की स्थानीय उपयुक्तता और भाव-प्रदर्शन नाटक के दृश्यों को और भी अधिक तीव्र बना देता है। कवि-हृदय होने के कारण वे गीतों के अतिरेक से न बच सके हैं।

जो भी हो, 'अजातशत्रु' में बहुत ही सुन्दर गीत भरे पड़े हैं। उन गीतों में कल्पना, भावुकता, चित्रमयता, लाक्षणिकता एवं रसात्मकता का सुन्दर समन्वय है, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेक्सपियर के गीतों से भी सुन्दर बन पड़े हैं। शेक्सपियर के गीत लौकिक जगत के हैं, पर हमारे प्रसाद का कवि-लौकिक जगत से अलौकिक जगत की ओर प्रयाण ... । हमारी आत्मा भी कवि के साथ हो दूर 'क्षितिज के पार' अनजान अपरिचित गगन, में जा पहुँचती ... सम्राट उदयन की उपेक्षा से व्याकुल पद्मावती वीणा लेकर व्यथित हृदय की वेदना एवं आह को सुनाने देने के लिए बैठी है और बजाने के कई प्रयास करती है, पर 'जब भीतर की तन्त्री बेकल है तब यह कैसे बजे! मेरे स्वामी! मेरे नाथ! यह कैसा भाव है प्रभु!' इस प्रकार वह अपने आराध्य को पुकार कर अपनी साधना की सीमा पार कर जाती है, वहीं संगीत की स्वर लहरी प्रकंपित उच्छ्वास के रूप में निकल पड़ती है, जो दूसरों को रुला देने की क्षमता रखती है—

मीड़ मत खिंचे बीन के तार!
निर्दय उँगली! अरी ठहर जा,
पल भर अनुकम्पा से भर जा,
वह मूर्छित मूर्छना आह-सी
निकलेगी निस्सार!

गाते-गाते वह भाव-मग्न हो जाती है तो पद्मावती के हृदय की आकुलता 'परदे के उस पार' नृत्य करेगी—यह अन्तिम पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है—

मसल उठेगी सकरुण व्रीड़ा,
किसी हृदय को होगी पीड़ा,
नृत्य करेगी नग्न विकलता!
परदे के उस पार।

इसमें केवल मानवी जगत् के एकाकीपन की नीरवता का करुण-गीत नहीं है। इसमें अपने संवेदनशील हृदय-प्रेमी से विलग हो जाने की भी विरह-वेदना नहीं, बल्कि उसमें है—'असीम के प्रति ससीम की पुकार—परमात्मा के लिए आत्मा की लालसा।' इसमें उसकी मानसिक वेदना तथा असमर्थता का सुन्दर चित्र तैयार किया गया है, जो अद्वितीय है।

हाँ, अब यह देखना है कि प्रसादजी ने इसमें गीतों का उपयोग किन-किन रूपों में किया है, इसमें के गीत प्राधान्यता पाँच तरह के हैं। यह देखिये—

१—नीति और व्यवहार के रूप में—

(क)—न धरो कह कर इसको अपना''''
—अंक १, दृश्य ४]

(ख)—स्वर्ग है नहीं दूसरा और
—अंक ३, दृश्य ३]

२—भक्ति और प्रार्थना-गीत के रूप में—

(क)—दाता सुमति दीजिये।
—अंक २, दृश्य ६]

(ख) अधीर न हो चित्त विश्व मोहजाल में।
—अंक २, दृश्य १]

(ग)—स्वजन दीखता न विश्व में अब।
—अंक १, दृश्य ७]

३—प्रकृति के रूप में—

(क)—चला है मन्थर गति से पवन रसीला
नन्दन कानन का।
—अङ्क २, दृश्य ४]

(ख)—अलका की किस विकल विरहिणी के
पलकों का ले अवलम्ब।
—अङ्क ३, दृश्य ३]

(ग)—चल बसन्तवाला अंचल से
किस घातक सौरभ से मस्त।
—अङ्क ३, दृश्य ६]

४—शृंगार और प्रेम के रूप में—

(क) अली ने क्यों अवहेला की।
—अङ्क १, दृश्य ५]

(ख) प्यारे निर्मोही होकर मत हमको भूलना रे
—अङ्क १, दृश्य ५]

(ग) मीड़ मत खींचे बीन के तार।
—अङ्क १, दृश्य ६]

(घ) निर्जन गोधूली प्रान्तर में
खोले पर्णकुटी के द्वार।
अङ्क २, दृश्य ८]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ङ) हमारे जीवन का उल्लास,
हमारे जीवन-धन का रोष]
--अङ्क २, दृश्य २]

५--पूर्ण रहस्यवादी गीत के रूप में--
(क) आओ हिये में अहो प्राणप्यारे।
--अङ्क ७, दृश्य ५]

(ख) बहुत छिपाया उफन पड़ा
अब सम्हालने का समय नहीं है।
--अङ्क २, दृश्य २]

इसमें नाटकीय गीतों की उपयोगिता का क्रमशः विकास हुआ है। इसमें सुन्दर गीतों का संकलन है, जो परिस्थिति, पात्र और समय के अनुकूल है। उनके गीत स्वतन्त्र प्रतीत होते हैं, जो बाद में नाटक में रख दिए गये हैं। खैर जो भी हो, उसके गीत समय तथा परिस्थिति के अनुकूल हैं। यों तो वे सब नाटक के लिए उपयोगी हों या न हों, इसकी गर्ज हमें नहीं पड़ी है। अजातशत्रु के कुछ गीत व्यर्थ प्रतीत होते हैं और शायद प्रसादजी के अन्य नाटकों से इसमें गीतों की संख्या अधिक है। अब हम उनके गीतों पर प्रकाश डालते हैं--

भिक्षुकों का एक गीत है जिसमें महात्मा गौतम के सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से संकर है। इसमें करुणा का स्रोत है, जो विश्व-बन्धुत्व का प्रथम सोपान है। यह गीत इस प्रकार है--

न धरो कहकर इसको अपना।
यह दो दिन का है सपना॥

यों तो सचमुच पूछा जाय तो इस गीत का कोई खास महत्व नहीं है। भिक्षुओं की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि भिक्षा माँगने के हेतु जब कभी बाहर निकलते हैं तब गीत अवश्य गाया करते हैं। इस गीत में बौद्ध-भिक्षुओं का सिर्फ उपदेश ही है, जिसका प्रभाव बासवी पर पड़ता है।

महात्मा गौतम की छाया में पत्नी सहिष्णु तथा सदाचारिणी वासवी अपनी सैतीन छलना के कटु व्यवहार को देखकर--'दाता सुमति दीजिये' की अर्चना करती है। यह है बासवी की सहनशीलता और क्षमा का अ[...] वरदान।

प्रार्थना के रूप में मल्लिका का एक गीत है[...] पति द्वन्द्व-युद्ध में मारा गया है। युद्ध का घायल [...] जित मल्लिका की सेवा-सुश्रूषा में रहा और [...] 'शीतलता ने इस जलते हुए लोहे पर विजय प्राप्त [...] ली।' वह स्वर्गीय सेनापति बन्धुल की मृत्यु का दो[ष] अपने आप को ठहराता है और एक अभिशाप की याच[ना] करता है 'जिससे नरक की ज्वाला शान्त हो जाय [...] पापी प्राण निकलने में सुख पावे।' तब वह प्रार्थना गीत [...] रूप में कह देती है--

अधीर न हो चित्त विश्व मोह जाल में।

यह गीत कुछ गजल के तर्ज पर है। इससे [...] होता है कि उन पर पारसी नाटकों की गजलबाजी [...] प्रभाव पड़ा है, इसका विस्तृत विवेचन हम 'अजातशत्रु [...] भाषा-शैली' के निबन्ध में करेंगे। 'साहित्य-सन्देश' [...] अगले अङ्क में पढ़ें।

मागन्धी के गीतों की अभिव्यञ्जना परिस्थिति [...] अनुकूल हुई है। वह सात-सात बार गाती है। वे [...] छोटे-मोटे गीत नहीं हैं, बल्कि लम्बे-लम्बे, जो नाटक [...] लिए उचित नहीं जान पड़ता है। यह उनकी काव्य-प्रि[यता] का दोष है। रूप-गर्विता मागन्धी 'दरिद्र कन्या के होने [...] अपमान से दुखी' है और उसे महाराज उदयन का प[्यार] भी नहीं मिला है, जिसके कारण उसके हृदय के त[...] आप ही आप लड़खड़ा कर कह उठते हैं--'अली ने क[्यों] भला अवहेला की।' इस गीत की पंक्तियों में हृदय [...] मार्मिक अनुभूति है। कारण यह कि उदयन के हृदय [...] महारानी पद्मावती का अधिकार है और स्वयं महाराज [...] भौंरे की तरह उसी फूल-सी पद्मावती पर मंडरा[ते] रहते हैं--

यही तो मागन्धी के लिए एक अभिशाप है, पीड़ा है, सन्ताप है और है भी विफल प्रेम का उच्छ्वास। [...] महाराज के आगमन के कारण उसके मनोरञ्जन के लि[ए] नर्तकियों का गीत होता है और वह गीत 'प्यारे निर्मो[ही] होकर मत हमको भूलना रे' में श्रृङ्गार और प्रेम का [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसमें कैसी याचना है--'निर्मोही मत भूलना रे'। यह गीत नर्तकियों के द्वारा तो गाया अवश्य गया है, पर मागन्धी के हृदय की करुण झंकार है, जिसमें मार्मिक पीड़ा छलक पड़ी है। अब उदयन रस-सागर में सराबोर हो प्रेमोन्मत्त हो जाता है। वह पान कराती है और गाती है--

आओ हिये में अहो प्राणप्यारे।

❀ ❀ ❀

तपन बुझे तन की और मन की,
हों हम तुम पल एक न न्यारे।

यह नर्तकियों के गीत के सदृश्य है, पर इसमें प्रसाद का कवि अपनी आत्मा और तन की तपन बुझा कर 'हों हम तुम पल एक न न्यारे' की कामना करता है। यह पूर्ण रहस्यवादी गीत है और इसमें रहस्यवादी अस्पष्टता भी झलकती है अवश्य। उदयन का हृदय अपनी ओर मोड़ लेती है, पर अपने कुचक्र के कारण राजप्रासाद को छोड़ना पड़ता है। अब काशी में वह वारविलासिनी श्यामा है। उसे 'धन की कमी नहीं, मान का कुछ ठिकाना नहीं; केवल सापत्न्य ज्वाला की पीड़ा' है। शैलेन्द्र के दर्शन से ही उसकी वासना संयम का अतिक्रमण कर दूर पड़ती है और कहती है—

बहुत छिपाया उफन पड़ा अब,
सम्हालने का समय नहीं है।

इस पूरे गीत के पढ़ने से हम उसी रंग में रँग जाते हैं जिस रंग में कबीर ने अपने आप को रंग लिया था। मागन्धी भी उसी दशा का अनुभव करती है—

लाली मेरे लाल की, जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं गई और मैं भी होगई लाल॥

और मागन्धी की वासना में आलिंगन का आवेश तथा आसक्ति है। उसकी वासना विलास करने की कामना करती है—

चपल निकल कर कहाँ चलें अब,
इसे कुचल दो मृदुल चरण से।
कि आह निकले दबे हृदय से
भला कहो यह विजय नहीं है॥

यहाँ पर मागन्धी का यौवन सम्पूर्ण रूप के साथ व्यक्त हो पड़ा है। यौवन का तकाजा बड़ा ही महँगा है। इसके उपरान्त इसका एक गीत और है, जिसका कथावस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। इसमें सिर्फ प्रकृति का चित्रण है और न इसका कोई महत्व है, जो नाटकीयता में जान ला दे। गीत का प्रथम चरण यों है—

चला है मन्थर गति से पवन
रसीला कन्दन कानन का।

श्यामा का गीत परिस्थितियों से कम सम्बन्ध नहीं रखता है। श्यामा का प्रेमी हृदय अपने को शैलेन्द्र के चरणों पर आत्म-समर्पण कर देती है। उसकी 'आलस्य-पूर्ण सौन्दर्य की तृष्णा' ने 'हिंस्र पशु को पालतू बना लिया' है। शैलेन्द्र की दृष्टि में श्यामा एक अद्भुत पहेली बन गई है। तब शैलेन्द्र श्यामा पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाता है— तुम क्या हो सुन्दरी?' वह अपना विश्वस्थ परिचय गीतों के गीले राग में देती है—

निर्जन गोधूली प्रान्तर में
खोले पर्णकुटी के द्वार।
दीप जलाये बैठे थे तुम
किये प्रतीक्षा पर अधिकार॥

इससे स्पष्ट होता है कि श्यामा के हृदय में अभाव का हाहाकार है, वह आर्थिक अभाव नहीं है बल्कि उसकी निर्निमेष दृष्टि शैलेन्द्र के प्रेममय दामन की छाया में कुछ क्षणों के लिये टिकना चाहती है। श्यामा के स्नेह में शैलेन्द्र पराभूत हो गया है। श्यामा की स्नेह-रश्मि से उसका शौर्य-प्रदर्शन, वीरत्व एवं उद्धत विचार ठप बोल गया है। वह अपने जीवन का अन्त शैलेन्द्र की गोद में चाहती है। इस गीत में श्यामा के हृदय की तीव्रता से बढ़कर उसकी करुण-वेदना-विह्वल हृदय की विवशता का चित्र है जो पाषाण को भी पिघला देता है। यही कारण है कि हमारी कुछ सहानुभूति उसको मिलती है। श्यामा ने अपने तन और मन को शैलेन्द्र के हृदय का तन्तु बनाना चाहा, पर वह उसके द्वारा भी छली गयी। तब वह सांसारिक माया से उत्पन्न निष्कर्ष पर आती है और कहती है—'जिसे काल्पनिक देवत्व कहते हैं—वही तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पूर्ण मनुष्यता है।' इसीलिए वह गाती हुई कहती है—'स्वर्ग है नहीं दूसरा और'। अब वह विगत जीवन में मिलने वाली आत्म प्रवंचना से तिलमिला उठती है। निम्नस्थिति में आकर वह महात्मा गौतम की अनुयायिनी बन गई। अब वह अपनी वास्तविक स्थिति पर मनन करते हुए कहती है।—'वाह री नियति! कैसे-कैसे दृश्य देखने में आये—कभी बैलों को चारा देते हाथ नहीं थकते थे, कभी हाथ से जल उठाने में संकोच होता था...।' इस तरह कहते-कहते वह भावावेश में आकर अपने जीवन की करुण गाथा को गाती है—

स्वजन दीखता न विश्व में अब,
न बात मन में समाय कोई।
पड़ी अकेली विकल रो रही,
न दुःख में है सहाय कोई॥

यह गीत मागन्धी की आन्तरिक परिस्थिति के अनुकूल है। आज उसका कोई स्वजन नहीं है, जो उसकी वेदना-मिश्रित कहानी सुने। 'वास्तविक रूप से परिवर्तन की इच्छा' ने उसके जीवन में विषमता ला रखी। मल्लिका के सम्पर्क में रह उसे करुणा का ज्ञान हुआ और तब से वह अनन्त पर विश्वास करने लगी।

बाजिरा के 'अन्तःकरण में एक नवीन स्फूर्ति हो गई है। एक नवीन संसार इसमें बन गया है।' वह प्राचीर के बन्दी अजातशत्रु के यौवन की स्फूर्ति और उल्लास के सौन्दर्य को देखने का अनुनय करती है—

हमारे जीवन का उल्लास,
हमारे जीवन-धन का रोष।
हमारी करुणा के दो बूँद,
मिले एकत्र हुआ संतोष॥

इसमें यौवन का मादक संगीत है, एक सधी तान है और नारी-जीवन के आवेश का उद्गार है। ठीक ही किसी शायर ने 'चपल नयन और रूप-सौन्दर्य' को देख कर फरमाया है—

इस सादगी पर कौन न मर जाय ये खुदा।

विरुद्धक का एक गीत है—जलद के प्रति। इसमें सिर्फ प्रकृति का चित्र आँका गया है। इसका प्रथम चरण है—

अलका की किस विकल विरहिणी
की पलकों का ले अवलम्ब।

इसके अन्तिम दृश्य में संध्या का दृश्य और उसकी छुधा का चबाना बिम्बसार की कुटीर में नेपथ्य से गाये हुए गीत—'चल बसन्तबाला अंचल से किस घातक सौरभ में मस्त'—के द्वारा व्यक्त किया गया है। नाटक में इस गीत को कोई महत्व नहीं है। यों तो नेपथ्य गीत काव्यात्मक एवं मनोरम हैं जो हमारे लिये श्रोतव्य है, पर व्यवहार की दृष्टि से इतना बड़ा नेपथ्य गीत अनुपयुक्त है।

अजातशत्रु में प्रसाद गीतों के अतिरेक से न बच सके। इसके कुछ गीत तो पात्र, स्थल और विषय की संगति के आधार पर उपयुक्त हैं और इनका कथावस्तु के साथ मेल भी है। अजातशत्रु के गीतों में उपेक्षिता पद्मावती का 'मीड़ मत खींचे बीन के तार' वाला गीत अत्यन्त ही सुन्दर बन पड़ा है, जो नाटक में चार चाँद लगा देता है। इसके बाद श्यामा का—'स्वजन दीखता न विश्व में अब न बात मन में समाय कोई' का स्थान है। जिसमें ठोकर खाने के उपरान्त हृदय की मार्मिक वेदना की विफल तस्वीर है। प्रसाद के गीत हमारे जीवन के गीत हैं। हमारे जीवन का संबल है और उसमें भावों का एक चँदोवा तना हुआ है, जो हमारे लिए एक नई वस्तु है और चिरयुगीन स्मरणीय है।

यह तो नाटकीय गीतों का भावपक्ष रहा, अब कलापक्ष का अनुहार करें।

अजातशत्रु के गीतों की कला की परख एक-एक गीत को लेकर करेंगे। पहला गीत है—'गोधूली के राग-पटल में स्नेहांचल फहराती है।' (पृ० सं० ३५) उसमें करुणा को मानव आदि दिया गया है। उसमें अमूर्त भावनाओं का मूर्त आकार है। इसमें प्रकृति-चित्रण नहीं वरन् भाव-चित्रण है। लाक्षणिक वैचित्र्य के लिए 'स्निग्ध उषा', 'मधुरबालक', 'चन्द्रकान्ति', 'ओस-बूँद' आदि शब्द हैं। पर इसकी अंतिम दो पंक्तियों में अभिधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लक्षण हैं क्योंकि अर्थ सरल है। इसमें लक्षणा, व्यंजना, और मूर्तिविधान का गुण विद्यमान है।

मागन्धी का 'अली ने क्यों भला अवहेला की।' (पृ० सं० ४८) वाला गीत प्रगीत मुक्तक के रूप में है। यह अन्योक्ति पूर्ण गीत है। इसमें अलि का प्रयोग उदयन के लिए हुआ है। नर्तकियों के गीत—

बरसो सदा दया-जल शीतल।
सिंचे हमारा हृदय-मरुस्थल॥

अरे कँटीले फूल इसी में फूलना रे। (पृ० ४६) में परम्परित रूपक है क्योंकि इसमें एक रूपक दूसरे रूपक का कारण बन गया है।

मागन्धी का दूसरा गीत है—'आओ हिये में अहो प्राण प्यारे।' (पृ० ५१) इसमें उदयन के लिए अर्चना है। इसमें तपन जैसे तद्भव शब्द हैं तथा हिए, नैन, अहो आदि ब्रजभाषा के शब्द हैं पर उसमें क्रिया खड़ीबोली की है।

पद्मावती का गीत 'मींड़ मत खिचें बीन के तार' एक आदर्श (Ideal) गीत है। इसमें गति (Pattern) भी है। उसमें लक्षणा का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में हुआ है यथा—'निर्दय अँगुली', 'अरी ठहर जा', 'मूक मंत्र', 'स्वर संसार' 'सकरुण ग्रीवा', 'नम्र विकलता' आदि। तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है।

बहुत छिपाया उफन पड़ा अब,
सम्हालने का समय नहीं है।

गीत में कार्यकारण का संबन्ध है। इसमें भी लक्षणा का प्रयोग खूब हुआ है। 'यही विरद क्या तुम्हें सुहाता कि नील नीरद सदय नहीं है' में अन्योक्ति अलंकार है। निम्नलिखित पंक्तियों में परम्परित रूपक का अवलोकन कीजिए—

जली दीपमालिका प्राण की;
हृदय-कुटी स्वच्छ हो गयी है।
पलक-पावड़े बिछा चुकी हूँ,
और भय नहीं है॥

इसके अतिरिक्त इसमें चित्रविधा नहीं है।

चला है मन्थर गति से पवन
रसीला नन्दनकानन का
नन्दनकानन का रसीला नन्दनकानन का।

इस गीत में 'नन्दनकानन' की आवृत्ति है। तथा 'बिखर रही है किस यौवन की किरण, खिला अरविन्द म्लान है किसके आनन का'—में प्रतीक योजना है तथा 'उषा सुनहला मद्य पिलाती' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

'अधीर न हो चित्त विश्वमोह जाल में' वाले गीत की प्रथम तीन पंक्तियों में सांगरूपक अलंकार है।

'निर्जन गोधूली प्रान्तर में खोले पर्णकुटी के द्वार' गीत में हृदय की अमूर्त भावनाओं को मूर्त रूप प्रदान किया गया है। 'प्रतीक्षा पर अधिकार' 'व्यथा के सोने में' से लाक्षणिक अर्थ निकलता है। 'पलकें झुकी यवनिका-सी थी' में उपमा है।

बाजिरा के गीत 'हमारे जीवन का उल्लास' हमारे जीवन धन का रोष, में 'हमारे' शब्द की आवृत्ति है तथा 'चला दो चपल नयन के बाण' में रूपक (Metapher) है।

विरुद्धक के गीत 'अलका की किस विकल विरहिणी की पलकों का ले अवलम्ब' में चित्रमयता और पर्यवेक्षण का सहज संयोग है। 'बरस पड़े क्यों आज अचानक सरसिज कानन का संकोच' में कार्यकारण का सम्बन्ध है। यहाँ पर लक्षणा ने कमाल किया है। इसी गीत में एक जगह उपमा का उदाहरण लें—

चपला की व्याकुलता लेकर,
चातक का ले करुण विलाप।
तारा आँसू पोंछ गगन के,
रोते हो किस दुख से आप॥

दूसरी जगह रूपातिशयोक्ति अलंकार भी है—

किस मानस-निधि में न बुझा था,
बड़वानल जिससे बन भाप।

(शेष पृष्ठ ८६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-उपन्यास की प्रवृत्तियाँ

श्री हरिनारायण वर्मा लखनऊ यूनीवर्सिटी

हिन्दी उपन्यासों का वर्गीकरण प्रवृत्ति, समस्या एवं टेकनीक के आधार पर हो सकता है।

हिन्दी-उपन्यासों का प्रारम्भिक काल अनुवादों एवम् जासूसी तिलस्मी उपन्यासों का था। जासूसी-उपन्यासकारों की कल्पना की उड़ान ऊँची थी; किन्तु उन्मुक्त-कल्पना-गगन में उनका विचरण अध्येता का मनोरंजन भले ही कर सका हो, चिन्तना के अभाव में जीवन को गति नहीं दे सका। अपितु, साहित्य-निर्माण के प्रथम सोपानस्वरूप पाठकों को आकर्षित करने में सहयोग देने से हिन्दी-उपन्यास-साहित्य में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। कल्पना का अपूर्व चमत्कार इनमें उपलब्ध होता है।

हिन्दी के अनूदित उपन्यासों को पृथक रख यदि प्रारम्भिक मौलिक उपन्यासों की विवेचना करें तो जासूसी एवम् सादृश्य दृष्टिकोण वाले उपन्यास ही परिलक्षित होंगे। देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी प्रभृति इस धारा के प्रमुख लेखक हैं। इन उपन्यासकारों का उद्देश्य अद्भुत कथानक के निर्माण द्वारा, कल्पना उत्तेजित कर, चित्रालोक की रचना द्वारा जनता की कुतूहल वृत्ति को जागरूक बनाए रखना, मनोरंजन तथा उत्तेजना प्रदान करना ही था। किन्तु ये उपन्यास जीवन के चित्र नहीं थे, पाठक की काल्पनिक वृत्ति के मूर्त-विधान मात्र थे। जीवन से निकटता के अभाव में इन उपन्यासों की स्थिरता सन्दिग्ध ही है। कलात्मक दृष्टि से वे निर्मूल्य हैं। उनमें मानव की रागात्मिका वृत्ति को स्पर्श करने की शक्ति का अभाव है। वे बुद्धिवृत्ति की कसरत भले ही करावें, किन्तु यह काल्पनिकता जीवन का भुलावा है। सक्रिय रूप में उनकी देन कुछ भी नहीं। घटना-प्रधान होते हुए भी, घटनाएँ असम्बद्ध रहती हैं उनमें पूर्वा पर सम्बन्ध नहीं होता। बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक युग का बुद्धिवादी मानव न तो ऐसी असम्भव बातों में विश्वास ही रखेगा, और न पठन का उद्देश्य कोरा मनोरंजन ही है—वह जीवनगत जटिलता एवम् समस्याओं के समाधान की वांछना करता है।

खत्रीजी की चन्द्रकान्ता और सन्ततियाँ, जौहरजी एवं गहमरीजी के उपन्यासों में इन लेखकों की उत्कट काल्पनिकता का आश्चर्यजनक स्वरूप विद्यमान है। गहमरीजी ने तो पृथकतः जासूस का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। किशोरीलाल गोस्वामी आदि इतर लेखक थे। वास्तव में वह 'तिलस्मी कहानियों, भूत-प्रेत की गप्पों, प्रेम-वियोग के आख्यानों और उपदेश-धर्म की कथाओं के भीतर उछल-कूद करता रहा।' काल्पनिकता की अति सौन्दर्य अवरोधक है। श्रृंगारिकता की प्राधान्यता के साथ उपदेशात्मकता का साया कविता के सदृश यहाँ भी अछूता नहीं है। यह युग का प्रभाव था। वे राजा रानी के स्तर से न उतर सके। यह विलास का साहित्य था। जीवन का स्वप्न और यौवन की मस्ती के रागालाप कहाँ तक स्थिर रह सकते थे?

मैं समझता हूँ, इतर प्रकार के उपन्यास सम्भव भी नहीं थे। फारसी का आशिकी माशूकी (चाहे वह 'इश्क हकीकी' अथवा 'इश्कमिजाजी' रहा हो) जीवन के कोने-कोने में व्याप्त थी। रीतिकालीन कवियों का शास्त्रीय विवेचन समाप्त नहीं हुआ था, अतः इस भाव-धारा का यकायक ही स्थानान्तरीकरण (Sublimation) सम्भव नहीं था। जासूसी-सरणि द्वारा वही भाव-धारा प्रवाहित रही—(Sensual pleasure) की तृप्ति का साधन रहा—नवीनता के कारण भविष्य के लिए नव-पृष्ठभूमि का निर्माण भी उन्होंने किया। बाल-साहित्य में भूत-प्रेत की कथाएँ, पशु-पक्षियों के आख्यान, राक्षसों की भूलभुलैयाँ आदि असम्भवताओं का वर्णन मनोरंजनार्थ रहा करता है किन्तु वे उपन्यास अप्रौढ़ बुद्धिजीवी की तृप्ति ही कर सकते हैं। पंचतन्त्र और हितोपदेश की असम्भवताओं से जासूसी-साहित्य की तुलना कर सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। बाणभट्ट का प्रकृति का मनोरम चित्रण बँगला द्वारा हिन्दी में प्रविष्ट हुआ, अतिशयोक्ति भी अंकित हुई।

फिर भी उन्होंने भाषा के प्रौढ़त्व, परिपक्वीकरण एवं परिमार्जन में पर्याप्त सहायता दी। ऐतिहासिक महत्त्व तो रहेगा ही।

यदि सम्यक विवेचन करें तो विदित होगा कि यह प्रवृत्ति अक्षुण्ण रूप में प्रवाहित हो रही है। प्रेमचन्द के कायाकल्प में यही पुरानी धारा है। यहाँ तक कि 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में भी अन्त में जासूसी कहानी आ प्रविष्ट होती है। 'पर्दे की रानी' में जोशीजी भी उधर ही भटक पड़े हैं—मानों उसके चिह्न अवशिष्ट हों।

❀ ❀ ❀

[पुरातन भारतीय साहित्य में कथा-चित्र अवश्यमेव उपलब्ध होते हैं; किन्तु हिन्दी-उपन्यास पाश्चात्य संसार की देन है। उपन्यास का सूत्रपात प्रथमतः (हिन्दी में) अनुवाद द्वारा ही हुआ। अँगरेजी और बँगला के संसर्ग से उपन्यास-धारा प्रवर्तित हुई। उपन्यास नाम बँगला से आया, ढाँचा अँगरेजी से]

अनुवादों का ताँता बँगला अँगरेजी से आरम्भ हुआ। इन अनुवादकों में बाबू गदाधरसिंह प्रमुख थे। बंगविजेता, दुर्गेशनन्दिनी उनकी अनूदित दो पुस्तकें हैं। राधाकृष्णदास, प्रतापनारायण मिश्र, पं० राधाचरण गोस्वामी इसी खेवे के लेखक हैं जिनमें भाषा का स्वरूप तो उपलब्ध होता है, इसके अतिरिक्त वृत्त तथ्यहीन हैं। ये उपन्यास सामाजिक अथवा ऐतिहासिक रहा करते थे। सामाजिक उपन्यासों की इस प्रवृति को विकसित करने में लाला श्रीनिवासदास, प्रेमचन्द, कौशिक और प्रताप-नारायण श्रीवास्तव प्रभृति कलाकारों ने हाथ बटाया। गहमरीजी ने बँगला के गार्हस्थ्य उपन्यासों के अनुवाद किए जिनमें 'चतुर चंचला', 'भानमती' सुन्दर बन पड़े हैं, किन्तु इस श्रेणी का विकास हिन्दी में नहीं हो सका।

उदितनारायणलाल का ऐतिहासिक उपन्यास 'दीप-निर्वाण', रामचन्द्र वर्मा का 'छत्रसाल', गोस्वामीजी की 'तारा' श्री वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों तक पहुँचने की बीच की कड़ियाँ हैं।

रामकृष्ण वर्मा, कार्तिकप्रसाद खत्री ने जासूसी उप-न्यासों का अनुवाद किया। वर्माजी ने वृत्तान्तमालाएँ चलाईं। ठग वृत्तान्तमाला, पुलिस वृत्तान्तमाला और अमला वृत्तान्तमाला के अलावा उन्होंने अकबर और चित्तौर चातकी प्रभृति उपन्यासों की भी रचना की। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो बाद के जासूसी उपन्यास इन्हीं अनूदित उपन्यासों के प्रस्फुटित फलस्वरूप हैं। ऊपर जिन उपन्यासों का उल्लेख किया गया है उनकी पृष्ठ भूमि में इनका आधार स्पष्टतः लक्षित होगा। इन अनुवादकों के साथ ईश्वरी-प्रसाद शर्मा एवं रूपनारायण जी पाँडेय का नाम लिया जा सकता है। उन्होंने भी अनुवाद के सुन्दर रूप की अवता-रणा की। हारमोध का; बेनिस का बाँका; अंग्रेजी नाटक का अनुवाद था।

इन अनुवादों को भाषास्वरूप सैयद इंशाअल्ला। खाँ, लाला श्री निवासदास, बालकृष्ण भट्ट आदि का अनु-गृहीत होना पड़ेगा। सैय्यद इंशाकी 'रानी केतकी कहानी' भारतीय-परम्परा में प्रथम उपन्यास की सर्जना की। लालाजी को उसे संकुचित दायरे से विस्तृत रूप में लाने का श्रेय है। 'परीक्षा-गुरु' प्रथम मौलिक सामाजिक उपन्यास है। ठाकुर जगमोहनसिंह की प्रलाप शैली में रूपविधान का वैलक्षण्य प्रधान था। अम्बिकादत्त व्यास के चुटकुले और भट्ट जी के सौ सुजान एक अजान, नूतन ब्रह्मचारी केवल ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं और-नहीं तो इनका कोई महत्त्व नहीं। जासूसी उपन्यास के पर जमीन से अछूते थे, अनूदित उपन्यासों ने रास्ता सुझाया और फिर मौलिक उपन्यासों का अभाव नहीं रहा।'

उपरोक्त कथन से विदित होगा कि उपन्यासों के अनुवाद तीन कोटियों में विभाज्य हैं:— (१) जासूसी उपन्यास-धारा, जिसका स्रोत खत्री गहमरी की परिणतियों से प्रवाहित होता हुआ, प्रेमचन्द जैसे महान् साहित्य की एकाध कृति में अस्पष्ट झाँकता, आगमचन्द्र जैन द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही प्रवृत्ति आज तक अस्तित्व बनाए है। (२) सामाजिक उपन्यास—जो प्रेमचन्द कौशिक प्रभृति कलाकारों में पास होता 'अश्क' की 'गिरती दीवारें' में स्पष्टतः उभर आया है। प्रेमचन्द के सेवा-सदन, निर्मला, गबन; कौशिक की भिखारिणी, माँ; श्रीवास्तव की 'विदा', पहाड़ी के मध्यवर्ग के चित्र, गिरती दीवारें इस पथ के उल्लेखनीय माइल-स्टोन्स हैं। सामाजिक उपन्यासों का एक रूप उग्र के उपन्यास—बुधुआ की बेटी आदि भी हैं जो नग्नचित्रण एवम् प्रोपेगेंडिस्ट के अनुगामी भर हैं। किन्तु हिन्दी-आलोचकों ने 'घासलेटी साहित्य' कहकर उग्र के साथ अन्याय किया है। (३) ऐतिहासिक उपन्यास—जिसका आरंभ 'तारा' से होता हुआ, वृन्दावनलाल वर्मा के गढ़-कुंडार, विराटा की पद्मिनी, झाँसी की रानी, कचनार, (मीराबाई सिंधिया) फिर प्रसाद का इरावती का अधूरा संस्करण, निराला का 'प्रभावती' तथा आधुनिकतम राहुलजी के जय यौधेय, सिंहसेनापति; यशपाल की दिव्या, रामरतन भटनागर की अम्बपाली तक पहुँच गया है। हिन्दी साहित्य में नये टेकनीक की दृष्टि से वर्मा जी की 'कचनार' (मनोविश्लेषण), हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'बाण' भट्ट की आत्मकथा' अपने में बेजोड़ हैं। वे हिन्दी-उपन्यास-साहित्य में अमर होंगी।

अनुवादों के विषय में इतना पर्याप्त है। बँगला में शरद, बंकिम, रवीन्द्र को अपनाया गया है। रूसी-साहित्य में गोर्की टाल्सटाय के अनुवाद हुए हैं। फ्रेंच से ह्यूगो, अंगरेजी से मेरी करेली के अनुवाद हुए हैं। इधर गुजराती से मुंशी के-जिन में 'चाणक्य' का अनुवाद सुन्दर बन पड़ा है, मराठी से खांडेकर आदि के अनुवाद हुए हैं। किन्तु सुन्दर पुस्तकों के अनुवाद अपर्याप्त ही हैं। अँगरेजी में शीघ्रमेव ही उच्च कलाकारों की सुन्दर कृतियों के अनुवाद हो जाते हैं, हिन्दी को इसे ग्रहण करना चाहिए। फिट्जरेल्ड उमरखय्याम को अमर कर गया। हिन्दी का कोई भी ऐसा अनुवादक नहीं। हमारा साहित्य, इसके कलाकार और पाठक इस उत्कृष्टता को नहीं पहुँचे हैं—वे सभी अनुवादकों को हेय दृष्टि से देखते हैं। बँगला से शरदबाबू के अनुवादों की छाया आधुनिक हिन्दी पर पर्याप्त मात्रा में मिलेगी। उनकी भावुकता, नारी का चित्रण हिन्दी में अपनाए गये हैं—किन्तु कमल जैसी बुद्धिवादिनी (शेष प्रश्न में), उनका तीखापन जाने क्यों नहीं लाए गए? चित्रलेखा और दिव्या तो बुद्धिजीवीपन का क्या कमल से तुलना कर सकते हैं?

[राजनीतिक चेतना के साथ ही उपन्यासों में भी राजनीति समवेष्टित हुई। प्रेमचन्द इस धारा-विशेष के प्रवर्तक—एवं उपेक्षित तथाकथित ग्रामीण जनता के चित्रकार रूप में हिन्दी में आए। वे हिन्दी-उपन्यास के माइल स्टोन हैं। राजनीतिक उपन्यासों में गति थी, उत्तेजना-प्रदान करने की शक्ति थी, तथैव उद्देश्य लेकर भी चले थे। किन्तु घटना प्राधान्यता के साथ इनमें चरित-प्राधान्यता का अभाव था।]

उपन्यास के पुराने ढाँचे में काव्यत्व की मात्रा, परिच्छेदों के आरंभ में अलंकृत दृश्य-वर्णन होते थे, पात्रों का कथोपकथन भी रसात्मक होता था। प्रबन्ध-काव्य के नायक के सदृश ही उपन्यास का नायक उच्चवर्ग का व्यक्ति ही हो सकता था। नए उपन्यास ने दृश्य-वर्णन, भाव-व्यंजना एवम् अलंकारिक चमत्कार का बहिष्कार किया। ग्रामीण चित्रणों को—जिन्हें अतीत के कलाकारों ने उपेक्षित समझा था—प्रेमचन्द ने सहानुभूति की दृष्टि से देखा। सदियों से त्रस्त वेश्याओं, विधवाओं, मजदूरों, किसानों में, उनकी निर्बलता के बावजूद भी उन्हें श्रद्धा थी। सेवा-सदन, वरदान, प्रतिज्ञा, गबन, निर्मला में समाज के पीड़ितों के स्वरों को सामाजिक समस्याओं पर-मुखरित किया। कायाकल्प की अद्भुत कल्पनाप्रियता, प्रेमचन्द में पूर्वप्रचलित प्रवृत्तियों के अनुसरण की द्योतिका है। प्रेमचन्द ने समाज से ऊपर राष्ट्रीय चेतना का चित्रण भी दिया। प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि में तत्कालीन परिस्थितियों का—अँगरेजी साम्राज्य और नौकरशाही, सामन्तों और जमींदारों, पूँजीपति और Petty बूर्जुओं के खून चूसनेवाले-किसानों, मजदूरों पर अत्याचार तथा ग्रामीण-सौंदर्य और भोलेपन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोखेपन का उन्होंने खूबी से चित्रण किया। समय की माँग से प्रभावित, समाज के संघर्षों से दुखी, हमारे सामाजिक जीवन को परिष्कृत करने वाली वेदना से संयुक्त होकर उन्होंने कुटुम्ब के संचित घेरे से लेकर समाज एवं राष्ट्र के प्रत्येक पक्ष पर विचार किया है। हमारे पारिवारिक, सामाजिक राष्ट्रयजीवन में बुराइयाँ प्रविष्ट हो गई हैं, इन बुराइयों का तथा मानव की दुर्बलताओं का, सहानुभूति की आँखों से देखकर, चित्रण किया है। फिर भी प्रेमचन्द यथार्थवादी होते हुए भी घोर आदर्शवादी थे। चित्रणों के साथ मनोरम कल्पना की पृष्ठभूमि, आदर्श ग्राम की परिकल्पना (गांधीवादी प्रवृत्ति), सुधारवादी उपदेशक-वृत्ति, पात्रों का हनन, कलात्मक रूप में अरुचिकर हैं। इन्हें नीतिवादी उपन्यासकार कह सकते हैं। वे उपन्यास को मानव चरित्र व चित्र समझते थे। काव्य न्याय पर विश्वास रखने वाली अंध-श्रद्धा से वे बच नहीं सके।

गोदान में वे इन दूषणों से बच सके हैं। मौलिकता, सामयिकता की दृष्टि से वे अमर हैं। भाषा को उन्होंने रूप दिया, स्टैंडर्ड रखा। सामाजिक चित्रणों में उनके साथ प्रसाद और कौशिक रखे जा सकते हैं। प्रसाद ने कंकाल में प्रेमचन्द की तरह ही आदर्श-स्थापन किया है। किन्तु प्रसाद कटु यथार्थवादी हो जाते हैं—काव्यत्व का साथ फेंक देते हैं। यही कारण है उनमें वेदना-स्वर उद्भूत है मनुष्य के आडम्बर की खूब खिल्ली उड़ाई है। तितली में उन्हें अधिक सफलता उपलब्ध हुई है। दृष्टिकोण भी नया था। प्रसाद राजनीति को अंकन नहीं कर सके—पलायन न होते हुए भी, 'इरावती' का अतीत का अधूरा कुपतलापन अधिक आकर्षक प्रतीत होता है। कौशिक की 'माँ' और भिखारिणी प्रेमचन्दी शैली पर लिखित हैं। इन सभी उपन्यासों में इतिवृत्तात्मकता का प्राधान्य है। 'पहाड़ी' के मध्यमवर्ग के सामाजिक चित्रण और वाजपेयी जी के रोमैंटिक चित्रण मनोरंजन की दृष्टि से ठीक हैं किन्तु इसके अतिरिक्त उनमें कुछ भी उपलब्ध होगा—कहा नहीं जा सकता।

सामाजिकता की यह प्रवृत्ति आज भी मुरझाने नहीं पाई है। 'गिरती दीवारें' का स्वस्थ चित्रण यथार्थ से पूरित है। प्रतापनारायण श्रीवास्तव की 'विदा' भी सुन्दर बन पड़ी है। उग्र जी के पात्रों में "मनुष्य की सभी वृत्तियाँ" दमन की शृंखलाएँ तोड़कर स्वच्छन्दता से जीवन का मांसल अनुभव करती हैं। उग्र और चतुरसेन शास्त्री सामाजिक विश्लेषक के रूप में न आकर उपदेशक तथा सुधारक के रूप में आए। कोरी नीतिमत्ता और आदर्शोपलब्धि में यथार्थ का हनन बहुत हुआ। 'बुधुआ की बेटी' में ही क्यों, हिन्दी के सभी उपन्यासकारों में ही थोथा रोमान्स मिलने की दूषित प्रवृत्ति मिलती है। कल्पना-लोक का अति विचरण लाभप्रद नहीं हो सकता। निर्जीव-पात्र और लच्छेदार भाषा बीन बीनरीब तथा काव्यत्व को आज का कलाकार निकाल फेंक दे रहा है। और इसी में उसकी सफलता सन्निहित है।

× × ×

अंचल और रांगेय राघव रोमैंटिक प्रवृत्ति के लेखकों में से हैं। रांगेय-राघव का 'घरौंदा' कालेजीय जीवन का चित्र है जिसमें कालेज की रंगीनी के यथार्थ चित्रण का प्रयास हुआ है। अंचल की 'चढ़ती धूप' भी इसी कोटि का है।

× × ×

यशपाल इस दिशा में नई गति हैं। जहाँ प्रेमचन्द में आदर्श-विमुख होने की क्षमता नहीं वहाँ यशपाल ठोस यथार्थवादी है। प्रेमचन्द ने ग्रामों की ओर देखा था, जन-जागृति की चेतावनी दी थी। यशपाल ने अतीत के समाजवाद का वैज्ञानिक रूप—प्रतिक्रियावाद—वर्तमान राजनीति की दिशाओं और संवेदनाओं का चित्रण किया। साम्यवादी दृष्टिकोण मापदण्ड पर ही इनका मूल्य आँका जा सकता है।

यशपाल ने प्रेमचन्द की विचारधारा को आगे बढ़ाया है। प्रेमचन्द गान्धीवादी थे या मानवतावादी निश्चित नहीं कहा जा सकता किन्तु यशपाल की साम्यवादी प्रवृत्ति में संदिग्ध होने की आवश्यकता नहीं। दादा कामरेड,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्टी कामरेड सभी में यही प्रकृति फाँकती दिखेगी। पाठक तिलमलाए बिना नहीं रहेंगे। दादा कामरेड और शरद के 'पथरे दावेदार' जैसे एक ही नायक का निर्माण करते हैं। यहीं तक नहीं दिव्या में तो अतीत के तर्कवाद को भी उन्होंने उसी जरदे से देखने का प्रयास किया है। इस प्रवृत्ति का अभी विकास होना ही है।

पाश्चात्य संसार से प्रभावित हिन्दी-साहित्यकार पाश्चात्य छायाओं को ग्रहण करता जा रहा है। आज के हिन्दी उपन्यासकार में फ्रायडियन और मार्क्सिस्ट दृष्टिकोणों का आधिक्य दिखाई देगा। और उनके नेतावाहक हैं अज्ञेय तथा यशपाल। अज्ञेय के विषय में हम आगे लिखेंगे। उपन्यास की सजनी, शायद पाठकों के अभाव में, उतनी गतिशील नहीं कही जा सकती, फिर उन पर आलोचनाओं की बात तो दूर की है। उपन्यासों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण स्वतः महत्वपूर्ण विषय है किन्तु हम इन प्रवृत्तियों को वाटरटाइट कम्पार्टमेंट्स में नहीं रख सकते।

वैसे तो रूसी-साहित्य की छाप प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी दृष्टिगोचर होती है किन्तु तथाकथित साम्यवादी प्रवृत्ति को ग्रहण करने का श्रेय यशपाल को ही मिलना चाहिए। यदि प्रेमचन्द पर नीतिवादी उपदेशक होने का लांछन लगा सकते हैं तो यशपाल भी Propagandist होने से नहीं बच सकते।

इधर पीड़ित मानवता के प्रति सहानुभूति की पुकार उठ रही है। सामयिक समस्याओं को लेकर—बंगाल के अकाल पर रामचन्द्र तिवारी ने उपन्यास लिखा है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी भी रोमैंटिक चित्रण छोड़कर इसी ओर प्रयत्नशील हैं—यह स्वस्थता का परिचायक भी है। उनके उपन्यास भी इसी कोटि में आते हैं। वे मानव की कराह का निराकरण मुक्ति में नहीं देखते—उसकी आर्थिक परिस्थितियाँ ही उसकी बध्यता के कारण है। सर्वदानन्द वर्मा का अनिकेतन इसी टाइप का है। यह विचारधारा दृढ़तर होती जा रही है 'हंस' की कहानियाँ उसके लेखक प्रगतिशील साहित्य के निर्माण में दत्तचित्त हैं।

(अपूर्ण)

नोट—अवशिष्ट भाग में वृन्दावनलाल वर्मा तथा इतर उपन्यासकारों के ऐतिहासिक उपन्यासों, तथा उनका रुझान में मनोविश्लेषण की ओर उन्मुख तथा प्रयासशील हुने का विश्लेषण है। जैनेन्द्र—गान्धीवादी प्रवृत्ति के पोषक एवं अज्ञेय मनोवैज्ञानिक धारा के लेखक—प्रवर्तक नहीं—इस विशदता से विचार किया गया है। इतर नई धाराओं की आलोचना कर लेख समाप्त होगा।

(पृष्ठ ८३ से आगे)

प्रणय प्रभाकर से चढ़कर,
इस अनन्त का करते माप ॥

तथा अंतिम अंक के अंतिम दृश्य के नेपथ्य गीत 'चल बसन्त बाला अंचल से किस घातक सौरभ में मस्त' एक अन्योक्ति पूर्ण गीत है तथा इसमें भावात्मक भूल (Pathetic Fallacy) भी है जैसे 'सौरभ बोले ही घातक हैं'। इसके अतिरिक्त इसमें लक्षणा का प्राचुर्य है।

प्रसादजी के गीतों के कलापक्ष के सम्बन्ध में हम यही कहेंगे कि वे छायावादी कवि हैं और इसीलिए उनकी कविताओं में छायावादी अभिव्यञ्जना-पद्धति का सम्पूर्ण संयोग है। अतः गीतिकार की दृष्टि से वे एक सफल कवि हैं।

किसी आलोचक ने अजातशत्रु के गीतों में पाँच बातों का विशेष रूप से उल्लेख किया है। वे कुछ यों है—

क—आत्मनिष्ट भावना का अविच्छिन्न प्रवाह।

ख—सम्पूर्ण गीत में एक ही व्यापक भाव।

ग—भावों का उत्कर्ष।

घ—भावना की तन्मयता तथा संगीतितत्व का संयोग।

ङ—प्रेषणीयता और प्रेक्षणीयता (Communicablility and Projectivity) की मुख्यता वास्तव में ऊपर की जो विशेषताएँ बतलाई गई हैं वे गीतकाव्य की विशेषताएँ हैं। यही है—अजातशत्रु के गीतों का महत्व। बस !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबू गुलाबरायजी की नूतन-देन

('सिद्धान्त और अध्ययन'—दो भाग)*

प्रो० श्री नागरमल सहल एम० ए०

बाबू श्यामसुन्दरदासजी के साहित्यालोचन के बाद साहित्य-गंगा में बहुत जल प्रवाहित हो चुका है। वर्तमान काल की यह अनुपेक्षणीय आवश्यकता थी कि इस विषय पर सब नयी बातों को लेते हुए एक नये ढंग से कोई नई पुस्तक लिखी जाय। समस्त हिन्दी संसार के लिए यह हर्ष और गौरव का विषय है कि हिन्दी में साहित्यालोचन विषय के प्रवर्तक श्री श्यामसुन्दरदासजी के प्रति परम श्रद्धा का भाव रखने वाले, 'नवरस-प्रणेता, 'साहित्य-सन्देश' के यशस्वी सम्पादक वयोवृद्ध साहित्यसेवी श्री बाबू गुलाबराय जी ने 'सिद्धान्त और अध्ययन' के माध्यम द्वारा इस महती आवश्यकता की बड़ी सफल अथच सामयिक पूर्ति की है जिसके लिए उनको जितना साधुवाद दिया जाय उतना थोड़ा। 'साहित्यालोचन' के काम को 'सिद्धान्त और अध्ययन' ने निस्सन्देह आगे बढ़ाया है, चाहे बाबू श्यामसुन्दरदासजी के बनाये हुए आधार से ही सही। 'साकेत' की रचना तुलसीदास की रामायण की प्रतिस्पर्द्धा में नहीं हुई, ठीक वैसे ही साहित्यालोचन की इन दोनों-तीनों पुस्तकों में ऊँच-नीच का कोई सवाल न लेखक को अभीष्ट है, न इस आलोचक को क्योंकि बाबू श्यामसुन्दर दासजी के कार्य-भार को ठीक ही सँभाला है बाबू गुलाबरायजी ने। बाबुओं में कौन छोटा-बड़ा, दोनों ही जो बाबू + ठहरे।

'सिद्धान्त और अध्ययन' के प्रथम भाग में काव्य के विभिन्न सिद्धान्तों का (यथा काव्य की आत्मा, काव्य के हेतु, अभिव्यञ्जनावाद, कलावाद, सत्यं, शिवं, सुन्दरम् (काव्य का क्षेत्र), ध्वनि-सिद्धान्त, शब्द-शक्ति आदि) तुलनात्मक परीक्षण है। उसका दूसरा भाग (काव्य के रूप) 'साहित्यालोचन' से अधिक मिलता-जुलता है क्योंकि अपने पूर्वज या अग्रज की भाँति इसमें भी दृश्य-काव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना आदि का व्याख्यात्मक-विवेचनात्मक इतिहास है। श्यामसुन्दरदासजी के साहित्यालोचन में अत्याधुनिक लेखकों और कवियों का हवाला न के बराबर था—उसमें सिद्धान्त का ही अध्ययन अधिक था, तत्सम्बद्ध व्यक्ति का या उस सिद्धान्त के व्यावहारिक प्रयोग का कम। गुलाबरायजी ने साहित्य-शास्त्र के तत्वों के समकक्ष उनके प्रयोग और परीक्षण का भी सम्यक् विचार किया है जिससे पुस्तक के आकर्षण में यथेष्ट वृद्धि हुई है तथा विषय के स्पष्टीकरण में सुगमता और रोचकता आई है। श्यामसुन्दरदासजी की व्यास-शैली कुछ निर्वैयक्तिक सी थी; गुलाबरायजी की अपनी हँसती हुई मूँछों की छाप लिए सर्वथा वैयक्तिक और हास्यमयी। 'मेरी असफलताएँ' और 'साहित्य की तीसरी उपेक्षिता-भैंस' सदृश निबन्ध लिख सकने वाले श्री गुलाबरायजी के सार्थक (निरर्थक नहीं) हास्य के कुछ नमूने लीजिए—'एक पुराने आचार्य ने तो वैश्यों के साथ सब कवियों को चोर ठहराया है (यदि वे आचार्य जीवित होते तो वैश्य लोग उन पर मान हानि का दावा अवश्य करते और मैं भी दावे में शामिल हो जाता)' प्रथम भाग पृ० ८६ [बाबू गुलाबरायजी उस दावे में चाहे हार जाते, यह दूसरी बात है × —लेखक] २—'निरालाजी की विधवा (मेरा मतलब निरालाजी लिखित विधवा—शीर्षक कविता से है)' भाग २ पृ० १२७। ३—'जो याचकों को उनकी कामना के अनुकूल (थोड़ा सा देकर मना नहीं देते थे) दान देते थे'···'जो योग द्वारा (रोग द्वारा नहीं) शरीर छोड़ते थे' भाग २ पृ० ७७-७८। क्लिष्ट विषय भी

* (सिद्धान्त और अध्ययन भाग १ मूल्य ३।); भाग २ 'काव्य के रूप' मूल्य ४।।।) प्रकाशक—प्रतिभा-प्रकाशन मन्दिर; ६, हैदर कुली, दिल्ली के लिये साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा।

\+ फारसी में बाबू का अर्थ है मस्तक।

× खासतौर से आजकल ब्लैकमार्केट के दिनों में सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हास्य के ऐसे अनेकानेक छींटों से कभी रुक्ष नहीं हो पाता; स्वयं शुक्लजी इस हास्य के कारण ही अपने निबन्धों को सजीव बना पाये थे। गुलाबरायजी का हास्य प्रायः सर्वत्र ही सहज है, किन्तु कहीं-कहीं 'महावीर' द्वारा आरोपित, अतएव (छापेखाने के भूतों की कृपा के कारण) कृत्रिम भी यथा एक जगह छाप है कि 'वे (तुलसी) पूर्ण हितवादी थे'—राजस्थानी में 'पौन को जहाँ 'पूण' कहते हैं—ऐसे लोग तो एक बार यही समझेंगे कि तुलसी जैसे पूर्ण हितवादी नहीं थे—तीन चौथाई ही थे। हास्य की बात जाने दीजिए, पर ऐसी महत्व की साहित्यिक पुस्तकों में बड़ी भद्दी, खटकने वाली छापे की अशुद्धियाँ हुई हैं—'व्यञ्जना' बेचारी 'व्यंचना' हो गई है; (कहीं सचमुच ही तो नहीं, इस विषय पर हम जरा आगे विचार करेंगे) आर्थिक अर्थिक हो गया है, ईश्वर का लिंग ही बदल गया है 'ईश्वरीय' में—स्त्रियों का जमाना है न।

उपन्यास की कथावस्तु के सम्बन्ध में बाबूजी लिखते हैं 'पुनरुक्ति तो आजकल लोग राम नाम की भी पसन्द नहीं करते हैं फिर कथानक की बात ही क्या है'! यह उनके मार्मिक हास्य का नमूना है। मतलब यह कि कई तरह की हास्य-संश्लिष्ट उनकी शैली आकर्षक बन पड़ी है। फिर भी यह अवश्य है कि बाबूजी ने कला-पक्ष की उपेक्षा तो नहीं की, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाव-पक्ष को कहीं अधिक महत्व दिया है। अब जरी भावपक्ष की हम जरा चर्चा करलें। 'साहित्यालोचन' जैसे सर्वोपरि परीक्षोपयुक्त था वैसे ही बहुत अंशों में एम० ए०, साहित्य-रत्न आदि के परीक्षार्थियों के लिए ये दोनों ग्रंथ अत्यन्त उपादेय सिद्ध होंगे। बाबूजी को भी इसका ध्यान अवश्य रहा है क्योंकि सर्वत्र रेखांकित परिभाषाओं पर उनका जोर रहा है। सारूप में वह सम्पूर्ण विवेचन का निचोड़ होती है। कहानी की परिभाषा देना तो बाबूजी उतना ही कठिन मानते हैं जितना कि चतुर चितेरों को भी क्रूर बना देने वाली बिहारी की नायिका की तसवीर खींचना, पर बाबूजी ने फिर भी उसकी तसवीर खींचने का जैसे प्रयत्न ही कर लिया हो। एक हमारे प्रोफेसर कहा करते थे कि परिभाषाओं से मैंने एक ही बात सीखी है और वह यह कि परिभाषाओं के चक्कर में कभी फँसना ही नहीं चाहिए। बाबूजी ने स्वयं निवेदन किया है कि 'अब तो काव्य की प्राचीन परिभाषाओं में भी हेर-फेर करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है' पर फिर भी सर्वत्र परिभाषा का प्रयास करते हुए वे यह भूल गये हैं कि उनकी परिभाषाओं में भी आज नहीं, तो कल अवश्य शायद परिवर्तन करना ही पड़ेगा। स्वच्छन्दतावादी आलोचक (Romantic Critic) होने की इच्छा रखते हुए भी झुकाव उनका विशुद्ध शिष्टवाद (Classicism) की ओर अधिक है। काव्य उनकी दृष्टि में, "संसार के प्रति कवि की भाव-प्रधान मानसिक प्रतिक्रियाओं की श्रेय की प्रेय रूप देने वाली अभिव्यक्ति है" पर स्पष्ट ही यह परिभाषा सर्वत्र ठीक नहीं उतरेगी क्योंकि यह परिभाषा केवल आदर्शात्मक है, व्यवहार-पक्ष और यथार्थवाद की इसमें उपेक्षा है। सत्यं, शिवं, सुन्दरम् आदर्श रूप में तो ठीक है ही, पर कंठीक-कवि ग्राहक ने जितना श्रेय का ध्यान रखा उतना शालीन भी प्रेय का नहीं। देवेश का श्रेय नहीं है जिनको उस समय के बड़े बूढ़े ठीक मानते थे। बाकी उसमें प्रेम ही प्रेम है। बिहारी का श्रेय की तरफ कोई ध्यान ही नहीं। यथार्थवादी कवि श्रेय को भी सदा अनिवार्यतः प्रेय रूप नहीं देना चाहता—वह तो, पर पूछा जाय तो पाठकों को कड़वा घूँट पिलाना चाहता है। अरस्तू द्वारा दी गई करुणात्मक (Tragedy) की परिभाषा के अन्तिम अंश को गुलाबरायजी ने भी क्यों संदिग्ध माना है* ('इसमें वह स्पष्ट नहीं है

* इसकी अस्पष्टता की ओर लोगों ने भी स्वीकार किया है (नहीं तो इस विषय में आचार्यों का मतभेद न होता)। मेरी कठिनाई इस बात की है कि करुणा और भय एकसे मनोभाव नहीं हैं। भय का रेचन तो आवश्यक है। करुणा का उचित मात्रा में बना रहना मनुष्य को ऊपर उठाता है। करुणा और भय के अतिरिक्त और भी जैसे घृणा, ईर्ष्या, क्रोध आदि दुखद अनुभव हैं, जिनका रेचन आवश्यक होता है। अनुवाद के ठीक पाठ के लिए धन्यवाद। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेचन भी भय और करुणा का ही होता है या और किन्हीं का') 'Effecting through pity and terror the purgation of these passions' प्रोफेसर बूचर का मान्य अनुवाद इस प्रकार है; 'Through pity and fear effecting the proper purgation of these emotions' इससे यह तो स्पष्ट ही है कि भय और करुणा का ही उचित मात्रा में रेचन या निकास होता है। झगड़ा सारा Katharsis शब्द के अर्थ पर है। प्लैटो ने अपने 'Republic' में कवि को कोई स्थान ही नहीं दिया था क्योंकि एक तो कवि अनुकरण (जो यह सृष्टि है) का अनुकरण करता है इसलिए कविता 'सेकण्ड हैण्ड' ही नहीं, 'थर्ड हैण्ड' होजाती है। दूसरे, क्योंकि प्रायः कविता का धरातल नैतिक नहीं होता, कविता से दूषित भावों को अनुचित उत्तेजन या प्रोत्साहन मिलता है। चाहिए यह कि काव्य या कला ऐसे दूषित भावों का मूलोच्छेद करे। प्लैटो के शिष्य अरस्तू कहते हैं कि गुरुवर्य, कविता वही तो करती है जो आपका इष्ट है। प्लैटो का कहना था कि करुणात्मक नाटक का नायक रो-रो कर, अपने भाग्य को दोष देकर हमारी सहानुभूति जागृत करता है जबकि वास्तविक जीवन में ऐसे लोगों को हम कायर कहते हैं। प्रशंस्य तो वह है जो निर्भीक होकर कठिनाइयों का पहाड़ यहाँ से वहाँ तक चीरता चले। अरस्तू का कहना है कि ऐसे नाटकों से हमें मानसिक स्वास्थ्य या संतुलन की प्राप्ति होती है। Katharsis का अर्थ रेचन और शुद्धि (Purification) दोनों होते हैं। एक दृष्टि से देखा जाय तो रेचन का ही आवश्यक परिणाम होता है शुद्धि। Scott James का कहना है कि भय और करुणा का सर्वथा रेचन नहीं होता। दूषित, अनिष्ट संमिश्रण का निकास कर इन भावों की शुद्धि होती है ('Purifying them by purging away the dross')। ऐबरक्रांबा शुद्धि की अपेक्षा रेचन को ही अधिक महत्व देते हैं यद्यपि साथ में यह भी कहते हैं कि नाटकीय नाश-विनाश का दुष्परिणाम हमें भोगने को नहीं मिलता (जैसा वास्तविक जगत में होता है) और इस दृष्टि से इन भावों की शुद्धि भी होती है। मिल्टन के अनुसार भय और करुणा का रेचन होमियोपैथी के ढंग से भय और करुणा की ही खुराक (dose) द्वारा किया जाता है और वह इस लिए कि ये भाव या तो स्वयं ही अस्वास्थ्यकर हैं अथवा अधिक मात्रा में बढ़ने का इनका अंदेशा बना रहता है इसलिए इनका रेचन होते रहना मानसिक संतुलन के लिए आवश्यक उपचार है। × यह तो एक एक स्वतंत्र लेख का विषय है, पर यह असंदिग्ध है कि भय और करुणा का तो कम से कम उचित और आवश्यक परिमाण में निकास होता ही है। दृश्य-काव्य के विवेचन में प्रसादजी पर संक्षिप्त किन्तु बड़ी सारगर्भित टिप्पणियाँ हैं—यथा 'वर्तमान जगत के संघर्ष और कोलाहल मय जीवन से ऊबा हुआ उनका हृदयस्थ कवि उनको स्वर्णिम आभा से दूरस्थ अतीत की ओर ले गया। उन्होंने अतीत के इतिवृत्त में भावना का मधु और दार्शनिकता की रसायन घोल कर समाज को एक ऐसा पौष्टिक अवलेह दिया जो हास्य की मनोवृत्ति को दूर कर उसमें एक नयी सांस्कृतिक चेतना का संचार कर सके' इत्यादि। नाटकों के विवेचन में शेक्सपियर को दो एक पृष्ठ और मिल जाते तो रोमांटिक नाटकों का वैशिष्ट्य जरा ठीक स्पष्ट हो सकता।

गुलाबरायजी की इन पुस्तकों में पौर्वात्य तथा पाश्चात्य सिद्धान्तों के तुलनात्मक समन्वय की बड़ी विराट चेष्टा की गई है। साहित्य का कालक्रम से पूरा इतिहास न सही, पर विभिन्न शब्द रूपों की विवेचना में तत्सम्बद्ध प्रसंगोपात्ति प्रायः पूरे इतिहास का ही निचोड़ हमें अनायास मिल जाता है जो इन पुस्तकों की अपनी विशेषता है। विषय की भूमिका रूप में संस्कृत और अंग्रेजी कालक्रमिक

× देखिए मिल्टन की Samson Agonistes की Preface—as it purges the mind of pity, fear or terror and such like passions, "That is to temper and reduce them to just measure" (मेरी शङ्का इसी टीका की भूमिका है। यह टीका मेरी आशङ्का की पूर्ति करता है)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम्पराओं का सारांश देकर बाबूजी वीरगाथा, भक्ति, रीति, हरिश्चन्द्र, द्विवेदी आदि हिन्दी के विभिन्न कालों का विषयानुरूप गठित इतिहास प्रस्तुत करते आये हैं। लेने को अंग्रेजी की आधुनिक प्रवृत्तियाँ भी छोड़ी नहीं गई हैं पर अंग्रेजी या पाश्चात्य सिद्धान्तों का अधिक सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन भी बाबूजी का नहीं दीखता (मेरा अध्ययन विस्तृत तो नहीं पर सहानुभूतिपूर्ण अवश्य है)

प्रसादजी और मैथिलीशरणजी की बात चाहे छोड़ दीजिए (यद्यपि उन पर भी अंग्रेजी का प्रभाव बंगला के माध्यम द्वारा पड़ा ही है) पर बाकी आचार्य शुक्लजी, श्यामसुन्दरदासजी, बाबू गुलाबरायजी, ... क्या कम हैं—उनको इस पुस्तक का आदर्श भी उनको क्या मौल्टनमें नहीं मिला होगा ? बाबूजी ने कीथ का नाम भी न जाने दे, काणे, शंकरन आदि के साथ कैसे रख दिया है ? कीथ को भी भारतीय समझने का शायद उन्हें भ्रम हो गया है। (ऐसा भ्रम कदापि नहीं है। भारतीय सिद्धान्तों के समझने वालों में से वे एक हैं भारतीय नहीं हैं—सम्पादक) हाँ, यह अवश्य है कि ऐसे विद्वानों की कृपा से पाश्चात्यों की आलोचना के चकाचौंध में आकर हमने अपना सब कुछ भुला नहीं दिया। I. A Richards को शुक्लजी ने क्या कम मान दिया है—पर हाँ, फिर भी भारतीय परम्परा को कहीं छोड़ा नहीं है या यों भी कह सकते हैं कि बहुत कुछ उनके आधार पर प्राचीन भारतीय सिद्धान्तों को नये रूप में रखा है। पाश्चात्य साहित्यों में आधुनिक युग में आलोचना आदि की बड़ी भारी उन्नति हुई है,—वहाँ तक पहुँचने में हमें अभी बहुत वर्ष लगेंगे।

'ऐसे' (Essay) शब्द का अनुवाद 'निबन्ध' असल में ठीक नहीं है—इसीलिए गुलाबरायजी ने ऐसे के जन्मदाता माण्टेन में बुराइयाँ अधिक देखी हैं, अच्छाइयाँ कम—किन्तु उनमें यही त्रुटि थी कि वे विचार-शृङ्खला (Association of Ideas) के सहारे चलते थे।' जिसको वे त्रुटि बताते हैं, वही तो उनके ऐसे का वैशिष्ट्य था। अंग्रेजी निबन्ध का विकास दिखाते हुए माण्टेन-शैली के लेखक प्रसिद्ध चार्ल्स लैम (Charles Lamb regarded as the prince among essayists) तथा उसी शैली के प्रसिद्ध बीसवीं शताब्दी के लेखक ई० वी० ल्यूकस का बाबूजी नाम तक गिनाना भूल गये हैं। 'आकारसदृशप्रज्ञः' डा० जानसन इस तरह के प्रयत्नों को कैसे पसन्द कर सकता था—हमारे आचार्य शुक्लजी का भी जोर विचारात्मक निबन्धों पर अधिक था, व्यक्तित्व की छाप वाले हल्के वैयक्तिक निबन्धों की (Light, persoanal essay) ओर कम। आदर्श Essay असल में माण्टेन-शैली के ही हैं (जिसका कुछ अनुकरण हमारे यहाँ भारतेन्दु-काल में हुआ था)—उसका अनुवाद, इसीलिए प्रो० मनोरंजन ने निबन्ध न कर ऐसे किया था। Essay का अनुवाद भी ऐसे ही—वह, जो ऐसे ही लिखा गया हो लेकिन लिखने वाला अगर जोरदार है तो वह ऐसे भी बड़े सुन्दर ढंग से लिखेगा। प्रस्तुत विषय का उसमें प्राधान्य नहीं, वहाँ सबसे आवश्यक है प्रसंग-प्राप्त आत्माभिव्यक्ति। 'क्या कहा गया है (Matter) यह इतना आवश्यक नहीं जितना यह कि किस ढंग से (Manner) कहा गया है। एक Essay है चाक के टुकड़े पर (on a piece of chalk) हक्स्ले का लिखा हुआ और दूसरा चेस्टरटन का। पहले में हमें चाक के बारे में बहुत बड़ा ज्ञान होता है, दूसरे में चाक के बारे में प्रायः कुछ नहीं पर लेखक चेस्टरटन के बारे में बहुत कुछ। हमारा प्रयोज्य 'ऐसे' इस दूसरी कोटि का ही हो सकता है, प्रथम का नहीं। 'ऐसे' में भी गुलाबरायजी प्रबन्ध के से गुण चाहते हैं इसलिए वे असली Essay का शब्द रसास्वाद ही नहीं कर सके। फिर भी वे लेखक का निजीपन और व्यक्तित्व की झलक उसमें आवश्यक

आजकल के पाश्चात्य निबन्ध लेखकों के निबन्ध ऐसे से हट कर निबन्ध के आदर्श के ही निकट आते जाते हैं। वैयक्तिक छाप आवश्यक है। ऐसे के रूप में भी विकास हो सकता है—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानते हैं जो सर्वथा संगत नहीं है। निर्वैयक्तिक Essay उनकी दृष्टि में हो ही नहीं सकते पर वेकन उनको अच्छा निबन्धकार जँचता है (हर्गिज नहीं—सम्पादक) यद्यपि है वह निर्वैयक्तिक ढंग का (Impersonal) लेखक। शुक्लजी के व्यक्तित्व की छाप भी उनके निबन्धों में उनके गांभीर्य और पाण्डित्य की छाप है—उनके निबन्धों से उनके व्यक्तित्व का बहुत अधूरा निर्माण ही हो सकता है।

अब जरा अभिधा और व्यंजना के तारतम्य का विचार करलें। अभिधा को उत्तम काव्य मानने वाले देव और आचार्य शुक्लजी से बाबू गुलाबरायजी और 'काव्यालोक' के लेखक पं० रामदहिन मिश्र दोनों का मतभेद है पर यह ध्यान देने की बात है कि "सूरदास सरवस जो दीजै कारो कृतहि न मानै" में शुक्लजी ने रमनीयता वाच्यार्थ में न मान कर असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य में मानी है। शुक्लजी लक्षणा, व्यंजना के कायल न हों ऐसी बात नहीं है पर रस सचमुच उक्ति में होता है, उसके लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ में नहीं। बिना उस अभिधा या उक्ति के लक्षणा या व्यंजना का प्रादुर्भाव ही कहाँ से हो सकता है?

आप अवधि बन सकूँ तो कहीं क्या कुछ देर लगाऊँ,
मैं अपने को आप मिटाकर, जाकर उनको लाऊँ।

इसके लक्ष्यार्थ में कोई चमत्कार नहीं है—क्रोचे भी यही कहेगा कि सारा रस और चमत्कार स्वयं इस उक्ति में ही है, उर्मिला लक्ष्मण से मिलने के लिए बहुत अधिक उत्सुक है इस लक्ष्यार्थ में नहीं। यह विवादास्पद विषय है—आप फूल को बड़ा मानें या फल को।

'कवि और पाठक के त्रयात्मक व्यक्तित्व', 'कविता और स्वप्न', 'काव्य का क्षेत्र' आदि गुलाबरायजी के मौलिक, विचारोत्तेजक, सुपाठ्य निबन्ध हैं पर ये क्रोचे के अभिव्यञ्जनावाद को स्पष्ट नहीं कर सके शायद इसलिए कि क्रोचे को समझाने का प्रयत्न उन्होंने शुक्लजी और सुधांशुजी से ही किया है, क्रोचे की Aesthetic का Douglas Ainslie द्वारा किये हुए अनुवाद से नहीं। १६१६ से क्रोचे की पुस्तक बावूजी के पास थी पर १६४८ तक भी शायद उसका पारायण नहीं हो पाया है (अपने मतलब लायक तो पारायण किया ही है—सम्पादक)। इसीलिए इस लेख में औरों की उद्धरणियाँ अधिक हैं, स्वतन्त्र, मौलिक विवेचन और चिंतन कम। क्रोचे की अँग्रेजी-पुस्तक को पढ़कर अगर बाबूजी यह निबन्ध लिखते तो पाठकों का कहीं अधिक कल्याण होता। आचार्य शुक्लजी ने क्रोचे को अपनी आवश्यकतानुसार पूरा समझ लिया था (मुझे उनका शिष्य होने का गौरव प्राप्त है) पर बाबू गुलाबरायजी स्वयं शुक्लजी की व्याख्या को सर्वत्र ठीक नहीं समझते हैं। क्रोचे के साथ आचार्य केशवदास का नाम देखकर बाबू गुलाबराय जी तथा अन्य कई सज्जन भभा गये हैं—प्रथम बार पढ़ते ही वह वाक्य मुझे स्वयं अटपटा लगा था—पर दुबारा पढ़ते ही शुक्लजी की कोई भूल उसमें नहीं दीखी। बाबूजी लिखते हैं 'आचार्य शुक्लजी के प्रति मेरा पूर्ण श्रद्धाभाव है क्योंकि मैं मुक्त-कण्ठ से कह सकता हूँ कि हिंदी लेखकों में जितना शुक्ल जी से मैंने सीखा है और किसी से नहीं किन्तु मैं नम्रता पूर्वक निवेदन करूँगा कि अलङ्कारवादी आचार्य केशवदास से क्रोचे की तुलना कर उसके साथ अन्याय किया गया है। अब लगे हाथ शुक्लजी का कथन भी ले लीजिए—"सौन्दर्य से उसका तात्पर्य केवल अभिव्यंजना के सौन्दर्य से है, उक्ति के सौन्दर्य से, किसी प्रस्तुत वस्तु में सौन्दर्य कहाँ? क्रोचे तो कल्पना की सहायता के बिना प्रकृति में कहीं कोई सौन्दर्य नहीं मानते। जो कुछ सौन्दर्य होता है वह केवल अभिव्यंजना के उक्ति-स्वरूप में। यदि सुन्दर कही जा सकती है तो उक्ति ही। इस मौके पर पुराने कवि केशवदासजी याद आ गये, जो कह गये हैं कि 'देखे मुख भावे, अन देखेई कमल चन्द्र, ताते मुख मुखै सखी, कमलौ न चन्द री'। केशवदासजी को भी कमल इत्यादि देखने में कुछ अच्छे या सुन्दर नहीं लगते थे। (शायद क्रोचे मुख और कमल दोनों को एक ही पलड़े पर रखते। मुख के लिए भी उसी कल्पना की आवश्यकता होती। —सम्पादक)

आशा है अगले संस्करण में बाबू जी इस आपत्ति का यह रूप तो कम से कम नहीं रहने देंगे। बाबूजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखते हैं कि विषयगत या वस्तुगत सौन्दर्य की क्रोचे ने नितान्त उपेक्षा नहीं की। प्राकृतिक सौन्दर्य को उसने कला या सौन्दर्यात्मक पुनर्निर्माण का उत्तेजक माना है, पर निर्माण का कारण तो नहीं। गुलाबरायजी के उद्धरण से ही परीक्षा कर लीजिए—'Natural beauty is simply a stimulus to aesthetic reproduction which presupposes previous production' इस 'Previous Production' प्रकृति से कोई सहायता नहीं मिल सकती। जन्मांध कवि अगर जंगल में रहे तो भी कल्पनाप्रसूति (ये Previous Production) उसके होगी ही क्योंकि यह आत्मा का सहज गुण है। यही तो कॉलरिज ने कहा था—

"O lady ! we receive but what we give,
And in our life alone does nature live !
Ours is her wedding-garment, ours
her shroud !"

प्रकृति का स्वतंत्र, निरपेक्ष अस्तित्व ही नहीं है कॉलरिज की दृष्टि में तो काव्य-निर्माण उसकी दृष्टि में रूपविधायिनी (Esemplastic or Primary Imagination) कल्पना का परिणाम है और यह मनुष्य का सहज गुण है जो उसे कहीं उधार नहीं लेना पड़ता। क्रोचे की दृष्टि में विषय तो कुछ है ही नहीं—सब कुछ है अभिव्यक्ति और वह भी मानसिक अभिव्यक्ति क्योंकि कागज पर उतारते ही तो कलाकार अपने पद से गिर जाता है—artist से artisan हो जाता है—जड़िया से अगर बढ़ई नहीं तो चित्रकार से फोटोग्राफर तो अवश्य हो ही जाता है ('Art does not consist of content (intellectual concept) really it has no content) अभिव्यंजनावाद को तो क्रोचे इस कला या उस कला की विशेषता नहीं मानता लेकिन सम्पूर्ण कला मात्र की ही मानता है। उसकी दृष्टि में सोफोक्लीज, शेक्सपियर, टेनीसन सभी उतने ही अभिव्यंजनावादी हैं जितना pirandello कवि द्वारा प्रदत्त प्रकाश अद्भुत होता है—वह उसकी खुद की उपज होती है—'The light that never was on sea or land the consecration and the poet's dream कवि तो निराधार को साधार बना सकता है—'gives to airy nothings a local habitation and a name' क्रोचे की दृष्टि में लिखित साहित्य कुछ नहीं, हमारी दृष्टि में उसके सिवाय कुछ नहीं क्योंकि आलोचना तो बाह्य रूप की होती है, कवि के मानस-प्रत्यक्ष की नहीं। क्रोचे में कई झंझट हैं जिनका ब्यौरा देना यहाँ सम्भव और उचित नहीं।

बाबू गुलाबरायजी की इन पुस्तकों में बड़ा व्यापक साहित्य-संसार समाविष्ट हुआ है। छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, पलायनवाद आदि सबकी सुन्दर, सुपाठ्य सटीक व्याख्याएँ हुई हैं। हम उनके सभी विचारों से सहमत हों यह आवश्यक नहीं। इस पुस्तक से अन्य साहित्यिकों को और इसी विषय पर लिखने की सही प्रेरणा मिलनी चाहिए। आशा है बाबूजी इसका अगला संस्करण और अधिक परिष्कृत रूप में हमें देंगे। 'Beauty is truth' आदि का लेखक कवि कॉलरिज नहीं, कीट्स है। इस तरह की तथा अन्य छापे की अशुद्धियाँ अवश्य ठीक होनी चाहिए बाबूजी की तथ्य-ग्राहिता और उद्भावना-शक्ति अनुपम है। अनेक विवादास्पद विषयों को लेकर भी उन्होंने कहीं कटुता नहीं आने दी है जो इस सम्यक्, वयोवृद्ध साहित्यिक तपस्वी के सर्वथा अनुरूप है। श्यामसुन्दरदासजी का 'साहित्यालोचन' तथा उनका और डा० बड़थ्वाल का 'रूपक रहस्य' तथा इनसे भी बढ़कर साहित्यिक आधुनिकतम प्रवृत्तियों का कोई शास्त्रीय, निष्पक्ष अध्ययन करना चाहे, तो वह बाबू गुलाबरायजी के 'सिद्धान्त और अध्ययन' का मनन करे। मुझे विश्वास है कि हिन्दी संसार में इस पुस्तक का पूरा मान और सम्मान होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'निर्मला' पर एक दृष्टि

श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

हिन्दी उपन्यास जगत के सर्वश्रेष्ठ कलाकार स्वर्गीय मुंशी प्रेमचन्द ने दो प्रकार के उपन्यास लिखे—एक सामाजिक और दूसरे राजनीतिक। सामाजिक उपन्यासों पर आर्यसमाज के आन्दोलन का प्रभाव रहा और राजनीतिक उपन्यासों पर गांधीवाद का। इन दोनों प्रकार के उपन्यासों के आधार पर यदि कोई अध्ययनशील लेखक हमारे सांस्कृतिक इतिहास अर्थात् गार्हस्थ्य और पारिवारिक-जीवन का लेखा तैयार करना चाहे तो सफलता पूर्वक कर सकता है। गांधीजी के लिए स्वामी दयानन्द का आन्दोलन एक प्रकार से पृष्ठभूमि की भाँति था और यद्यपि वह सामाजिक क्षेत्र में ही सीमित रहा तथापि उसके अनुयायियों में राजनीतिक चेतना की मात्रा भी कम न थी। यही कारण है कि कांग्रेस में आरम्भिक नेतृत्व करने वाले अधिकांश आर्यसमाजी थे, जिन्हें खादी, अछूतोद्धार आदि कार्यक्रमों में पहले से ही दिलचस्पी थी। इस प्रकार आर्यसमाज का गांधीवाद में पर्यवसान होगया—पूर्ण रूप में तो नहीं क्योंकि 'आर्यत्व' की जिस भावना से आर्य-समाज का सम्बन्ध था वह गांधीवाद में नहीं रही परन्तु फिर भी सामाजिक रूढ़िग्रस्तता के विरोध का ढंग वही रहा।

प्रेमचन्दजी अपने समय के उन सजग लेखकों में से थे, जो समय के प्रवाह की ऊँची-नीची तरंगों को ज्यों-का-त्यों चित्रित कर देते हैं और पाठक के ऊपर उस परिस्थिति से मुक्त होने का दायित्व छोड़ देते हैं। अपने सामाजिक और राजनीतिक दोनों ही प्रकार के उपन्यासों में वे परि-स्थिति के चित्रकार बनकर ही सामने आते हैं। समस्या का उठाना और उसका समाज में प्रचलित रूप पाठकों के सम्मुख रख देना भर वे जानते हैं। कोई हल वे नहीं देते लेकिन इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि उनका चित्रण इतना मार्मिक, गम्भीर और सूक्ष्म होता है कि पाठक स्वयं हल खोजने की सोचता है और समस्या के प्रत्येक पहलू से परिचित हो जाता है। यह हमारी सम्मति में हल देने से कहीं अधिक कलात्मक ढंग है। अस्तु;

'निर्मला' ऐसा ही एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें एक प्रमुख सामाजिक समस्या को उठाया गया है। समस्या है—वृद्ध विवाह की। मुन्शी तोताराम वकील इस समस्या के केन्द्रबिन्दु हैं। कथा इस प्रकार है—बाबू उदयभानुलाल की दो लड़कियाँ हैं। एक निर्मला और दूसरी कृष्णा। निर्मला बड़ी और कृष्णा छोटी। निर्मला की शादी लखनऊ के आबकारी इन्स्पेक्टर भालचन्द्र सिन्हा के सुपुत्र भुवन-मोहन से तय हो जाती है। उदयभानुलाल भी वकील हैं—नामी-ग्रामी। अच्छा रिश्ता है। लेकिन विवाह की तैयारी के दिनों में ही उदयभानुलाल की मतई नामक गुण्डे द्वारा हत्या होती है, जिसे वकील साहब ने किसी मामले में सजा करादी थी। हत्या के बाद विधवा कल्याणी भालचन्द्र के पास पुरोहित को अपनी परिस्थिति और कठिनाई लिखकर भेजती है परन्तु भालचन्द्र लोभ के कारण शादी करने से इन्कार कर देता है। शादी तो करनी ही है, विधवा की जवान बेटी के लिए बिना लेन-देन के यदि कोई तैयार होता है तो मुन्शी तोताराम वकील, जिनकी पहली पत्नी तीन बच्चे छोड़ कर मर चुकी है और जिनकी उम्र ४० साल के लगभग है। उनके बच्चों के नाम हैं—मंसाराम, जियाराम और सियाराम। मंसाराम की उम्र लगभग १६ वर्ष की है। निर्मला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ससुराल में आती है तो उसे मिलती है उसकी विधवा ननद रुक्मिणी, जो अब तक घर चलाती रही है और घर की मालकिन बनी रही है। निर्मला को प्रसन्न करने के लिए मुन्शीजी उसे गृह-भार—रुपया-पैसा आदि सौंपते हैं और रुक्मिणी को अधिकार से वंचित होने के कारण इस पर ताने देने का अवसर मिलता है। कलह बढ़ती है। मुन्शीजी पस्त होते हैं निर्मला का—उसे प्रसन्न करने के लिए, लेकिन निर्मला वह नहीं कर सकती, जो मुन्शीजी चाहते हैं और जी बहलाने के लिए अपने समवयस्क मन्साराम से पढ़ना आरम्भ करती है। मुन्शीजी का वृद्ध हृदय अपने पुत्र के प्रति शंकाशील हो उठता है और वे पुत्र को लांछन लगाकर घर से अलग बोर्डिंग में रख देते हैं, जहाँ से भावुक बालक अस्पताल जाकर प्राण त्याग देता है। पुत्र मृत्यु से तोताराम का जीवन कष्टमय होता है—वकालत ठप हो जाती है। सियाराम निर्मला के गहने चुराने के अपराध में पकड़े जाने के डर से भाग खड़ा होता है। पिता के लिए सियाराम का सहारा बच रहता है। यहीं निर्मला का परिचय होता है सुधा से, जो उसके पहले होने वाले पति भुवनमोहन सिन्हा की पत्नी है। सुधा की सहानुभूति उसे मिलती है और उसकी बहिन कृष्णा की शादी बिना लिए-दिए भुवनमोहन के छोटे भाई के साथ हो जाती है, जिसमें डाक्टर भुवनमोहन ५००) रुपया को पहले से ही भेज देते हैं। निर्मला से शादी न करने के पाप के प्रायश्चित्त के लिए ही वे ऐसा करते हैं। निर्मला को यह पीछे पता चलता है। एक दिन निर्मला अकेली सुधा के यहाँ जाती है और डाक्टर सिन्हा वासना से बेसुध कुछ कह उठते हैं, जिसे सुनकर निर्मला सीधी घर आती है और गंगास्नान से लौटी सुधा के रोकने पर भी नहीं रुकती। सुधा उसी समय उसके यहाँ आकर सारी बातों का पता लगाती है और जाकर डाक्टर सिन्हा को डाटती है। परिणामस्वरूप सिन्हा जहर खाकर सो जाते हैं। यह प्रासंगिक कथा यहाँ समाप्त होती है और निर्मला की अपनी जिन्दगी की गाड़ी खिसकने लगती है—गरीबी में। नौकरों के अभाव में सियाराम से घर का काम लिया जाता है। वह परेशान होकर एक साधू के साथ भाग जाता है। निर्मला अपनी बच्ची आशा को लिए रह जाती है—अकेली—बेबस। मुन्शीजी उस बुढ़ापे के अन्तिम सहारे की खोज में निकलते हैं। इधर निर्मला बीमार होती है और चल बसती है। रुक्मिणी की सान्त्वनाएँ भी उसे बचा नहीं पातीं। लाश को उठाने के समय ही मुन्शी तोताराम बुकचा लटकाए आ खड़े होते हैं—दाह-संस्कार करने। उपन्यास समाप्त हो जाता है।

इस कथा के पात्रों में 'निर्मला' का चरित्र सबसे अधिक आकर्षित करता है और यही उपन्यास की नायिका है। वह एक सम्पन्न परिवार की लड़की है और विधि-विडम्बना से उसे एक वृद्ध के साथ अपनी जीवन-नैया खेने के लिए बाध्य होना पड़ता है। वृद्ध भी ऐसा जो तीन-तीन पुत्रों का पिता हो और जिसका एक पुत्र उसकी नवागता पत्नी की आयु का हो। वह बेचारी विमाता बन कर रहती है। लेकिन उसमें रत्ती भर भी विमातात्व नहीं है। आरम्भ में रुक्मिणी ने उसे ताने दे-देकर इस शब्द की सार्थकता समझाने की चेष्टा की परन्तु उसने अपने स्वभाव के प्रतिकूल समझकर विमातात्व को कभी नहीं अपनाया। स्वभावतः वह तोताराम से घृणा करती है क्योंकि आयु का अन्तर उसे वैसा करने को विवश करता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। तभी तो मुन्शी तोताराम ने नयनसुख के कहने से सुरमा लगाने से लेकर अपनी डींग मारने तक के सब उपाय कर लिए पर निर्मला का मन उनकी ओर नहीं मुड़ा। वह करती क्या? वह उनके बनाव-शृंगार और बेतुकी बहादुरी को देखकर कहती है—"मैं इनकी सेवा कर सकती हूँ, सम्मान कर सकती हूँ, अपना जीवन इनके चरणों पर अर्पण कर सकती हूँ, लेकिन वह नहीं कर सकती जो मेरे किए नहीं हो सकता। अवस्था का भेद मिटाना मेरे बस की बात नहीं।" लेकिन वह यह समझ लेती है कि जो यह व्यक्ति चाहता है, वह उसे करना पड़ेगा, भले ही बे-मन से करे और वह अपने को कर्तव्य की वेदी पर उत्सर्ग कर देती है।

पूरे उपन्यास में 'निर्मला' का यह निश्चय दृढ़ रहा है। तोताराम का वृद्धत्व स्वामीत्व का रूप लेकर उसको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आराधना की वस्तु बन गया है और वह अपनी यौवन की उमंगों को—रंगीन सपनों को कुचलती हुई सतीत्व की नियन्त्रित पगडण्डी पर बढ़ती गई है। उदाहरण के लिए सुधा के पति डा० भुवनमोहन सिन्हा के रूप-सौन्दर्य और सुखी जीवन पर उसे ईर्ष्या होती है लेकिन फिर भी वह अपने मन को काबू में रखती है और डाक्टर के प्रेम-प्रदर्शन पर ग्लानि का अनुभव करती हुई आँसुओं में भीग उठती है। अतृप्त-काम नारी एक स्वस्थ पुरुष के आकर्षण को ठुकराकर चली आए और अपनी परिस्थिति पर रोए, यह उसकी पावनता, सभ्यता और चारित्रिक दृढ़ता का प्रमाण है।

सबसे अधिक कठिन परीक्षा उसे मंसाराम के साथ उत्तीर्ण करनी पड़ी है। उसकी समवयस्कता से वह उसके साथ अपनापन अनुभव करती है। इसीलिए उससे पढ़ना आरम्भ करती है। प्रश्न यह उठता है कि क्या वह आत्मिक प्रसन्नता से अधिक भी कुछ चाहती है? इस प्रश्न का उत्तर स्वयं उसने दिया है। वह अपनी बहन कृष्णा से कहती है—"कृष्णा, मैं तुम से सच कहती हूँ, जब वह मेरे पास आकर बैठ जाता तो मैं अपने को भूल जाती थी। जी चाहता था वह हरदम मेरे सामने बैठा रहे और मैं देखा करूँ। मेरे मन में पाप का लेश भी न था। अगर एक क्षण के लिए भी मैंने उसकी ओर किसी और भाव से देखा हो तो मेरी आँखें फूट जायँ; पर न जाने क्यों उसे अपने पास देखकर मेरा हृदय फूला न समाता था, इसीलिए मैंने पढ़ने का स्वांग रचा, नहीं तो वह घर में आता ही न था। यह मैं जानती हूँ कि अगर उसके मन में पाप होता तो मैं उसके लिए सब कुछ कर सकती थी।" यह स्थिति थी निर्मला की। वह क्यों उसके साथ इतनी प्रसन्नता का अनुभव करती थी, इसका कारण वह जानती थी, पर उसकी विवशता थी। उसने प्रकृति के विरुद्ध आदर्श पर अपने जीवन को उत्सर्ग किया था। यदि यशपाल, या सर्वदानन्द वर्मा के हाथ ऐसा अवसर आया होता तो यथार्थ की धारा में आदर्श बह गया होता पर यह तो प्रेमचन्द थे, जो इतने से आगे नहीं जा सकते थे।

यद्यपि निर्मला को विमाता कहा जायगा लेकिन वह इस ओर से, जैसा कि पहले कहा गया है, उदासीन है। वह सब बच्चों को प्यार करती है। घर में क्लेश यदि होता है तो उसके कारण नहीं, उसका कारण तोताराम हैं, जो शक्की होने से बच्चों से घृणा करते हैं। कृष्णा के शब्दों में उनके दिल में हरदम एक चोर-सा बैठ रहता है कि मैं इस युवती को प्रसन्न नहीं कर सकता। इसी चोर ने पथ-भ्रष्ट कर दिया था। वैसे निर्मला गृहस्थी के चलाने में, सामाजिक व्यवहार में कुशल है। उसे अपनी बच्ची की चिन्ता है, इसलिए वह पीछे किफायत करने लगती है। चिड़चिड़ी भी इसीलिए हो जाती है। अपनी ही नहीं अपनी बहिन की भी वह चिन्ता करती है। वह भावुकता और कर्तव्य की प्रतिमा है, कोमलता और कठोरता का मिश्रण है। अपनी परिस्थितियों में जकड़ी भारतीय नारी समाज की वेदी पर जैसे बलिदान हो जाती है वैसा—हूबहू वैसा ही चरित्र है निर्मला का।

मुन्शी तोताराम का चरित्र भी आकर्षण का केन्द्र है। उनके चरित्र-चित्रण में व्यंग और हास्य के साथ विषाद और विवशता की भावनाएँ लिपटी हुई हैं। निर्मला को रिझाने के लिए प्रसंग ऐसे हो हैं, जिनको पढ़कर हँसी आती है और साथ ही बुड्ढों पर दया भी। वासना-तृप्ति के लिए आकुल वृद्ध बच्चों अथवा मूर्खों का-सा व्यवहार करता है। साँप की घटना तो मानो उनके जीवन की सबसे बड़ी कमजोरी को व्यक्त करती है।

लेकिन उनके चरित्र की सबसे बड़ी कमजोरी है मंसाराम पर शंका करना। इस तथ्य ने वृद्धों की मानसिक अशक्तता पर करारा व्यंग किया है। निर्मला बार बार प्रयत्न करती है कि मंसाराम पवित्र हृदय है पर मुंशीजी अविश्वास के कारण उसे घर से निकालकर ही दम लेते हैं—घर से क्या उसे दुनिया से निर्वासित ही कर देते हैं। बोर्डिंग से वे मंसाराम को घर लाने की सोचते हैं पर फिर सन्देह की वृत्ति आ दबाती है और अन्तत ल टकाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। वहाँ भी निर्मला के पहुँचने पर वे खिन्न होकर अपनी इस वृत्ति का और घृणित परिचय देते हैं।

मंसाराम की मृत्यु के बाद जियाराम उन्हें मारने तक की धमकी देता है, इससे पता चलता है कि उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा को कितना खो दिया था। गरीबी और पश्चाताप में वे पिस गए थे। लेकिन ५००) देकर जियाराम को चोरी के अपराध से मुक्त कराना और सियाराम की खोज में जाना आदि से प्रतीत होता है कि उनका वात्सल्य-भाव पूर्ण हृदय मरुस्थल नहीं हुआ था। करुणा और दया का पात्र उनका चरित्र वृद्ध वर्ग की वैवाहिक लालसा के दुष्परिणाम का ज्वलन्त उदाहरण है।

मंसाराम का चरित्र बड़ा उज्ज्वल है। पिता के संदेहशील हृदय के कारण वह जियाराम की भाँति लड़ता नहीं है, सीधा घर से किनारा कर जाता है। खेल कूद, पढ़ने-लिखने में जहाँ वह अद्वितीय है, वहाँ वह भाव-प्रवण भी है। संकेत मात्र से वह पिता की कलुषमयी भावना को समझकर अपनी जान दे देता है। अस्पताल में निर्मला के चरण छूकर और अपनी पवित्रता का प्रमाण देकर वह सिद्ध कर देता है कि उसके हृदय में निर्मला के प्रति वे भाव नहीं थे, जो मुंशी तोताराम समझते थे निर्मला भले ही कुछ सोचती हो, मंसाराम का मन पवित्र रहा है। उस रात जब निर्मला खाने के लिए बुलाने जाती है और मुंशी जी के देख लेने पर बात बदल देती है, वह घर से विरक्त हो जाता है। यदि निर्मला उसी स्नेह का प्रमाण मुंशी जी के देख लेने पर भी देती तो शायद मंसाराम की मृत्यु न होती, पर वैसा करना निर्मला की शक्ति के बाहर की बात थी। सबसे करुण प्रसंग मंसाराम की मृत्यु है।

अन्य पात्रों में रुक्मिणी, भुवनमोहन, सुधा, जियाराम के चरित्र उल्लेखनीय हैं। रुक्मिणी और भुवनमोहन का हृदय परिवर्तन हुआ है। रुक्मिणी का निर्मला की बीमारी और जियाराम के भागने से और भुवनमोहन का सुधा द्वारा उसकी भर्त्सना करने पर। इनमें सुधा का चरित्र आदर्श है। वह पर-दुःख कातर, चरित्रवान और कर्तव्य-परायण है। (पृ० १००) वही कृष्णा की शादी के लिए मिलाती है और वही भालचन्द्र के परिवार में कृष्णा को भेजती है। निर्मला के नैहर में बच्चे को खोकर और अपने यहाँ आकर पति से वंचित होकर भी वह कर्तव्य नहीं भूलती। यहाँ तक कि जब डाक्टर सिन्हा के मरने पर निर्मला उसके प्रति सहानुभूति व्यक्त करती है तो वह कहती है—"ऐसे सौभाग्य से मैं वैधव्य को बुरा नहीं समझती दरिद्र प्राणी उस धनी से कहीं सुखी है, जिसे उसका धन साँप बनकर डस ले। उपवास कर लेना आसान है, विषैला भोजन करना उससे कहीं मुश्किल।" यह देखकर हमें सुधा के व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा होती है। प्रेमचन्द की यह नारी पुरुष के प्रति निष्क्रिय समर्पणशील न होकर स्वाभिमान और नैतिक दायित्व का बोझ लिए संकट के तूफानी समुद्र के पार जाने की शक्ति रखती है।

इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है, इसका कलापक्ष। इतना सुगठित सुसम्बद्ध और सुश्रृंखलित उपन्यास प्रेमचन्द का शायद ही कोई हो। कथा का क्रम ऐसा है कि सत्ताईस परिच्छेदों में से एक भी नहीं निकाला जा सकता। किसी परिच्छेद में कोई भी व्यर्थ की बात नहीं है। हर परिच्छेद में कथा का क्रम आगे बढ़ता है। बाबू उदयभानुलाल वकील की सम्पन्न गृहस्थी की झलक देकर ही उपन्यास में दुःखान्त नाटक के तत्वका समावेश हो जाता है और उदयभानुलाल की मृत्यु क्या होती है, समस्त उपन्यास की भूमिका विषादमय हो उठती है। निर्मला की शादी तक उपन्यास की कथाधारा कुछ कम वेगवती है पर शादी के बाद जो अन्तर्द्वन्द्व निर्मला के भीतर और बाहर मकड़ी के जाले की भाँति छा जाता है उससे उपन्यास में नया ही रूप निखरने लगता है। एक ओर तो विमाता के कारण क्षुब्ध घर का वातावरण रहता है और दूसरी ओर युवा नारी के मन की अतृप्ति की व्यंजना होती है। समानान्तर रेखाओं में चलने वाले इस संघर्ष से उपन्यास का सौंदर्य द्विगुणित हो जाता है। मंसाराम की मृत्यु इस उपन्यास का चरम बिन्दु है और इसके बाद उपन्यास की गति फिर कुछ शिथिल होती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कृष्णा की शादी के बाद से पुनः वेग धारण करती है। निर्मला के नैहर में सुधा के लड़के की मृत्यु, जियाराम का चोरी करना, सियाराम का भागना, मुन्शी तोताराम का जहर खाना आदि घटनाएँ एक के बाद एक क्रमशः आती हैं और कथा को निर्मला की मृत्यु से समाप्त कर देती हैं। मैंने कई बार सोचा है कि इस उपन्यास की समस्या यदि वृद्ध विवाह का दुष्परिणाम दिखाना है तो मंसाराम की मृत्यु पर यह उपन्यास क्यों समाप्त नहीं हो गया? कलात्मक दृष्टि से यदि देखा जाय तो इसे उससे आगे चलना ही नहीं चाहिए। युवती पत्नी की मानसिक हलचल के सम्बन्ध में मंसाराम की मृत्यु से प्रत्येक भावनाशील पाठक अनुमान लगा सकता है। लेकिन प्रेमचन्द जी ने उपन्यास को बहुत आगे जाकर समाप्त किया है। क्यों? इसलिए कि मुंशी तोताराम के दो लड़के शेष रह गए थे। उनके व्यवहार द्वारा तोताराम को पीड़ित कराना आवश्यक था क्योंकि शङ्काशील हृदय को जब तक इतना दण्ड न दिया जाय कि वह उसे बिलकुल छोड़ दे तब तक काम नहीं चल सकता। फिर हृदय-परिवर्तन का तत्व भी, जो गाँधीवाद की देन है या जो प्रेमचन्द का आदर्शवाद है, आगे चलकर ही पूरा होता है। भुवनमोहन सिन्हा का कृष्णा के विवाह के लिए प्रयत्न और रुक्मिणी का निर्मला के साथ सद्व्यवहार इस उपन्यास को आगे बढ़ाए बिना कैसे दिखाए जा सकते थे। आदर्शवादी की यह प्रणाली होती है कि वह अधिकाधिक पात्रों को मानव बनाने का प्रयत्न करता है और उनकी बुराइयों को अच्छाइयों में परिवर्तित कर असत् के पलड़े को सत् से नीचा रखने की चेष्टा करता है।

गांधीवाद का प्रभाव हृदय परिवर्तन तक ही सीमित नहीं है, कृष्णा से चरखा भी कतवाया है, जो गांधीवाद का प्रतीक है। उस समय साधू लोग बच्चों को उड़ाया करते थे, इस बात का प्रमाण सियाराम का स्वामी परमानन्द के साथ भागना है। इन बातों का समावेश यह सिद्ध करता है कि प्रेमचन्द जी सामयिक आन्दोलन और प्रथाओं के प्रभाव को व्यक्त किए बिना नहीं रह सकते थे।

जहाँ कथा संविधान की दृष्टि से 'निर्मला' में अनूठापन है वहाँ भाषा-शैली की दृष्टि से भी वह बेजोड़ है। प्रेमचन्द जी भाषा के सम्राट हैं। उनकी भाषा पात्रों के अनुकूल चलती है। निर्मला में गार्हस्थिक जीवन का चित्र है इसलिए भाषा में घरेलूपन है। उनके बच्चे तुतलाते हैं और नौकर बनारसी बोलते हैं। सुकुमार और कल्याणी की बातचीत, मुन्शीजी और बच्ची आशा की बातचीत तथा नौकरों की भाषा इसका उदाहरण है। कथोपकथन की सजीवता देखनी हो तो जियाराम और मुन्शी तोताराम की बातचीत, मंसाराम और डाक्टर की बातचीत, निर्मला और रुक्मिणी की बातचीत तथा कृष्णा और निर्मला की बातचीत देखिए। चरित्र-चित्रण और कथा की गति को एक साथ आगे बढ़ाने में ये कथोपकथन खूब काम करते हैं।

शब्दों को बेहद सरल करके रख देने से भाषा में नई जान डाल देना उनकी आदत है। 'जरीबाना' (जुर्माना) खुचर निकालना (दोष निकालना), 'डींगियल' (डींग मारने वाला) 'पत-पानी' (प्रतिष्ठा) 'जत्न' (यत्न) 'बँसखटे' (बाँस की हल्की खाट) आदि शब्द इतना लोच पैदा कर देते हैं कि पाठक का मन लेखक के साथ घुल मिल जाता है। कहीं-कहीं तो वे पारिभाषिक-शब्द भी बनाते हैं, यह सोचकर कि कहीं पाठक उनकी बात बिना समझे न रह जायँ। 'निर्मला' में एक स्थान पर उन्होंने 'टॉर्च' के लिए 'जेबी लालटेन' शब्द का प्रयोग किया है। शब्द ही नहीं मुहावरे और कहावतें उनकी भाषा को विशिष्टता देकर सजीव बनाते हैं। रुक्मिणी के ये शब्द देखिए—"यह क्या हुआ जो तुम आपे से बाहर हो रहे हो? निकल गई सारी बुद्धिमानी, कल की लौंडियों चोटी पकड़ कर नचाने लगी? कुछ पूछना न ताछना, बस उसने तार खींचा और तुम काठ के सिपाही की तरह तलवार निकाल कर खड़े होगए।" इस प्रवाहपूर्ण भाषा की-सी व्यंजना कहाँ मिलेगी? फिर "लालिमा के संयोग से कालिमा भयंकर हो जाती है।" "बड़े-बड़े महान संकल्प आवेश में ही जन्म लेते हैं", "धन मानव जीवन में सर्वप्रधान वस्तु नहीं तो वह उसके बहुत निकट की वस्तु है", "आदमी हारता है तो अपने

(शेष पृष्ठ १०३ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'स्कन्दगुप्त' में त्रिकोणात्मक प्रणय

श्री हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव बी० ए०

प्रसादजी के कल्पना कानन में दो पुष्पों का विकास हुआ। एक धूलधूसरित हुआ दूसरा त्याग की पराकाष्ठा पर पहुँच मुरझा गया। ये दोनों ही पुष्प-विजया और देवसेना—अमर कलाकार की अमर रचनाएँ हैं। एक का आदर्श प्रेम और त्याग है दूसरे का वासना और वैभव। पर दोनों की ही कहानियाँ साहित्य संसार में अमर रहेंगी।

देवसेना वह देवी है जिसकी नस नस में त्याग भरा है पर हृदय प्रेम से प्लावित है। वह उस मालवेश बन्धुवर्मा की बहिन है जिसने अपना सिंहासन देश के हित स्कंद को अर्पित किया था। विजया अपार धनराशि की एक मात्र अधिकारिणी है। वैभव के गोद में पली होने के कारण उसके सब मापदण्ड ही एक है और वह है वैभव का। प्रत्येक वस्तु को वह इसी तुला पर तोलती है—प्रेमी को भी इसी तुला पर तोलने में उसे संकोच नहीं।

विजया और देवसेना दोनों का आराध्यदेव एक ही है—स्कंद। स्कंदगुप्त विजया को ही अपना प्रियपात्र बना सका है। अवंती दुर्ग के अंतःपुर में जयमाला और देवसेना युद्ध करने को तत्पर होती हैं। विजया भी रक्षार्थ वहाँ है। स्कंद आकर युद्ध करता है और युद्ध के अन्त होते ही विजया झाँक कर देखती है और कह उठती है—

"अहा कैसी भयानक और सुन्दर मूर्ति है।" ठीक इसी समय विजयी स्कंद विजयश्री से अभिभूत हो कह उठता है "यह—यह कौन?" स्कंद का ध्यान देवसेना की ओर आकर्षित होता ही नहीं विजया और स्कंद का प्रेम प्रथम दर्शन से ही आरम्भ हो जाता है। देवसेना स्वयं स्कंद द्वारा पराजित हुई है। वह यह भी जानती है कि विजया की भी यही दशा है। इस तरह यह प्रणय त्रिकोणात्मक रूप में बढ़ता है।

कुछ ही समय पश्चात् स्कंदगुप्त संभवतः प्रेम के प्रभाव से उदासीन दीख पड़ते हैं। उन्हें ऐसा जीवन विडंबना मालूम होने लगता है जिसके लिए रात दिन लड़ना पड़े। वे चक्र से पूछते हैं कि क्या मानव जीवन का यही उद्देश्य है कि 'आकाश में जब शीतल शुभ्र शरद शशि का विलास हो, तब भी दाँत पर दाँत रखे, मुट्ठियों को बाँधे हुए, लाल आँखों से एक दूसरे को घूरा करें।' किन्तु देशभक्ति चक्र उन्हें देशोद्धार के हेतु त्याग के कंटकित मार्ग पर खींचना चाहता है किन्तु युवराज तो उदासीन हैं। दुर्बलता उन्हें राज्य से हटा रही है। देवसेना जानती है कि विजया वैभव की पुजारिन है और इसीलिए वह उससे प्रश्न कर उठती है—"क्यों विजया! वैभव का अभाव तुम्हें खटकने तो नहीं लगा?" इतना ही नहीं एक निर्दय व्यंग्यबाण भी छोड़ देती है—"धनवानों के हाथ में माप ही एक है..... वह माप है—उनका ऐश्वर्य।" वाक्पटु विजया भी अपने को लांछन से बचाने के लिए इसका सरल सा उत्तर दे देती है—

'परन्तु राजकुमारी! इस उदार दृष्टि से तो चक्रपालित क्या पुरुष नहीं हैं? है अवश्य! वीर हृदय है, प्रशस्त वक्ष है, उदार मुख मण्डल है।'

क्या यह उत्तर विजया अपने आपको देवसेना के आरोप से बचाने के लिए नहीं देती? अवश्य, वह वाक्पटु है। वह बातें बनाना अच्छी तरह जानती है। उपर्युक्त कथन द्वारा उसने स्वयं का बड़ी अच्छी तरह बचाव किया है। एक अन्य स्थल पर उसकी प्रत्युत्पन्नमति व वाक्पटुता देखिए—

"जयमाला—तुम्हारी अपार धनराशि में से एक क्षुद्र अंश, वही यदि इन धन लोलुप शृगालों को दे दिया जाता तो..."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजया—"किन्तु इस प्रकार अर्थ देकर विजय खरीदना तो देश की वीरता के प्रतिकूल है।"

विजया का कथन एक सार्वभौमिक सत्य है पर उसकी आड़ में उसने स्वयं की स्वार्थ लोलुपता का बचाव बड़े निपुणता से किया है।

कई आलोचकों के मत से उपर्युक्त स्थल पर विजया चक्र की ओर आकर्षित होती है। किन्तु यह पूर्णतया असत्य है। वह चक्र की ओर जरा भी आकृष्ट नहीं हुई। अन्य किसी स्थल पर उनके कथन की पुष्टि नहीं हो सकती। यह स्पष्ट है कि वह चक्र की ओर आकृष्ट नहीं हुई थी, सिर्फ हास्यास्पद आरोप के निराकरण के लिए उसने वह वाक्य कहा था।

मालव में स्कन्द के राज्याभिषेक से इनका प्रणय नवीन गति लेता है। विजया इस धूमधाम के महोत्सव के मध्य सोचती है—"जिसके भाई ने समस्त राज्य अर्पण कर दिया है—वह देवसेना और कहाँ मैं! तब तो मेरा यही…" और वह भटार्क से विवाह करने का संकल्प कर लेती है क्योंकि वह वीरत्व व्यञ्जक मनोहर मूर्ति है, और है गुप्त साम्राज्य का महाबलाधिकृत। स्कन्द के विरुद्ध भटार्क खलनायक है, अतएव स्कन्द को नीचा दिखाने का इससे बढ़ कर कोई मार्ग उसके सम्मुख नहीं था। उसे यह भ्रम हो गया है कि स्कन्द देवसेना से ही विवाह करेंगे क्योंकि उसके भाई ने स्कन्द का 'उपकार' किया है। प्रणयवंचिता नारी में प्रतिशोध की भावना भी आ जाया करती है। गुप्त जी की शूर्पणखा 'पंचवटी' में ऐसी ही भावना की शिकार होती है। विजया के ही शब्दों में उसका यह कृत्य उसके इन विचारों के कारण है। वह कहती है—

प्रणयवंचिता स्त्रियाँ अपनी राह के रोड़े—विघ्नों को दूर करने के लिए वज्र से भी दृढ़ होती हैं। हृदय को छीन लेने वाली स्त्री के प्रति हतसर्वस्वा रमणी पहाड़ी नदियों से भयानक, ज्वालामुखी के स्फोट से वीभत्स और प्रलय की अनलशिखा से भी लहरदार होती है।"

अपना वास्तविक रूप भी वह स्वयं कह उठती है। स्कन्द को नीचा दिखाने के लिए उसने क्या-क्या नहीं किया—

"स्नेहमयी देवसेना को शंका से तिरस्कार किया। मिलते हुए स्वर्ग को घमण्ड से तुच्छ समझा, देवतुल्य स्कन्दगुप्त से विद्रोह किया, किस लिए? केवल अपना रूप, धन, यौवन दूसरे को दान करके उन्हें नीचा दिखाने के लिए?"

देवसेना से भी उसका वैर हो गया। विजया कहती है उसने "उपकारों की ओट से मेरे स्वर्ग को छिपा दिया, मेरी कामना लता को समूल उखाड़ कर कुचल दिया।" उसे वह चेतावनी भी दे देती है "जाती हो, परन्तु सावधान।" उसका देवसेना को बलि के लिए ले जाना इसका परिणाम है।

स्कन्दगुप्त विजया की ओर अभी भी आकृष्ट है। राज्याभिषेक के पश्चात् बन्दियों से प्रश्नोत्तर चल रहा है किन्तु स्कन्द ने अपनी हृदयस्वामिनी को बन्दीरूप में अभी तक नहीं देखा है। वे भटार्क को फटकार रहे हैं—

"तुम्हारा इतना पतन? (भटार्क स्तब्ध रहता है। विजया की ओर देखकर) और तुम! विजया? तुम क्यों इसमें—" इतना कह कर वे विचारमग्न हो जाते हैं अपना प्रश्न भी पूरा नहीं कर पाते मानों वे किसी अन्य संसार में विचर रहे हों। गोविन्दगुप्त अपने कार्य में अग्रसर होते हैं—'यह वृद्धा इसी कृतघ्न भटार्क की माता है….' परन्तु अपने में ही मस्त प्रेमी सम्राट ने सुना ही नहीं—अपने ही विचारों में मग्न वह कह उठता है—"परन्तु विजया, तुमने यह क्या किया।" मानों यही गोविन्दगुप्त को उत्तर दिया हो। चतुर देवसेना इसे ताड़ लेती है व एक छोटी सी निश्वास छोड़ कह उठती है—"आह जिसकी मुझे आशंका थी वही है। विजया आज तू हार कर भी जीत गई।"

श्मशान में टहलते हुए प्रथम बार स्कन्दगुप्त अपने हृदय का विश्लेषण करता है। कर्तव्य और युद्ध में व्यस्त सम्राट को हृदय टटोलने का अवकाश ही नहीं मिला था। किन्तु जब उसकी प्रेमिका ने भटार्क का वरण कर लिया तब वह अधीर हो अपने हृदय को समझाने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असफल प्रयत्न करता है। वह सोचता है—"तब भी विजया'''? ओह जिसे हमने सुख शर्वरी की सन्ध्या तारा के समान पहिले देखा वही उल्कापिण्ड होकर दिगन्त-दाह करना चाहती है। विजया तूने क्या किया''' ।"

देवसेना गम्भीर है। उसने अपना प्रेमोद्घाटन कर स्कन्द का अपमान न होने दिया। वह उन भावों को अपने में सीमित रखना चाहती है—दबाना चाहती है। एक बार सिर्फ एक बार ही उसके भाव रुदन के साथ फूटे हैं।

संभवतः भटार्क की पत्नी होने के नाते व उसकी उन्नति (?) में सहायक होने के निमित्त विजया पुरगुप्त का मनबहलाव करती है। पुरगुप्त की माता अनंतदेवी उसे प्रोत्साहित करती है, किंतु विजया भटार्क का स्थान पुरगुप्त को नहीं दे सकती। तभी तो वह अनंतदेवी को फटकार कर कहती है भटार्क मेरा है। विजया की चंचल अनंतदेवी के कार्यकलापों में संदेह है। भटार्क और अनंतदेवी के प्रथम मिलन में ही उसने जान लिया था कि अनंतदेवी की "आँखों में काम पिपासा के संकेत अभी उबल रहे हैं, अतृप्त की चञ्चल प्रवंचना कपोलों पर होकर क्रीड़ा कर रही है। हृदय में श्वासों की गर्मी विलास का संदेश वहन कर रही है'''"आज विजया का ध्यान भी इसी ओर जाता है। वह भटार्क पर अपना ही अस्तित्व चाहती है तभी तो वह उसे फटकारती है दोनों की गरमागरम आदान-प्रदान देखिए—

"विजया—उस राह से दूसरों को हटाना होगा।

अनंत—कौन छीन रहा है?

विजया—समझो नहीं तो साम्राज्य का स्वप्न गला दबाकर भंग कर दिया जावेगा।"

और तब उसका आशय समझते हुए अनन्तदेवी हँस कर कहती है—"मूर्ख रमणी! तेरा भटार्क केवल मेरे कार्य साधन का अस्त्र है, और कुछ नहीं। वह पुरगुप्त के ऊँचे सिंहासन की सीढ़ी है, समझी?"

इस घृणित वातावरण की प्रतिक्रियास्वरूप विजया में महान परिवर्तन हो जाता है। वह स्वार्थिनी अब परमार्थ की ओर दौड़ती है। मुद्गल उसे कर्तव्य की ओर अग्रसर करता है। और कोर स्कंद का पता लगते ही उसे एक नवीन आशावादी संसार दिखाने लगता है जिसमें देवसेना तो होगी ही किन्तु यदि अपनी कामना भी पूरी कर सकी तो दोनों होंगे—स्वर्थ और परमार्थ।

कुभा की हार से स्कंद की सारी आशाएँ छिन्न-भिन्न हो गई हैं। उसकी शक्ति लुप्त हो गई है। अब वह कोई कार्य नहीं करना चाहता। दूरों से पदाक्रान्त भूमि पर खड़ा वह प्रिय सेवक शर्व व रामा का प्रलाप सुन विचलित तो अवश्य हो जाता है पर क्या करे—शक्ति ही नहीं रही। किन्तु—

"(नेपथ्य से क्रन्दन—बचाओ बचाओ! का शब्द) स्कंद—कौन? देवसेना का सा शब्द! मेरा खड्ग कहाँ है? (जाता है)" पर—

पर वह नहीं मिलती। स्कंद बेचैन हो जाता है क्योंकि वह "सच्चे मित्र, बंधुवर्मा की धरोहर" है, इससे अधिक कुछ नहीं। उसे उसका कर्तव्य अपूर्ण रहा? बंधुवर्मा का अन्तिम सन्देश उसके कानों में गूँजने लगता है—"भाई स्कंदगुप्त से कहना कि मालव वीर ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की, भीम और देवसेना उनकी शरण है।" और वह सोचने लगता है कि वीर त्यागी बंधुवर्मा जिसका त्याग दधीचि के त्याग से कम नहीं है उसके प्रति, उसकी अनाथ बहिन के प्रति उसने क्या कर्तव्य निबाहा है? उसकी बहिन भिखारिणी है? उसे अपना कर्तव्य निश्चित करना पड़ता है—'साम्राज्य तो नहीं है, मैं बचा हूँ; वह अपना ममत्व तुम्हें अर्पित करके उऋण होऊँगा, और एकान्तवास करूँगा। यदि साम्राज्य होता तो वह अपना साम्राज्य उसे अर्पित कर देता पर वह नहीं है तो जो बचा है वही दे दे किन्तु देवसेना तो जानती है कि वह उसके साथ सुखी नहीं न रहेगी, क्योंकि स्कन्द विजया से प्रेम करता है और वह सिर्फ उऋण होना चाहता है—प्रतिदान देना चाहता है जिसे उसका स्वाभिमान स्वीकार नहीं कर सकता। बन्धुवर्मा और जयमाला के त्याग को वह सौदा बना कलंकित नहीं करना चाहती। और न वह स्कन्दगुप्त को अकर्मण्य बनाने को जीवित रहना चाहती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इन कारणों से वह अपने प्रेम की अवहेलना करके एकान्त-जीवन व्यतीत करना चाहती है। नीचे की पंक्तियों में उसका अंतर्द्वन्द्व कितना स्पष्ट है, विवशता और उच्चता का कितना सुन्दर समन्वय है—

"इस हृदय में····आह कहना ही पड़ा, स्कंदगुप्त को छोड़कर न तो कोई दूसरा आया और न वह जायगा। अभिमानी भक्त के समान निष्काम, होकर मुझे उसी की उपासना करने दीजिए, उसे कामना के भँवर में फंसा कर कलुषित न कीजिए। नाथ! मैं आपकी रानी हूँ, मैंने अपने को दे दिया है, अब उसके बदले कुछ लिया नहीं चाहती।" यह उच्च त्याग स्कंद की आँखें खोल देता है। वह सोचता है कि मैंने देवसेना के सम्मुख कैसा तुच्छ प्रस्ताव रखा था। वह देवसेना से कहता उठता है—"उठो देवसेना तुम्हारी विजय हुई। आज से मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं कुमार जीवन ही व्यतीत करूँगा।" यह भाव उसमें देवसेना के त्याग को देख आ जाता है और वह भी यह भीष्म प्रतिज्ञा कर बैठता है।

ऐसे समय विजया अपना स्वर्णिम संभार ले आ पहुँचती है। वह स्कंद को आकर्षित करना चाहती है किन्तु स्कन्द के मन में "उस खेल को खेलने की इच्छा नहीं, यदि दूसरी बात हो तो कहो। उन बातों को रहने दो।" इन प्रेम पूर्ण शब्दों से वह विजया को उत्तर देती है। फिर याद आ जाती है उसे पल भर पूर्व की हुई प्रतिज्ञा जिसे उसे निभाना ही है। क्षोभ के प्रवाह में बह वह विजया से नम्र रहा। किन्तु अब उसे बोध हुआ कि उसकी तपस्या भूमि प्रवंचना से कलुषित हो रही है। विजया अपना रत्न-गृह प्रदान करना चाहती है। किन्तु प्रतिज्ञा!! देवसेना का महान त्याग जो सौदा न बन सका? क्या वह दूसरा सौदा कर फिर प्रवंचित होवे?···· और वह विजया को ठुकरा देता है। विजया आत्म-हत्या कर लेती है।

देवसेना अब अपने स्वार्थी हृदय को समझाती है और स्कंद अपने को। पर स्कंद का प्रेमाभिनय बड़ा सुन्दर है। देवसेना से वह कहता है—"इस नंदन की वसंत श्री, इस अमरावती की शची, इस स्वर्ग की लक्ष्मी तुम चली जाओ—ऐसा मैं किस मुँह से कहूँ? (कुछ ठहर कर सोचते हुए)—और किस वज्र कठोर हृदय से तुम्हें रोकूँ।" वह जानता है कि रोकने की उसमें सामर्थ्य नहीं क्योंकि उसे प्रेम का अधिकार प्राप्त नहीं है, पर जाने भी कैसे दे, वह बन्धुवर्मा की धरोहर है। उसके शब्दों में न तो वास्तविकता है और न आदर्श, केवल अपनी वृत्ति को दबाने का असफल प्रयास है।

हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विजया का चरित्र वास्तविक, चंचल अथच् पार्थिव है व देवसेना का दैवी व अवास्तविक। स्कंद दोनों के बीच का चरित्र है, मानव दुर्बलताएँ उसमें हैं किन्तु कर्तव्य की दृढ़ आधारभूमि पर वह खड़ा है। कर्तव्य के लिए वह बहुत कुछ करता किन्तु शारीरिक प्रेम और असफलताएँ उसे विचलित भी करतीं हैं। इन तीनों की प्रणय लीला प्रसादजी का नाम सदा अमर रखेगी।

(पृष्ठ ६६ का शेषांश)

लड़ती ही से", 'घर से विरक्त वही होते हैं, जो मातृ-स्नेह से वंचित हों' आदि सूत्रात्मक वाक्यों से भाषा में मार्मिकता और शक्ति आ जाती है। कभी-कभी प्रेमचन्द प्रकृति से उपमान लेकर पात्रों की मनःस्थिति का भी चित्र खींचते हैं जिनमें काव्यतत्व के अतिरिक्त चित्रोपमता भी रहती है।" निर्मला की दशा उस पंखहीन पक्षी की-सी हो रही थी, जो, सर्प को अपनी ओर आते देखकर उड़ना चाहता है पर उड़ नहीं सकता; उछलता है और गिर पड़ता है। पंख फड़फड़ा कर रह जाता है। उसका हृदय अन्दर ही अन्दर तड़प रहा था; पर बाहर न जा सकती थी।"

इस प्रकार 'निर्मला' एक ऐसा सामाजिक उपन्यास है, जो वृद्ध-विवाह, दहेज आदि की समस्या के साथ नारी के अन्तर्द्वन्द्व का चित्र प्रस्तुत करता है। यों अपनी समस्या के कारण ही वह रोचक हो सकता है परन्तु प्रेमचन्द की कला का निखार उसे और भी अधिक मर्म-स्पर्शिता, आकर्षण और प्रभविष्णुता प्रदान करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

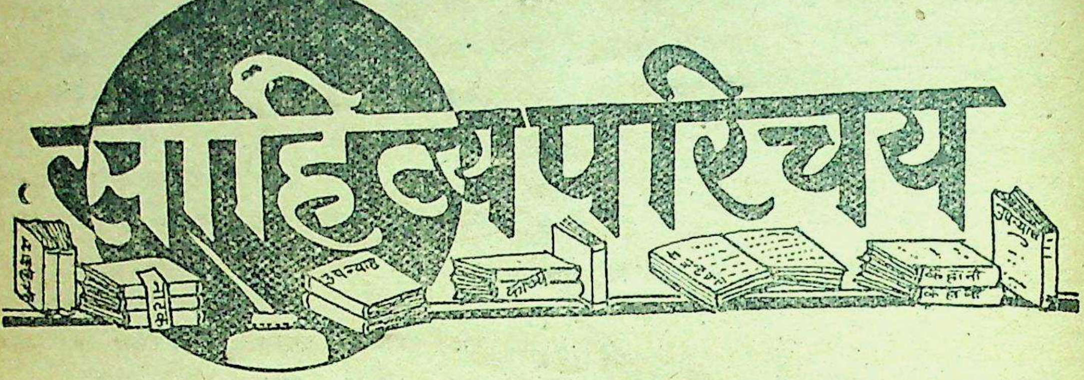

साहित्य-समालोचना

रहस्यवाद—लेखक—श्री रामरतन भटनागर; प्रकाशक—किताब-महल, प्रयाग; पृष्ठ संख्य २४४ मूल्य २॥)

हिन्दी में रहस्यवाद के साहित्य का बाहुल्य रहा है और आजकल का साहित्य तो उसके लिये कुछ बदनाम भी हो गया है। किन्तु उसके सिद्धान्तों की व्याख्या करने वाले ग्रन्थ कम लिखे गये हैं। इस पुस्तक में सिद्धान्तों की व्याख्या रहस्यवाद के इतिहास के साथ, यद्यपि गौण रूप से की गयी है तथापि पर्याप्त है। रहस्यवाद की विभिन्न परिभाषा का पर्यवेक्षण कर लेखक महोदय इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अधिक से अधिक हम यही कह सकते हैं कि रहस्यवाद की भावना संघगत नहीं, व्यक्तिगत है। साधक एक विराट अखंड निर्लेप परन्तु प्रेममयी सत्ता की कल्पना करता है और स्वयं अपने व्यक्तित्व को उसका अंश मानता है। इस अंशानुभूति को वह केवल बुद्धि (ज्ञान) से ही नहीं पकड़ पाता, वह उसे हृदय की सारी शक्ति के साथ ग्रहण कर पाता है। इसी से उस अखंड सत्ता के प्रति प्रेम, मिलन और वियोग के गीत गाता है। वह अपने अपूर्व अखंडित सम्बन्ध की बात सोचता है, इस व्याख्या में रहस्यवाद का बहुत कुछ सार आ गया है। रहस्यवाद एकान्त-साधना की वस्तु अवश्य है किन्तु सूफियों की कव्वालियों और वैष्णवों के कीर्तनों में जो रहस्य-भावना का उद्दीपन रहता है वह संघगत ही है। व्यक्ति की प्रधानता सर्वमान्य है किन्तु सामूहिकता का नितान्त बहिष्कार करना कठिन है। गीत नृत्य में थोड़ी सामूहिकता रहती है। इसी प्रकार अखंड सम्बन्ध की बात भी रहस्यवादी विरहानुभूति में अवश्य रहती है। किन्तु द्वैतमूलक रहस्यवाद पर सर्वथा लागू नहीं होता। लेखक ने दोनों ही प्रकार के रहस्यवाद माने हैं और दोनों का एकीकरण भी किया है। 'सियाराम मय सब जग जानी' की भावना में अंततोगत्वा तो द्वैत और अद्वैत का समीकरण हो जाता है किन्तु द्वैतवादी के लिये प्रारम्भ में दोनों की अखंडता नहीं होती है। लेखक ने रहस्यवादी साहित्य का बड़ा सम्बद्ध इतिहास उपस्थित किया है। उपनिषदों के रहस्यवाद के मूल स्रोतों से आरम्भ कर वह रहस्यवाद की सरिता को बौद्धों के सिद्ध साहित्य और नाथ पन्थियों के हठयोग और शैव सिद्धान्त प्रधान साधनाओं की दुर्गम घाटियों में घुमाता हुआ सन्त साहित्य, सूफी साहित्य और भक्त-साहित्य की समतल भूमि पर ले आया है और उसी ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि के साथ वर्तमान रहस्यवाद का अध्ययन उपस्थित किया है। आचार्य शुक्ल जी की धारणा के विरुद्ध लेखक ने सगुण भक्तों की वाणी में भी रहस्यभावना के ही नहीं वरन् रहस्यवाद के भी दर्शन किये हैं। लेखक रहस्यभावना का आलंबन बनाने के लिये ब्रह्म और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं मानता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भटनागर जी कहते हैं कि यदि मीरा राधापति कृष्ण से 'प्रियतम' का सम्बन्ध जोड़ती है तो वह उसी प्रकार की बात हुई जिस प्रकार सन्त ब्रह्म (राम) से बहुरिया (बहू) का सम्बन्ध जोड़ता है।

लेखक ने सर्वथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण किया है अपने उत्साह में वे विद्यापति के सभी पदों को रूपक नहीं मानते उनमें वे शुद्ध शृंगार ही देखते हैं। कुछ में उन्होंने रहस्य-भावना अवश्य स्वीकार की है। 'अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥ जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे, जल-हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥' इन चौपाइयों के आधार पर भटनागर जी रामकाव्य में भी रहस्य-भावना के दर्शन करते हैं। वे कहते हैं कि 'इस प्रकार दशरथ, राम, सगुन ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म की एकात्मा वास्तव में रहस्य कल्पना है। इसी रहस्य कल्पना के कारण राम कथा में रहस्यवाद का अवतार राम हो जाते हैं' आचार्य शुक्लजी रहस्यवाद के विरोधी थे। इसलिये वे तुलसी में रहस्यवाद की स्थापना सहन नहीं कर सकते थे।

भटनागर जी प्राचीन और अर्वाचीन रहस्यवाद में अन्तर करते हुए बतलाते हैं कि प्राचीन रहस्यवाद साधना और अनुभूति प्रधान था और वर्तमान रहस्यवाद कल्पना प्रधान है। उसकी पहुँच बौद्धिक है। उसका प्रतीक विधान भी कुछ नया है। इसी कारण आज रहस्यवाद की कविता इतनी स्पष्ट नहीं है। यह बात बहुत अंश में ठीक है किन्तु हमको यह मानते हुए भी कि आज के कवि के पीछे अध्यात्म साधना का बल नहीं है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अनुभूति की श्रेणियाँ हैं और सम्भव है आज के कवि ने उस सिंह-द्वार की दूर से ही झलक पाई हो। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अनुभूति के कुछ क्षण आते हैं। वे ही कल्पना के लिये आधार शिला का काम देते हैं। कल्पना की भी थोड़ी रुचि और झुकाव चाहिए। और कम से कम प्राकृतिक रहस्यवाद के क्षेत्र में पंतजी जैसे कवियों की कृतियों में हृदय का उल्लास अवश्य है। वर्तमान काल के कवियों में लेखक ने प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी और राजकुमार वर्मा को प्रधानता दी है। गुप्तजी और मुकुटधर पांडेय को इसका अग्रदूत बतलाया है। यद्यपि वर्तमान रहस्यवाद में कल्पना का प्राधान्य अवश्य है तथापि वह एक ऊँची चीज की कल्पना है! मनमोदक वह चाहे हो किन्तु वे बूरे के लड्डू नहीं हैं। उनमें कवित्व की चाशनी अवश्य है और लेखक ने उस चाशनी का आस्वाद बड़ी सहृदयता से कराया है—गुलाबराय एम० ए०

[आल इंडिया रेडियो, दिल्ली के सौजन्य से]

तुलसी प्रभा: एक परिचय—लेखक–श्री ओम्प्रकाश एम० ए०; प्रकाशक–श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी; पृष्ठ संख्या ११८, मूल्य १॥)

तुलसी प्रभा में तुलसी के ग्रन्थों से अध्ययनार्थ मुख्य-मुख्य स्थलों से अवतरण दिए गए हैं। लेखक ने अपनी छोटी-सी पुस्तक में तुलसी-साहित्य के सम्बंध में आलोचनात्मक दृष्टि से मुख्य-मुख्य ज्ञातव्य बातों का समावेश किया है। इसमें तुलसीदासजी की रचनाओं की सूर, जायसी और केशव के साथ जिन बातों में कि उनका साम्य हो सकता है, तुलना की गई है और तुलसी के भावपक्ष और कलापक्ष दोनों का ही संक्षिप्त अध्ययन उपस्थित किया गया है। तुलसी प्रभा में आए हुए छंदों की टीका भी दी गई है, जिनमें कि अलंकार तथा अंतर्कथाओं का भी समावेश है। आलोचना में यद्यपि कोई मौलिकता नहीं है तथापि सब विषय एक क्रम और व्यवस्था के साथ रखे गए हैं। —पद्मचन्द्र गर्ग

आधुनिक कवियों की काव्य-साधना—लेखक–श्री राजेन्द्रसिंह गौड़ एम० ए०, प्रकाशक–श्रीराम मेहरा एंड कम्पनी माईथान, आगरा। पृष्ठ संख्या ११८, मूल्य ३)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लगाकर महादेवी वर्मा तक वर्तमान हिंदी कवियों की काव्य-साधना का दिग्दर्शन कराया है। प्रायः सभी कवियों का विवरण एक निश्चित क्रम के अनुकूल दिया गया है। इन कवियों में 'रत्नाकर' जी और हरिश्चन्द्र को छोड़कर और सब कवि खड़ी-बोली हैं, यद्यपि कुछ अभाव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धानी के कारण सब कवियों को प्रथम पृष्ठ पर खड़ी-बोली का ही सूचित किया गया है। हरिश्चन्द्रजी ने अधिकांश काव्य व्रजभाषा का ही लिखा है और रत्नाकर जी तो खड़ी-बोली के पास तक नहीं आए। ऐसी दशा में उन्हें खड़ी-बोली का घातक कैसे कहा जा सकता है। कवियों की आलोचना ग्रन्थानुकूल भी होती है और विषयानुकूल भी। इसमें विषयानुकूल आलोचना की प्रवृति अधिक है अर्थात् आलोचना के एक-एक विषय को लेकर जैसे रस, अलंकार, विचार-धारा की मुख्य कृतियों का उल्लेख कर दिया है, अलग-अलग कृति पर सम्बद्ध विचार प्रकट नहीं किए गए हैं। हम इस पद्धति के विरुद्ध नहीं है तथापि-यदि 'साकेत' 'कामायनी' और 'उद्धव-शतक' का यदि विशेष विवरण दिया जा सकता (जैसा कि लेखक ने प्रिय-प्रवास का दिया है) तो पुस्तक विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयोगी हो जाती।

मुक्तक-काव्य रचयिता कवियों के सम्बन्ध में लेखक की पद्धति अधिक अनुकूल रहती है किन्तु प्रबंध-काव्य का कवियों की कृतियों के सबंध में इस पद्धति से पूर्ण न्याय नहीं हो पाता। 'निराला' जी पंतजी आदि की आलोचना मे पद्धति काफी सफल हुई, निरालाजी की प्रतिभा का पूर्ण विकास भी दिखाया गया है और उनकी अन्य कवियों विशेषकर पंतजी के साथ तुलना भी की गई है जो विशेष महत्वपूर्ण है। निराला और पंत के सबंध में लेखक का का कथन है, "पंत की कविता जीवन के संघर्ष में नहीं जीवन के प्रहर्ष में ही ग्राह्य हुई है। वह सदैव दृश्य-जगत के कवि रहे हैं और उन्होंने जीवन में सौंदर्य और और संगीत का प्यार किया है। उनकी रचनाओं में जीवन की स्वर्गीय विभूतियों का सजीव और सुन्दर चित्रण है। उनकी कविता राजसी है, तामसी नहीं। उसमें एकांत क्रीड़ा है, पीड़ा नहीं। निराला का काव्य संघर्ष में पनपा और विकसित हुआ है। उनकी कविता राजसी होने पर भी हर्ष-विषाद और सां..रिक आवेग-प्रवेग के उद्वेगों से परिपूर्ण है।"

इस विश्लेषण मे दोनों कवियों का व्यक्तित्व भी निखर आता है, यद्यपि मैं पूर्णतया इस बात में सहमत नहीं हूँ कि छायावाद में आत्मा से मिलन होता है, (कम से कम वह सीधा नहीं होता है) तथापि लेखक का यह स्पष्टीकरण बहुत मार्मिक है "एक पुष्प को देखकर जब हम उसे अपने ही जीवन-सा सप्राण, सचेतन, संवेदन-शील पाते हैं तब छायावाद की सृष्टि होती है, परन्तु जब हम उसमें किसी विश्व-व्याप्त परम चेतन की सत्ता का आभास पाते हैं तब रहस्यवाद की अनुभूति होती है।" पुस्तक विद्यार्थियों के अध्ययन और मनन के लिए बहुत-सी मूल्यवान सामग्री उपस्थित करती है और उपादेय है।

—गुलाबराय एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी० जी० फ्रूट प्रिज़र्विंग फैक्टरी

गर्मी और जाड़े
हर मौसम में
जी० जी० ब्रान्ड
वस्तुएँ
व्यवहार में लाइये
गुण लाभ, स्वाद में कोई कमी नहीं होती

फल पेय	फल शर्बत
नारङ्गी	सन्तरा, नीबू
लेमन	स्ट्रोबेरी
लेमन वार्ली	फान्सा
आम	मिक्स्ड फ्रूट

लाइमजूस कार्डियल जाम, केला, बादाम स्ट्रबेरी, रसभरी, मिक्सड फ्रूट, नाशपाती, सेब, अमरूद जेली और नवरंगी मर्मालेड (Orange Marmalade) तथा चटनी व टुमाटो सञ्जीवनी इत्यादि। पके फलों के सुमधुर रसों द्वारा तैयार किये जाते हैं।

जी० जी० चाकलेट फैक्टरी

जी०जी०
ब्रान्ड

स्वास्थ्य वर्धक

विशेषज्ञ द्वारा सफाई व वैज्ञानिक रीति से तैयार की जाती है।

इनके बनाने के लिये कन्डेन्स्ड मिल्क क्रीम, मक्खन, ग्लूकोज़, गिरी, मेवा इत्यादि काम में लाये जाते हैं॥

गिरधरगोपाल टिन फैक्टरी में
चार गैलन के टिन के अतिरिक्त
बाल्टियाँ, एक गैलन फिनायल के टिन, पालिश की डिबियाँ व अन्य प्रकार के टिन भी बनते हैं
हवा यंत्र द्वारा टिनों की जाँच की जाती है
जिससे
कभी चूने की सम्भावना नहीं रहती

जी० जी० टौय फैक्टरी
फुटबाल, क्रिकिट बाल, जाल इत्यादि के अतिरिक्त
आपके बच्चों की
शिक्षा तथा मनोरञ्जन के लिये
सामग्री प्रस्तुत करती है।
खिलौने देखने में सुन्दर तथा व्यवहार में मज़बूत

जी. जी. इनडस्ट्रीज
आगरा

जी० जी० सैन्स डिपो:—
आगरा, बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, बरेली, ग्वालियर, अजमेर, पटना, देहरादून।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झगड़े तो सभी बुरे हैं

फिर भी कहीं आपसी झगड़े हो जायँ

तो

हमारी

आकस्मिक दुर्घटना पालिसी-

आपकी सहायता करेगी। इसमें १०००) के बीमे के लिए केवल एक ही बार लगभग २५) रु० देने से जीवन भर का बीमा हो जाता है। डाक्टरी परीक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ती और एक जीवन का १०,०००) से अधिक का बीमा नहीं होता।

काम करने के लिये हमें एजेन्ट, इन्सपैक्टर तथा आर्गनाइजर व चीफ एजेन्टों की आवश्यकता है।

विशेष विवरण के लिए कृपया लिखें या मिलें

स्वदेशी बीमा कं० लि०

स्वदेशी बीमा नगर आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

रामचरनलाल ने [illegible] आगरा में छपवा कर साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित किया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

] आगरा—मई, जून १९४८ [अंक ११, १२

विषय-सूची

१—साहित्य और ललित-कला—श्री प्रभाकर माचवे २८३

२—'यशोधरा'-एक सिंहावलोकन—प्रो० श्री० बी० बी० योहन—एम० ए०, बी० ए०, (आनर्स) २८५

३—'अभिमन्यु-वध' की विवेचना—श्री गोविन्द चातक २९१

४—अजातशत्रु में हास्य-विनोद—श्री कृष्णकुमार सिन्हा २९७

५—हिन्दी पर प्राकृत तथा अपभ्रंश का प्रभाव—प्रो० श्री० सत्येन्द्र एम० ए० .... ३००

६—'ध्रुवा'—प्रो० श्री० कन्हैयालाल सहल एम० ए० ... ... ३०८

७—आधुनिक हिन्दी कविता में उर्दू की छाप—श्री० सत्यप्रकाश किरण बी० ए० (आनर्स) ३१३

८—साहित्य का सनातन-स्वरूप—श्री रमाशङ्कर तिवारी, एम० ए०, डिप्० एड्० ... ३१६

९—दिवंगत श्री श्यामसुन्दरदासजी की गद्य-शैली—प्रो० श्री कामेश्वरप्रसादसिंह एम० ए० ३२०

१०—यशोधरा—श्री० राधारमण गुप्त एम० ए० ... ... ३२[illegible]

११—साहित्य-परिचय— ३३१

१२—सम्पादकीय— ३३८

...रावराय एम० ए० प्रकाशक वार्षिक मूल्य ४) रु...
...न्द्र साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा। इस अङ्क का...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य की नवीन पुस्तकें

इस शीर्षक में हिन्दी की उन पुस्तकों की सूची प्रकट की जाती है जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं। इनमें से अधिकांश पुस्तकें आगरा के साहित्य-रत्न-भण्डार से मिल सकती हैं।

साहित्यालोचना

आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत—डा० केशरीनारायण शुक्ल ३॥)
विश्व-साहित्य—श्री गिरधारीलाल शर्मा ।=)

कविता

रक्त की रेखा—श्री 'शील' चतुर्वेदी २॥)
वियोग-रागिनी—डा० व्रजमोहन गुप्त ४)

कहानियाँ

जय पराजय—डा० व्रजमोहन गुप्त २)

उपन्यास

महाराष्ट्र-प्रभात—श्री हरीनारायण आप्टे ३॥)
एकाकिनी—श्री आशासहाय १॥)
पथ विपथ—श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' २)
गुण्डा—श्री सरयूपण्डा गौड़ ३)
त्याग का मूल्य—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ४)
कुमोदनी— " " ४)

राजनैतिक

महात्मा गान्धी और विश्वशान्ति—श्री राममूर्त्ति एम० ए० २॥)
जो लिखना पड़ा—श्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन ३)
स्वाधीन भारत की प्रमुख समस्याएँ—श्री रामप्रताप गोंडल ३)

बालोपयोगी

अनोखे मनुष्य—श्री गिरधारीलाल शर्मा ।=)
अनोखे देश " " ।=)
आपने सुना है " " ।=)
पुरानी दुनिया " " ।=)
मनुष्य के कर्त्तव्य— " " ।=)

जीवनियाँ

युग-पुरुष—श्री कमलापति त्रिपाठी एम० ए० २)
बापू के चरणों में— " " १॥)
राष्ट्रपति आचार्य कृपलानी—श्री सत्यकाम विद्यालङ्कार १)

स्त्रियोपयोगी

महिलाओं से—महात्मा गान्धी ४)

विज्ञान

अनोखे जीव-जन्तु—श्री गिरधारीलाल शर्मा ।=)
मनुष्य के कर्त्तव्य— " " ।=)

स्वास्थ्य

हमारा शरीर—श्री गिरधारीलाल शर्मा ।=)

शिक्षा-सम्बन्धी

शिक्षा-विज्ञान—प्रो० लालजीराम शुक्ल ३॥)
विद्यार्थियों से—महात्मा गान्धी ४)

समाज-शास्त्र

समाज-विकास—प्रो० लालजीराम शुक्ल २॥)

कोष

रामायण कोष-श्री केदारनाथ भट्ट एम० ए० ४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग ९] आगरा—मई, १९४८ [अङ्क ११

साहित्य और ललित-कला

श्री प्रभाकर माचवे

काव्य, संगीत, चित्र, शिल्प और स्थापत्य इस क्रम से अरस्तू ने पाँच ललित कलाओं का क्रम निश्चित किया है। हमारे यहाँ वैसे चौंसठ और किसी-किसी ने अस्सी तक कलाओं की संख्या दी है; फिर भी काव्य को उसके अन्तर्गत स्थान नहीं था, यद्यपि समस्यापूर्ति, चित्रबन्ध, काव्य आदि उसमें आ जाते थे। स्थूल रूप से यह माना जाता है, विशेषतः पश्चिम में कि सौन्दर्य की अवतारणा ललित कलाओं का उद्देश्य है, यद्यपि हमारे यहाँ महाभारत में 'विश्रान्तिर्यस्य सम्भोगे सा कला न कला मता' का आदेश है। वैसे तो मध्ययुग में, सर्वत्र, क्या पूर्व में और क्या पश्चिम में 'लीयते परमानन्दे' कहकर कलाओं से उपलब्ध रसानुभूति को 'ब्रह्मानन्द सहोदरा' माना जाता था। मूर्तिपूजा के युग में यह स्वाभाविक ही था कि इटली के बड़े-बड़े चित्रकार, यथा माइकेलएंजेलो, लियोनार्दो दा विंची, राफाए और टीशियन इस प्रकार धर्म तथा कला की एकात्मता मानते; अजन्ता और बाग के अज्ञात नाम बौद्ध चित्रकारों में भी तो वही वृत्ति रही। शिल्प तो स्पष्टतः धर्मद्वारा सीमित रहा; नोत्रदैम की ईशु-मूर्ति अथवा एलोरा का कैलाश, श्रवणबेलगुल का गोमटेश्वर या मिश्र की विराट् स्फिंक्स मूर्ति इसके प्रमाण हैं। संगीत पर भी धर्म का यह प्रभाव बहुत स्पष्ट है: ध्रुपद-गायन का आरम्भ ही शिव के ताण्डव तथा डमरू-निनाद से सम्बद्ध था; यूरोपीय संगीत वाग्नेर और बेटाफेन तक पूर्णतः धर्मप्लावित था। स्थापत्य में मीनाक्षी मन्दिर के गोपुर और इस्लामी विराट् मस्जिदें साक्षी हैं। परन्तु क्या धर्म और क्या कला, दोनों में उत्तरोत्तर रीतिबद्धता, रूढ़िवादिता, प्राणहीन यान्त्रिक रसनिर्मिति, मुमूर्षु रस-ह्रास (डिकेडेन्स) आरम्भ हो गया। पश्चिम में कुछ शीघ्रता से, हमारे यहाँ देर से—परन्तु ईसा की उन्नीसवीं सदी इसी प्रकार की मत-क्रान्ति का युग है। यदि क्रोचे से पेन्टर तक के कलालोचक पढ़ें तो यह कला-सम्बन्धी दृष्टिकोण स्पष्ट होता जायगा। पहिले कला को जो पूजा समान सिर पर चढ़ाने की वृत्ति थी, वह पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में हलकी बेलबूटों वाली या नक्काशी वाली प्रवृत्ति में परिणत होने लगी।

यहाँ कला और कौशल का अन्तर हम जान लें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आर्टिस्ट' और क्रैफ्ट्समैन' में स्पष्ट अन्तर है : कलाकार वह जो मौलिक, युगानुभूति को अपने में समाकर उसे आगे ठेल सके, जिसकी रचना में चिरन्तन चिन्मय का वह अंश हो जो युग की स्थायी सम्पत्ति बन सके। केवल कौशलयुक्त व्यक्ति वह जो सस्ती, घटिया, अनुकृतियों से सन्तुष्ट हो, जो केवल तुक जोड़ सके, जिसकी अन्तिम आकांक्षा लोकरुचि के समाधान तक सीमित हो। प्रत्येक युग में बहुत थोड़े श्रेष्ठ कलाकार और कई सारे घटिया किस्म के सामान्य कोटि के रचनाकार हुआ करते हैं। अष्टछाप के कवि तो कई हैं, परन्तु सूरदास सच्चा कलाकार है; रीतिकालीन कवियों की सूची बहुत लम्बी होगी परन्तु देव, बिहारी, मतिराम का जोड़ मिलना मुश्किल है। उसी प्रकार वैसे आधुनिक उदाहरण लें तो आधुनिकतावादी चित्रकार भी सैकड़ों मिल जायेंगे, परन्तु गोया और बिजान, मातीस और पाब्लो पिकासो अपने ढंग के एक ही हैं। वैसे फिल्मों को वर्षा के साथ-साथ सिने-गायकों की दादुर-पंक्ति बढ़ती जा रही है, परन्तु उस्ताद-द मोसिकी फैयाजखाँ या अब्दुल करीमखाँ जैसे संगीतकार उँगलियों पर गिनती जिनकी हो सके उस पीढ़ी के हैं। वैसे समाधियाँ सैकड़ों बनती रहती हैं; परन्तु ताज ताज रहा और मूर्तियों के अम्बार में भी रोदाँ का 'लापेंर्सा' (विचारक) अद्वितीय है। वह अद्वितीयता कलाकार को सामान्य नक्काश या रचनाकार या शिल्पी से भिन्न बना देती है।

इस अद्वितीयता को शब्दों में पकड़ने का प्रयत्न कई कलावादियों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है। मदखक और रुद्रट ने उसे 'प्रतिभा' माना है। हेमचन्द्र का कथन है कि व्युत्पत्ति तथा अभ्यास तो निरे संस्कारक हैं; काव्य के हेतु नहीं। 'व्युत्पत्त्यभ्यासौ तस्या एव संस्कारकौकाव्य न तु काव्यहेतु' (काव्यानुशासन)। दण्डी और वामन ने इस अलौकिकता को 'रीति' कहा है तो मम्मट ने वृत्ति। भरत और भोज ने शब्द-गुण तथा अर्थगुणों को अधिक नहीं दिया है। कुन्तक ने वक्रोक्ति को ही काव्य का प्राण मान लिया तो रसपरम्परावादियों ने वाग्रास वस्तुरस, भ्रान्ति और दीप्ति आदि की चर्चा की है। परन्तु ये सब शब्द अन्ततः ब्रह्म की भाँति अपरिभाषेय ही रह जाते हैं। कलाकार के हृदय या कहें व्यक्तित्व से, रसज्ञ की आत्मा तक एक संवेदना-प्रवास सा अवश्य परिलक्षित होता है; यद्यपि उसकी प्रेषणीयता की रीति तथा सृष्टि एक अज्ञात अगम्य पहेली है। टाल्स्टाय ने उसे 'भावना' कहा है, ब्रेमों ने 'एक अपूर्ण रहस्यमय अनुभव'; क्रोचे उसे 'आन्तरिक अनुभव' (इण्ट्यूशन) या 'प्रभा' मानता है। आधुनिक अध्यात्मशास्त्रियों (मेटाफिजीशियन्स) में सर्वोपरि वाइटहेड उसे 'ए फ्रेगमेंट आफ दि कौंक्रेट रीयल आफ प्राइमरी एक्सपीरियन्स' मानता है। यहाँ इस छोटे से लेख में सम्भव नहीं कि सब मतों पर विस्तृत प्रकाश डाला जा सके। यहाँ संकेत भर कर देना पर्याप्त होगा कि सत्य की भाँति सौन्दर्य की राह भी एक नहीं है।

बहुत आश्चर्य होता है कि एक व्यक्ति जो उत्तम कविता को घटिया कविता से भिन्न चीन्हता है, उसी का चित्र अथवा संगीत अथवा शिल्प के सम्बन्ध में अभिमत अत्यन्त निम्न कोटि का होता है। क्या इसका अर्थ यह मान लिया जाय कि प्रत्येक ललित कला का सौन्दर्य भिन्न प्रकार का होता है? क्या चित्र के सौन्दर्यगुण, संगीत के सौन्दर्यगुण से मूलतः भिन्न हैं। यदि ऐसा है तो सौंदर्य का शास्त्र या विज्ञान कैसा? जो आज तक पूर्वी तथा पश्चिमी सौंदर्यशास्त्रियों ने मीमांसा की, उसका आधार ही सीमित है! क्या कीट्स की उक्ति 'सौंदर्य ही सत्य है' और प्लेटो के परमात्मा के परम सुन्दर होने की आस्था मिथ्या है? यदि नहीं तो अवश्य सत्य और शिव की भाँति सौंदर्य भी एक 'मूल्य' है, जिसकी व्याप्ति समस्त ललित कलाओं में एकसी लक्षित या संवेदनीय है। यदि ललित कलाओं में इस मूल्य की एक प्रकला व्यक्त है तो साहित्य में भी उसी तत्त्व की दूसरी प्रकला या छटा अनुगुम्फित होनी चाहिए। यहाँ वह मूलतत्व क्या है: वह केवल मानसिक रचना है अथवा उसका अपना मानवी मन से परे स्वतन्त्र अस्तित्व है यह सब चर्चा न छेड़ते हुए, मैं बतलाना चाहता हूँ कि किस प्रकार कवि, चित्रकार, गायक, शिल्पी, स्थापत्यकार परस्पर निगडित हैं, परस्पर प्रभावित करते रहते हैं। 'कवि और चित्रकार की आँखमिचौली' ने

(शेष पृष्ठ २६८ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यशोधरा'—एक सिंहावलोकन

श्री० प्रो० वी० बी० योहन एम० ए०, बी० ए० (आनर्स)

'यशोधरा' काव्य-क्षेत्र में मैथिलीशरण गुप्त का आधुनिक कालीन एक अभिनव प्रयोग है। वर्तमान हिन्दी कविता का इतिहास विभिन्न दिशाओं में विविध काव्यात्मक प्रयोगों का विवेचन ही है। युग के काव्य-शैली सम्बन्धी प्रयोग गुप्त जी की रचनाओं में प्राप्त हो जाते हैं शैली-विषयक इन प्रयोगों ही ने हिंदी-कविता को नव" विकास दिया है। गुप्त जी की काव्य-सम्बन्धी दो मूल विशेषताएँ हैं जो उनके कवि-जीवन के आरंभ से आज पर्यन्त उनमें पाई जाती हैं। एक है खड़ी बोली का प्रयोग और अधिकाधिक प्राञ्जल प्रयोग तथा दूसरी है बहिर्निरूपिणी प्रवृत्ति। पहली ने कवि को भाषा के आधुनिक कवियों में प्रथम श्रेणी का स्थान दिया है तथा द्वितीय ने उन्हें आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ आख्यानकार बना दिया है। ये दोनों बातें निर्विवाद हैं। इन उभय विशेषताओं को रखते हुए युग की अन्य काव्य-प्रवृत्तियों का निर्वाह करने का प्रयत्न भी कवि ने किया है। युग की राष्ट्रीय-भावनाओं का निर्वाह तो सब ही रचनाओं में किया गया है, और राष्ट्रीय कवियों में गुप्त जी प्रमुख हैं। आख्यानक काव्यों में प्रगीत मुक्तकों का प्रयोग 'साकेत' और 'यशोधरा' में किया गया है और इस प्रयास से गुण और दोष दोनों ही इन रचनाओं में आ गये हैं। प्रश्न यह है कि कथा-काव्यों में कहाँ तक छायावादी गीत-शैली का निर्वाह हो सकता है।

साकेत-काव्य की उपेक्षिता ऊर्मिला ने कवि को एक दूसरी विरहिणी गोपा का स्मरण करा दिया। यह भी राजगृह की नव-परिणीता नवोढ़ा-वधू है, पति-वियोग जिसके जीवन में सहसा एक महान् परिवर्तन उपस्थित कर देता है। कवि हृदय की संवेदना ने यशोधरा के चरित्र के उद्धार की प्रेरणा दी राम के साथ सीता और लक्ष्मण का गुण-गान तो कवि-कोविदों द्वारा किया गया और इस प्रकार गौतम का यश काव्य में विकीर्ण किया गया पर ऊर्मिला और यशोधरा काव्य के उपयुक्त न समझी गईं, इन विरहिणियों के विरह-गीत किसी सुकवि ने न गाये। लक्ष्मण की तपस्या (भ्रातृ-सेवा) और गौतम के तप के गीतों ने दो नव-विवाहिता वधुओं की तपस्या पर परदा डाल दिया। इन्हीं दो वधुओं की तपस्या के गान के लिए 'साकेत' और 'यशोधरा' की रचना हुई।

यशोधरा का उपेक्षामय किन्तु गर्वपूर्ण चरित्र अपने आप में कविता की सरसता के अतिरिक्त कहानी की रोचकता, उपन्यास की मोहकता तथा नाटक की नाटकीयता लिये हुए है। 'यशोधरा' में इन सब के योग का प्रयास किया गया है। यद्यपि गुप्त जी की प्रतिष्ठा नाटककार के रूप में नहीं तथापि उनके प्रबन्ध-काव्य नाटकीयता के गुण से युक्त हैं और ऐसे सब काव्यों में 'यशोधरा' का स्थान प्रथम है। 'साकेत' और पञ्चवटी में भी इस गुण की कमी नहीं। 'यशोधरा' में नाटक का एक छोटा भाग भी प्रस्तुत किया गया है। प्रबन्ध काव्य में भावात्मकता के साथ ही घटनाओं की एक सूत्रता तथा कथा का क्रमिक विकास आवश्यक होता है किन्तु गीतों की भाव-प्रवणता घटना-संघटन पर ध्यान देने का अवकाश नहीं देती। तात्पर्य यह कि रूपक की नाटकीयता, उपन्यास की रोचकता तथा कविता की सरसता को लिए हुए गुप्त जी का यह नूतन प्रयोग एक साथ आख्यानक काव्य की सारी सफलता और विफलता दोनों को लिए हुए हैं। यह सत्य है तथापि कवि का लक्ष्य तो जैसा कहा जा चुका है काव्य की उपेक्षिता यशोधरा का चित्रण है। इस प्रयत्न में कोई कमी नहीं आने पाई। कवि की संवेदना का पूर्ण उल्लास तथा काव्यत्व का सारा समारोह इसी उद्देश्य के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा में और गीतों में प्रस्तुत किया गया है।

यद्यपि यशोधरा का विरह-वर्णन ही कवि का ध्येय है और उसे ही काव्य की नायिका के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है और शुद्धोदन के शब्दों में कवि को 'गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं', तथापि नायक सिद्धार्थ (तत्पश्चात् बुद्ध) का महत्त्व कथा में ठीक उसी प्रकार पूर्ववत् प्रतिष्ठित है जिस प्रकार 'साकेत' में राम का। 'साकेत' के मुख-पृष्ठ की पंक्तियाँ, यथा 'राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है, कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है', राम के चिर-प्रतिष्ठित माहात्म्य की ओर संकेत करती हैं। ऊर्मिला के चरित्र का पुनर्निमाण राम के महत्त्व के चालन द्वारा नहीं किया गया और न यहाँ बुद्ध ही की महत्ता कम की गई। अतएव अपनी कृतियों में इन दोनों के प्रति पूरी श्रद्धा रखते हुए कवि ने पूरी सहृदयता के साथ उपेक्षिताओं के चरित्रों को उभारकर पूर्ववर्ती कवियों की कमी पूरी की है। नवीनता के प्रति प्रेम और पुरातन के प्रति समादर की भावना यहाँ तो है और यह विशेषता आधुनिक कवियों में सबसे अधिक गुप्तजी में पाई जाती है।

'यशोधरा' के मुख-पृष्ठ की पंक्तियाँ काव्य के विषय और दृष्टिकोण दोनों से अवगत कराती हैं। इन पंक्तियों में अबला-जीवन पर आँसू बहाये गये हैं। भावागत दोष स्पष्टतया लोकप्रियता के द्वारा चलित हो गया है। नारी-धर्म को जीवन-धर्म बना दिया गया है। नारी-जीवन में कवि की अन्तर्दृष्टि ने उसके अंतस्तल की दो व्यापक विशेषताओं का अन्वेषण किया है और इन आंतरिक स्रोतों के बाहरी प्रवाह हैं आँचल का दूध और आँखों का पानी। विरह में आँसू बहाना और स्वयं क्षीण हो संतान की पुष्टि करना ही एक अबला का जीवन-धर्म हो गया है। कवि ने अबला-जीवन के इन दोनों पार्श्वों को लेकर एक विरहिणी के नारी-जीवन तथा उसके अबलात्व पर अपनी उमड़ती हुई संवेदना प्रकट की है। विचार-केन्द्र है नारीत्व तथा दो पार्श्वबिन्दु हैं विरह और वात्सल्य। यशोधरा का सार-तत्त्व निम्न दो पंक्तियों में उपलब्ध हो जाता है, अथवा यों कहें कि काव्यमयी इन दो पंक्तियों में नारी जीवन (पत्नीत्व और मातृत्व) की कहानी को लिपिबद्ध करने का यत्न किया गया है—

'अबला-जीवन, हाय! तुम्हारी यही कहानी-
आँचल में है दूध और आँखों में पानी!'

काव्य का आरम्भिक प्रसंग भूमिका-स्वरूप है जिसमें गौतम का चिरसञ्चित माहात्म्य वर्णित है और साथ ही यशोधरा की वियोग-गाथा का आरम्भ है। यशोधरा का सम्पूर्ण जीवन काव्य का विषय नहीं। उसके पत्नीत्व से ही काव्यगत उसका जीवन आरम्भ होता है और संसार तथा उसके सार पर सिद्धार्थ के विचार से काव्य का आरम्भ किया गया है। इसी विचार से सम्बद्ध संसार से विदाई का सिद्धार्थ का प्रसिद्ध गान है और इस गान के अनन्तर सिद्धार्थ अपने को सिद्धार्थ करने के लिए वन को प्रयाण करते हैं। गौतम का गौरव न केवल प्रजाजनों की उक्तियों में है पर यशोधरा के विरह-गान में भी उपस्थित है। काव्य का अन्त सिद्धि-प्राप्त भगवान् बुद्धदेव के प्रत्यागमन के प्रसङ्ग को लेकर हुआ है। उस समय तो उनकी प्रतिष्ठा और कान्ति की सीमा नहीं। राहुल के शब्दों में यशोधरा 'ओस' (आँसुओं से आर्द्र) है तो बुद्ध 'प्रभात' (मुक्ति-तत्व के ज्ञान से जाज्ज्वल्यमान) है। तात्पर्य यह कि नवपरिणीता कुल बधू यशोधरा प्रारम्भ में भी आँसुओं से गीली है और उसके हृदय में काँटा सा कसक रहा है और अन्त में भी उन्हें वह आँसुओं के अतिरिक्त और क्या दे सकेगी? पति ने अमृत-तत्व पान किया, गोपा अन्त में भी अश्रु ही पीती रही। अश्रु-स्नान को ही उसने पर्व-स्थान मान लिया। पति नर से नारायण हो गये पर नारी अबला ही रही। नारी की गति पति ही है और इसीलिए मानिनी यशोधरा पति के लिए अपने हृदय में सारे उपालंभ लिये हुए और अपने प्रति दिखायी गयी निष्ठुरता के भावों से उत्पन्न कटुता को लेकर भी पति से किसी भी प्रकार का विरोध नहीं कर सकती। पति से अलग उसका अस्तित्व ही नहीं। नारी के सतीत्व और त्याग का कितना उज्ज्वल चित्र मानिनी विरहिणी यशोधरा के चरित्र में है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'धव, तुम उद्धव समान यदि आये यहाँ,
एक नवता-सी मैं उसी में फब जाऊँगी;
मेरे प्रतिपाल, तुम प्रलय-समान आये,
तो भी मैं, तुम्हीं में, हाल, वेला-सी विलाऊँगी।

वियोग के मध्यवर्ती काल में यशोधरा का सच्चा चित्र पुत्र राहुल के इन शब्दों में प्राप्त होता है—'गाती है मेरे लिए, रोती उनके अर्थ', और 'दुग्ध-तन मुझमें, पिता में मुग्ध-मन है लीन।' अथवा त्यक्ता पत्नी की दशा दिन में इन्दुकला की दशा के सदृश विडम्बनापूर्ण है। यदि पति 'बसन्त-से' हैं तो वह 'ऊष्मा-सी'। यशोधरा के विरह-वर्णन में जहाँ सतीत्व का गौरव, मानिनी का मान और गर्व वर्त्तमान है वहाँ प्रिय की महत्ता, उनका त्याग तथा लक्ष्य की महानता आदि के भाव भी स्पष्टतया झलकते हैं। यशोधरा अपने प्रिय के विभिन्न गुणों को प्रकृति में व्याप्त देखती है। हेतूत्प्रेक्षा के सहारे कही गई यशोधरा की ऐसी उक्तियाँ गौतम के गुणों को तथा उसकी विरह-पीड़ा को विश्व-व्यापी रूप प्रदान करती हैं। अतएव गौतम का त्याग देखकर वृक्ष अपने पत्ते त्याग देते हैं और यशोधरा के विरह-व्यथित जीवन का धुँधलापन संसार में कुहरा बन कर छा जाता है। इसी प्रकार एक स्थान पर यशोधरा को दिवा की उपमा देकर प्रकृति-मानव-साम्य द्वारा यशोधरा का काव्यमय चित्र खींचा गया है।

सम्पूर्ण काव्य में वियोग ही प्रधान भाव (Sentiment) है। संयोग-पक्ष का नितांत अभाव है क्योंकि बुद्ध का संसार की विरक्ति तथा उनके 'क्षण-भंगुर भव, राम राम!' से ही यशोधरा के विरह और काव्य का आरंभ होता है। संयोग के सस्मरण अवश्य ही संपूर्ण काव्य में बिखरे हुए मिलते हैं। यद्यपि 'यशोधरा' प्रबंध-काव्य ही कहा जायगा तथापि इसमें घटनाओं की प्रधानता नहीं, न उनके वर्णन का अवकाश है और न उनका क्रम ही प्रधान विषय है। यशोधरा के विरह से सम्बद्ध घटनाओं का ही समावेश किया गया है। इसके लिए गद्य का आश्रय भी लिया गया है। भाव-व्यञ्जना गीतों के रूप में पाई जाती है। अतएव प्रस्तुत काव्य गद्य, गीत, नाटक कथा सब का एक अद्भुत अपूर्व मिश्रण है। विप्रलम्भ शृंगार के शास्त्रीय विवेचन में विरह की दस दशाएँ बताई गई हैं जिनमें से कुछ 'यशोधरा' में पाई जाती हैं। मिलन की अभिलाषा सम्पूर्ण काव्य में वर्तमान है। उदाहरणार्थ 'सखि, वे मुझ से कह कर जाते' इत्यादि में अभिलाषा स्पष्टतया झलकती है। चिन्ता का वर्णन प्रधान नहीं कदाचित् इसलिए कि पति प्रताप और चरित्र-बल का यशोधरा को पर्याप्त विश्वास है और इसलिए वह उनके लिए विशेष चिंता नहीं करती, दूसरे उसके सतीत्व का गौरव उसे पति की अनिष्ट-चिंता से बचा देता है। उसे विश्वास है कि सतीत्व-गौरव का व्यञ्जक उसका सिन्दूर पति की सब आपदाओं को नष्ट कर देगा। अतएव यद्यपि चिन्ता होती है तथापि उसका प्रश्रय उसे जयी बना देता है। स्मरण का वर्णन भी, अप्रधान है यद्यपि उसका सर्वथा अभाव नहीं। 'ओहो कैसा था वह सपना?' इत्यादि में स्मृति का व्यक्त रूप ही तो बतलाया गया है। यशोधरा पति का गुण गान अवश्य करती है। गुण-कथन के रूप में गौतम के शील, शक्ति और सौन्दर्य का वर्णन पाया जाता है। उदाहरणार्थ विवाह के पूर्व सिद्धार्थ के शौर्य-प्रदर्शन इत्यादि का संक्षिप्त वर्णन आया है। विरह-दुःख की तीव्रता के अवसर पर उद्वेग का वर्णन किया गया है। 'अब क्या रक्खा है रोने में तथा मरने से बढ़ कर यह जीना' इत्यादि में उद्वेग की दशा है। 'आली पुरवाई तो आई, 'मरण सुन्दर बन आया री।' इत्यादि उक्तियों में संताप पाया जाता है। उन्माद की अवस्था का वर्णन भी है। केश काटने में प्रवृत्त होना उन्माद की अवस्था का द्योतक है। जड़ता भी बतलाई गई है। विरह के दुःख से मूर्च्छना का वर्णन भी है। व्याधि की अवस्था उसकी दुर्बलता और कृशता में है। काव्य का अन्त मरण अथवा दुःख में नहीं पर मिलन और शान्ति में है। अतएव विरह की सब अन्तर्दशाओं का वर्णन शास्त्रीय विवेचन के अनुसार नहीं मिलता। अभिलाषा का विस्तृत वर्णन अवश्य पाया जाता है।

मातृत्व तथा पत्नीत्व के दोनों पार्श्वों सहित यशोधरा के चरित्र का बड़ा रमणीय विकास कराया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःखिनी यशोधरा विरह-व्यथा में अपने पुत्र राहुल से सांत्वना पाती है। दूसरे शब्दों मे उसका मातृत्व उसके दुःख की भयंकरता को दूर करता है जिस प्रकार कि उसका सतीत्व उसके पति के कष्टों को दूर करता है। काव्य में यशोधरा ही प्रधान पात्र है, मातृत्व के नाते राहुल का और पत्नीत्व के नाते गौतम का भी चित्रण है और ये दोनों-चरित्र प्रधान पात्र के चरित्र-विकास में सहायक के स्वरूप हैं। यद्यपि गौतम कथा के बीच के दीर्घ भाग में अनुपस्थित हैं तथापि यशोधरा के मानसिक संसार में अनिवरत रूप वर्तमान रहने के कारण, वे पूर्ण तया अनुस्थित नहीं, वे यशोधरा और पाठकों के केन्द्र बने रहते हैं। गौतम और राहुल यशोधरा के चरित्र के उभय पार्श्वों से अविच्छिन्न रूप से संबद्ध हैं। नारी-चरित्र के इन दिव्य पार्श्वों को लेकर यशोधरा के नारीत्व का विकास कराया गया है। पत्नीत्व में त्याग की भावना सम्मिलित है और पुत्रके लिए सर्वस्व त्याग का दूसरा नाम ही तो मातृत्व है। पत्नीत्व में त्याग के साथ आत्मतुष्टि और सुखेच्छा का भी प्रधान रहता है अतएव त्याग का एकान्त राज्य नहीं रहता। यशोधरा के पत्नीत्व के विषय में भी यह बात अक्षरशः सत्य है और इसका ज्वलंत प्रमाण है। गौतम की अर्द्धांगिनी का मान व दर्प।

हाँ, तो यशोधरा में स्त्री-सुलभ दर्प वर्तमान है। यशोधरा जैसी सती-साध्वी स्त्री में तो इस दर्प की मात्रा अधिक होनी ही चाहिए विशेष कर जब पति उसे बिना बताये अकेली छोड़ कर गये हैं। यही दर्प उसे पति के समीप जाने से रोकता है। अतएव इच्छा रहते हुए भी वह पति के पास स्वयं नहीं जाने पाती। उसीके शब्दों में—

'............यदि पाती तो कभी यहाँ
बैठी रहती मैं? छान डालती धरिती को
सिंहनी सी काननों में, योगिनी-सी शैलों में,
शफरी-सी जल में, विहंगिनी-सी व्योम में....'
इत्यादि।

यही असमर्थता उसके जीवन का सबसे बड़ा दुःख, बोझ, सबसे बड़ी परवशता है। इसीने उसके जीवन को गम्भीर वेदना से मथ डाला है। उसका यह महान् मान उसे कम कष्ट नहीं पहुँचाता। इसी परवशता ने उसे उन्मादिनी बना दिया है। उद्वेग और संप्रलाभ इसी के जीवन की सबसे बड़ी परीक्षा भी थी। यद्यपि अपने मान पर अटल रहने की यह परीक्षा उसके पूरे विहारी जीवन में वर्तमान थी तथापि बुद्ध के वन से प्रत्यागमन के अवसर पर उसके आतुर उत्कंठित हृदय के समक्ष उसके मान की सबसे बड़ी परीक्षा उपस्थित है—'रे मन आज परीक्षा तेरी' इत्यादि। उसका मन उसे ढाढ़स बँधाता है—'यदि वे चल आये हैं इतना, तो दो पद उनको हैं कितना? और मानिनी विरहिणी अपनी परीक्षा में पूर्णतया सफल उतरती है—उसके मान पर किसी तरह की आँच नहीं आने पाती यशोधरा में तर्क-बुद्धि भी पाई जाती है। प्रिय के साथ अपने सम्बन्ध पर तथा प्रिय के आचरण पर तो उसके तर्क-वितर्क पूरे काव्य में पाये जाते हैं, बुद्ध के लक्ष्य, मुक्तितत्त्व इत्यादि पर भी उसके विचार प्राप्त होते हैं। जन्म-मरण के सम्बन्ध में उसके तर्क तथा जन्म की सार्थकता के प्रमाण उसे मुक्ति की निस्सारता बतलाते हैं—'कह मुक्ति भला किसलिए तुझे मैं पाऊँ? इत्यादि। पत्नीत्व का ऊपर पक्ष है तथा उसका अबलात्व। यशोधरा को प्रिय के लक्ष्य की उच्चता तथा लोक-कल्याण में तत्परता के सम्बन्ध में सन्देह नहीं। रह-रह कर जो बात उसे अधीर करती है तथा हृदय में जो शूल सी खटकती है वह है प्रिय का चुपचाप चले जाना। अबला होने के कारण वह अपने दुःख के निवारणार्थ कुछ भी करने में असमर्थ है केवल आँसू बहाना ही उसके अबलात्व का लक्षण है। यशोधरा के मातृत्व ने वात्सल्य के बहुत से सुन्दर उद्गारों को जन्म दिया है। पुत्र-प्रेम विरह वर्णन में सहायक होकर आया है अतएव पत्नीत्व के आगे मातृत्व का चित्रण गौण स्थान रखता है। राहुल, की कुछ उक्तियाँ अस्वाभाविक प्रतीत होती हैं जैसे माता को 'दो थन वाली गैया' कहना अथवा आम की सुन्दर लाल कोंपलों की उपमा माता के ओठों से देना इत्यादि।

काव्य में यशोधरा के दो रूप परिलक्षित होते हैं, प्रथम प्रकृत रूप जिसमें वह एक दुःखिनी विरहिणी है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा द्वितीय रूप उस विरहिणी का बाहरी दिखावटी रूप है जब वह राहुल के समक्ष अपने को सुखी दिखाने का प्रयत्न करती है जिस प्रयत्न में वह सफल नहीं होती। राहुल की मनोदशा के चित्रण में बाल-चरित्र की परख पाई जाती है। यशोधरा के दिखावटी (assured) रूप को देख तथा उसकी वास्तविक वेदना को न देख र वह ऐसी बातें कहता है जिनसे माता को कभी दुख और कभी सुख होता है। किन्तु दोनों ही अवस्थाओं में दोनों का परस्पर प्रेम बना ही रहता है। पति-वियोग के दुःख को प्रच्छन्न रख पुत्र की सरलता अपनी पुत्र-प्रीति को बनाये रखना यशोधरा का एक मुख्य कर्त्तव्य है।

यशोधरा के मान के सम्बन्ध में भ्रांति की संभावना है किन्तु उसके चरित्र के सम्यक् अध्ययन से इस बात में संदेह नहीं रह जाता कि मानिनी यशोधरा का आचरण आर्य-नारीत्व के प्रतिकूल कभी नहीं कहा जा सकता। यशोधरा को त्याग कर चुपचाप प्रस्थान कर जाना स्त्री में अविश्वास ने पत्नी को दुःखित किया। यदि गौतम ने अविश्वास के कारण नहीं किन्तु अपनी ही दृढ़ता पर संदेह के कारण ऐसा किया था तो भी वे उपालंभों के पात्र हैं क्योंकि यशोधरा उन्हें अपनी श्रद्धा का पात्र समझती है और उनकी दृढ़ता में सन्देह तो क्या सन्देह की कल्पना भी नहीं कर सकती। कुछ भी हो यशोधरा ने मान कर के पति के मान में कमी नहीं की। उसने अपने मान और पति-भक्ति के उच्चतर आदर्श का ऐसी सुन्दरता से निर्वाह किया है कि मानिनी और गर्विणी के रूप में ही वह हमें इतनी प्रिय हो गई है कि हम शुद्धोधन के साथ ही यह कह सकते हैं—'गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं' मुझको सत्रमुच यशोधरा गौतम के विश्वास के योग्य थी और उसने कहा भी कि वियोग के दिन के उपयुक्त पाकर ही गौतम ने विवाह के लिए उसे युक्त था।

'यशोधरा' काव्य में यशोधरा के पत्नीत्व तथा मातृत्व सम्बन्धी कुछ ऐसे सुन्दर भाव पाये जाते हैं जो श्रेष्ठ गीतों के रूप में समस्त काव्य में यहाँ वहाँ बिखरे हुए हैं? उसके प्रेम की अनन्यता, तीव्रता तथा दर्प की भावना ने उसे प्रिय में लीन कर दिया है अतएव शरीर दो और मन एक है। 'नीचैः शंस, तनु के हृदिस्थितो हि प्राणेश्वरः श्रोष्यति' ('अभिज्ञान...') के अनुसार वह अपनी सखी से कहती है—'सखि प्रियतम हैं वन में ? किन्तु कौन इस मन में ? यह गीत गीति-काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। इन दो पंक्तियों में एक स्वतन्त्र और सम्पूर्ण भाव पाया जाता है। आगे की पंक्तियों में भावना की चरम सीमा पाई जाती है और प्रथम दो पंक्तियों में बताई गई तल्लीनता को उदाहरण द्वारा व्यक्त किया गया है। गद्य में सीधा-सादा भाव है विरहिणी का प्रत्यय कि उसकी चिंतना, दुःख और तपस्या के बल से उसके प्रियतम स्वामी का हृदय पिघलेगा और वे उससे मिलकर एक रूप हो जायेंगे—'दिव्य-मूर्ति-वंचित भले चर्म-चक्षु गल जायँ, प्रलय! पिघलकर प्रिय न जो प्राणों में टल जायँ, जैसे गन्ध पवन में!' यशोधरा का विरह-विलाप ही उसका गान बन गया है। वेदना की निवृत्ति की परिणति उसके रुदन-गान में हो जाती है। यहाँ वेदना का रूढ़िगत अर्थ न समझा जाय। यशोधरा की वेदना वियोग-जन्य है। वैसे तो सम्पूर्ण काव्य यशोधरा के आँसुओं से आर्द्र है तथापि वेदना का स्वतन्त्र गान काव्य में एक ही है और 'Our sweetest songs are those that tell of the saddest thought' (—P. B. Shelley) के अनुसार सुन्दर गान है। गान की सुन्दरता उसके आह से उत्पन्न होने के कारण है और उसकी आँखों से जो कविता प्रवाहित हुई है वह इस गान के रूप में निःसृत हुई है (पन्त—'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान' इत्यादि)—'रुदन का हँसना ही तो गान। गागाकर रोती है मेरी हृत्तन्त्री की तान।' प्रत्यक्ष पद में वेदना-निवृत्ति का एक स्वतन्त्र भाव है जो सीमा को पहुँचाया गया है। लक्षणा के सहारे वेदना को न केवल मूर्त रूप दिया गया, किन्तु उसके प्रभाव को भी व्यक्त किया गया है। ऐसी लाक्षणिक उक्तियाँ हैं—'रुदन का हँसना', 'मूर्च्छित आह्वान', 'लता के छाले', उजलती बलती मुस्कान' इत्यादि। कादम्बिनी-प्रसव की पीड़ा की हँसी' में लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना है। लाक्षणिक पद है 'पीड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की हँसी'। कादम्बिनी का मानवीकरण किया गया है। व्यंग्यार्थ इस प्रकार है—जिस प्रकार प्रसव की पीड़ा के पश्चात् पुत्रोत्पत्ति होती है, उसी प्रकार विद्युत की उत्पत्ति कादम्बिनी (स्त्रीलिंग शब्द है) की प्रसव-सी प्राणांतक पीड़ा के पश्चात् ही होती है अतएव रुदन का हँसना ही गान है।

मातृत्व-पक्ष में भी कतिपय स्थलों में सुन्दर भाव-व्यंजना पाई जाती है। इसका उत्कृष्ट उदाहरण निम्न गान है—'सो, अपने चञ्चलपन, सो! सो, मेरे अञ्चलधन, सो!' इत्यादि। स्पष्टतया ही यह गीत बालक की निद्रा के आह्वान के लिए निद्रा गीत (enllaly) है। भाव की सुन्दरता यशोधरा के हृदय की उन्मुक्तता के कारण आई है। विरह में पुत्र-प्रेम ही उसकी सांत्वना का साधन है। अतएव बालक की विशेषता और इस विशेषता का यशोधरा के विरही-जीवन में स्थान और महत्व ये दोनों बातें इस गान के प्रत्येक छन्द में विभिन्न दो पंक्तियों में स्वतंत्र रूप से पाई जाती हैं। दूसरी उक्ति टेक (Chorus) के रूप में प्रत्येक छन्द में वर्तमान है। राहुल की विशेषताओं (Attributes) का कथन भाववाचक संज्ञा के प्रयोग (Abstract for the concrete) द्वारा किया गया है जो सुन्दर है। अतएव राहुल का 'चञ्चलपन', 'गृह-गुञ्जन', 'व्यथा-विनोदन', 'आश्वासन', (माता द्वारा) 'अपलक दर्शन', 'कुल-नन्दन', और शिशुयौवन यशोधरा का 'अञ्चल-धन' है। इस प्रकार के स्वतंत्र गीतों में गीति काव्य के सब गुण वर्तमान हैं। उदात्त भाव, सूक्ष्मता (Brevity), हृदय-स्पर्शी प्रसंग और नाद-सौन्दर्य सब गुणों का पूरा प्रभाव इन गीतों में पाया जाता है। इस प्रकार के गीतों का प्रभाव है न प्रबन्धात्मकता का। प्रबन्ध की निम्न विशेषताएँ अवश्य उपलब्ध होती हैं; यथा कथा-वस्तु, वर्णन और संवाद। संवाद से नाटकीयता लाई गई है, कथा से रोचकता और गीतों में भावाभिव्यंजना है। गीत तथा प्रबन्ध दोनों के बीच कवि का स्वतंत्र मार्ग पाया जाता है।

यशोधरा के विरह-वर्णन में प्रधानतया प्राचीन शैली का चमत्कार पाया जाता है। षड् ऋतु-वर्णन, विरह का अन्तर्दशाओं का चित्रण, प्रकृति-मानव-सापेक्ष्य भाव इत्यादि सब रूढ़िगत हैं। वियोग-वर्णन के सहायक प्रकृति-वर्णन में पुराने भाव पाये जाते हैं, कोई नवीन उद्भावनाएँ या उल्लास नहीं। गीतों के रूप में वेदना-वर्णन अधिक रुचिकर हुआ है। काव्य में तुक का आग्रह पाया है और भद्दी तुकबन्दी की भी कमी नहीं। हृदय के गम्भीर भावों के चित्रण के स्थान पर, अंतस्तल की मार्मिक भाव व्यंजना के स्थान पर जहाँ उथले (Superfluous) भावों को भद्दे तुक में व्यक्त किया गया है वहाँ भाव आदर्श च्युत हो गया है और कविता बच्चों की-सी जान पड़ती है, यथा-सिद्धार्थ के महाभिनिष्क्रमण के भयपूर्ण अवसर पर 'चला गया रे चला गया' इत्यादि, संतान मिलने की आकस्मिक घटना पर 'मिल गया, मिला' इत्यादि तथा भगवान् बुद्ध के प्रत्यागमन के उल्लास और हर्षपूर्ण अवसर पर 'आ रहे हैं, आ रहे हैं' इत्यादि। तुक की खोज के प्रयत्न में अव्यवहृत शब्दों का प्रयोग यथा पाम (अँग्रेजी का Palm नहीं), 'टीम-टाम', 'भूम-झाम' इत्यादि का प्रयोग असुन्दर ही नहीं हास्यास्पद है। अतुकान्त कविता का सुन्दर प्रयोग भी पाया जाता है। विशेषकर वियोग की भाव-व्यंजना में ऐसी घनाक्षरियों का प्रयोग अतीव सुन्दर है यथा—'बाधा तो सही, मुझे बाधा नहीं कोई भी!' इत्यादि। इस प्रकार उपर्युक्त गुणों और प्रयोग की नवीनता के कारण अनिवार्यतया आये हुए कतिपय दोषों तथा भाषा के कुछ दोष के बीच काव्य की उपेक्षिता यशोधरा के काव्य का जो विप्रलंभ-स्रोत इस गद्य-पद्य मिश्रित हिन्दी के अनोखे चंपू काव्य में बहाया गया है वह काव्य-रसिकों के लिए अपार रस-स्रोत का हृदय स्थान है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अभिमन्यु-वध' की विवेचना

श्री गोविन्द चातक

(शेषांश)

ऐ हो वीर सारथी ! प्रचार्यो पारथी यौं सुनो,
भारत को भार तो हमारे अब माथ है।
'सरस' बखानै, भीरु ह्वै न उर ऊनो करो,
दूनो करो साहस, कहा जो वक्र पाथ है।
माथ हमारो भरो, भूरि भीति भेदक सों,
छेदक दुरूह व्यूह हूँ यौं धनु साथ है।
हाथ है हमारे तो मनोरथ चलैबो अरु,
रथ को चलैबो त्यों तिहारे अब हाथ है।

लक्ष्मण की भी 'नाथ साथ धनु हाथ हमारे' वाली निर्भीकता की कैसी सुन्दर अभिव्यक्ति हो पाई है !

तब क्या था—रथ पवन-वेग से चलने लगा। अभिमन्यु बड़ी चातुरी से शीघ्रता से चक्रव्यूह में प्रवेश करने लगा। जो उसे रोकना चाहते थे वे उसे कब रोक सके ? वह इतनी शीघ्रता से प्रहार करता था कि विपक्षी जब तक कुछ कहने के लिए मुख खोलते ही थे वह उनके सिरों को भूमि पर गिरा देता था।

आधौ कह्यो आयौ कह्यो चह्यो उत्तरापति सों,
आहत ह्वै आधौ लिए स्वर्ग को सिधारें हैं।

यह उसकी वीरता का भाव ही था कि द्रोणाचार्य भी द्वेषभाव भूलकर 'धन्य अभिमन्यु ! धन्य पारथ हमारो है' कहने लगे। यही नहीं वे अपने को भी धन्य मानने लगे।

धन्य हम, जाके सिष्य वर को सपूत ऐसो,
जैसो न रह्यो है, वीर है, न होवन वारो है !

इसी होनहार बालक की वीरता पर चकित और स्वयं अपनी हीनता पर दुखित होकर दुर्योधन की यह खीफ कितनी स्वाभाविक है।

एक लघु बालक विनासे हेत सकल सैन,
ठाढ़े चित्र काढ़े तुम कैसी भीति आनी है।
मति विकलानी थकि थहरि थिरानी गति,
हिम्मति हिरानी किधौं हिम्मति हिरानी है।

× × ×

तुम सब ह्वै गूढ़ जुद्ध के विजेता वीर,
ताकत विमूढ़ क्यौं यौं ताकत थिरानी है।
चातुरी चुकानी चकि, आतुरी लुकानी किधौं,
जगत प्रमानी सब सूरता सिरानी है।

विपक्षियों की आत्मग्लानि तथा निराशा निम्नांकित पंक्तियों में प्रतिबिंबित है।

सम्मुख भई है दुखदायी जोगनी यौं आजु
हो तो, न हो ऐसो, एक बालक सों हारें हम।
'सरस' सुनावैं, यौं बतावैं वीर लै उसास,
बड़े बड़े आँस यौं लहू को हाय ! ढारें हम।
सत्र के विजेता द्रौन, कर्न आपु अक भये,
वक्र विधि ह्वै गये हमारे यौं विचारें हम।
बादि हा हमें तौ कुरुराज यौं धिकारें आपु,
आपै अपाने को आपु ही धिकारें हम।

व्यंग्य भी युद्ध में क्रोधाग्नि प्रज्वलित करने का एक साधन है। कभी कभी तो व्यंग्य ही युद्ध का कारण बन जाता है। सुमधुर व्यंग्य की छटा काव्य में सर्वत्र व्याप्त है। दुशासन को आहत कर—

जा रे नीच पापी ! सुप्रतापी का संहारिवो औ,
नारि को उघारिबो समान करि लीनो है।

उसी प्रकार शकुनी से—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवकों का कर्त्तव्य हो रहा है। वे शिकार और जुआ, मदिरा और विलासिता के दास होकर गर्व से छाती फुलाते घूमते हैं। कहते हैं, हम धीरे-धीरे सभ्य हो रहे हैं[3]।' इसीलिए प्रसादजी ने विदूषक ऐसे पात्रों का सृजन बहुत ही कम किया है, क्योंकि हास्य-विषाद का अवसर गंभीर एवं संघर्ष-पूर्ण स्थिति में नहीं मिलता है। इनके नाटकों में दो प्रकार के विदूषक हैं—एक है प्रकृति से परिहासी तथा विनोदी, जो नाटककार द्वारा निर्मित हैं, दूसरे संस्कृत परिपाटी के अनुसार स्वतंत्र रूप से विदूषकों की स्थापना हुई है। प्राचीन-काल में हस्योत्पत्ति के लिए इसी प्रकार के विदूषक रखे जाते थे, जिसका वर्णन भरत-मुनि तथा धनञ्जय दोनों ने किया है—

वामनो दन्तुरः कुब्जो द्विजन्मा विकृताननः।
खलतिः पिङ्गलाक्षः स विधेयो विदूषकः॥

[—नाट्यशास्त्र भरतमुनि]

अन्तः पुरे वर्षवराः किरन्ता मूकवामनाः।

[—दशरूपकम्: धनञ्जय]

अजातशत्रु का वसन्तक दूसरे प्रकार का विदूषक है। अजातशत्रु की कथा से वसन्तक का कोई विशेष सम्पर्क या सम्बन्ध नहीं है, बल्कि वह सिर्फ मगध की राजकुमारी उदयन की रानी पद्मावती का एक दूत है।

हाँ, हमने ऊपर यह संकेत किया है कि विदूषक जाति के ब्राह्मण होते हैं, इसके दो मुख्य कारण हैं। सर्व प्रथम वह सम्राट का एक अन्तरङ्ग मित्र एवं विश्वसनीय पात्र होता है, क्योंकि वह विद्या, बुद्धि और विवेक की त्रिवेणी है, जिसके हेतु उसकी संगति से सम्राट को अनेक अवसरों पर अधिक लाभ होता है। द्वितीय, वह हास्य के सृजन में बहुत ही सहायता प्रदान करता है, क्योंकि उच्च वंश का समादृत ब्राह्मण होने के कारण जब वह रङ्ग-मञ्च पर गौरवहीन और अविवेकमय आचरण का निर्देशन करता है तब उसके चरित्र की विकृति पर आश्रित वैचित्र्य के हेतु हम ठठाकर हँस पड़ते हैं। विदूषक बसंतक भी कुछ ऐसा ही ब्राह्मण है जो हमें बीच-बीच में हँसाने का प्रयत्न करता है।

एक बात और। अजातशत्रु का वसन्तक—शापवदत्ता की भाँति पेटू है और इस प्रकार के पेटू विदूषक प्राकृत और संस्कृत नाटकों में भी वर्तमान हैं। भाषा के प्रत्येक विदूषक वसन्तक की 'जीभ अच्छा स्वाद लेने के लिए बनी हैं, इसके पेटूपन का दृष्टान्त आगे देते हैं।

'एक शब्द कॉमिक—हास्य—के बारे में लिखना है। वह यह कि वह मनोरंगिनी वृत्ति का विकास है। जिस जाति में स्वतंत्र जीवन की चेष्टा है वहीं इसके सुगम उपाय और रम्य परिहास दिखाई देते हैं। परन्तु यहाँ तो रोने से फुरसत नहीं विनोद का समाज में नाम ही नहीं फिर उसका उत्तम रूप कहाँ से दिखाई दे। अँग्रेजी का अनुकरण हमें नहीं रुचता, हमारी जातीयता ज्यों ज्यों सुरुचि सम्पन्न होगी वैसे-वैसे इसका शुद्ध मनोरञ्जनकारी विनोदपूर्ण और व्यंग्य का विकास होगा क्योंकि परिहास का उद्देश्य भी संशोधन है, साहित्य में नवरसों में यह एक रस है, किन्तु इस विषय की उत्तम कल्पनाएँ बहुत कम हैं। आज कल पारसी रङ्ग-मञ्च वाले एक स्वतंत्र कथा गढ़कर दो तीन दृश्य में फिर नाटक में जगह जगह उसे भर देते हैं जिससे कभी कभी ऐसा हो जाता है कि अतीव दुःखद दृश्य के बाद ही एक फूहड़ हँसी का दृश्य सामने उपस्थित हो जाता है, जिससे कुछ रस बना हुआ रहता है वह लुप्त होकर एक बीभत्स रसाभास उत्पन्न कर देता है। इसका परिपाक पूर्णरूप से होने नहीं पाता और मूल कथा के रस को बार-बार कल्पित करके दर्शकों को देखना पड़ता है। अन्त में, नाटक देख लेने पर, एक उत्सव या तमाशा दृश्य ही आँख में रह जाता है। शिक्षा का—आदर्श का ध्यान भी नहीं रह जाता। इसलिए हम ऐसे कामिक के विरुद्ध हैं।'[4]—नाटककार प्रसाद का यह विचार विचारणीय है। वे नाटक में कामिक का भद्दा रूप नहीं चाहते हैं क्योंकि जटिलताओं एवं विरोधमय अवसरों पर हास्योद्रेक करना सरासर भूल है। यही कारण है कि प्रसाद के नाटकों में हास्य का सर्वथा अभाव रहा है। हाँ, इनमें व्यंग्य की तीव्रता, मार्मिकता तो है, पर वह गम्भीर और

३—कामना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्पष्ट इतना है कि उससे हास्य-विनोद की उद्‌भावना ही नहीं होती। इसीलिए कवि प्रसाद के नाटकों में हास्य की क्षीण एवं अस्पष्ट रेखाओं का अंकन रहे, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। सुतरां, अकृत्रिमता, अस्वाभाविकता एवं नीरसता प्रकट हो तो प्रसाद दोषी नहीं ठहराये जा सकते हैं, क्योंकि लेखक ने स्वयं अपना विचार प्रकट कर दिया है।

इस नाटक में, हास्योद्रेक के लिए कौशाम्बी का सम्राट मगध-सम्राट का जामाता, उदयन का विदूषक वसंतक चुना गया है। उसके हास्य-विनोद के आधार-स्वरूप मगध का राजवैद्य तथा सम्राट का साथी जीवक का निर्माण हुआ है। इस नाटक में तीन अङ्क हैं, और प्रत्येक अङ्क में एक दृश्य वसंतक के लिए है। नाटकों में विदूषक का प्रयोग उद्देश्यपूर्ण होता है, क्योंकि नृपों एवं राजकुमारों के अन्तरङ्ग मित्र के रूप में रह कर स्वच्छन्दतापूर्वक राज-परिवार सम्बन्धी विभिन्न घटनाओं तथा मनोवृत्तियों की आलोचना करना, अभीष्ट-सिद्धि में सहायता-प्रदान करना, समय-समय पर प्रधान कथा के प्रवाह को क्रमबद्ध रखना, विनोद पूर्ण व्यंग्यों से जनता का मनोरञ्जन करना, और कुछ ऐसे प्रसंगों को अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप में सूचना देते जाना, जो कथा-प्रवाह से छूट गये हों, आदि इनकी मुख्य-विशेषताएँ हैं। कहीं-कहीं विदूषक पूर्ववर्ती तथा भविष्य में घटनेवाली घटनाओं का भी उल्लेख करते हैं। इसीलिए उन्होंने अपने विदूषक वसंतक का उपयोग 'अजातशत्रु' में किया है। कथा के साथ वसंतक छाया और छाया की भाँति लगा हुआ है, इसीमें उसकी स्वाभाविकता, रोचकता और सुन्दरता है। यह तो हुई विदूषक की बात।

हास्य की उत्पत्ति की लिए विकृत वेश, रूप, संकेत, चरित्र, परिस्थिति तथा वाक्य की सहायता ली जाती है, जिसमें परिस्थिति एवं वाक्यों का महत्व अधिक है, क्योंकि पाठकों के हृदय पर इसका प्रभाव चिरस्थायी रहा करता है। शब्दों और वाक्यों के प्रयोग के भिन्न-भिन्न ढङ्ग हैं और उसके भिन्न-भिन्न नाम भी हैं यथा वक्रोक्ति, विरोधाभास, श्लेष, वाक्यवृत्ति आदि। इनमें से वाक्यवृत्ति की मुख्यता अधिक है और इनके नाटकों में अधिकांश यही पाया जाता है।

अजातशत्रु में विदूषक वसन्तक का सर्वप्रथम आगमन प्रथम अङ्क के छठे दृश्य में होता है। यहाँ पर उसकी उपस्थिति समयानुकूल एवं साभिप्राय है। कौशाम्बी के राजकुल के अन्दर जो-जो घटनाएँ घट रही हैं, उसकी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हमें वसन्तक जीवक के साथ वार्तालाप से कराता है। इसके पूर्ववर्ती उदयन और मागन्धी के बीच जो वार्तालाप का आयोजन हुआ है, उसकी ओर भी संकेत है तथा जीवक को आप ही आप जिज्ञासा होती है, जिसका समाधान आगे वसन्तक करता है। जीवक कहता है--'सुना है कि कई दिन से पद्मावती के मन्दिर में उदयन जाते ही नहीं और व्यवहारों से कुछ असन्तुष्ट से दिखाई पड़ते हैं।' —(अङ्क १, दृश्य ६)

इसके अनन्तर जब वसन्तक आकर यह कहने लगता है—'अहा वैद्यराज! नमस्कार! बस एक रेचक और थोड़ा-सा वास्तिकर्म—इसके बाद गर्मी ठण्डी! अभी आप हमारे नमस्कार का भी उत्तर देने के लिए मुख न खोलिये। पहले रेचक प्रदान कीजिए। निदान में समय नष्ट न कीजिए।' —(अङ्क १, दृश्य ६)

इस अवतरण में एक विशेष प्रकार की शब्दावली और वाक्य-योजना के द्वारा हास्योद्रेक की प्रचेष्टा की गई है। इसमें वैद्यक के कुछेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग भी हुआ है, जिससे एक चमक आ गई, पर साधारण पाठक को इन शब्दों का मूल अर्थ समझना एक टेढ़ी खीर है। 'थोड़ा-सा वास्तकर्म—इसके बाद ठण्डी-गर्मी' में बीभत्स रस की बू आ गई है, जो हास्योत्पत्ति के लिए ऐसा प्रयास निकृष्ट माना गया है। वसन्तक के आने से जीवक मन ही मन ऊब उठता है और कहता है—'यह विदूषक इस समय कहाँ से आ गया। भगवान किसी तरह हटे।' जिस प्रकार जीवक के मन में वसन्तक के

४—विशाख की भूमिका: प्रथम संस्करण, पृ० सं० १०—११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति झुँझलाहट है उस प्रकार अगर कथा-प्रवाह के बीच ऐसे विदूषक आ जाते हैं तो दर्शक की इच्छा होती है कि वह शीघ्र ही रङ्गमञ्च से दूर हो।

वसन्तक फिर कहता है—'अजी, अजीर्ण है अजीर्ण। पाचन देना हो दो, अच्छी तरह जानते हैं कि वैद्य लोग अपने मतलब से रेचन तो अवश्य ही देंगे। अच्छा हाँ, कहो तो बुद्धि के अजीर्ण में तो रेचन ही न गुणकारी होगा? सुनो जी, मिथ्या आहार से पेट का अजीर्ण होता है और मिथ्या विहार से बुद्धि का। किन्तु महर्षि अग्निवेश ने कहा है कि इसमें रेचन ही गुणकारी होता है (हँसता है)....सुना है धन्वन्तरि के पास एक ऐसी पुड़िया थी कि बुढ़िया युवती हो जाय और दरिद्रता की केंचुल छोड़ कर मणामयी बन जाय। क्या तुम्हारे पास भी—रहूँ नहीं है? तुम क्या जानो।'

विचारा जीवक वसन्तक की बातों को नहीं समझता है और उसकी ये सब बातें एक रहस्य-सी प्रतीत होती हैं तब वह लाचार होकर पूछता है—'तुम्हारा तात्पर्य क्या है? हम कुछ न समझ सके।' —(अङ्क १, दृश्य ६)

वास्तव में साधारण पाठक या दर्शक भी जीवक की भाँति कुछ समझ नहीं पाते हैं। इसमें हमें क्लिष्ट साम्यों पर आधारित विवाद का दर्शन होता है, जो माथापच्ची करने की प्रेरणा देते हैं—यहाँ पाठक और दर्शक का मन खीझ उठता है और वह उठता है—'पट व्यर्थ है।'

हाँ, इसके पूर्व जीवक ने जो जिज्ञासा की थी, उसका समाधान वसन्तक इस स्थल पर करता है—'केवल खल-बट्टा चलाते रहे और मूर्खता का पुटपाक करते रहे। महाराज ने एक नई दरिद्र कन्या से ब्याह कर लिया है। मिथ्या विहार करते करते उन्हें बुद्धि का अजीर्ण हो गया है। महादेवी वासवदत्ता और पद्मावती जीर्ण हो गई हैं; तब कैसे मेल हो? क्या तुम उन्हें अपनी औषधि से उस विवाह करने के समय की अवस्था का नहीं बना सकते, जिससे महाराज इस अजीर्ण से बच जाय?'—यहाँ पर हास्य शब्दों पर अवलम्बित है।

शेक्सपियर के 'क्लाउन' या 'वफून' की तरह प्रसाद जी का विदूषक वसन्तक है और वह अपने महाराज उदयन तथा मगध-नरेश की व्यंग्यात्मक आलोचना भी करता है—'इसमें तो गुरुजनों का ही अनुकरण है। श्वसुर ने दो ब्याह किये, तो दामाद ने तीन। कुछ उन्नति ही रही।' तब जीवक कहता है—'दोनों अपने कर्मों के फल भोग रहे हैं। कहो, कोई यथार्थ बात भी कहने-सुनने की है या यही हँसोड़पन?' अब जीवक की बेचैनी, व्यग्रता एवं घबड़ाहट देखकर उसकी शान्ति के लिए परवर्ती घटनाओं का पूर्वाभास करता है—'बड़ी रानी, वासवदत्ता। पद्मावती को सहोदरा भगिनी की तरह प्यार करती हैं। उनका कोई अनिष्ट नहीं हो पावेगा। उन्होंने ही मुझे भेजा है और कहा है कि—'आर्यपुत्र की अवस्था आप देख रहे हैं, उनके व्यवहार पर ध्यान न दीजियेगा। पद्मावती मेरी सहोदरा है, उसकी ओर से आप निश्चिन्त रहें। कागज से समाचार भेजियेगा।' इस प्रकार विदूषक वसन्तक सन्देश वाहक का कार्य सम्पन्न करता है।

इसमें 'मूर्खता का पुटपाक', 'बुद्धि का अजीर्ण' आदि विरोधाभासों द्वारा हास्य का सृजन किया गया है, पर वास्तव में हमें हँसी नहीं आती है, बल्कि हँसी आने के बजाय माथे में दर्द होने लगता है। यही कारण है कि प्रसाद के विदूषक शेक्सपियर के क्लाउन से श्रेष्ठ नहीं ठहरते। एक बात गौर करने की यह है कि प्रसाद ने भी राजवैद्यों की खिल्ली उड़ाई है और शायद इसका कारण है—पाश्चात्य कलाविदों का प्रभाव। इस प्रकार के कलाविदों में डी० एल० राय और इलियट हैं।

अब हार्दिक मनोभाव एवं कथन के विरोध से उत्पन्न हास्य का एक उदाहरण लीजिये। यथा—

देवदत्त—'(कुछ बनता हुआ) यह झंझट भला मुझ विरक्त से कहाँ होगी। फिर भी लोकोपकार के लिए तो कुछ करना ही पड़ता है।'—यहाँ पर हास्य उत्पन्न करने के लिए यथोचित आंगिक अभिनय का भी सहारा लिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अनन्तर बसन्तक का दर्शन द्वितीय अङ्क के नवाँ दृश्य में होता है। यहाँ भी बसंतक और जीवक ही हैं। इस दृश्य के हास्य में कोई खास विशेषता नहीं है। यहाँ पर बसंतक और जीवक के बीच जो कथोपकथन है, उससे ज्ञात होता है कि राजा के समीपवर्ती और सहचर जीवक की ही आलोचना है।

वसंतक—(हँसता हुआ) तब इसमें मेरा क्या दोष ?

जीवक—जब तुम दिन-रात राजा के समीप रहते हो और उनके सहचर बनने का गर्व है, तब तुमने क्यों नहीं ऐसी चेष्टा की।

बसंतक—कि राजा बिगड़ जायँ ?

जीवक—अरे बिगड़ जाँय कि सुधर जायँ। ऐसी बुद्धि को...

बसंतक—धिक्कार है, जो इतना भी न समझे कि राजा पीछे चाहे स्वयं सुधर जायँ अभी तो हमसे बिगड़ जायेंगे।

जीवक—तुम क्या करते हो ?

बसंतक—दिन-रात सीधा किया करते हैं। बिजली की रेखा की तरह टेढ़ी जो राज शक्ति है उसे दिनरात सवाँर कर, पुचकार कर, भयभीत होकर, प्रशंसा करके सीधा करते हैं। नहीं तो न जाने किस पर वह गिरे। फिर महाराज ! पृथ्वीनाथ ! यथार्थ है ! आश्चर्य ! इत्यादि के ज्ञान से एंटपाक......। अङ्क २, दृश्य ६]

बसंतक की उक्ति सुन जीवक मन ही मन खीझ उठता है। और हास्य का उद्रेक वाक्य-योजना तथा विरोधाभास पर निर्भर करता है। आगे देखिये—

बसन्तक—परिहास नहीं अट्टहास। उसके बिना क्या लोगों का अन्न पचता है ? क्या बल है तुम्हारी बूटी में ? अरे जो मैं सभा को बनाऊँ; तो क्या अपने को बिगड़ूं ! और झाड़ू लेकर पृथ्वी देवता को मोरछल करता फिरूँ ? देखा, न अपना मुख आदर्श में—चले सभा बनाने, राजा को सुधारने। अंक २, दृश्य ६]

यहाँ पर बसन्तक का हास्य आंगिक अभिनय पर अवलम्बित नहीं है बल्कि उक्तियों पर। यह विरोधजनित हास्य है, क्योंकि झाड़ू से मोरछल और पृथ्वीदेवी से पृथ्वी देव को विरोध है। यही निदर्शन हुआ है। उसने फिर झाड़ू देता फिरूँ न कह कर पर्यायोक्ति के द्वारा 'फिर झाड़ू लेकर पृथ्वी देवता को मोरछल करता फिरूँ' कहा है, इसमें एक 'ध्वनि' है, जो हास्योत्पत्ति में सहायक है। इस अङ्क का महत्व सिर्फ बसन्तक की सिर्फ एक बात पर निर्भर है। उसने परवर्ती घटनाओं एवं परिस्थिति की सूचना दी है—'पद्मावती देवी ने कहा है कि आर्य-जीवक से कह देना कि जगत का कोई अनिष्ट न होने पावेगा; केवल शिक्षा के लिए यह आयोजन है। और, माताजी से विनती कह देंगे, कि पद्मावती बहुत शीघ्र उनका दर्शन श्रावस्ती में करेंगी।'

इसी अङ्क में वसंतक ने अपने पेटूपन की याद दिलाता है। वह राजा का एक अन्तरङ्ग मित्र होकर पेट पीटना आरम्भ करता है, जो कुछ कम हास्यास्पद नहीं है—यह कुछ हल्का हास्य है, जो साधारण जनता की रुचि के अनुकूल प्रतीत होता है। बसंतक युद्ध का होना ध्रुव बतलाते हुए कहता है—'......आक्रमण हुआ ही चाहता है। महाराज बिम्बसार को समुचित सेवा करने अब वहाँ हम लोग जाया ही चाहते हैं, पत्तल परसी रहे समझे न।'

जीवक—'अरे पेटू! युद्ध में तो कौवे गिद्ध पेट भरते हैं।'

बसन्तक—'और आपस के युद्ध में ब्राह्मण भोजन करेंगे—ऐसी तो शास्त्र की आज्ञा ही है क्योंकि युद्ध से तो प्रायश्चित लगता है।—अङ्क २, दृश्य ६]

इस उक्ति से हम ठठाकर हँस उठते हैं और इस प्रकार उनका हास्य परम्परानुकूल है।

तदनन्तर, तीसरे अङ्क के दृश्य में वसंतक का प्रवेश अकेले कराया जाता है। यहाँ पर वह प्रधान कथा के टूटे हुए प्रवाह का क्रम ठीक करता है। बसंतक के आने के पूर्व दो नागरिकों के वार्तालाप द्वारा—गौतम बुद्ध के प्रति द्वन्द्वी देवदत्त की मृत्यु कोशल के राजकुमार का पुनः युवराज बनाया जाना तथा मगध राज के अजातशत्रु से कौशल की राजकुमारी वजिरा के विवाह की सूचना—दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर बसंतक सिर्फ मागन्धी के जीवन के एक नये अध्याय का परिचय कराता है और कहता है—'फटी हुई बाँसुरी भी कहीं बजती है। एक कहावत है कि 'रहे मोची के मोची'। यह सब प्रहों की गड़बड़ी है, यह एक बार ही इतना बड़ा कांड उपस्थित कर देते हैं। कहाँ साधारण ग्राम्य बाला—हो गई थी राजरानी। मैं देख आया—वही मागन्धी तो है। अब आम की बारी लेकर बेचा करती है और लड़कों के ढेले खाया करती है।... महाराज ने वैवाहिक उपहार भेजे थे, सो अब तो मैं पिछड़ गया। लड्डू तो मिलेंगे। कुछ बासी होगा तो क्या—मिलेंगे तो।'—इतना कह चला जाता है। यहाँ पर फिर उसी प्राकृत और संस्कृत नाटकों के पेटू की याद आ जाती है—वसंतक उसी कोटि का है।

इस प्रकार अब हम देखते हैं कि गम्भीरता के कारण हास्य का चमत्कार कुंठित हो गया है। अजात शत्रु में, श्री शिखरचन्द जैन के शब्दों में—'हास्य एक कोने में दबा पड़ा है। प्रसादजी ने इसमें हास्य की सृष्टि के बसन्तक वैद्य को चुना है। इसलिये हास्य-वैचित्र्य तो मिलता है किन्तु 'रेचक', 'मूर्खता का पुटपाक' और 'बुद्धि का अजीर्ण' द्वारा जो हास्य है उसे हास्य न कह कर विनोद के कुछ कण कहना ही उपयुक्त होगा।' प्रो॰ रामकृष्ण शुक्ल के अनुसार—'बसन्तक के 'ऐं', 'किन्तु', 'परन्तु' या बुढ़िया को जवान बनाने वाली धन्वन्तरि की पुड़िया में कोई चुस्ती या स्फूर्ति नहीं मालूम होती।' बात भी यह है, क्योंकि 'इस हँसी में समवेदना और सहृदयता का अभाव है और हास्य तभी मधुर एवं सरल होगा जब सहृदयता एवं संवेदना का योग हो। इनके अभाव में हास्य शुष्क और व्यंग्य तीव्र हो जाता है।'

अजातशत्रु में उत्कृष्ट हास्य का अभाव क्यों है? जिसके उत्तर में कुछ कारण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

क—'अजातशत्रु' एक ऐतिहासिक नाटक है, जिसमें अतीत की टूटी लड़ियों को एक सूत्र में गूंथा गया है। इतिहास में कल्पना स्वतन्त्र गति से उड़ नहीं सकती है और ऐसे नाटक में समकालीन वातावरण उपस्थित करना पड़ता है। इसीलिए हमें ऐसे पात्रों को भरना पड़ता है, जिसका इतिहास से कुछ सम्बन्ध हो। यह नाटक 'संघर्ष के संधियुग' की वस्तु है, जिसमें हास्य-विनोद का पाया जाना अस्वाभाविक है, क्योंकि हास्य-विनोद शान्ति युग की वस्तु है।

ख—अजातशत्रु के पात्र दार्शनिक हैं और उसके वार्तालाप में दार्शनिक सिद्धान्त भरे पड़े हैं। वे सिद्धान्त गम्भीर तत्वों से अनुप्राणित हैं, जिसके कारण इसमें हास्य सुन्दर नहीं बन पड़ा है।

ग—अजातशत्रु की भाषा कवित्वमय है। भाव की दार्शनिकता के कारण इनकी भाषा क्लिष्ट हो गई है और भाषा की क्लिष्टता ही हास्य-विनोद की स्वाभाविक प्रकृति के विरुद्ध है। इसीलिए भाषा की दृष्टि से यह सबसे कठिन नाटक है, जिसमें समुचित हास्य का पूर्ण अभाव है।

घ—प्रसादजी वर्त्तमान जीवन के नैराश्य को देख कर ऊब गए थे और इतिहास का दामन थाम अजातशत्रु की रचना की। इसमें जीवन के गहनतम प्रश्नों का समाधान हो पाया है। यही कारण है कि इसमें हास्य-विनोद को फलने-फूलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। हम कविवर 'द्विज' के शब्दों में कह सकते हैं—

कैसे हँसू? हँसाने वाले,
अपने अब अपने न रहे।
सुख देने वाले वे मेरे
सोने के सपने न रहे॥
रहे न वे अरमान हिये में,
हुलसित आज हुलास नहीं।
अश्रु-विभाव को छोड़ हाय,
कुछ भी तो मेरे पास नहीं॥

बात भी सत्य है। अभी हास्य के सृजन करने का समय हमारे लिए वस्तु दूर है। बस!!

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजातशत्रु में हास्य-विनोद

श्री० कृष्णकुमार सिन्हा।

"It would be better for us to be once more a small outlandish people and yet be renowned for this spirit than to bestride the earth and lose our laughter in gloom, suspicion and hate."

—J. B. Priestley.

यों तो भारतीय साहित्य में हास्य-विनोद का नितान्त अभाव रहा है, जैसा कि कुछेक विद्वानों ने कहा है, फिर भी नाटकों में इसके दो चार छींटे अवश्य रहे हैं। नाटक जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति है और इसमें सुख-दुख, हर्ष-विषाद आदि का पूर्ण चित्र रहता है। मानव एकरस प्राणी नहीं है, वह नाटकों में विभिन्न चरित्र के पात्रों का निदर्शन चाहता है। इसीलिए हमारे आचार्यों ने नाटकों में भिन्न-भिन्न रसों को यथा-संभव स्थान दिया और इन्हीं रसों में से हास्य-विनोद को प्रश्रय भी मिला तथा इसकी निष्पति नाटकों में हुई।

वस्तुतः नाटकों में हास्य-विनोद का सामंजस्य क्यों होता है? इसकी एक कहानी है। प्राचीन काल में सम्राटों के मनोरंजन के लिए एक विदूषक रहा करता था, जो समय-समय पर उनका मनोविनोद करता था। वह जाति का ब्राह्मण तथा हाजिर-जवाब होता था और वह सम्राट के विश्वसनीय पात्रों में एक होता था। इस प्रकार वह दूध और पानी की तरह सम्राट के विश्वसनीय पात्रों में एक होता था। इस प्रकार वह दूध और पानी की तरह सम्राट के साथ मिला रहता था। तथा उसे कोई भी उनसे अलग नहीं कर सकता था। उस युग में यह नाटकीय उपादान राज-प्रासाद की दीवारों के अन्दर की वस्तु थी। सुतरां, उन प्राचीन नाटकों में विट, चेट, पीठ-मर्द आदि कई प्रकार के विदूषकों का निरूपण करते हैं। हाँ, उन विदूषकों का अब नाटकों में पाया जाना—कुछ-बुरा-सा अवश्य लगता है, क्योंकि सभी समय में इनका कार्य दांत निपोड़ना ही रहा है और इनका कोई दूसरा उपयोग नहीं।

आज युग ने पलटा खाया। नाटक राजकीय-सम्पर्क से नाता तोड़ मानव समाज तथा जीवन से अपना साहचर्य स्थापित किया। अब नाट्यकला का विधान बदल गया तथा उसके साथ-साथ मनोविज्ञान ने आकर अपना डेरा डाला, जिसके हेतु विदूषक नाटकों में एक फालतू पात्र समझा जाने लगा। विश्व का प्रत्येक मानव हँसता है, रोता है। इस भू पर कोई ऐसा प्राणी नहीं है, जो इस माया-मोह-ममता-मयी फेरों में न फँसा हो। इसीलिए विदूषक का सदा हँसना अस्वाभाविक जँचता है। यही कारण है कि आजकल ऐसे पात्र नाम मात्र के लिए रहते हैं

यथार्थतः प्रसादजी की प्रवृत्ति हास्य-विनोद की ओर नहीं रही, क्योंकि 'दार्शनिक के गहन चिंतन में संसार की करतूतों को घुरता है, और करुणा की पोषक दुःखानुभूति रहती है'[1]। उनका दार्शनिक चिंतन रहा है कि 'फूल हँसते हुए आते हैं, फिर मकरन्द गिर कर मुरझा जाते हैं, आँसू से धरणी भिगोकर चले जाते हैं। एक स्निग्ध समीर का झोंका आता है, निश्वास फेंक कर चला जाता है[2]।' गुलामी के हेतु उनके हृदय में करुणा का गृह बन गया है, और इसी पराधीनता के कारण 'देश के बच्चे चिंताग्रस्त और दुर्बल दिखाई देते हैं। स्त्रियों के नेत्रों में विह्वलता सहित और भी कैसे-कैसे कृत्रिम भावों का समावेश हो गया है। व्यभिचार ने लज्जा का प्रचार कर दिया है। छिप कर बातें करना, वीरता नाम के किसी अद्भुत पदार्थ की ओर अंधे होकर दौड़ना

१—प्रसाद का नाट्य-चिन्तन, २—चन्द्रगुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हँसि अभिमन्यु कह्यो हेर फेर चौसर के,
देखो बात ! देत काम सामने न सर के।

और कर्ण से—

प्रखर-प्रताप-दाप अग्नि ज्वाल जैसे ऐसे,
जामदग्नि सौं जो सिख्यो सो हमें सिखायौ तौ।

क्या इससे यह ध्वनि नहीं निकलती कि तुमने परशुराम से जो शस्त्र विद्या सीखी थी, शाप के कारण उसका तुम सफल प्रयोग नहीं कर सकते। तुम्हारे सब प्रयास व्यर्थ जाएँगे।

अपनी हीनता को देखकर विपक्षी उकता गये। अकेला एक पार्थ होता तो उसको साध भी लेते किन्तु जब दो दो पार्थ (पार्थ का पुत्र भी पार्थ समान) हो गया तब जीने की आश कहाँ थी?—

आधौ हूँ न साधौं सधौ होत एक पारथ कै,
द्वै द्वै भये पारथ कहाँ सौं पूरि परि हैं।

मनुष्य सुन्दरता का उपासक है। यही सुन्दरता की भावना कलाकार को अपनी कृति को अलंकृत करने के लिए प्रोत्साहित करती है। शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों प्रकार के अलंकारों की छटा 'अभिमन्यु-वध' में दर्शनीय है। अनुप्रास, यमक, श्लेष, आदि अलंकार किसी एक पद को उठाकर सहज में ही पाये जा सकते हैं। समता मूलक अलंकारों में कवि ने उपमा का सफल

(पृष्ठ २८४ का शेषांश)

सुप्रसिद्ध ही है। पन्त की 'पल्लव' भूमिका में कविता की परिभाषा 'चित्र-राग' भी सब जानते हैं। कीट्स और उसके मित्रमण्डल का 'एलगिन मार्बल्स' नामक छोटी-छोटी मूर्तियों से प्रभावित होना तथा प्री-राफेलाइट शाखा के कवि-चित्रकार शिली तथा रोजैटी, मौरिस बर्नजोन्स की मैत्री भी साहित्य के इतिहास की वस्तु हो गई है।

वस्तुतः क्या भव्यता और क्या कोमलता, क्या क्लासिकल और क्या रोमांटिक आदर्श मनः संवेद्य हैं। अतः प्रश्न हो सकता है कि उसका प्रभाव तो व्यक्तिशः भिन्न होगा। उनमें एक मानदण्ड कैसे रहेगा? वह तो रुचि-संस्कार का अथवा रुचि-परिष्कार का प्रश्न है—जो कि बालमनोविज्ञान अथवा शिक्षणशास्त्र के क्षेत्र की वस्तु है। साहित्य-समालोचना से उसे क्या? परन्तु यह बात ऐसी नहीं है। मम्मट-विश्वनाथ ने काव्य के जो तीन गुण—प्रसाद, माधुर्य, ओज बतलाये हैं, उनके अलावा भरत, दण्डी, वामन आदि ने श्लेष, समता, सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता, कान्ति और समाधि ऐसे सात गुण और बतलाये हैं। यह गुण समुच्चय साहित्य की भाँति ललित कलाओं में भी आवश्यक होता है। सौंदर्यनिर्मिति में ये सभी गुण सहायक हैं। सभ्यता के विकास के साथ-साथ अभिरुचि भी। स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होती जाती है। दार्शनिक ए-एन-वाइट हेड अपने 'एडवेंचर आफ आइडियाज' में पृष्ठ ३१ पर कहते हैं कि—

'When there is progress in the development of favourable order, we find conduct protected from relapse into brutalization, by the increasing agency of ideas consiously entertained.'

रुचि भी संस्कृति के इतिहास के अनुसार उत्तरोत्तर अधिक सर्वव्यापी बनती जाती है। सौन्दर्य कल्पना भी इसी प्रकार परिवर्तन होना अवश्यम्भावी है।

उदाहरणार्थ एक आधुनिक अंग्रेजी कविता लें। रछेल फिलरट्प की 'मेला' नामक चार पंक्ति की कविता है, जिसका गद्यानुवाद यों होगा—

"मेला एक लड़ाई है : कुछ मुनाफे के लिये लड़ रहे हैं; कुछ निरे सुख के लिये कुछ दुख को ठगने के लिये लड़ रहे हैं; मगर वह मिचमिची आँखों वाली बुढ़िया, जिसकी आवाज चाकू जैसी है, तार के बने बन्दरों की टोकनी लिये खड़ी है—वह जीने के लिये लड़ रही है।"

इसमें यदि कोई सौन्दर्य है तो उसे प्राचीन रीति-शास्त्रीय मानों से भिन्न मानों से जाँचना होगा। इसमें ओजात्मकता है—परन्तु उसका सौन्दर्य एक स्नैप या जल्दी में बनाये पेंसिल स्केच का है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोग किया। अलंकार की सहायता से कल्पना द्वारा कितना प्रभावोत्पादक चित्र सामने खड़ा होता है।

तीरनि के पंजर में तमकत वीरनि कौ,
कीरति लौं आनि राम राम ही पढ़ैहौं मैं।

तथा—

गात छलनी सो छेदि लीन्हो है।

और—

मोह आदि वादि कैं निभाहि देति जैसे भक्ति,
तैसीहि शक्ति दीन्ही काटि आव्रति अधर में।

अभिमन्यु के बाण का वर्णन करते हुए 'सरस' ने सुन्दर उत्प्रेक्षा की है—

मानो पंखवान उड़ि ऊपर फनीस फेरि,
फुफकत फारि तरु बिल में बिलान्यो है।

इसी प्रकार दुशासन के आहत लोहित शरीर पर—

'सरस' बखानैं परयो रथ पै अचेत ऐसो,
फूलो तरु किंसुक कस्यो ज्यौं परयौ पीनो है।

तलवार पर 'वाहिनी' का रूपक बाँधकर कवि ने सुन्दर अभिव्यक्ति की है—

जीवन नवीन पाय धीर धरा धारिनी सौं,
बढ़ि प्रतिकूलनि पै चढ़ि हहरानी है।
'सरस' बखानै, को प्रमानै वक्र चक्र चाल,
काल की सहोदरी महोदरी रिसानी है॥

किन्तु कहीं पर रूपक भाव वहन में असमर्थ भी दिखाई देते हैं। 'प्रेम-पय' 'कपट-खटाई' 'द्वेष-दधि' कहना कुछ हद तक ठीक है किन्तु 'नवनीत-विष' जैसा प्रयोग बहुत खटकता है—

प्रेमपय बन्धुता कौ कपट-खटाई पाय,
द्वेष-दधि खोटी लै खटाई जन्यो घर में।
'सरस' बखानै, सोई शेष की रई सौं पुनि,
फूटि फैलि आयौ ह्वै अनी कौ सर कर में॥
बहुत बिडोलित विषैलौ ह्वै महीपन लै,
जायो नवतीत-विष, जैसौ विष धर में।
तासो वीर बालक सुभद्रा कौ लड़ैतौ लाल,
ह्वै विहाल सोयो परयौ जीवन समर में॥

विष से भले ही कोई मर जाय किन्तु नवनीत से तो पुष्ट ही होगा। नवनीत में विष का गुण कहाँ?

इसी प्रकार—

जौं लौं धर्म धूम मसक करैंगे कहा?

में धर्म को धूम्र का रूप देना सहसा अनुचित जान पड़ता है।

'समुद्र' तथा 'राजै है' के साथ तुक मिलने के लिए 'उदर' को 'उद्र' और 'गरजे है' को 'गराजे है' जैसे प्रयोग इस काव्य में कम ही मिलेंगे। व्याकरण के नियमों का साधारणतः पालन हुआ है किन्तु कवि ने 'कृतता' के फेर में पड़ कर मुहावरे की नैसर्गिक शोभा का अन्त कर दिया है। साधारणतया 'नौ दो ग्यारह' वाक्यांश बहुत प्रचलित है किन्तु कवि ने उसे 'नौ दो अर्ध वायस' के रूप में रखकर उसकी भाव-गरिमा को नष्ट-सा कर दिया है।

वैसे तो 'सरस'जी का काव्य सरस ही हो पड़ा है किन्तु कहीं-कहीं पर नामों के समझने में क्लिष्टता का विचार हो आता है। नाम की उन्होंने प्राचीन शैली को ग्रहण किया है—

नट राजानुजा नन्दन, सकसुत नन्द, सत्य साँची सुत, तमारिज आदि। एकाध स्थल अस्पष्ट भी प्रतीत होते हैं।

'अभिमन्यु-बध' की भाषा शुद्ध एवं सुष्ठु व्रजभाषा है। प्रान्तीय प्रयोगों से बचने का प्रयत्न किया गया है। व्रजभाषा की स्वाभाविक मधुरता 'सरस'जी की कविता में सर्वत्र है।

'अभिमन्यु वध' की कथा उसी रूप में ग्रहण की गई है जिस रूप में कवि को महाभारत से मिली। उसे व्यक्त करने की शैली भी प्राचीन ही है उसमें नवीनता नहीं कहीं पर ऐसे संकेत अवश्य मिलते हैं कि कवि श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' से परोक्ष या अपरोक्ष रूप से प्रभावित है। कहीं पर कवि उनकी शैली का अनुकरण करता हुआ भी दिखाई देता है। 'अभिमन्यु बध' के 'खलबल भारी मचैगी जब'' 'विरट घनाली घिर आयगी' तथा 'जात दुरि जोवन दुरजोधन काह तू, तोसो वैर

(शेष पृष्ठ ३१२ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी पर प्राकृत तथा अपभ्रंश का प्रभाव

श्री० सत्येन्द्र एम० ए०

हिन्दी भाषा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इनकी सीमाओं पर जब ध्यान देते हैं तो पश्चिम में पञ्जाबी का राज्य है, उत्तर में पहाड़ी बोलियाँ हैं, पूर्व में बिहारी और बङ्गाली घेरे हुए हैं। दक्षिण में गुजराती मराठी लगी हुई हैं। अतएव जब भाषाओं के प्रभाव का प्रश्न उपस्थित होता है तो सबसे पहले आर्य-भाषाओं के कुटुम्ब की भगिनि-भाषाओं का पारस्परिक प्रभाव ही ध्यान आकर्षित करता है। परन्तु इतना ही नहीं, आर्य भाषाएँ, द्राविड़ी को खदेड़कर जमी हैं, उस द्राविणी का, तथा मुण्डा भाषा का प्रभाव भी कुछ न कुछ पड़ा होगा। फिर आधुनिक देश-भाषाएँ उन क्षेत्रों में फली फूली हैं जिनके शिक्षित और शिष्ट समुदाय में संस्कृत के प्रति सदा सम्मान बना रहा है, और जो उसे देववाणी मान कर सदा पूज्य भावना से देखते रहे हैं। फिर प्राकृत और अपभ्रंश तो उसके अवतार की सीढ़ियाँ ही हैं। इसके अतिरिक्त फारसी, अरबी, फ्रैंच, पोर्चुगीज तथा अँगरेजी आदि विदेशी भाषा भाषियों का अनेकों राजनैतिक तथा व्यापारिक कारणों से सम्पर्क रहा है, फिर उनका प्रभाव भी क्यों न पड़ता। अतः भाषा पर प्रभाव पड़ने का प्रश्न बहुत ही विस्तार वाला, गम्भीर, तथा महत्वपूर्ण है। उसे सुविधा के लिए निम्न भागों में बाँट सकते हैं:—

१—प्राकृत तथा अपभ्रंश का प्रभाव

२—संस्कृत का प्रभाव

३—भारतीय आधुनिक आर्य-भाषाओं का प्रभाव

४—भारतीय अनार्य भाषाओं का प्रभाव

(a) द्रविड़ (b) मुण्डा।

५—मुसलमानी भाषाओं का प्रभाव

६—यूरोपियन भाषाओं का प्रभाव।

यहाँ हम केवल प्राकृत और अपभ्रंश के प्रभाव की चर्चा करेंगे।

एक दृष्टि से तो प्राकृत और अपभ्रंश का प्रभाव 'हिन्दी' पर कोई प्रभाव नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वे तो हिन्दी की माता ही है। फिर भी संक्षेप में हम यह देख सकते हैं कि हिन्दी में अपभ्रंश के कौन से गुण आये हैं।

सबसे पहले उच्चारण सम्बन्धी प्रभाव देखेंगे।

१—पाली और प्राकृत में 'ऋ' संयुक्त मात्रा का लोप हो जाता है—जैसे तृणं—तिणं Pali, तिन (in तिनका) हिंदी। उसी प्रकार हिन्दी में भी लोप हो जाता है। यथा, मिट्टी (मृत्तिका) बुड्ढा (वृद्ध) पीठ (पृष्ठ), माता (मातृका) भाई (भ्रातृक) २, संस्कृत ३ और उ का पाली में 'ए' और 'ओ' द्वित्व व्यञ्जन के पूर्व हो जाता है। ऐसा हिन्दी में भी मिलता है यथा मोल (मूल्य), मोथा (मोस्ता-एक घास) मोंगरा (मुद्गरः), पोथा-पोथी (पुस्तकम्) सेंदुर (सिन्दुरः), कोख (कुक्षि), कोढ़ (कुष्ठम्) तोंद (तुन्द), बेंदी (बिन्दुः), छेद (छिद्र), लेप संभवतः लिप्त) सेंध (सन्धि)।

३—ऊपर के जैसे स्थलों में पाली और प्राकृत में 'ए' और, 'ओ' ह्रस्व बोले जाते हैं। हिन्दी में भी अनेक स्थलों में यह प्रवृत्ति पायी जाती है, हालाँकि हिन्दी में अधिकांश ये दीर्घ हैं। लघु ऐसे स्थलों पर जैसे

बिराना or	बेराना	(विडम्बन)
बिहान or	बेहान	(विमान)
नेवता—	(निमंत्र)	
सोहर—	(सुखकर)	
सुहावन—	सोहावन	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्राण— मोहरा
उखलण— ओखल

४—संस्कृत की दीर्घ "ई" और "ऊ" प्राकृत में 'ए' और 'ओ' हो जाती है। हिन्दी में भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं:—

विभीतक—Pr. बहेड़ओ—H. बहेड़ा
ताम्बूल—Pr. तम्बोल—H. तमोल (in तमोली)

५—प्राकृत में कुछ स्थलों में 'इ' 'अ' हो जाती है। हिन्दी में भी यह कहीं-कहीं मिलता है :—

हरिद्रा	H.	हलदी
प्रतिच्छाया	H.	परछाहीं
परीक्षा	,,	परख
निरीक्षण	,,	निरखता
विष्किर	,,	बिखरना
विहर	,,	बहलना
विभूति	,,	भभूत
बधिर	,,	बहरा

परिधान (Pr. परिहाण) पहरना।

६—संस्कृत के ऐ और औ प्राकृत में 'ए' और 'ओ' हो जाते हैं। हिन्दी ने भी उन्हें स्वीकार किया है:

गैरिक—	Pr.	गेरिअ	H.	गेरू
कैवर्त	,,	केवट्ट	H.	केवट
तैल	Pr.	तेल	H.	तेल
सैन्धव	,,	सेन्धव	,,	सेंधा
सौभाग्य	,,	सोहाग	,,	सोहाग, सुहाग
पौत्र	,,	पोत्त	,,	पोता
मौक्तिकम	,,	मोत्तिअं	,,	मोती
गौरः	,,	गोरो	,,	गोरा

७—प्राकृत में संस्कृत के 'अय' और 'अव' 'ए' और 'ओ' में बदल जाते हैं। हिन्दी में इसी के अनुकूल—

नम	से	'ले'
त्रयस्त्रिंशत	से	तेतीस
कदलम	से	केला
लवण	से	(लोण) नोन
बदर	से	बेर

यही प्राकृत का प्रभाव और भी अनेकों हिन्दी शब्दों में दृष्टिगत होता है:

(अप)	मअण or मयण	H.	मैन
	रजनीर (अणी)	,,	रैन
	नयन	,,	नैन
	मय	,,	मै

जय = जै
शत = सै
वचन = बैन
बदन = बैन
(अप) धवल = धौला
नवशिक्षित = नौसिख
भवन = भौन
कवल = कौर
नवनीत = नौनी (लौनी)
कपर्दिका (Pr. कवड्डिआ) कौड़ी
सपत्नी (Pr. सवत्ती) सौत
भ्रमर (Ap. भँवर) भौंरा
समर्प (Ap. संवप्प) सौंप

८—प्राकृत में एक शब्द के अन्तर्गत कई स्वर आपस में मिल जाते हैं, उसी प्रकार हिन्दी में भी हमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं—

वल्लि—Pr. वेल्ली H. बेल
इक्षु—Pr. उच्छू H. ऊख
शय्या—Pr. सेज्जा H. सेज

९—प्राकृत में एक शब्द में आने वाले एक से स्वरों में परिवर्तन हो जाता है, और बहुधा उनमें से एक 'अ' स्वर युक्त हो जाता है : इसके उदाहरण भी हिन्दी में मिलते हैं :

विभीतक—बहेड़ा
हरितकी—हरड़ या हर्रे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुकुट –(Pr. मउड) H. मौर
शिथिल (Pr. सढिलं) H. ढंला

इनके अतिरिक्त इसी नियम के अनुकूल नये शब्द भी बने हैं :

पुत्रवधू—पतोहू
सुपुत्र—सपूत
पुरुष—पुरखा

१०—प्राकृत में यह स्वभाव है कि कहीं-कहीं शब्द के अन्तर्गत एक वर्ण का स्वर दूसरे वर्ण के स्वर से स्थान बदल लेता है। हिन्दी में इसके भो उदाहरण हैं :

वृश्चिक—बिच्छू
एक (Pr.) अकेला
अङ्गुली (Skr.) उँगली
मत्त Pr. (मृत्यु) मोत (यहाँ दूसरे वर्ण का 'उ' पहले वर्ण के 'अ' से मिलकर 'औ' हो गया)
हलु Pr. (लघु Skr) हौले
विन्दु (Skr.) बूँद
मस्सू (Pr.) श्मश्रु (Skr) मूँछ
हरिण (Skr.) हिरन
चंचु (Skr.) चोंच

११—प्राकृत में किसी-किसी यतिगौरव (Accent) के कारण कोई शब्दांश दीर्घ हो जाता है, कोई ह्रस्व, हिन्दी में भी इसके उदाहरण मिलते हैं :

प्रतिपदा (Pr. में पाडिवो) Hindi में पड़िवा
सदृक्षः (Pr. सारिच्छो or सारिक्खो) H. सरीखा
गम्भीरः (Pr. गहिरो) H. गहिरा
कुमार (Pr. कुमरो) H. कुँअर।

१२—प्राकृत में कभी-कभी संज्ञा का कोई विशेष अर्थ प्रकट करने के लिए अन्त में 'क' Suffai लगादी जाती थी। ऐसा किसी-किसी संज्ञा के साथ ही होता था। और यह 'क' क्षुद्रता, घृणा, कोमलता, अज्ञातत्व, प्रतिसादृश्य को सूचित करने को लगाया जाता था।

हिन्दी में जो कभी-कभी एक शब्द के अकारान्त और आकारान्त शब्द मिलते हैं, जिनमें आकारान्त शब्द विशेषता द्योतक होता है, वह इसी 'क' का प्रभाव माना जा सकता है : जैसे—

डोर = डोरा, सीने का डोरा जो कि पतला होता है।
फाँस = फाँसा लोटा में लगाने का फाँस

१३—प्राकृत में 'व' 'उ' हो जाता है। इस नियम का चलन हिन्दी में भी दीखता है—

ध्वनि	(प्रा० झुणी)	H. धुनि
स्वन		H. सून
सुवन		H. सून
श्वसुर		H. ससुर
स्वर		H. सुर
ज्वर		H. जुर
द्वार		H. दुआर
स्वभाव		H. सुभाउ
परमेसुर		H. परमेश्वर

केवल संस्कृत शब्दों का 'व' ही इस प्रकार Hindi में नही बदलता वरना प्राकृत में आनेवाला 'व' भी हिन्दी में अपना रूप परिवर्त्तन करके 'उ' अथवा 'ओ' हो जाता है। जैसे—

भाद्रपद Pr. भद्दवअ = भादो
क्षप Pr. खव = खो (ना)
क्षुप Pr. छिव or छुव छू
अनपेक्ष (क) Pr. अणवेक्ख [अ] = अनोखा
निमन्त्र (कः) Aph. निवंत्त [उ] = नौता or नेवता
पूर्णिमा Aph. पुण्णिवां = पून्यौं, पूनों
संमुख Aph. संमुंह = सौंह
समर्प Aph. सवंप्प = सौंप
गोपाल Pr. गोवाल = ग्वाल, गुआल।

१४—प्राकृत में वैयाकरणों के मतानुसार केवल तीन ऐसे उदाहरण हैं जिनमें 'क' 'ग' में परिवर्तन हो जाता है। इनमें से एक हिन्दी में भी मिलता है :

कन्दुक = गेन्दुअ = H. गेंद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि सीधे प्राकृत से आने वाले, इस नियम के अनुकूल परिवर्तित शब्द तो Hindi में नहीं मिलते, परन्तु इस नियम का चलन पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगत होता है: यथा:

सकल or सकलकः	Hindi	सगरो or सिगरो
बक		वग or बगला
पंक्ति		पंगत
प्रकट		प्रगट, परगट
काक		काग
लोकः		लोग
शाकः		साग
शकुन		सगुन
शोकः		सोग
वक्रक		विंगा

१५—प्राकृतों में अनारम्भ का ट जब एक स्वर के बाद आता है तो 'ड़' में बदल जाता है। प्राकृत के ऐसे उदाहरण हिन्दी में भी मिलते हैं: यथा:—

घटकः	घड़ा
घटिका	घड़ी
घोटकः	घोड़ा
कपाट	किवाड़
कटु	कड़ुवा
कटकम्	कड़ा
शाटिका	साड़ी
वट	बड़
त्रोट	तोड़ (ना)
स्फोट	फोड़ or फूट
पाट कीटकः	कीड़ा

१६—प्राकृत में मूल 'त' ट हो जाता है वह फिर 'ड' हो जाता है, हिन्दी में भी प्राकृत के यह शब्द मिलते हैं:

प्रतिवेशी	=पड़ोसी
प्रतिपदा	=पड़िवा
हरीतकी	=हरड़
पत	=पड़ (ना)
उत्खात	=उखाड़ (ना)

१७—शौर सेनी में 'त' के स्थान में जहाँ 'द' हो जाता है, उसी के अनुकूल हिन्दी में भी कुछेक उदाहरण मिलते हैं यथा

पत =पद्ध (पद्ध पाथर पै टूटि पड़ी)

१८—प्राकृत में अनारम्भ का 'प' व हो जाता है। हिन्दी में भी इस नियम का प्रभाव मिलता है।

वापी	Pr. बावी	H बाव (in बावड़ी)
कपाट	Pr. कवाड़	किवाड़
प्राप	पाव	पावना 'ना' or पाना
प्रस्थाव	पट्ठाव	पठावा'ना' or पठवाना
ताप	ताव	ताव 'ना' or ताना
गोपाल	गोवाल	ग्वाल
कच्छपः	कच्छवो	कछुआ कछूआ
सपत्नी	सवत्ती	सवत or सौत

१९—प्राकृतों में 'ठ' 'ढ' हो जाता है, हिन्दी में इस नियम का प्रभाव निम्न उदाहरणों से विदित होगा।

पठ	Pr. पढ	H. पढ (ना)
पीठक	पीढअ	पीढ़ा
मठ	मढ	मढ़
दंष्ट्रा	दाढ़ा	डाढ़
लुठ		लुढ़ना
कुष्ट	कट्ठ	काढ़ (ना)
कुष्ट	कुठ	कुढ़

२०—प्राकृत में 'ड' 'र' अथवा 'ल' में हो जाता है। हिन्दी में प्राकृत के उदाहरण तो मिलते ही हैं परन्तु यह नियम स्वतन्त्रतापूर्वक चलता दिखाई देता है :

तडाग	Pr. तलाअ	H तलाब
पीड	पील	पिलना
प्रतिच्छाया	परिछाँआ	पड़िछाईं
विडम्बन		विराना
अट्टालिका		अटारी
श्यामलक		साँवरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्लाघ	सलाह	सराह (ना)
ज्वाल		बारना (जलाना)
दुर्लल		दुलार

२१—प्राकृत में ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जिनमें केवल 'ह' रह जाता है। हिन्दी में भी ऐसे कम उदाहरण नहीं।

यथा :

	मुख	मुँह
	नख	नुंह, नह
	शेखरकः	सेहरा
	सखी	सहेली
	सुखकर	सोहर
	आखेट	अहेर
घ–ह—		
	मेघ	मेह
	श्लाघ	सराह
	प्राघुण	पाहुन
थ–ह	नाथ	नाह
	मथ	मह
	कथ	कह
ध–ह	बधिर	बहिर
	दधि	दही
	साधु	साहु, साह
	वधू	बहू
	परिधा	पहिरना (विपर्यय से)
भ–ह	प्रभा	पह (पौ)
	विभात	विहान
	शुभ	सोह (ना)
	सौभाग्य	सोहाग
	प्रत्यभिज्ञाना	पहिचान
	सुलभ	सहल

२२—अबतक प्राकृत के उन प्रभावों का वर्णन किया गया जो प्राकृत में उच्चारण लाघव के कारण विशेषता पैदा कर देता है, और जो प्राकृत ने हिन्दी को दिया है, परन्तु बहुत से ऐसे भी नियम प्राकृत वर्त हुए मिलते हैं जो उच्चारण लाघव के कारण नहीं वरन् उच्चारण-स्वभाव के कारण हैं। और इस स्वभाव का प्रभाव प्राकृत से हिन्दी में भी आया है।

प्राकृत में यह देखा गया है कि 'दन्त्य' 'मूर्धन्य' हो जाते हैं। हिन्दी में भी प्राकृत का यह स्वभाव इन उदाहरणों से जाना जा सकता है।

Skr.	Pr.	Hindi.
विभीतक	बहेडओ	बहेडा
पत	पड	पड़ (ना)
दंश	डस	डस (ना)
शद	सड	सड़ (ना)
दोला	डोला	डोला
दण्ड	डण्ड	डांड, डण्डा
दह	डह	डाहना
तिलकः		टिकली
दल		डाल
तिर्यक		टेढ़ा
स्थाणु	प्रत्यर्थ के साथ	ठूंठ
दंष्ट्रा		डाढ़
धृष्ट		ढीठ
दृष्ट		डीठ, दीठ
प्रति		पड़ (in) पड़ोसी
दर		डर (ना)
दर्भ		डाभ
मृत्तिका		माटी
वृद्ध		बुड्ढा
कैवर्त		केवट
उद्वर्तन		उबटन

२३—शौरसेनी तथा मुख्य प्राकृत में संस्कृत के श और ष बदलकर 'स' हो जाते हैं। यह नियम हिन्दी में भी मिलता है—

दृश	दिस (दीसना)
शृगाल	सियार
शृङ्ग	सींग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषिः	किस (नई)
प्रावृष	पावस
शुण्ड	सूंड
मनुष्य	मानुष
उपविश	बैस
महिषी	भैंस
सराध (द)	श्राद्ध
परिवेष	परोस
सलाई	सलाका
श्यामलक	साँवला
शेखर	सिहरा
शाला	सार
शल्य	साल (नटपाल विहारी)
शृङ्खला	साकल
शुष्क	सूख
पिष	पीस (ना)
शय्या	सेज

२४—पानी में कुछेक ऐसे उदाहरण हैं जिनमें 'श' 'छ' हो जाता है: यथा शकृत से छक, उसी नियम की अनुकूलता हमें हिन्दी के भी एक दो शब्दों में दीख पड़ती है।

यथा

शल्ल		छाल
शाव	Pr. छाव	छौ (ना) ग्राव छौ

२५—हिन्दी में 'ष' का उच्चारण बहुधा 'ख' होता है। शुक्ल यजुर्वेद की मध्यम दिन शाखा सदा 'ष' का उच्चारण 'ख' की तरह करती थी, हिन्दी का यह उच्चारण उसी के प्रभाव के कारण है।

२६—प्राकृत में एक स्वर अथवा अघोष साथी घोष के प्रभाव से सघोष हो जाता है। इसके कुछ उदाहरण हिन्दी में भी मिलते हैं।

कासित	खाँसी
परशु	फरसा
पाश	फाँस
निर्वाह	निभाना
कृष्यते	खिसना
अस्थि	हड्डी
बाष्प	भाप
वेश	भेष
बुस	भूसा

२७—कभी-कभी प्राकृत में आघोष अकारण ही हो जाता है। इसके कुछेक उदाहरण हिन्दी में भी सँघोष मिलते हैं।

कर्पर Pr. खप्पर H. खप्पर और खपरा

२८—प्राकृत में शब्दों में व्यंजनों का विपर्याय हो जाता है। इसके उदाहरण हिन्दी में भी मिलते हैं :

लप्तुक	Pr. हलुअ	H. हौले
प्रत्यभिज्ञा (ना)	„ पच्चहिआण	„ पहिचानना
परिधान	„ परिहाण	„ पहिरना
सुलभ	„ सुलह	„ सहल

२९—प्राकृत में कभी कभी 'दन्त्य' 'तालक' हो जाते हैं चाहे इनके बाद 'य्' अथवा 'व्' भले ही न हों। जैसे

Skr. वादयति	H. बजाना
श्वापद्	सावज, साउज
धिक्	छि

३०—प्राकृत में क्ष बदल ख, किंव अथवा 'छ' हो जाता है।

हिन्दी में तीनों प्रकार के रूप मिलते हैं।

क्षण	Pr. खरग	H. खिन• छिन• छन
मक्षिका	मक्खिआ / मच्छिआ	मक्खी
कुक्षि	कुच्छि / कुक्खि	कोख
क्षुच		
क्षेत्र	छेत्त	खेत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वत्स	बच्छ	बछ (ड़) बच्चा
मत्स्य	मच्छ	मछ, माछ, (माछी, मछली)
उत्संग	उच्छङ्ग	उछङ्ग

३१—प्राकृत में कभी कभी क्ष, 'ज्झ' अथवा 'झ' में हो जाता है।

क्षर	Pr. ज्झर	H. झर (ना)
क्षीण	,,	झीन (पतली)

३२—प्राकृत में पूर्वागत 'र' के कारण 'दन्त्य' मूर्धन्य हो जाता है, यह हिन्दी में भी मिलता है।

वर्ध	Pr. वड्ढ	H. बढ़ना
वर्धक-कि	वड्ढइ	बढ़ई
छर्द	छड्ड	छाड़ना, छोड़ना
कर्त्त	कट्ट	काटना
उद्वर्तन	उव्वट्टन	उबटन
कैवर्त	केवट्ट	केवट
सार्ध	सड्ड	साढ़े, साढ़

३३—प्राकृत में जहाँ ऊपर के उदाहरणों में संयुक्त वर्ण का अन्तिम अक्षर बना रहता है और पूर्व वर्ण लुप्त हो जाता है, वहाँ कुछ ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ पूर्व वर्ण ही रहता है और अन्य लुप्त हो जाता है। यथाः

भग्न [कः]	Pr. भग्गओ	H. भागा
लग्न	लग्ग	लाग
नग्न (कः)	नग्ग (ओ)	नंगा
रश्मि	रस्सि	रस्सी
योग्य	जोग्ग	जोग
शून्य	सुण्ण	सून
मन्य	मण्ण	मान
व्याख्यान	वक्खाण	बखान
Skr.	Pr.	H.
अरण्य	रण्ण	रान
व्याघ्र	वग्घ	बाघ
अग्र	अग्ग	आगा
चक्र	चक्क	चाक
पत्र	पत्त	पात

चन्द्र	चन्द	चांद
श्वश्रू	सस्सू	सासु
श्मश्रु	मस्सु	मोछ, मूँछ
ज्वल	जल	जल
पार्श्व	पास	पास

३४—जबकि 'र' के बाद 'य' आता है तो वह 'ल' हो जाता है और 'ल' फिर 'य' पर भी अधिकार बना अपना प्रभाव बनाये रखता है, 'य' लोप हो जाता है। प्राकृत का यह नियम हिन्दी में भी मिलता है।

पर्याय	Pr. पल्लाअ	H. पाला और पाली
पर्यस्त	पल्लट्ट	पलटा
पर्यङ्क	पल्लङ्क	पलंग
मर्द	मल	मल (ना)
आर्द्रक (wet)	अल्लअ	अला
भद्र	भल्ल	भला

३५—प्राकृत में यह नियम है कि र्थ, र्ह, र्श, र्ष, श्ल, क्र, ग्ल, म्ल, के संयुक्त वर्ण घुलते नहीं वरन् किसी स्वर के बीच में आ जाने से पृथक-पृथक हो जाते हैं, हिन्दी में इसके उदाहरण मिलते हैं :—

Skr	Pr.	H.
श्लाघ	सलाह	सराह(न)
अग्नि	अगणी	अगनी
वर्ष	वरिस	बरस
ग्लानि	गिलाण	ग्लानि or गिलानि
क्लेश	किलेस	कलेस
श्लेष्म	(सलेखम Guj)	सरेखमा

यहाँ तक हमने हिन्दी के उच्चारण पर प्राकृत तथा अपभ्रंश का प्रभाव देखा। अब उसके व्याकरण ने हिन्दी को कहाँ तक प्रभावित किया है। इस पर विचार करना उचित होगा।

१—विभक्ति तथा कारकों के सम्बन्ध में—

१—कर्त्ता एकवचन प्राकृत में 'ओ' होता है, हिन्दी में इसके रूप 'उ' होकर मिलते हैं यथा आयसु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—प्राकृत में सभी संज्ञाओं के कर्त्ता और कर्म के बहुवचन के रूप एक से होते हैं, जैसे पुत्र का—

बहु० कर्त्ता	बहु० कर्म
पुत्ता	पुत्ता
अग्नि—अग्गिणो	अग्गिणो
वायु—वाउणो	वाउणो
(नपुंसक) मधु—	महूई
(स्त्री०) माला—मालाओ	मालाओ

इसी का अनुकरण एकवचन में भी किया गया और अपभ्रंश काल में ऐसा होने लगा था। हिन्दी में इसी के अनुकूल एक वचन में भी रूप एकसा रहता है। यथा:

'मैं काम करता हूँ।'

(साधारण व्याकरणों में कर्म कारक का एक रूप 'को' लगाकर बनता हुआ बतलाया जाता है। परन्तु वह वास्तव में सम्प्रदानार्थक होता है और वस्तुतः तो वह संस्कृत सम्बन्ध कारक में होता है)

१—प्राकृत में उकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों का अनुकरण करके अपभ्रंश में नपुंसक लिंग भी 'उकारान्त' होने लगी। इस प्रकार हम पुल्लिंग और नपुंसकलिंग का भेद उसने अपभ्रंश में देखते हैं। हिन्दी में तो स्पष्ट ही नपुंसक लिंग लुप्त हो गयी है।

३—प्राकृत और अपभ्रंश में नपुंसकलिंग का बहुवचन का प्रत्यय 'इं' है जो अकारान्त संज्ञा से मिलने में 'एं' हो जाता है। यह 'इं' प्रत्यय हिन्दी में अकारान्त स्त्रीलिंग पुल्लिंग संज्ञाओं में मिलता है। यथा—

रातें, औरतें, कमानें, बन्दूकें, तोपें।

४—हिन्दी की विभक्तियाँ तथा कारक प्रत्ययों में से अधिकांश संस्कृत और प्राकृत अपभ्रंश से ही आये हैं। इनके ऊपर पृथक विचार किया जायगा।

४—(a) प्राकृतों में जैसे प्रश्नवाचक सर्वनाम का मूल (Base) 'क' है उसी प्रकार हिन्दी में भी यथा कौन (यह प्राकृत के 'कउण' और संस्कृत के 'कः पुनः से है)

(b) संस्कृत का 'एषः' प्राकृत में 'एसो' और अपभ्रंश में 'एहो' होकर एह, इह अथवा 'यह' निकट संकेत सूचक सर्वनाम हिन्दी में हो गया है।

इसका कर्ता बहुवचन 'ये' जो अपभ्रंश 'आये' से प्रकट हुआ है।

(c) संस्कृत के 'अदस्' सर्वनाम से 'अमु' के द्वारा अपभ्रंश में दूर संकेत-सूचक सर्वनाम 'ओ' बनता है। यहाँ हिन्दी में 'उ' ओ तथा 'वह' और वे को जन्म देते हैं।

(c) Skr. मया और मई Pr. मयी H. मैं
अहकम् Ap. हउंम हौं और हूँ
अस्मके Ap अम्हइ हम

व्याकरण सम्बन्धी और भी अनेक विषय-विभागों में हिन्दी पर प्राकृत और अपभ्रंश का प्रभाव है, वह पृथक कहीं विचार कोटि में लाया जायगा।

इतने विवेचन से यह स्पष्ट हो जायगा कि हिन्दी पर प्राकृत और अपभ्रंश का कितना भारी प्रभाव अभी तक उपस्थित है। यों तो, जैसा पहले कहा जा चुका है कि हिन्दी का जन्म ही इन भाषाओं से हुआ अतः प्राकृत और अपभ्रंश के प्रभाव के कोई अर्थ नहीं, फिर भी इस दृष्टि से कि अपने स्वतंत्र विकास के साथ हिन्दी ने कहाँ तक प्राकृत और अपभ्रंश की परम्परा की रक्षा की है इतना विवेचन आवश्यक होगया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुवा

प्रो० श्री कन्हैयालाल सहल एम० ए०

बंगला के ऐतिहासिक उपन्यास-लेखकों में स्वर्गीय बाबू राखालदास का महत्वपूर्ण स्थान है। उपन्यास-लेखक होने के साथ-साथ आप अनेक इतिहास-ग्रंथों के प्रणेता और सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता थे। मोहेंजोदड़ो की खोज का श्रेय आपको ही प्राप्त है। शशाङ्क, मयूख, करुणा और ध्रुवा आपके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं। सं १९८८ में 'प्रवासी' के कई अङ्कों में ध्रुवा उपन्यास क्रमशः प्रकाशित हुआ था। प्रसादजी ने अपना ध्रुवस्वामिनी नाटक सं० १९९० में लिखा था। प्रसादजी के 'स्कन्दगुप्त' पर जिस प्रकार 'करुणा' की छाप है, उसी प्रकार 'ध्रुवस्वामिनी' पर 'ध्रुवा' की; किन्तु जहाँ तक कथा के विकास का सम्बन्ध है, दोनों कथानकों में पूरी समानता नहीं है। 'ध्रुवा' का कथानक अत्यन्त संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है ताकि पाठक प्रसादजी के नाटक और राखालबाबू के उपन्यास का तुलनात्मक अध्ययन कर सकें।]

—सम्पादक

कथानक—पाटलिपुत्र की नटियाँ साधारण देह-व्यवसाय करने वाली न थीं। नाच-गान आदि में कुशल होने पर जो विख्यात होती थीं वे प्राचीन स्वतन्त्र भारत में 'गणिका' कही जाती थीं। जब से इस शब्द का बुरे अर्थ में प्रयोग होने लगा तब से वे कला-कुशल नारियाँ नटी कहलाने लगीं। नटियाँ नगर के स्वतन्त्र टोले में रहती थीं। नगराध्यक्ष एवं राजधानी के महाप्रतिहार इनकी सम्मति से इन्हीं में से किसी को मुख्या निर्वाचित कर लिया करते थे।

माधवसेना नटियों की मुख्या थी। एक दिन रामगुप्त ने उद्यान में ले जाकर कशाघात से उसे जर्जर कर दिया था। अन्य नटियों ने उसे सलाह दी कि तुम रामगुप्त पर अभियोग चलाओ किन्तु माधवसेना ने कहा—अरे, मैं वहाँ कैसे जाऊँ! जानता नहीं, वृद्ध महाराज अस्वस्थ हैं।

ब्राह्मण रुचिपति को साथ लिए मदिरा के नशे में मस्त रामगुप्त उद्यान-विहार के लिए निकला। माधवसेना को उद्यान में ले चलने के लिए दोनों ने उसे घसीटना शुरू किया और अपने रथ के पास तक ले आये। माधवसेना की करुण-चीत्कार सुन कर चार सशस्त्र प्रतिहारों के साथ नगर के महाप्रतिहार रुद्रभूति नटा-टोले में घुसे। वे वृद्ध थे। महाराजाधिराज चंद्रगुप्त के बाल-सहचर थे। सहसा रामगुप्त का हाथ छुड़ा कर माधवसेना ने रुद्रभूति के पैर पकड़ लिए और कहा—महाप्रतिहार, मेरी पत रखिये। कुमार रामगुप्त हमें उद्यान में ले जाकर हमारे ऊपर अमानुषिक अत्याचार करते हैं। रामगुप्त राजकुमार हैं सही, किन्तु क्या हम मोल ली हुई दासी हैं? क्या प्रजा को कुछ भी स्वतन्त्रता नहीं?

महाप्रतिहार ने रामगुप्त से कहा—कुमार, आप प्रातः स्मरणीय परम वैष्णव परमेश्वर परम भट्टारक महाराजाधिराज समुद्रगुप्त के पुत्र हैं। आपको इस प्रकार का नीति विरुद्ध आचरण शोभा नहीं देता, ऐसा करना घोर अन्याय है, आप माधवसेना के शरीर पर हाथ न लगाइयेगा। किन्तु रामगुप्त ने एक न सुनी। इतने में जगद्धर को साथ लिए चन्द्रगुप्त उधर से आ निकला। उसने सब देख-सुन कर कहा—महाराज समुद्रगुप्त के जीवित रहते उनके राज्य में नारी पर कोई हाथ नहीं उठा सकेगा। चंद्रगुप्त ने जगद्धर से कहा—तुम माधवसेना को प्रासाद ले जाओ, मैं पीछे आऊँगा। रामगुप्त जब रोकने के लिए बढ़ा तो चन्द्रगुप्त आगे खड़ा होगया। मद से छका हुआ रामगुप्त पृथ्वी पर गिर पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा-मंडप का नाम समुद्र-गृह था। रामगुप्त ने अभियोग लगाया—चंद्रगुप्त बलपूर्वक मुझसे छीन कर माधवसेना को क्यों लिया जाता है? मैं इसका न्याय चाहता हूँ। चंद्रगुप्त को सभा मंडप में बुलाया गया। चंद्रगुप्त के मुख से सब हाल सुनकर महाराज समुद्रगुप्त ने कहा—प्रजापालन ही राज-धर्म है। माधवसेना को क्षतिपूर्ति के रूप में एक सहस्र सुवर्ण-मुद्राएँ देकर राजकीय रथ में बैठा कर घर भिजवा दो और कह दो कि वृद्ध होने पर भी समुद्रगुप्त अभी जीवित है, यह बात न भूले। रामगुप्त को कारागार में डालने का हुक्म दे दिया गया।

महानायकवर्ग की अनुमति और महाराज समुद्रगुप्त के आदेशानुसार महापुरोहित नारायण शर्मा ने वैशाख शुक्ल तृतीया को युवराज का अभिषेक और पूर्णिमा को उनके विवाह का दिन नियुक्त कर दिया।

महाराज समुद्रगुप्त ने पचीस वर्ष पहले जयस्वामिनी से गांधर्व-विवाह किया था और देव-विग्रह को छूकर प्रतिज्ञा की थी कि जयस्वामिनी की कोख से उत्पन्न पुत्र को राजसिंहासन पर बिठलाया जायगा। यह बात महाराज ने अपने हाथ से लिख कर जयस्वामिनी को दे दी थी—'स्वहस्तोऽयं मम महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्तस्य।' जयस्वामिनी ने समुद्रगृह में आकर सबके सामने वह बात रखी। चन्द्रगुप्त की माता दत्तदेवी ने कहा कि समुद्रगुप्त ने कभी अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी, आज भी न तोड़ेंगे। कुमार रामगुप्त ही यौवराज्य पद पर अभिषिक्त होंगे। वहीं उसके राज्याभिषेक का हुक्म महाराज समुद्रगुप्त को सुनाना पड़ा। विधि के विधान के सामने किसका वश चल सकता है? माता की आज्ञा से चन्द्रगुप्त ने भी विधि के इस विधान को स्वीकार कर लिया। रामगुप्त के राज्याभिषेक की बात सुनकर सभी महानायकों ने अपने अपने पदों का त्याग करने का निश्चय किया किन्तु दत्तदेवी के आग्रहपूर्ण अनुरोध के सामने उन्हें सिर झुकाना पड़ा।

परवंश की कन्या रुद्रधर की पुत्री ध्रुवा के संबन्ध में यह निश्चय हुआ था कि वह गुप्त साम्राज्य के युवराज की भार्या बनेगी। ध्रुवा ने चन्द्रगुप्त को मन ही मन पति के रूप में वरण कर लिया था। किन्तु आज स्थिति बदल गई थी। इसलिए चन्द्रगुप्त ध्रुवा से अंतिम विदा लेने के लिए आया। चन्द्रगुप्त ने राज्य छोड़ देने का निश्चय कर लिया था। ध्रुवा भी चन्द्रगुप्त के चलने के लिए तैयार हो गई किन्तु रुद्रधर ने ध्रुवा को बाँध कर नाट्य-शाला के नेपथ्य-गृह में बन्दी करने का आदेश दिया और ध्रुवा से कहा—समझ रख, आर्यावर्त में कन्या पिता की सम्पत्ति है। सिर उठाकर कन्या ने उत्तर दिया—पिता, तुम भी यह जान लो, आर्यावर्त में नारी स्वामी की सम्पत्ति है। ध्रुवा चन्द्रगुप्त की पत्नी है, इसलिए अब तुम्हारा मुझ पर कुछ भी अधिकार नहीं है।

महाराज समुद्रगुप्त का स्वर्गवास हो गया। अन्त्येष्टि-क्रिया के समय रामगुप्त की तलाश हुई। रामगुप्त ने कहा कि प्रसाद के हीरे मोती आदि जब मुझे मिल जायँगे तभी महाराज की अन्त्येष्टि-क्रिया हो सकेगी। दत्तदेवी ने अपने भाण्डारी को बुलाकर कहा कि सब कुञ्जियाँ जयदेवी को सौंप दो। उसने अपने रत्नाभरण और वस्त्र भी उतार दिये और दूसरों से भीख माँग कर वस्त्र पहने। चन्द्रगुप्त ने भी माता के आदेश से ऐसा ही किया। चन्द्रगुप्त ने प्रतिज्ञा की कि महाराजाधिराज रामगुप्त के जीते जी समुद्रगुप्त का पुत्र चन्द्रगुप्त आर्यावर्त में हाथ न लगायेगा। दत्तदेवी और चन्द्रगुप्त प्रासाद से बाहर हो गये।

समुद्रगुप्त के श्राद्ध के पश्चात् दत्तदेवी ने पाटलिपुत्र के महाश्मशान में एक जीर्ण शिव-मन्दिर में आश्रय लिया। माधवसेना चन्द्रगुप्त का दिल बहलाने लगी। माधवी के कहने से चन्द्रगुप्त ने सुरा पीना प्रारम्भ किया जिससे वह ध्रुवा को भूल जाय। किन्तु कदम्बमल से गुँथे हुए भौंरों-जैसी ध्रुवा की कुन्तल-राशि आँखों के सामने से न हटी। उसका अश्रुरुद्ध कण्ठ, उसका खिले कमल के समान मुख सदा सामने आ जाता था।

चन्द्रगुप्त को समाचार मिला कि रुद्रधर ने विवाह के पहले ही ध्रुवादेवी को प्रासाद में भेज दिया है जिससे रामगुप्त और किसी से विवाह न करे। चन्द्रगुप्त यह सुन कर उत्तेजित हो उठा और उन्मत्त की भाँति ध्रुवा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षा के उद्देश्य से आगे बढ़ने लगा। किन्तु माधवसेना ने बड़ी मुश्किल से उसे रोका। माधवसेना स्वयं ध्रुवादेवी की रक्षा के लिए तत्पर हुई।

रामगुप्त के सिंहासन पर बैठने के महीने भर के भीतर ही तीन ओर से शकों ने गुप्त राज्य पर आक्रमण कर दिया। समुद्रगुप्त के पुराने कर्मचारी एक-एक करके तीर्थ-वास करने चले गये थे। नवीन सेनापति जयनाग तलवार की अपेक्षा वीणा धारण करने में अधिक कुशल था। अतः दक्षिण में कौशाम्बी और उत्तर में कान्यकुब्ज पर अधिकार कर शक प्रयाग की ओर बढ़े। रुद्रधर ने रामगुप्त से प्रार्थना की कि वह उसकी पुत्री ध्रुवा से विधिवत् विवाह करले। किन्तु रामगुप्त टालता रहा। उसके मन्त्री रुचिपति ने जब यह कहा कि अभी जल्दी क्या है, दो-चार दिन में उसको उद्यान में ले जाकर शिष्टाचार की शिक्षा तो दे लूँ तो वृद्ध महानायक रुद्रधर से रहा न गया। उसने रुचिपति के लम्बे बालों को पकड़ लिया और उसको सुखासन से नीचे खींचते हुए कहा—"तो अरे, ब्राह्मण-कुलांगार, मेरी बेटी को शिष्टाचार सीखने के लिए तेरे साथ उद्यान-विहार को जाना होगा? ब्राह्मण, तू ही न गुप्त साम्राज्य का अमात्य है?"

रामगुप्त ने रुद्रधर को बन्दी करने का हुक्म दिया किन्तु किसी ने उसके हुक्म की परवाह नहीं की। प्रायश्चित स्वरूप रुद्रधर ने तलवार निकाल कर उसको आमूल अपनी छाती में घुसेड़ लिया। उष्ण नर-रक्त का फुहारा फूट निकला। ध्रुवदेवी भी इस समय आ गई और मृत पिता के शव के ऊपर पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

ध्रुवदेवी जान्हवी में अपना शरीर विसर्जन करने के लिए निकली। दत्तदेवी ने देवगुप्त और रविगुप्त की सहायता से उसे बचा लिया। दत्तदेवी को जब इस बात का पता चला कि नटियों के टोले का विट रुचिपति ध्रुवा के शरीर पर हाथ लगाना चाहता था, तब उसने कहा कि ऐसे राज्य में दत्तदेवी की अब भी आवश्यकता है। माधवसेना युवक का वेष बना कर सब दृश्य देख रही थी। चन्द्रगुप्त को दिखलाने के लिए वह दत्तदेवी को अपने यहाँ ले गई।

दत्तदेवी माधवसेना के घर पर अपने पुत्र चन्द्रगुप्त से मिली, उसे सब वृत्तान्त कह सुनाया और पाटलिपुत्र चलने का आदेश दिया। माधवसेना भी कवच धारण करके साथ हो ली।

जो शकराज समुद्रगुप्त के आगे हाथ जोड़ कर पिता के सिंहासन के सम्मुख खड़ा रहता था। उसी ने रामगुप्त के पास आदेश भिजवाया कि तुम अपनी पट्टमहिषी को मेरी चरण-सेवा करने मथुरा भेज दो। रामगुप्त का सेनापति था मर्दल, नटी चंदना का मौसेरा भाई जो युद्ध के समय चन्द्रव्यूह की रचना करने को कहने पर संभव है कह उठे ताकधिनाधिन् ताकधिनाधिन्।' रुचिपति की मन्त्रणा से निश्चित हुआ कि ध्रुवा को शकराज के पास भिजवा दिया जाय।

दत्तदेवी मन्त्र-गृह के द्वार पर पहुँची। रामगुप्त को पता लगा तो बड़े सम्मान से दत्तदेवी को अन्दर ले गया और कहा—माँ, अपराध क्षमा करो, मैंने ध्रुवा के साथ पशु-सदृश व्यवहार किया है किन्तु अब स्वयं अपनी भूल समझता हूँ और अभी-अभी प्रतिहारों और दण्डधरों को शिविका लेकर यह महादेवी ध्रुवदेवी को सम्मानपूर्वक प्रसाद में लौटा लाने के लिए भेजा है। दत्तदेवी ने रामगुप्त के इस अभिनय को खूब समझा और कहा—मेरी अनुमति पाये बिना ध्रुवा न लौटेगी, इससे मैं लौटी जाती हूँ।

नगर घोषणाकर्ता की भाँति रुचिपति ने कहा—'नागरिकगण, आप लोगों के अटूट अनुरोध से महाराज रामगुप्त ने अत्यन्त व्यथित चित्त से शकराज के कथनानुसार ध्रुवदेवी को मथुरा भेजना स्वीकार किया है। अतः आप लोग निश्चिन्त होकर घर लौट जाइये। अब युद्ध की आशङ्का नहीं है।' लपक कर रविगुप्त ने रुचिपति की गरदन पकड़ली और कहा—अरे नराधम, क्या कहता है?' वृद्ध देवगुप्त और रविगुप्त ने निश्चय किया कि जब तक समुद्रगुप्त के नगर की रक्षा की आवश्यकता है, तब तक हम दोनों पाटलिपुत्र को नहीं छोड़ेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुवदेवी को साथ लेकर भद्रिल ने मंत्रणा-गृह में प्रवेश किया और साथ ही रुचिपति ने मुस्कराते हुए कहा—'महाराज, दाम्पत्य-प्रेम की बातचीत एकान्त में ही अच्छी होती है, इससे मैं तो चला।' रामगुप्त ने ध्रुवदेवी से कहा—पाटलिपुत्र के नागरिक शकराजा के आक्रमण के भय से आपे में नहीं हैं। उनके बारबार अनुरोध करने से मैंने तुम्हें शकराजा के पास मथुरा भेजना अंगीकार किया है। यह सुनते ही ध्रुवदेवी मूर्च्छित हो गई। दासी ध्रुवदेवी के मुँह पर पानी के छींटे डाल कर पंखा झलने लगी। यह दासी थी नर्तियों की प्रधान माधवसेना। ध्रुवदेवी जब होश में आई तब उसने दासी से कहा कि मेरे स्वामी चन्द्रगुप्त को इसकी सूचना दे दो। फिर ध्रुवदेवी और रामगुप्त में वार्तालाप होने लगा। जब रामगुप्त ने कहा कि तुम पाटलिपुत्र को बचाओ, मैं वर्ष भर के भीतर ही मथुरा जीत कर तुमको ले आऊँगा तब ध्रुवदेवी से भी न रहा गया। उसने कहा—तुम पुरुष कहलाने योग्य नहीं, तुम दासी-पुत्र हो। रामगुप्त ने कहा—भद्रिल, इसे बाँधलो। दत्तदेवी ने इसी समय मन्त्रणा-गृह में प्रवेश किया और कहा—किसे बन्दी करते हो रामगुप्त? ध्रुवा आँधी के वेग से झपट कर दत्तदेवी की छाती से लिपट गई और आर्त कण्ठ से पुकारने लगी—माँ, माँ! रामगुप्त ने दत्तदेवी को पकड़ने का आदेश दिया किन्तु सिंहनी के समान महादेवी के शरीर पर हाथ लगाने का साहस किसी में नहीं था। महादेवी ने आदेश दिया—'पाटलिपुत्र में कोई पुरुष है?' वाक्य पूरा होने के पहले ही अगणित सशस्त्र पुरुष श्रेणीबद्ध होकर मंत्र-गृह में घुस आये। महादेवी ने फिर आदेश दिया—'इस कुलङ्गार को आसन से उतार कर बन्दी करो।' रामगुप्त को सिंहासन से उतार दिया गया। 'जय महाराज चन्द्रगुप्त की जय' की तुमुल ध्वनि के साथ चन्द्रगुप्त ने माधवसेना के साथ मंत्र-गृह में प्रवेश किया। दत्तदेवी ने चन्द्रगुप्त से राजसिंहासन ग्रहण करने के लिए कहा किन्तु रामगुप्त के जीते जी चन्द्रगुप्त ऐसा करने के लिए राजी न हुआ। चन्द्रगुप्त ने रामगुप्त से कहा कि तुम्हीं सिंहासन पर बैठो। मैं दो भिक्षाएँ माँगता हूँ—एक तो यह है कि कुलवधू को शकराज के यहाँ न भेजिये। दूसरी यह है कि चन्द्रगुप्त के जीते जी ध्रुवा की देह पर हाथ न लगाइये। ध्रुवा शकराज के पास नहीं जायगी, ध्रुवा का वेश जायगा और उस वेश में जायगा चन्द्रगुप्त। चन्द्रगुप्त ने माता से आज्ञा माँगी। दत्तदेवी ने कहा—आशीर्वाद देती हूँ, विजयी हो। चन्द्र, ऐसी माँ ने तुमको गर्भ में धारण नहीं किया जो वीर-कार्य में पुत्र की विपत्ति की आशङ्का से विदा के समय आँखों से आँसू गिरायेगा।

एक शक सैनिक ने शकराज के सिंहासन के समीप पहुँचकर अभिवादन किया और कहा—महाराजाधिराज की जय! परमेश्वरी परम भट्टारिका मगध की पट्टमहादेवी ध्रुवदेवी १०० कुलबालाओं के साथ सभामण्डप के द्वार पर उपस्थित है। वेश बदले हुए चन्द्रगुप्त ने द्वन्द्व युद्ध में शकराज वासुदेव का काम तमाम कर दिया।

चन्द्रगुप्त की अनुपस्थिति में पाटलिपुत्र की अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई। रामगुप्त एक नागरिक की कन्या को घसीट कर उठा ले गया। नागरिक ने रामगुप्त का वध कर डाला। चन्द्रगुप्त मथुरा से लौट कर आया। ध्रुवा को छोड़ कर चन्द्रगुप्त राज्य का ऐश्वर्य नहीं चाहता। बहुत वाद-विवाद के बाद सबने एक स्वर से स्वीकार किया कि चन्द्रगुप्त ध्रुवा को राजमहिषी बना कर सिंहासन पर बैठ सकता है।

जिस नागरिक की कन्या को रामगुप्त घसीट कर ले गया था, उसके सम्बन्ध में फैसला हुआ कि वह पवित्र है। ध्रुवा के भाई अगदद्दर ने उसे पत्नी के रूप में ग्रहण किया। रामगुप्त की माता जयस्वामिनी ने कहा—महानायकवर्ग, द्वादशप्रधान! मुक्त हृदय से मेरा अनुरोध है कि मेरे पुत्रघाती को क्षमा कर दिया जाय।

फिर भीषण जय-ध्वनि से पाषाण-निर्मित सभा-मण्डप हिल उठा। वृद्ध देवगुप्त ने उठकर स्वयं उस नागरिक के बन्धन खोल दिये। रुचिपति के दण्ड का विचार नगर-मण्डल को सुपुर्द कर दिया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब चन्द्रगुप्त तथा ध्रुवदेवी दोनों आर्यपट्ट पर आसीन हुए। अर्द्ध रात्रि में ऐन्द्रय महाभिषेक प्रारम्भ हुआ।*

साहित्य सन्देश के पिछले अङ्क में श्री के० एम० मुंशी के नाटक 'ध्रुवस्वामिनीदेवी' का परिचय दिया जा चुका है। प्रस्तुत अङ्क में राखाल बाबू के उपन्यास का कथानक दिया गया है। प्रसादजी का ध्रुवस्वामिनी नाटक इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध ही है। हिन्दी, बँगला तथा गुजराती के अतिरिक्त अन्य किसी भारतीय भाषा में भी ध्रुवस्वामिनी को लेकर कोई साहित्य रचा गया हो तो तुलनात्मक अध्ययन के लिए 'साहित्य-सन्देश' के पाठकों के लिए वह सुलभ होना चाहिए। 'देवी चन्द्रगुप्तम्' नामक विशाखदत्त का सम्पूर्ण नाटक यदि आज उपलब्ध होता तो ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त की कथा के सम्बन्ध में इतनी विभिन्न कल्पनाएँ न करनी पड़तीं। इतिहासकारों ने बिखरे हुए सूत्रों को जोड़ कर कुछ इस तरह का कथानक कल्पित कर लिया है—

"समुद्रगुप्त के बाद उसका बड़ा पुत्र रामगुप्त गद्दी पर बैठा। उसकी स्त्री का नाम था ध्रुवदेवी। शकराजा के साथ किसी युद्ध में वह इस तरह से घेर लिया गया कि अपनी प्रजा की रक्षा अथवा अपने मंत्रि-वर्ग को सन्तुष्ट करने के लिए÷ उसने अपनी रानी को शकराजा के पास भेज देना स्वीकार कर लिया। उसके छोटे भाई चन्द्रगुप्त ने इस कार्य का विरोध किया और शकराजा को मारने के लिए वह स्वयं ध्रुवदेवी का वेश बना कर वहाँ गया। चन्द्रगुप्त को इस कार्य में सफलता मिली। इससे प्रजा तथा ध्रुवदेवी की दृष्टि में वह बहुत ऊँचा उठ गया किन्तु रामगुप्त उससे मन ही मन बहुत जलने लगा और उसके प्राणों का ग्राहक बन गया। सुरक्षा के विचार से चन्द्रगुप्त ने पागल बनने का बहाना किया और किसी तरह अपने भाई रामगुप्त को मारने में सफल हुआ। अन्त में वह राजसिंहासन पर बैठा और अपने बड़े भाई की विधवा स्त्री से उसने विवाह कर लिया।" प्रसादजी तथा मुंशीजी के ध्रुवस्वामिनी सम्बन्धी नाटकों तथा राखाल बाबू के उपन्यास का पूरा ऐतिहासिक तथ्यान्वेषण होना चाहिए। राखाल बाबू के उपन्यास के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'ध्रुवा की प्रत्येक कथा ऐतिहासिक न होते हुए भी इसकी प्रत्येक आख्यान वस्तु ऐतिहासिक है और इसमें अङ्कित समाज का चित्र इतिहास-सम्मत है। 'ध्रुवा' में हिन्दू शक्ति के पतन-काल का मार्मिक दृश्य अङ्कित हुआ है।'"

* 'ध्रुवा' के एक छात्रोपयोगी संस्करण के आधार पर यह कथानक लिखा गया है।

÷ प्रकृतीनाम् आश्वासनाय।

(शेष २६६ पृष्ठ का)

शोधन हेतु लरिबो चहौं' अथवा 'ऐसी लुद्र छोटी धनु लै···श्री विजय की लहिवौ चहौं?' को पढ़ते हुए सहसा 'रत्नाकर' के—

भीष्म भयानक पुकारयो रनभूमि आनि,
छाइ छिति छत्रिन की जीति उठ जायगी।
कहै 'रत्नाकर' रुधिर सों रुँधेगी धरा,
लोथनि पै लोथनि की भीति उठि जायगी।
जोति उठि जायगी अजीत पांडु पूतन की,
भूत दुरजोधन की भीति उठ जायगी।
कै तो प्रीति रीति की सुनीति रठ जायगी,
कै आज हरि प्रन की प्रतीति उठ जायगी।

तथा 'ऊधो, हमसे बयारि भखिवौ कहौ' वाले पद की ओर ध्यान चला जाता है।

फिर भी अभिमन्यु पर लिखा हुआ यह काव्य अपने विषय, चमत्कार पूर्ण उक्तियों तथा अलंकार सुषमा के लिए अपने ढंग का अनोखा है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है—चरित्र-चित्रण। वीर अभिमन्यु को कवि ने भव्यरूप में चित्रित किया है। युद्ध भूमि में भी हँसी हमारे लिए प्रहणीय नहीं? जहाँ हम गुरु द्रोण को शिष्य सुत की वीरता पर प्रसन्न होकर उसे गोद में लेने के लिए वाणी-विहीन (मूक) पाते हैं! अतः इसमें संदेह नहीं कि अभिमन्यु वध अपनी न्यूनता के साथ एक उत्तम खंडकाव्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक हिन्दी कविता में उर्दू की छाप

श्री० सत्यप्रकाश किरण बी० ए० (आनर्स)

अग्रगण्य कवि प्रायः किसी न किसी रूप में काव्य की श्री वृद्धि के लिए कई प्रकार की नवीन चेष्टाएँ करते ही रहते हैं। ये नई चेष्टाएँ, नई अनुभूतियाँ और नई कल्पनाएँ ही कवि को एक सफल कलाकार बना सकती हैं, अथवा कविता निष्प्राण तथा नीरस हो जाती है। साथ ही यह बात ध्यान देने योग्य है कि कवियों की परिपक्व और प्रौढ़ रचनाएँ समाज पर अपना प्रभाव डालती हैं तथा समाज की विभिन्न अनुभूतियों की वे स्वयं भी देन होती हैं। इसलिए यह बात साफ तौर पर ठीक मालूम होता है कि साहित्यकार अपने समाज की अच्छाइयों तथा बुराइयों का बहुत अंश में उत्तरदायी होता है। आज हम और हमारे कवि हिन्दी-साहित्य-सेवी होने के नाते अपने समाज में हिन्दी के प्रचार की इच्छा कर रहे हैं, न केवल इतना ही बल्कि अपनी सरकार से हम 'राष्ट्रभाषा हिन्दी हो' के नारे लगा कर अपनी साहित्य-सेवा का प्रमाण दे रहे हैं। लेकिन धीरे-धीरे, शायद अनजाने में ही, हमारी कलम हमारी जीभ के विमुख होकर चलती जा रही है। मैं किसी लेखक या कवि की शिकायत करने नहीं बैठा हूँ, वरन् मेरा प्रयास केवल एक संकेतमात्र कर देना ही है जिससे हम स्वयं और हमारे साहित्यकार कुछ देर इस विषय पर सोचें।

हिन्दी के कुछ वर्तमान कवियों की रचनाओं में इधर यदा-कदा उर्दू साहित्य तथा भाषा का साफ प्रभाव दीख पड़ने लगा है।

हम ऐसे ही कुछ इने-गिने शब्द प्रतिष्ठित कवियों की रचनाओं से कुछ ऐसे उद्धरण देंगे जिनमें उर्दू भाषा अथवा साहित्य की स्पष्ट छाप है।

मैं आरम्भ दिनकर की रचनाओं से करता हूँ। यह बात ध्यान में रखनी होगी कि अधिकतर ये उद्धरण मैं कवियों की वर्तमान रचनाओं से ही दे रहा हूँ। देखिए, 'आज की भीख' में कवि कहता है—

"बेचैन है हवाएँ सब ओर बेकली है
कोई नहीं बताता, किश्ती किधर चली है ?"

और,

सहम करके चुप हो गये थे समुंदर
अभी सुनके तेरी दहाड़
ज़मीं हिल रही थी, जहाँ हिल रहा था
अभी हिल रहे थे पहाड़ ॥"

(जवानी का झंडा)

तथा,

'मैंने देखा आवारा उन्हें जो
साथ दोस्त के चलते थे।'

(द्वन्द्व गीत)

और फिर,

'गरदन इज्जत पर लिए फिरो
तब मज़ा यहाँ जीने का है।'

× × ×

'मुझे भी याद थी तिरछी ऊँचाई चोटियों की
उमँगें ले उड़ी मुझको मगर तूफ़ान बन कर।'

(हुंकार)

'है बँधी तक़दीर जलती डार स
आशियाँ को छोड़ उड़ जाऊँ कहाँ'

× × ×

'कीचड़ों पर एक भी आँखें लगीं,
एक कहता है कि मैं लूँगा जुबाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक की ज़िद है कि पौने दो मुझे
खून जो इसकी रगों में है रवाँ'
(तक़दीर का बटवारा)

यह तो हुई दिनकर की कविता में उर्दू भाषा तथा साहित्य की छाप! कम से कम जहाँ तक हमें उर्दू साहित्य के अपनाने का प्रश्न है, हमें आपत्ति नहीं होनी चाहिए को अपना कर हम अपने साहित्य भाण्डार की वृद्धि ही करेंगे, लेकिन यह वृद्धि हमारी भाषा के परिमार्जित रूप पर आघात न कर बैठे इसका हमें ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

'बच्चन' की कविताओं की ओर मैं अपना ध्यान आकृष्ट करूँगा, देखिए—

'हाथों पर हथकड़ी पड़ी है
सच कहने की सज़ा बड़ी है
पड़े ज़बानों पर हैं ताले
(बङ्गाल का काल)

और भी—

'अब तेरे मिराज कहाँ हैं
अब तेरे जाँबाज़ कहाँ हैं
अब तेरी आवाज़ कहाँ हैं

अब युग कवि निराला की दो नई पुस्तकों से कुछ अंश मैं देता हूँ। निरालाजी के साहित्य में आज का समाज बोलता है। लेकिन मैं नम्रतापूर्वक यह निवेदन करूँगा कि कवि को अपनी कविता में न केवल समाज का प्रभाव लेना होता है बल्कि द्वारा समाज पर अपना प्रभाव देना भी होता है।

देखिए, 'बेला' नामक नवीन संग्रह में कवि एक स्थल पर लिखते हैं,—

'कहीं की बैठी हुई तितली पर जो आँख गई,
कहा सिंगार के होते हैं ये बहार के दिन'

× × ×

फिर देखिए—

'निगह तुम्हारी थी दिल जिससे बेक़रार हुआ
मगर मैं ग़ैर से मिलकर निगह के पार हुआ

× × ×

सफ़ाई कट गई है चाँद की भी
जुड़ा के उसने जो जोबन टटोले

× × ×

'ऊपर वह बर्फ़ गली है, नीचे यह नदी चली है:
सख़्त तने के ऊपर नर्म कली है

❀ ❀ ❀

हाथ मारते फिरें, कहाँ के हैं?
ग़फ़लत से वे घिरें, जहाँ के हैं।

❀ ❀ ❀

और देखिए अवश्य कुछ शिथिलता और कुरूपता आ गई है इन पङ्क्तियों में—

'तेरे दिल की कीमत चुकाने से पहले
तरह पानी की वह फूटा जा रहा है'

उर्दू काव्य की भाषा में शब्दों को उलट कर वाक्य में रखने की जो शैली है वही शैली ऐसी पंक्तियों में हमारे प्रत्यक्ष है। समाप्ति यहीं नहीं होती है, हिन्दी-भवन में उर्दू-अतिथि का स्वागत फिर देखिए—

'ज़माने की रफ़्तार में कैसा तूफ़ां
मरे जा रहे हैं, जिए जा रहे हैं'

❀ ❀ ❀

जो हस्ती से हुए हैं पस्त, समझे हैं वही क्या है
गुज़रती ज़िन्दगी के साथ हरक़त से भरी बातें

गिराया है ज़मीं होकर, छुटाया आसमाँ होकर।
निकाला दुश्मने जाँ, और बुलाया मेहरबाँ होकर॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उजाड़ा है कसर होकर, बसाया है असर होकर।
बखाड़ा है रवाँ होकर, लगाया बागबाँ होकर॥

× × ×

पैर उखाड़े रह कज़ा के, हाथ जब तक चलता है,
बैठने मत दे किसी को, याद तू जब तक न कर!

× × ×

ख़ामोश फ़तह पाने को रोका नहीं रुका,
मुश्किल मुक़ाम, ज़िन्दगी बन जब सहल गया।

इतने अधिक उद्धरणों के देने के लिए मैं बाध्य हूँ अन्यथा युग कवियों की ख्याति प्राप्त रचनाओं की ओर उँगली उठाने का साहस मैं खो बैठूँगा। तो ये थीं 'बेला' की कविताएँ! अब हम 'नए पत्ते' को देखें कि ये पत्ते हमारे साहित्योद्यान के हैं या कि अदब के चमन के।

कवि लिखते हैं—

जहाँ पानी भरा वहाँ छूट पड़े,
क़हक़हे लगाते हुए टूट पड़े।

× × ×

बारिश से बढ़ी ज्वार, बाजरा, उर्द
गाँव हरे भरे कुल, कलाँ और ख़ुर्द।

× × ×

चप्पे-चप्पे पर सोने का पानी चढ़ा
हुस्न और जमाल जैसे और बढ़ा।

—(खजोहरा)

और—

जंगल से बाग़ और उपवन तैयार किए।
खुली जबाँ बँधने लगी।

—(चर्खा चला)

यहाँ 'बाग़' और 'उपवन' दो शब्द कैसे? क्या 'उपवन' का ही उर्दू पर्यायवाची शब्द 'बाग़' नहीं?

फिर देखिए उर्दू की एक शैली—

राह का लगान ग़ैर ने दिया
यानी रास्ता हमारा बन्द किया।

—(पाँचक)

× × ×

लोग खड़े हुए, कामयाब हुए।
दुश्मनों के पैर न जमने दिए
आपस में मिल रहे ज़बाँदराज़ी न की।

—(तारे गिनते रहे)

मैं समझता हूँ कि मेरी बात की यथार्थता सिद्ध करने के हेतु इतने ही उद्धरण पर्याप्त होंगे।

मुझे इन कवियों की शैली से कोई भी विरोध नहीं। मेरा निवेदन इतना ही है कि अपने साहित्य के नाम पर यदि वे राष्ट्रभाषा हिन्दी की माँग करते हों तो उन्हें अपनी रचनाओं में भी हिन्दी को ही स्थान देना उचित है, अन्यथा जनता उनकी इस उर्दू काव्य-प्रतिभा से प्रभावित होकर फिर लौटकर हिन्दी की ओर आने में कठिनाई का अनुमान करेगी। देश, समाज तथा व्यक्ति के अनुकूल युग के कवि की कविता और कविता की भाषा तथा शैली होनी ही चाहिए। कवि न केवल एक कलाकार है, वह समाज का एक व्यक्ति भी है। देश के प्रति उसका भी कर्तव्य है। उसे आज देश में नव-निर्माण करना है, फिर राष्ट्रभाषा की स्थापना में उसकी अपनी ही रचना योग न दे तो फिर क्या होगी कवि की देश-सेवा।

इस लेख की समाप्ति में 'हिन्दी का भविष्य' शीर्षक लेख में कवि पन्त द्वारा एक स्थल पर लिखी गई पंक्तियों का उद्धरण देकर करता हूँ। पन्तजी लिखते हैं—"यह अत्यन्त हास्यास्पद तथा लज्जाजनक हेत्वाभास है कि हम सोचें एक स्वर में, प्रकट करें उसे दूसरे स्वर में, हमारे मन की वाणी मुँह की वाणी न हो; हमारे गद्य का कोष भिन्न, पद्य का भिन्न हो; हमारी आत्मा के सा रे ग म पृथक हों; वाद्ययन्त्र के पृथक; हमारी भावतन्त्री तथा शब्द तन्त्री के स्वरों में मेल न हो; मूर्धन्य 'ष' की तरह हमारे साहित्य का हृदय, देश की आत्मा, एक कृत्रिम दीवार देकर दो भागों में बाँट दी जाय।...... खड़ी बोली आगे की सुवर्णाशा है, उसकी बाल-कला में भावी की लोकोज्ज्वल पूर्णिमा छिपी है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य का सनातन-स्वरूप

श्री० रमाशङ्कर तिवारी, एम०, ए०, डिप्० एड्०

साधारण जीवन जटिल है और अपेक्षा-कृत क्रान्ति और अशान्ति ही अधिक उत्पन्न करता है। तथापि जीवन-दर्शन की भूख हमारी अन्तरात्मा की नैसर्गिक प्रेरणाओं में से एक अति प्रबल प्रेरणा है। हम मानव-'अन्तर' की भाव-मूलक वास्तविकता' का अनुभव प्राप्त करना चाहते हैं किन्तु साधारण स्थूल जीवन की उलझन में हमें अपनी इस अन्तर्निहित नैसर्गिक 'भूख' का विस्मरण हो जाता है, हम इस प्रबल एषणा का अनुभव नहीं करते। जब हमें इस भावमूलक आन्तरिक सत्य की अनुभूति होती है तो हमारी आत्मा को परितोष होता है—कारण कि वह उसमें अपना ही प्रतिरूप देखती है। उसी 'स्व' के दर्शन की आकांक्षा मानव को अनुप्राणित करती है—अथच अनादि काल से कविता यह अभीप्सित 'स्व' दर्शन 'स्व' दर्शन कराती आई है। सच्चा कलाकार 'स्व' को पहचानता है एवं कला की सम्पूर्ण कमनीयता इस महान् लक्ष्य के साधनार्थ समर्पित कर देता है।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि इस आन्तरिक 'स्व' का विकास क्योंकर घटित होता है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि मानव का विकास, उसकी भावनाओं और 'भूखों' का आविर्भाव, समाज की पृष्ठभूमि में होता है। समाज की परिधि से बहिष्कृत ऐसे व्यक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती जो ऐकान्ति शून्य अथवा किसी निर्जन प्रान्त में जीवन-यापन करता हो तथा जिसके अभ्यन्तर में उन्हीं मनोवेगों और रागों का प्रस्फुरण हुआ हो जिन पर 'मानवता' की छाप लगी हो। ऐसे व्यक्ति की अनुभव-राशि कुतूहल और मनोवैज्ञानिक अध्ययन की वस्तु होगी और वह 'मानव' तो किसी प्रकार होगा नहीं—वैसा मानव जिसे हम सबः प्रकृत्या पहचानते हैं, जिसकी भावनाओं और भूखों में हम अपनी ही अन्तरात्मा के दर्शन करते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि हमारे 'स्व' का विकास समाज अर्थात् अपने चतुर्दिक् प्रवाहित होने वाले जीवन के बीच होता है। इसलिये कवि अथवा कलाकार जीवन और जगत् के माध्यम से 'स्व' का दर्शन करता है जिससे हमें आतृप्ति होती है। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि, निखिल मानव-सृष्टि एक ही प्रकार की भावात्मक सादृश्य से अनुप्राणित होती है यह भावात्मक सादृश्य अथवा एकरूपता विश्व के सम्पूर्ण साहित्य में प्रतिष्ठित है।

उपर्युक्त स्थापना से एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होता है—'क्या साहित्यकार इस सृष्टिगत सत्य के प्रकाशनार्थ स्वतन्त्र नहीं है?' क्या यह आवश्यक है कि वह अपना व्यक्तित्व इस उद्देश्य के साधनार्थ पूर्णतः तिरोहित कर दे, सर्वथा विनष्ट करदे?' वास्तव में विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि साहित्यकार के व्यक्तित्व और इस सृष्टिगत सत्य में कोई मौलिक आधारभूत अन्तर नहीं है। साहित्यकार जीवन और जगत के माध्यम में पला है, उसी में उसकी भावात्मक सत्ता का प्रस्फुरण और विकास हुआ है। अतः तथ्यतः उसके व्यक्तित्व और उसके चरम साध्य (सृष्टिगत सत्य) में तादात्म्य है, सामंजस्य है। हाँ, व्यतिक्रम तब उपस्थित होता है जब हम इस सत्य की अनुभव-प्रणाली अथवा उसके एकपक्षीय या विकृतरूपात्मक आविष्करण का विचार करते हैं। इसीलिए जब कवि मूक वीणा के बिखरे तारों अथवा अपने उर-अन्तर के अनियंत्रित वेदना-वैभव का प्रभूत स्वर निनादित करता है, जब सार्वभौम और शाश्वत सत्य का एकपक्षीय, अनुपातविहीन गान करता है, जब उसकी कलाकामिनी अपने ही आकुल अन्तर के विकृत आभूषणों से सज्जित हो मधुमय, किन्तु अस्वास्थ्यकर कुसुम-शय्या पर विलास करने लग जाती है, तब सत्य की आत्मा को आघात पहुँचता है और साहित्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार अपने गौरवमय स्थल से च्युत हो जाता है। इसी प्रकार जब कलाकार वास्तविक जीवन की अप्रियता से पलायन कर किसी ऐसे स्वर्णिम, स्वप्निल जगत् की सृष्टि करना चाहता है जहाँ 'मत्त समीर' कवि के सोये हुए 'एकान्त' को स्पर्श न कर सके, जहाँ अविकल 'निर्जन में सागर लहरी, अम्बर के कानों में'' ''कोलाहल की अवनी' छोड़ कर ''गहरी निश्छल प्रेम-कथा'' कहती हो और जहाँ 'अपने' ही 'प्रहरी' हों, तब भी कलाकार अपने साध्य 'सत्य' का विकृत और एकांगी चित्र प्रस्तुत करता है। कभी-कभी कवि अपने वैयक्तिक जीवन की वेदनाओं से अभिभूत हो, निस्सहायता का अनुभव करता है, उसके हाथ से 'पतवार' छूट जाती है, उसकी आशा का केन्द्र 'नक्षत्र-प्रकाश भी धुमिल गया होता है, तब वह निराश हो आर्त्तनाद करता है—''कौन पहुँचा देगा उस पार ?'' इसी मनःस्थिति में वह अपने समस्त अवसादों से मुक्ति पाने के लिए मृत्यु का भी आह्वान करता है। ऐसे साहित्य से न तो हमें परितृप्ति ही होती है और न कोई उत्प्रेरणा ही उपलब्ध होती है। व्यक्तित्व की रक्षा की आड़ में जब यह 'आत्म-निवेदन' की प्रवृत्ति अनुपात-विहीन, असामंजस्यकर आतिशय्य ग्रहण कर लेती है तब कवि की वीणा से अस्वास्थ्यकर संगीत निस्सरित होता है जो हम में ग्लानि और क्षोभ का जनन करता है। ऐसे ही, कवि सुलभ 'संवेदना' और 'स्वतः-प्रसूति' (Spontaneity) के नाम पर भी सत्य का खंडीकृत दर्शन यदा-कदा कलाकार की कृतियों में प्राप्त होता है। यतः काव्य का ध्येय आनंद की सर्जना है, अतः काव्यकार का कर्तव्य है कि वह अपनी भावभूमि को सम्यक्‌रूपेण व्यापक बनावे, उसके आलम्बन और उद्दीपन इतने विशद हों कि उनमें समग्र मानव अपने रागों और भूखों के तृप्त्यर्थ प्रचुर सामग्री उपलब्ध कर सकें। ऐसी अवस्था में ही साहित्य की विश्वजनीनता एवं शाश्वतता की रक्षा हो सकती है। ऐसा ही लक्ष्य कर अंगरेजी कवि वर्ड्सवर्थ ने, कम से कम सिद्धान्त रूप में ''सर्व-साधारण में व्याप्त रागों'' (Joys in the widest commonalty spread'') का गान करना अपनी काव्य-साधना का लक्ष्य-विन्दु बना रखा था। अस्तु।

उपर्युक्त पंक्तियों से यह कदापि अभिप्रेत नहीं समझना चाहिए कि कलाकार के प्राण जो यदा-कदा जीवन के बहुमूल्य क्षणों में कुछ अभिनव-असामान्य मर्मस्पर्शी अनुभूतियों से सहसा मुखर मुखर हो उठते हैं। उनके लिये साहित्य में स्थान नहीं है, तथ्य तो यह है कि काव्यकार की मन संस्थिति हमारी वेगहीन सुपरिचित 'साधारणता'—(use and wont) के स्तर से पर्याप्तरूपेण ऊँची उठी रहती है। उसे साधारणाति-साधारण वस्तु में भी, जब उसकी अनुभूति के स्नायु-पुंज असाधारण मात्रा में चढ़े रहते हैं, किसी चाम सत्य के दर्शन होते हैं। ऐसे ही अमर-क्षणों में वर्डस्वर्थ को अति-सामान्य तृण-राशि में किसी अलौकिक 'वैभव' और रात्रि-काल में ज्योति-किरणें बिकीर्ण करने वाले नक्षत्रों में एक अद्भुत अभिनव 'छटा' या 'विभूति' की अनु-भूति हुई थी। रहस्यवादी कवि यदि लौकिक सत्ताओं से परे, किसी अलौकिक, केन्द्र-गत सत्ता के देदीप्यमान् आलोक एवं सौन्दर्य का प्रसरण और व्याप्ति अपने चतुर्दिक् जीवन और जगत् में देखता है, तो वह हमारे सन्देह का भाजन नहीं बन सकता। केवल यही अनिवार्यतः आवश्यक है कि कवि को अपनी अनुभूतियों में पूर्णतः सच्चा (sincere) होना चाहिए। यदि वह कबीर की तरह सचमुच चतुर्दिक् अपने प्रियतम 'लाल' की 'लाली' का अनुभव करता है, यदि उसकी इस अनुभूति में सचाई और क्षिप्रता है, तो उसकी अभिव्यक्ति-प्रणाली ऐसी होनी चाहिये जिससे हमारी अन्तरात्मा भी कवि के प्रवाह में अनायास ही आप्लावित हो उठे। इस प्रकार कलाकार जिस उच्चतर सत्य का उद्घाटन करता है वह सत्य भी उसी सृष्टिगत सत्य से अपरिहार्यतः सम्बद्ध है, रूपतः नहीं तो तत्वतः तो अवश्य ही, उसी का उज्ज्वलतर अंग है जिसका निदर्शन साधारणतः साहित्य में हुआ करता है। शुद्ध भावना का कलाकार शेली अपने ''स्काइलार्क'' में जिस स्वर्गीय भाव-लोक में संतरण करता है, वह भाव-लोक भी काव्य का स्पृहणीय सत्य है एवं उसकी अवमानना करना काव्य-कला को उसकी नैसर्गिक उच्च-भूमि से निम्न स्तर पर घसीटना कहा जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध आलोचक मैथ्यू आर्नल्ड ने काव्य को जीवन की आलोचना बताते हुए किसी कवि के मूल्यांकन के तीन प्रकार किये हैं—यथा (१) ऐतिहासिक मूल्यांकन, (२) व्यक्तिगत मूल्यांकन और (३) तात्विक मूल्यांकन। तथापि यह स्पष्ट है कि उसके युग की नैतिक प्रवृत्ति ने आर्नल्ड की निरपेक्ष आलोचक-बुद्धि को प्रभावित कर लिया था और फलतः "कोमलता और स्वच्छता" का समर्थक होते हुए भी वह शैली जैसे 'स्वर्गीय' कलाकार का 'तात्विक' मूल्यांकन करने में असमर्थ ही रहा। तदनन्तर रस्किन जैसे समीक्षकों ने कला को धर्म और नैतिकता की परिचारिका बनाने का प्रयत्न किया जिसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया 'कलावादी' सिद्धान्तों के प्रबल निरूपण के रूप में हुई। पुनश्च, इटली के क्रोचे की समीक्षण-प्रणाली ने 'अभिव्यंजनावाद' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस विषय में यही मान्य समझना चाहिये कि कलाकार न तो आचार-शास्त्र-विषयक किसी नैतिक प्रणाली के निरूपणार्थ अपनी लेखनी उठाता है और न सर्वथा जीवन की अवहेलना कर सर्वदा किसी अतीन्द्रिय वायवी जगत में ही अधिवास करता है। इसी प्रकार वह जिस-किसी भी वस्तु को लेकर कविता की सृष्टि नहीं कर सकता। 'अभिव्यंजना-वादी' कलाकार प्रतिपाद्य वस्तु की अवहेलना कर अपनी सारी सौन्दर्य-विधायक शक्ति उसकी अभिव्यक्ति पर ही व्यय कर देता है। इस प्रकार, वह जीवन की उपेक्षा कर झूठी कल्पना का आश्रय ले केवल शैलीगत वैचित्र्य-पूर्ण सौन्दर्य की ही सृष्टि करना कला की इति-कर्त्तव्यता समझने लग जाता है। ऐसी कला हमारा क्षणिक मनोरंजन कर सकती है, लेकिन उसमें सत्य का वह शाश्वत स्वरूप विद्यमान नहीं रहता जो गम्भीर क्षणों में भी हमें परितृप्त कर सके। इसी प्रकार "उपदेशवाद" (Didacticism) भी सच्चे काव्य की प्रभविष्णुता पर आघात पहुँचाता है। उपदेश देना दार्शनिक अथवा धार्मिक नेता का कार्य है। साहित्य जीवन की मार्मिक छवियों और तथ्यों का 'उद्घाटन' करता है तथा ऐसा करने में, उसे सच्ची भावानुभूति और कल्पना के संमिश्रण से हमारे रागात्मक तत्व को स्पर्श करना ही श्रेयस्कर है। इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि साहित्यकार निकृष्ट सौन्दर्य का भी निरूपण करने के लिये स्वतंत्र है, तथ्य तो यह है कि कला का सनातन सत्य, सुन्दर होने के साथ ही, शिव भी अवश्य होगा।

ऊपर हमने दिखलाया है कि जिस प्रकार आत्म-निवेदन और अनुभूति-स्वातन्त्र्य के नाम पर स्वप्न-लोक की सृष्टि करना अथवा जीवन के अवसादों से निर्वाण पाने के लिए मृत्यु का आवाहन करना अवांछनीय है, उसी प्रकार जीवन की 'वास्तविकता' की दुहाई दे अथवा नैतिकता की शरण ले, कलाकार के उन्मुक्त प्राणों के, स्थूल दृष्ट्या अलौकिक प्रतीत होने वाले उच्च, दिव्य भावना-लोक में विचरण करने की भर्त्सना करना उचित नहीं है। हाँ, यह आवश्यक अवश्य है कि कलाकार वर्ड्सवर्थ के 'स्काईलार्क' की तरह सुदूर उच्चतम आकाश-लोक के शुभ्र, स्वच्छ ज्योतिर्मंडित में विचरण करने के साथ ही अपने पार्थिव जगत् के तथ्यों का भी समादर करे। हमारी भारतीय काव्य प्रतिभा तो सदा इस सत्य के प्रति जागरूक रही है। आदि कवि महर्षि वाल्मीकि से लेकर हमारे सन्त कवियों तक ने लौकिक और अलौकिक ससीम और निस्सीम, मूर्त और अमूर्त का सुन्दर समन्वय दिखलाया है। अस्तु

अब विचारणीय यह है कि क्या साहित्य किसी समस्या के समाधानार्थ भी रचा जाता है और यदि रचा जाता है तो उसका मूल्य क्या होगा? जहाँ तक विश्व के "क्लैसिक" (प्राचीन) साहित्यों का संबंध है, हम स्पष्ट देख सकते हैं कि ग्रीक और लैटिन के प्रबन्ध-कारों तथा नाट्यकारों, अथवा अपने कवि-पुंगवों, यथा कालिदास, भास इत्यादि, ने अपनी अमर कृतियों में किसी समस्या का समाधान प्रस्तुत नहीं किया। यह भी नहीं माना जा सकता कि उन युगों में कोई समस्याएँ थी ही नहीं यह अवश्य है कि इन प्राचीन कृतियों में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक अवस्थाओं का चित्रण उपलब्ध होता है किन्तु किसी शासन अथवा आर्य-प्रणाली विशेष के पक्ष में इन साहित्यकारों ने अपनी ओर से कोई स्पष्ट तर्क-निरूपण नहीं किया। "अभिज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाकुन्तल'' में जो चराचर-मैत्री का संदेश निहित है, तथा कवि ने जिस उच्च भावभूमि पर आसीन हो, अपनी पावन अनुभूतियों को कल्पना के रंगों में रंजित कर जैसी मनहरण रस सरिता प्रवाहित की है, क्या वह सभी काव्य-वैभव कालिदास की प्रतिभा द्वारा सृष्ट हुआ होता यदि उनका मानसिक क्षितिज किसी समस्या-विशेष के झंझावात से धूमिल व धूसरित हो गया होता ? सच तो यह है कि कवि या साहित्यकार, अपने युग से प्रभावित होता हुआ भी, उसकी संकुचित सीमाओं का अतिक्रमण करता है और देश-काल के खंडित सत्य को पहचानता हुआ भी, निरपेक्ष, उच्च भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित हो, सार्वजनीन एवं शाश्वत, सनातन सत्य का उद्घोष करता है। कवि की सहानुभूति व्यापक अवश्य होनी चाहिए किन्तु, तथापि, जीवन में जो 'अपरिवर्तनीय तत्व' हैं जिनसे मानव की मानवता का द्योतन होता है, जो मानवता की अपरिहार्य 'सम्पत्ति' हैं, उन्हीं का प्रत्यक्षीकरण साहित्य में होना चाहिए। सच्चा साहित्यकार दल-विशेष का प्रतिनिधि नहीं; वह अखंड मानवता का पुजारी है। इससे यह अभिप्रेत नहीं कि समाज के शोषित और दलित वर्ग से वह सहानुभूति नहीं रखता। अवश्य ही उसकी संवेदन शील आत्मा पुण्यतोया भगवती भागीरथी की तरह ऊंच-नीच, समतल सभी प्रकार की लोक-भूमियों को सिंचित करती है; किन्तु जिस प्रकार भागीरथी अपने चरम लक्ष्य सागर-सम्मिलन की ही साधना में अविकल रूप से निरत रहती हैं, उसी प्रकार सच्चा साहित्य-स्रष्टा सत्य के अनेक-विध खंडीकृत स्वरूपों से अवगत होता हुआ भी उसके शाश्वत, सनातन स्वरूप की ही अर्चना-साधना में व्यस्त रहता है। समस्या-मूलक साहित्य सार्वजनीन एवं सार्वकाली नहीं होता। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार के साहित्य से हमारे रागों मनोवेगों पर अवांछनीय प्रभाव भी पड़ सकता है।

अब यह विचारणीय है कि क्या समसामयिक जीवन साहित्य के उपयोग की वस्तु नहीं है ? इसका स्पष्ट उत्तर यह होगा कि यतः जीवन और जगत् ही कलाकार को प्रेरणाएँ प्रदान करते हैं। अतः समसामयिक जीवन भी उसकी व्यापक सहानुभूति से वंचित नहीं रह सकता। केवल ध्येय यही होना चाहिए कि उसे समस्याएँ नहीं "सुलझानी'' हैं वह अवश्य उनकी अवगति रखे; किन्तु उसकी प्रतिभा इतनी सूक्ष्म भेदिनी होवे कि वह उन समस्याओं की ऊपरी तहों को चीर कर, मानवता के अपरिवर्तनीय तत्वों, उसकी शाश्वत वृत्तियों और रागों तथा अन्तर्प्रेरणाओं का ही उद्घाटन करे। कलाकार से यह आशा करना कि वह "जिस देश की रोटी खाता है, उसका ऋण चुकावे'', उसे देश-कला की संकुचित सीमाओं में आबद्ध करना है, उसे युग-युग में परिवर्तित होने वाली राजनीतिक और सामाजिक प्रवृत्तियों का दास बना देना है। कलाकार जब प्रचारक बन जाता है, तब वह सत्य के सनातन स्वरूप के उद्घाटन का पावन कर्त्तव्य विस्मरण कर, 'क्रान्ति' एवं 'युगांतर' उपस्थित करने की मिथ्या लालसा से अनुप्राणित होने लगता है, तब वह आग भले ही लगा सके, किन्तु जीवन प्रदान करने वाली वह रस-पयस्विनी प्रवाहित नहीं कर सकता जो समस्त युगों में समग्र मानव-मात्र की चिरन्तन भावनाओं और भूखों को आतृप्त कर सके। होमर, वर्जिल, कालिदास अथवा शेक्सपीयर ने आग लगाने का प्रयास नहीं किया। 'सौन्दर्य-मूल्यों'' में परिवर्तन के नाम पर, तथा युग-धर्म की आड़ में छायावाद की पलायन-वृत्ति और उसकी अमूर्त उपासना के विरुद्ध हिन्दी-साहित्य में ''प्रगतिवाद' के नाम से जो 'भीषण' प्रतिक्रिया आज उत्पन्न हो गई है, वह

"सिगरेट के खाली डिब्बे, पन्नी चमकीली,
फीतों के टुकड़े तस्वीरें नीली पीली''

में ही सत्य का दर्शन करती है श्रीमती महादेवी वर्मा को छोड़ कर आज प्राय: सभी कला पुजारियों ने 'युग-धर्म' और 'युग सत्य' के प्रबल कृत्रिम आकर्षण के प्रति आत्म-समर्पण कर दिया है। मानव धर्म एवं शाश्वत सत्य की वर्तमान उपेक्षा, हमारे साहित्य के लिए उत्साह-वर्द्धक लक्षण नहीं हैं। चिर-दलित और अधिकार-वंचित मानव साहित्य-साधना की वस्तु अवश्य बन सकता है, परन्तु अन्ततोगत्वा उसमें सन्निहित 'मान-

(शेष पृष्ठ ३२३ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवंगत श्री श्यामसुन्दर दासजी की गद्य-शैली

प्रो० कामेश्वरप्रसादसिंह एम० ए० नालन्दा कालेज

दिवंगत दासजी आज इस मिथ्या जगत् में नहीं हैं, पर उनकी आत्मा उनके साहित्य-निर्माण द्वारा हिन्दी-साहित्य-संसार में दिव्य नक्षत्र की भाँति जगमगा रही है। जिस काल में स्वर्गीय दासजी का हिन्दी-साहित्य-जगत में आविर्भाव हुआ था, उस समय तक हिन्दी-भाषा प्रौढ़ावस्था में अवस्थित हो चुकी थी। भाषा की प्रौढ़ता के साथ शैली का रूप भी निखर चुका था। कहना नहीं होगा कि उनके पूर्व ही भारतेन्दु-युग में हिन्दी-भाषा का पर्याप्त विकास हो गया था और उसके साथ शैली का भी। स्वयं भारतेन्दुजी के लेखन-संविधान में स्पष्टतया तीन प्रकार की शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। भारतेन्दु मंडली के प्रातिभ लेखकों की लेखन-विधि राजा लक्ष्मणसिंह तथा राजा शिवप्रसाद की लेखन प्रणाली से भिन्न है। अतएव श्यामसुन्दरदासजी की, जिन्होंने अपने स्तुत्य अध्यवसाय से साहित्य के समालोचना, सम्पादन, अनुसंधान एवं भाषा-विज्ञान प्रभृति अंगों को परिपुष्ट किया, लेखन-कला में शैली-विशेष का अनुशीलन अनुचित नहीं होगा। परन्तु इस अनुसंधान कार्य के पूर्व हमें यह देख लेना चाहिए कि शैली के सम्बन्ध में दासजी तथा अन्य मान्य लेखकों के क्या मत हैं ?

सभ्य संसार में प्रत्येक कार्य की सम्पादन-विधि पर ध्यान जाना अस्वाभाविक नहीं। प्रत्येक मनुष्य का प्रत्येक कार्य-विधान का अपना ढंग होता है। वह प्रत्येक कार्य अपने ढंग से करता है। वही ढंग उसकी शैली है। अतः ढंग और शैली पर्यायवाची शब्द हैं। परन्तु साहित्य क्षेत्र में शैली की इस सामान्य परिभाषा में अतिव्याप्ति दोष की सन्निहिति हो जाएगी। वहाँ शैली का तात्पर्य लेखनविधि है। शैली और भाषा में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। भाषा शरीर है और शैली उसकी आत्मा। शैली सम्बंधी अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए स्वर्गीय शुक्लजी कहते हैं कि शैली में व्यक्तित्व का सन्निवेश प्राकृतिक विधान है। परंतु व्यक्तित्व-वैचित्र्य के प्रदर्शनार्थ भाषा से कष्टसाध्य व्यायाम तथा द्राविड़ प्राणायाम करवाना युक्तियुत नहीं। भाषा की खींचातानी एवं उसकी विकृति शुक्लजी को चाहे मान्य न हो, पर भाषा और शैली का स्वाभाविक सम्पर्क उन्हें निर्विवादतया स्वीकृत है। पाश्चात्य समालोचकों के भी शैली संबंधी बहुत कुछ ये ही विचार हैं।

स्वयं स्वर्गीय दासजी ने अपने 'शैली का महत्व' शीर्षक लेख में 'शैली में' व्यक्तित्व स्वीकार किया है। इस संबंध में कतिपय अन्य विद्वानों के साथ उनका मतैक्य है कि बुद्धितत्व, कल्पना एवं रागात्मक तत्व के अतिरिक्त सौन्दर्यानुभूति के लिए एक चौथा तत्व आवश्यक है और वह तत्व रचना चमत्कार है। दासजी के अनुसार रचना-चमत्कार का दूसरा नाम शैली है। उनका कथन है कि "किसी कवि या लेखक की शब्द-योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, वाक्यों की बनावट और उनकी ध्वनि आदि ही का नाम शैली है। किसी किसी के मत से शैली विचारों का परिधान है। पर यह ठीक नहीं; क्योंकि परिधान का शरीर से अलग और निज का अस्तित्व होता है, उसकी उस व्यक्ति से भिन्न स्थिति होती है। जैसे मनुष्य से विचार अलग नहीं हो सकते, वैसे ही उन विचारों को व्यंजित करने का ढंग भी उनसे अलग नहीं हो सकता।" अतः कहना नहीं होगा कि व्यक्तित्व और शैली में आधाराधेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध है। शैलीकारों की शैलियों पर उनके व्यक्तित्व वैशिष्ट्य की छाप अवश्य रहेगी।

जिस प्रकार शैली और भाषा में घनिष्ट सम्बन्ध है, उसी प्रकार विषय और शैली में भी शरीर और आत्मा का सम्बन्ध है। शैलीकारों की शैलियाँ भी विषय-वैचित्र्य के अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं। एक ही शैलीकार यदि 'आलोचना'. और 'कहानी' लिखे, तो उसकी दोनों ग्रन्थों की शैलियों की भिन्नता स्पष्ट हो जाएगी। स्वयं 'प्रसाद' जी एवं 'प्रेमचन्द' जी के निबन्धों और कहानियों की शैलियाँ भिन्न हैं। शैली का विकास बहुत कुछ शैलीकारों की योग्यता, पाण्डित्य, अध्ययन एवं अभ्यास पर भी अवलम्बित है। बाबूजी के कथनानुसार यह भी एक शक्ति है जिसकी संशुद्धि, संस्कृति एवं उन्नति क्रमिक रीत्यानुसार होती रहती है।

बाबू जी, जिनकी लेखनी का आभारी हमारा हिन्दी-साहित्य-जगत् है, एक उच्चकोटि के गद्य-शैलीकार हैं। जिस गद्य-शैली का कुशल निर्माण उनकी लोकोत्तर प्रतिभा द्वारा हुआ, उसकी हिन्दी साहित्य में अपनी विशेषता तथा उच्च-स्थान है। होश संभालते ही उन्होंने लेखनी पकड़ी और मृत्यु पर्यन्त निरन्तर उसका संचालन विधिपूर्वक करते रहे प्रतिफल-स्वरूप कतिपय अलभ्य ग्रंथों, जैसे "भारतेन्दु-नाटकावली," "मानस" का सम्पादन सुलभ हुआ है।

साहित्य की आलोचना हुई, 'साहित्य लोचन' जिसका संग्रहमात्र है रूपक रहस्य एवं भाषाविज्ञान जैसी उपयोगिनी पुस्तकों का जिनकी उपादेयता विश्व-विद्यालय के उच्च कक्षाओं के पाठ्य-क्रम में निर्विवाद है, प्रणयन हुआ।

जिस साहित्य-महारथी की सुलेखनी मरण पर्यन्त सतत चलती रही, उसकी भाषा में प्रौढ़ता सरल प्रवाह, माधुर्य, प्रासादत्व एवं परिमार्जन का होना कुछ अस्वभाविक सा नहीं है। बाबूजी की भाषा मँजी हुई है। उसमें निर्झर-धारा का प्रवाह है। कहीं भी रुकावट नहीं। भारतेन्दु युग की भाषा-पद्धति में भाषा सम्बन्धी जो अव्यवस्था रह गयी थी, उसे बाबूजी की कुशल लेखनी ने दूर कर दिया है। शब्दाडम्बर का अभाव बाबूजी की गद्यशैली की विशेषता है। उनके पूर्व के लेखों में कुछ स्थानों पर व्यर्थ के शब्द जाल भले ही मिल जाँय, पर पीछे चल कर तो उनकी गद्य शैली इस दोष से सर्वथा मुक्त हो गई। उनकी प्रौढ़-अवस्था के लेखों में भावों का आधिक्य और शब्दों की न्यूनता है। "कविता वह साधन है जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।" उपर्युक्त वाक्य में जितने शब्द व्यवहृत हुए हैं, उनमें से यदि एक शब्द को भी निकाल लिया जाय, तो सारे वाक्य का अर्थ ही अनर्थ हो जायगा। प्रत्येक शब्द नपा-तुला हुआ है। शब्द-शक्ति-उद्भव-ध्वनि की भाँति पर्यायवाची शब्द भावाभिव्यञ्जना में नितान्त असफल रहेंगे। उद्धृत वाक्य में प्रयुक्त शब्दों की अपेक्षा भाव-संकुलता की ही प्रधानता है। उसमें निहित भावों की एक विशद व्याख्या हो सकती है। बाबूजी का पाण्डित्य किसी से छिपा नहीं। अध्ययनशील होने के कारण वह सर्वदा साहित्य-चर्चा में ही लगे रहते थे। प्रतिफलस्वरूप उनके विशाल शब्द-भाँडार में समुज्ज्वल एवं अमूल्य शब्द रत्नों का ढेर पड़ा हुआ था, जिस पर उनका अपूर्व अधिकार था। परन्तु उनके शब्द-प्रयोग के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि जिन लाक्षणिक एवं व्यंजक शब्दों के व्यवहार से भाषा-शक्ति का विकास होता है, उनका अभाव उनकी लेखन-पद्धति में अवश्य खटकता है हाँ! बहुत खोजने-ढूढ़ने पर भले ही ऐसे दो चार शब्द मिल जा सकते हैं। 'शैली का महत्त्व' शीर्षक लेख में बाबूजी ने शब्द की अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना इत्यादि शक्तियों की ओर संकेत किया है और प्रभावोत्पादन के लिए उनकी उनकी उपयोगिता को भी माना है, पर उनका व्यवहार उनके लेखों में शायद ही मिलता है, जैसे पंग सेवा चारों ओर से उमड़ आयी 'उमड़ आयी' यहाँ लाक्षणिक प्रयोग है।

कारण स्पष्ट है। बाबूजी के व्यक्तित्व में आडम्बर का अभाव था। भाषा द्वारा व्यक्ति वैचित्र्य का प्रदर्शन वह करना नहीं चाहते थे। विद्वता का विज्ञापन उनके जीवन का लक्ष्य नहीं था। आप सरलता एवं गम्भीरता की प्रतिमूर्ति थे। अतः उनके व्यक्तित्व से उनकी भाषा को प्रभावा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्वित होना अनिवार्य ही था। बाबूजी की भाषा उनके व्यक्तित्व के अनुसार सरल, गम्भीर पर प्रभाव पूर्ण थी। उसमें कहीं भी तड़क-भड़क दीख नहीं पड़ती है। शुक्लजी के शब्दों में उन्होंने भावाभिव्यंजना के लिए भाषा से व्यायाम नहीं करवाया है। सरल होने पर भी उनकी भाषा में भिन्न-भिन्न शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। बाबूजी आचार्य होने के नाते उन्हें साहित्य सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना पड़ा है। जब वह सिद्धान्त प्रतिपादन कार्य में रत हो जाते हैं, तब उनकी भाषा गम्भीर हो जाती है। "ललित कलाएँ दो मुख्य भागों में विभक्त की जा सकती हैं—एक तो वे जो नेत्रेंद्रिय के सन्निकर्ष से मानसिक तृप्ति प्रदान करती हैं, और दूसरी वे जो श्रवणेंद्रिय के सन्निकर्ष से उस तृप्ति का साधन बनती है इस विचार से वास्तु (मन्दिर-निर्माण), मूर्त्ति (अर्थात् तक्षण कल्प) और चित्रकलाएँ तो नेत्र द्वारा तृप्ति का विधान करने वाली हैं और संगीत तथा श्रव्य-काव्य कानों के द्वारा।" सिद्धान्त स्वतः गाम्भीर्य का परिचायक है। अतः सिद्धान्त-वाक्य की भाषा अवश्यमेव ही गम्भीर होगी। परन्तु देखा जाता है कि भारतेन्दुजी की नाईं गम्भीरता का प्रदर्शन क्लिष्ट एवं समस्त शब्दों द्वारा नहीं किया गया है। उनके वाक्यों में सारल्य एवं गांभीर्य का जैसे सुन्दर समन्वय हो गया है। सिद्धान्त कथन को कभी-कभी वह कोष्ठ बद्ध कर देते हैं जैसे "आदर्श सभ्यता वह है जिसमें मनुष्य का यह स्थिर सिद्धान्त हो जाय कि "जितना किसी काम के करने का अधिकार मुझे है उतना ही दूसरे को भी है।' भाषा द्वारा मूर्त्तिकला संस्थापित करना बाबूजी की गद्य शैली की विशेषता है। परन्तु यह मूर्तिमत्ता-संस्थापन-विधि भी उनके अपने ढङ्ग की है। इसके लिये उन्होंने वर्णनात्मक गद्य शैली का अनुसरण किया है। संश्लिष्ट वर्णन के लिए उन्होंने स्वर्गीय शुक्लजी की नाईं सामासिक पदावली का योग नहीं किया है प्रत्युत तत्सम एवं तद्भव शब्दों का।

"यदि वह लहलहाते हुए खेतों और जंगलों, हरी घास के बीच घूम कर बहने वाले नालों, काली चट्टानों पर चाँदी की तरह झरते हुए झरनों, मंजरी से लदी हुई अमराइयों, पट पर के बीच खड़े झाड़ों को देख क्षण भर लीन न हुआ, तो उसके जीवन में रह ही क्या गया?' प्रकृति के इस संश्लिष्ट वर्णन पद्धति में उद्धृत शब्दावली मोती के दानों की लड़ी की तरह प्रतीत होती हैं। ऐसे तद्भव शब्दों का जिनमें स्वाभाविकता एवं मृदुता कूट-कूट भरी रहती है, प्रभाव सीधे हमारे हृदय पर पड़ता है।

जहाँ किसी वृत एवं कथा का वर्णन प्रयोजनीय है वहाँ बाबूजी ने आचार्य्यवर शुक्लजी के सदृश छोटे-छोटे पर चुस्त वाक्यों का व्यवहार किया है। उनकी लघुता एवं चुस्ती से एक विचित्र प्रकार की रमणीयता एवं प्रभाव का द्योतन होता है। "अब वृत्ति की ओर उनका ध्यान गया। कृषि भी होने लगे, गाँव बसने लगे, पशुओं और भूभागों पर अधिकार की चर्चा चल पड़ी। लोहारों और बढ़इयों की संस्थाएँ बन गईं।" पर इस शैली के अन्तर्गत चुस्ती की जो प्रमुखता है, वह बाबूजी की भाषा में सर्वत्र नहीं मिलती। अन्यत्र तो हमें निराशा ही मिलेगी।

बाबूजी ने हिन्दी साहित्य सृजन-कार्य में ही केवल अपना सहयोग प्रदान नहीं किया है, अर्थात् उसके प्रणीत प्रचार-कार्य में भी हाथ बटाया है। उक्त कार्य के लिये उन्होंने आचार्य द्विवेदी जी की भाँति व्याख्यानात्मक शैली ग्रहण की है। ऐसे अवसर पर एक ही भाव का अभिव्यंजन भिन्न भिन्न वाक्यों एवं शब्दों द्वारा हुआ है। "ईश्वर की सृष्टि विचित्रताओं से भरी हुई है। जितना ही इसे देखते जाइये, उसका अन्वेषण करते जाइये, इसकी छानबीन करते जाइये उतनी ही नई नई शृंखलाएँ विचित्रता की मिलती जाएगी।" यहाँ सूक्ष्म निदर्शन से पता चल सकता है कि 'नई नई शृङ्खलाएँ विचित्रता की" जैसे वाक्य-खंड पर उर्दू के विन्यास पद्धति का पुट है। शुक्ल-जी की भाँति बाबूजी को भी 'यदि और तो वाली' शैली प्रिय-प्रतीत होती है। इस प्रकार के संकेत वाचक समुच्चय-बोधक के आयोजन द्वारा वाक्यों में एक प्रकार की चुस्ती और लोच आ जाती है, जिसका प्रभाव हृदय-पट पर अचूक होता है। "कोई बलवान है, तो कोई विचारवान, कोई न्यायशील है तो कोई अत्याचारी, कोई दयामय है, तो कोई कृतघ्न, कोई सदाचारी है तो कोई दुराचारी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि के लोप मात्र से वाक्य और भी गठित प्रतीत होता है।

साथ ही ध्यान देने की बात है कि वाक्योच्चय छोटे छोटे हैं। प्रभावोत्पादक एवं प्रधानता प्रदर्शन के लिए बाबूजी ने है, ही, पर वाली शैली का प्रयोग किया है—'वन, पर्वत, नदी, नाले, निर्झर, कछार....... अनन्त आकाश, नक्षत्र आदि तो मनुष्य के आदिम सहचर हैं ही पर खेत पगडंडी, हल, झोंपड़े, चौपार आदि भी कुछ कम पुराने नहीं हैं।

कथन पर जोर देने के लिए इस वाक्य में "पर है वास्तव में गद्य ही", क्रिया को वाक्य के प्रारम्भ में रखा गया है। ऐसे अवसर पर शुक्लजी क्रिया को प्रायेण वाक्य के मध्य में रखा करते हैं। श्रोताओं एवं पाठकों की जिज्ञासा-वृत्ति को सजग रखते हुए उनका ध्यान अभीष्ट वस्तु की ओर आकृष्ट करने के लिए प्रमुख शब्द को वाक्य के अन्त में रखना अपेक्षित है। बाबूजी के इस ढंग की वाक्य रचना द्वारा—"चाहे हम किसी दृष्टि से विचार करें हमारे सब कष्टों का अन्त यदि किसी बात से हो सकता है, तो वह केवल स्वराज्य से", उपर्युक्त अभीष्ट की सिद्धि अवश्य हो जाती है। पाठकों की उत्कंठा उस समय तक बनी रहती है, जब तक वाक्य का अंत नहीं हो जाता है। क्योंकि भाव का स्पष्टीकरण वाक्य के अन्तिम शब्द द्वारा ही होता है।

आपकी रचनाओं में समीकृत वाक्य भी पाए जाते हैं—"चाहे हमारी निन्दा हो, चाहे हमारी आज ही मृत्यु हो और चाहे हम अभी बरसों जीऐं। चाहे हमें लक्ष्मी स्वीकार करे, चाहे हमारा जीवन दारिद्र्यमय हो जाय, परन्तु जो व्रत हमने धारण किया है उससे हम कभी विचलित न होंगे"। बाबूजी के अनुसार ऐसे वाक्यों का प्रभाव सुखद विस्मय उत्पन्न करना है। जहाँ किसी वाक्य के उपरान्त भ्रम-प्रसार की सम्भावना दीख पड़ती है, वहाँ उसके दूसरे वाक्य के आदि में बाबूजी का 'तात्पर्य यह' अथवा 'तात्पर्य यह नहीं' का प्रयोग श्लाघनीय है। "फल-फूलों, पशु-पक्षियों, कीट पतंगों, नदी-नालों, नक्षत्र-तारों आदि सभी में हम किसी-न-किसी प्रकार का सौन्दर्य पाते हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि संसार में अनुपयोगिता और कुरूपता का अस्तित्व ही नहीं"। उपर्युक्त वाक्य द्वारा जिस भ्रम की आशंका है, उसका निवारण दूसरे वाक्य द्वारा हो जाता है।

बाबूजी की रचना में इस प्रकार के वाक्य भी उपलब्ध हैं जिनमें दो निर्देशक चिन्हों के बीच अन्तर्गति की नियोजना है और उन चिन्हों के बीच में कोई बात कही गई है। "परन्तु यदि कविता कल्पनाओं और मनोवेगों के रूप में जीवन की व्याख्या है, तो उसके वास्तविक महत्व की कसौटी उस शक्ति का महत्व है जो जीवन के महत्वपूर्ण और स्थायी विषयों के वर्णन में—ऐसी वस्तुओं के वर्णन में जिनका सम्बन्ध हमारे विशेष अनुभवों और अनुराग-विराग से उत्पन्न होता है—प्रदर्शित करती है।"

एक ही वाक्य के अन्तर्भूत कई वाक्यों का सन्निवेश करना बाबूजी की शैली का वैशिष्ट्य है। परन्तु उन वाक्यों में मिश्रजी की शैली की जटिलता एवं दुरूहता नहीं है। "कविता में सत्यता से अभिप्राय उस निष्कपटता से है, जो हम अपने भावों या मनोवेगों का व्यंजन करने में, उनका

(पृष्ठ ३१६ का शेषांश)

वता' ही कलाकामिनी का सनातन शृङ्गार है—इसे सर्वदा स्मरण रखना चाहिए।

उपर्युक्त लम्बे विवेचन के उपरान्त अब स्वतः यह विचारणीय है कि साहित्य कि उपयोगिता क्या है?—उसका मापदण्ड क्या होना चाहिए? जैसा कहा गया है, मानव 'आत्म-दर्शन' के लिये लालायित रहता है, अपने को ही 'पहचानना' चाहता है। न तो वह ऐन्द्रजालिक सौन्दर्य के लिए बुभुक्षित है और न नग्न स्थूल ही उसे परितृप्ति प्रदान कर सकता है। मानव, स्थूल एवं सूक्ष्म, दोनों ही तत्वों के सामञ्जस्य से निर्मित है अथच आत्म-दर्शन में इसी आधारभूत 'द्वन्द्व' की कामना करता है। सत् सहित्य की उपयोगिता यही है कि वह मानव को 'मानवता' से परिचित कराये,

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम पर जो प्रभाव पड़ता है उसे प्रयत्न करने तथा उनके कारण हम में जो सुख-दुःख आशा-निराशा, भय-आशंका, आश्चर्य-चमत्कार, श्रद्धा-भक्ति आदि के भाव उत्पन्न होते हैं, उनको अभिव्यक्त करने में प्रदर्शित करते हैं।" इस शैली का एक मात्र कारण बाबूजी का आचार्यत्व है। विषय-प्रतिपादन के लिए जो भाषा व्यवहृत होती है, उसमें दुरूहता कियदंश में आ ही जाती है।

रूपक-योजना द्वारा भाषा शैली में प्राणतत्व समाविष्ट हो जाता है। परन्तु बाबूजी के सारल्यातिरेक के कारण उनकी रचना प्रणाली में इस प्रकार की योजना प्रचुर मात्रा में सुलभ नहीं है। हाँ, दो चार स्थानों में रूपक योजना के उदाहरण दृष्टिगत हो जाते हैं। "न जाने इस ग्रन्थ ने ………कितनों को धर्म-पथ पर डगमगाते चलने में सहारा देकर सँभाला।" "संगीत हमें शोक-सागर में डुबा सकता है।" यहाँ 'धर्मपथ' एवं 'शोक सागर' में रूपक योजनायें हैं। पर उक्त नियोजन में पाण्डित्य-प्रदर्शन की कृतिमता नहीं। रूपक योजना स्वाभाविक है। रूपक योजना के साथ साथ रूप योजना भी बाबूजी की भाषा-पद्धति में समाविष्ट है। रूपविधान का लक्ष्य मूर्तिमत्ता है। अंग्रेजी साहित्य में लार्ड टेनीसन अपने शब्द-चित्र के लिए प्रसिद्ध है। उसका प्रत्येक शब्द जैसे एक चित्र है जो दोनों कर्णेन्द्रिय एवं चक्षुरेन्द्रिय को संतृप्त करता है। भाषा द्वारा जो चित्र उपस्थित किया जाता है, उसका प्रभाव मानस-पट पर अमिट्य है। "चाहे उसमें सारे संस्कृत कोशों को ढूँढ़ ढूँढ़ कर शब्द रखे गये हैं।" "न जाने इस ग्रन्थ ने……… ………कितनों को धर्म-पथ पर डगमगाते चलते देख कर सँभाला।" दोनों वाक्यों में 'ढूँढ ढूँढ' तथा 'डगमगाते' क्रियाओं द्वारा उनके रूप आँखों के सामने झलक पड़ते हैं। इस प्रकार की रूप-योजना द्वारा भाषा में सरल एवं स्निग्ध प्रवाह का आना युक्तियुत है।

प्रभावान्विति एवं स्पष्टता के उद्देश्य से बाबूजी की गद्य-रचना में जो स्वीकारात्मक वाक्य होते हैं, उनके प्रारंभ में 'हाँ', 'यह सच है', 'इसमें सन्देह नहीं' इत्यादि उपवाक्य प्रयुक्त हैं। 'हाँ', यदि उनके कोमल कपोलों की उपमा किसी अच्छे गहरे लाल रंग से देते, तो हो सकता था।" यह सच है कि गद्य में भी कविता के लक्षण उपस्थित रह सकते हैं।" इसमें सन्देह नहीं कि कवि को अपनी कल्पना का प्रयोग करने में बहुत कुछ स्वतंत्रता होती है।" संभवतः उनकी इस गद्य शैली पर अंग्रेजी अभिव्यंजन-पद्धति का प्रभाव है। बाबूजी के जिस वाक्य से सम्पूर्ण सन्निहिति का द्योतन होता है वह 'यहाँ तक कि' से समारम्भ होता है। "इस विचार से प्रत्येक प्रकार की कविता, यहाँ तक कि तुच्छ विषयों पर भी की गई कविता ………अपने भाव को चरितार्थ करती।"

फल-निर्देशार्थ बाबूजी ने 'बस फिर क्या था', 'बस अब क्या था?' जैसे मुहावरों का प्रयोग किया है। इन मुहावरों के प्रयोग से भाषा सजीव हो उठती है। "बस, फिर क्या था, संयोगिता को इस प्रकार हरी जान कर दंग-सेना चारों ओर से उमड़ आयी।" सचमुच ऐसे मुहावरों से समारंभ वाक्य का प्रभाव अचूक होता है।

जब बाबूजी किसी निष्कर्ष को निर्दिष्ट करने में असमर्थ रहते हैं अथवा उसकी धारणा वैकल्पिक होती है, तब आप अथवा का प्रयोग करते हैं। ठीक है इस प्रकार के भावाभिव्यंजन के लिए इस शब्द से और उपयुक्त कोई दूसरा शब्द भी तो नहीं है। "हमें इस बात का पता नहीं लगता कि यह भावना भ्रमात्मक है अथवा वास्तविक है।" यह एक 'है' अनावश्यक सा है।

बाबूजी अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य से पूर्ण परिचित थे। उसके साहित्य के प्रचार से नवीन विचारों का प्रादुर्भाव अनिवार्य था। परन्तु उन विचारों को अभिव्यक्त करने की क्षमता हिन्दी भाषा में नहीं थी। इस कार्य के सम्पादन के लिए अंग्रेजी-वाक्य-रचना पद्धति का अनुसरण प्राह्य था। अतः हिन्दी गद्य-शैली के निर्माताओं ने हिन्दी वाक्य रचना प्रणाली को समीचीन बनाने के लिए अंग्रेजी वाक्य-रचना पद्धति की यथासम्भव सहायता ली। कुछ नव शिक्षित लेखकों पर इस परम्परा का बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। परन्तु बाबूजी एक सिद्धहस्त लेखक थे। उनका व्यक्तित्व इस दुष्परम्परा से लेशमात्र भी दूषित नहीं है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सका। अंग्रेजी वाक्य-रचना-विधान के अनुसार कुछ लोग यद्यपि के बाद तो का और ज्यों के उपरान्त त्यों का प्रयोग नहीं करते हैं। पर बाबूजी ने ऐसा कभी नहीं किया। उन्हें भाषा की प्रवृति की अच्छी परख थी। वह भली भाँति जानते थे कि प्रत्येक भाषा की अपनी प्रवृत्ति होती है। प्रतिफल स्वरूप अंग्रेजी वाक्य-विन्यास पद्धति से प्रभावित होकर भी उन्होंने न्यून पद दोष को नहीं अपनाया।

"यद्यपि पद्यकाव्य की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया है, तथापि वे यह भी मानते थे कि गद्य में भी काव्य के लक्षण आ सकते हैं," परन्तु संग-दोष के कारण कहीं-कहीं आपकी रचनाओं में भी न्यून पद दोष निहित हो गए हैं—

'पर ज्यों-ज्यों हमारा ज्ञान बढ़ता जाता है, हम उनके गुणों को अधिकाधिक जानने जाते हैं"। यहाँ ज्यों के बाद त्यों का प्रयोग नहीं है। इस प्रकार का न्यून-पद दोष उनकी गद्य-शैली में दृष्टव्य है।

अंग्रेजी वाक्य-विन्यास के ढङ्ग पर बाबूजी की भाषा में यदा-कदा एक-एक वाक्य कर्त्ताकारक के रूप में उपस्थित हुआ है—

"यह कहना कि कविता की रचना में सत्यता का अभाव रहता है सर्वथा अनुचित है।"

यहाँ "यह कहना कि कविता की रचना में सत्यता का अभाव रहता है" एक पूरा वाक्य है जो कर्त्ताकारक के रूप में व्यवहृत हुआ है। इसके अतिरिक्त एक कर्त्ता कारक में अनेक क्रियाओं का संगुम्फन करना आपकी भाषा-शैली की विशेषता है।

'संगीत हमें रुला सकता है, हमें हँसा सकता है, हमारे हृदय में आनन्द की हिलोरें उत्पन्न कर सकता है, शांत रस का प्रवाह बहा कर हमारे हृदय में शान्ति की धारा बहा सकता है"। उद्धृत वाक्य में एक कर्त्ता (संगीत) में इतनी क्रियाएँ समन्वित हैं। संभवतः अपने विचारों को प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करने के विचार से ही आपने इस शैली का आलम्बन किया है।

बाबूजी ने यथासम्भव भावात्मक शैली का भी उपयोग किया है। उनकी यह शैली विचारात्मक लेखों के मर्मस्पर्शी स्थानों पर ही दृष्टिगत होती है। "क्या राजा, महाराज, सेठ, साहूकार, दरबी, मुनि, साधु और क्या दीनहीन साधारण जन-समुदाय सबमें उनके मानस का पूर्ण प्रचार है। उनकी भावुकता में भी सरलता है।

बाबूजी चमत्कार-प्रिय नहीं थे। अतः रचना-चमत्कार उनका ध्येय नहीं था। पर उनकी भाषा में अलङ्कार-सन्निधान स्थान विशेष पर स्वतः हो गया है। "बड़े-बड़े विद्वान से लेकर निरक्षर भट्टाचार्य तक उनके मानस से अपने मानस की तृप्ति करते। यहाँ 'मानस' संश्लिष्ट शब्द है। एक मानस का अर्थ मानस रामायण है और दूसरे का मन। आपकी भाषा परिमार्जित अवश्य है, पर उसमें मुहावरों का बाहुल्य नहीं। परन्तु जहाँ कहीं भी आपने मुहावरे का प्रयोग किया है उसका प्रयोग उपयुक्त रीति से हुआ है। "दोनों की आँखें चार होते ही परस्पर मिलने की इच्छा प्रबल हो उठी"। यहाँ 'आँखे चार' का कैसा सुन्दर प्रयोग हुआ है।

आचार्य वर भारतीय संस्कृति के प्रेमी थे। हमारी संस्कृति का हमारी भाषा से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। भाषा संस्कृति को छोड़ कर अलग नहीं हो सकती है। अतः बाबूजी ने अपने गद्य-विधान में उस भाषा का व्यवहार किया है जिसका सम्बन्ध उस भाषा से है अर्थात् संस्कृत, जिसमें हमारा संस्कृति परम्परा सुरक्षित है।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि उन्होंने संस्कृत बहुला भाषा लिखी है। हरिऔधजी के प्रतिकूल चार-चार अँगुल के समासों की उन्होंने खिल्लियां उड़ाई हैं। जन्मस्थान, सम्पत्ति-भंडार जैसे सामासिक शब्दों से उनका वाक्य-विन्यास आवश्यक हुआ है, पर उन शब्दों में समासगत क्लिष्टता नहीं है भाषा सम्बन्धी इस आदर्श के अतिरिक्त भी उन्होंने 'तैयार," "कैद" जैसे अरबी, फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। हिन्दी की बोलचाल के शब्दों के साथ-साथ 'रिपोर्ट' जैसे अँग्रेजी के नित्य-प्रति व्यवहृत होने वाले शब्दों का भी आपने परित्याग नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है। ऐसे शब्दों का प्रयोग यथा अवसर ही हुआ है और इन शब्दों से भाषा का सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है।

बाबूजी का अध्ययन विस्तृत एवं गम्भीर था। फलतः उन्हें अपनी धारणा पर अटल विश्वास था। ऐसे अटल विश्वास की अभिव्यक्ति आपने प्रश्नसूचक वाक्यों द्वारा की है। ऐसे अवसर पर प्रश्न की अवतारणा की गई। शुक्लजी एवं अन्य महा शैलीकारों ने भी यही किया है। 'क्या अन्य भारतीय देशी भाषाओं में इसका सूत्र पात्र नहीं हो चुका है और क्या उनसे हमारा काम न चलेगा। "यह क्या हमें राष्ट्र-निर्माण में सहायता नहीं दे सकता? क्या हमारे देश की उन्नति करने में हमारा पथ-प्रदर्शक नहीं हो सकता? इस प्रकार हम देखते हैं कि बाबूजी ने अपनी निश्चल धारणा को अभिव्यञ्जित करने के लिये प्रथम प्रश्न सूचक वाक्यों का विन्यास किया है, तदन्तर उन प्रश्नों का उत्तर दिया है। सच पूछिये तो उत्तर की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। उनकी धारणाओं के अभिव्यञ्जन के लिये प्रश्न ही अलम् हैं।

गम्भीर प्रकृति के होने के कारण बाबूजी ने किसी पर छींटे नहीं छिड़के। किसी के प्रति व्यंग्योक्तियों का उच्चारण उनके स्वभाव के विरुद्ध था। यदि अवसर विशेष पर उन्हें व्यंग्योक्तियों एवं कटूक्तियों का प्रयोग करना पड़ा है तो वहाँ उन्होंने सर्व शुक्लजी एवं पद्मसिंह शर्माजी की भाँति फारसी, अरबी एवं अँग्रेजी के शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। 'कविराजजी कहना ही ठीक माना गया और ग्रन्थ का प्रकाशन बन्द कर दिया यहीं ठीक माना गया' में एक व्यंग्य छिपा हुआ है जिसमें तीव्रता का अस्तित्व नहीं है। व्यंग्यक्तियों एवं कटूक्तियों को तीव्रता प्रदान करने की अरबी, फारसी जैसे विदेशी शब्दों और मुहावरों की प्रवरण शक्ति है। पर बाबूजी किसी के भी दो खरी-खोटी सुना कर जलाना नहीं चाहते थे। अतः उनके व्यंग्य में माधुर्य है जिसके अभिव्यंजनार्थ उन्होंने सरल तत्सम शब्दों का ही प्रयोग श्रेयस्कर समझा।

कहना नहीं होगा कि बाबूजी की गद्य शैली सूक्ष्म निरीक्षण से उसकी विशिष्टताओं का स्पष्ट निदर्शन हो जाता है। हिन्दी गद्य भाषा के निर्माणार्थ उन्होंने जिन शैलियों को अपनाया उनमें अपूर्व एवं सौष्ठव है। उनकी सरल भाषा में भावव्यञ्जन की लोकोत्तर क्षमता है। हिन्दी गद्य शैली के निर्माण-कार्य में उन्होंने हार्दिक सहयोग प्रदान किया। फलतः हिन्दी साहित्य के निर्माताओं में उनका विशिष्ट स्थान है। जिस शैलीकार ने अपनी रचनाओं से हिन्दी साहित्य का भाण्डार परिपूर्ण किया उस दिवंगत महान् आत्मा की पुनीत स्मृति में यह निबन्ध श्रद्धाञ्जलि के रूप समर्पित है। खेद है, जीवन-काल में उसे वह सम्मान प्राप्त न हो सका जिस पर उसका समुचित अधिकार हो सकता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशोधरा

श्री० राधारमण गुप्त एम० ए०

कविता, गीत, नाटक, गद्य, पद्य, तुकान्त, अतुकान्त इत्यादि सभी कुछ होने के कारण इसे प्रबन्धकाव्य या खण्ड काव्य आदि किसी वर्ग विशेष में रखना अत्यन्त कठिन है। वास्तव में गर्विणी गोपा एवं राहुल जननी का चरित्रांकन ही काव्य का मुख्य उद्देश्य है। प्रारम्भ में मंगलाचरण है, पर काव्य सर्गों में विभाजित नहीं और न उनकी संख्या ही दी गई है। हमारे सामने एक एक करके पात्र आते हैं और मुक्तक गीतों के रूप में, एक प्रकार से स्वागत के समान अपने भावों की व्यञ्जना कर जाते हैं। प्रत्येक पात्र से सम्बन्धित गीतों के समूह को एक परिच्छेद के से रूप में एकत्रित करके उसका शीर्षक वही पात्र रख दिया गया है। ऐसे परिच्छेदों में एक ही छन्द नहीं पाया जाता। प्रबन्ध काव्य के विपरीत इसके अन्तर्गत एक गद्य में लिखे हुए नाटक की भी योजना हुई है। मुक्तक गीतों के रूप में भाव-व्यञ्जना की अधिकता के कारण प्रबन्ध-प्रवाह का अभाव है। बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण से उत्पन्न विरह का वर्णन एवं यशोधरा के चरित्र चित्रण की प्रधानता के कारण घटनाओं की अनेकरूपता का कहीं पता नहीं। वास्तव में खण्ड-काव्य के उपयुक्त कथानक की मात्रा का भी अभाव है। महाभिनिष्क्रमण और बुद्ध के आगमन के अतिरिक्त कोई घटना प्रत्यक्ष घटित होती ही नहीं। हय-परीक्षा एवं हंस-परित्राण की घटनाएँ यशोधरा की स्मृति के रूप में ही कथित हैं। सक्रियता का बहुत अभाव है। हाँ, रसात्मकता पर्याप्त मात्रा में मिलती है। महाभिनिष्क्रमण में बुद्ध के निर्वेद और धर्मोत्साह की अच्छी व्यञ्जना हुई है। उनके वैराग्य की प्रखरता को देखिये—

मैं जागरूक हूँ, ले सँभाल
निज राजपाट, धन, धरणि, धाम।
ओ क्षण-भंगुर भव, राम राम!

वे अपनी आत्म-प्रतारणा करते हैं—

धिक! जो मेरे रहते मेरा चेतन जाय चरा।

उनका धर्मोत्साह अपूर्व है—

तब है जब वे दाँत उखाड़ें,
रह भवसागर-नक्र!

प्रियतम को सहर्ष सिद्धिहेतु विदा करने के गौरव से वंचिता एवं इसी कारण आने पर कोई अन्य बाधा न होते हुये भी उनका सोत्साह स्वागत करने में असमर्थ, गर्विणी यशोधरा का अनिश्चित काल के लिये विरह अत्यन्त करुण एवं गौरवपूर्ण है। यशोधरा और राहुल के प्रसङ्ग में वात्सल्य रस का अच्छा परिपाक हुआ है। राहुल की भोली विदग्धता हास्य विनोद के अनेकों अवसर उपस्थित करती है जो यशोधरा की करुण परिस्थिति में बड़े मर्मस्पर्शी हो गये हैं।

कथोपकथन जहाँ कहीं भी हैं, चरित्र-चित्रण में सहायक और भाव-व्यञ्जक हैं। उनमें पर्याप्त सजीवता है। 'साकेत' के सम्वादों की विदग्धता यहाँ भी अपनी छटा दिखा रही है। राहुल के वाक्यों में कैसी भोली विदग्धता एवं मार्मिकता पाई जाती है।

मुझे तो सब बातें साधारणतः यथा नियम ही होती दिखाई देती हैं। हाँ, तेरे एक रोने को छोड़ कर। तू हँस पड़ी, यह और भी विचित्र है।

पात्र भी कम हैं और यशोधरा और राहुल को छोड़ कर स्पष्टता के साथ अंकित नहीं हैं। महाप्रजावती पालित पुत्र से अन्तिम दाह संस्कार की इच्छा रखने वाली और उसके विरह में उसके दुख की आशंका से शंकित होने वाली साधारण माता के रूप में दिखाई देती हैं और शुद्धोदन अतिशय पुत्रवत्सल एवं सीधे पिता के रूप में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्ध को महाभिनिष्क्रमण के बाद लौटने पर ही हम देखते हैं और तुरन्त ही काव्य की समाप्ति हो जाती है। उनमें हम वैराग्य, ग्लानि और धर्मोत्साह का योग पाते हैं। उनकी वीरता एवं दयालुता हंस-परीक्षा और हंस-परित्राण के प्रसंग से मालूम होती है। उनके संसार-त्याग का कारण जग का भार नहीं है और न निष्ठुर-निर्मोहता ही है। यशोधरा और राहुल के प्रेम, विश्व के शोक और उनकी व्यापक करुणा ही ने उन्हें संसार त्याग के लिए प्रेरित किया है। देखिए यशोधरा के लिए उनका कैसा अलौकिक प्रेम व्यंजित हो रहा है।

हाय! मिलेगा मिट्टी में वह वर्ण सुवर्ण खरा।
सूख जायगा मेरा उपवन, जो है आज हरा।

उन्होंने संसार को संसार के ही लिए त्यागा है। राहुल के जन्म ने तो उन्हें अमृत की प्राप्ति के लिए और भी आतुर कर दिया। यशोधरा का अनन्य प्रेम ही उनकी कामदेव से रक्षा कर सका है। अपने साहस, त्याग, संयम, अध्यवसाय और निष्ठा से सिद्धि प्राप्त करते हैं। जो हृदय वज्रादपि कठोर होता है, वही कुसुम कोमल भी होता है।

राहुल और यशोधरा के चरित्र बड़ी कुशल लेखनी द्वारा अंकित हुए हैं। राहुल को हम शैशव से लेकर किशोरावस्था तक निरंतर विकसित होते हुए देखते हैं। वह बड़ा चपल, जीवन-पूर्ण और वाक्-पटु बालक है। वह अपनी माता, दादी एवं दादा के संस्कारों और शिक्षाओं को ग्रहण कर रहा है और उन्हें अपने जीवन में घटाता भी है। समय पर उसमें भावुकता और तीव्र सूझ का भी विकास होता है। प्रारम्भ में हम उसे हठ करते, कहानी सुनने की भड़ करते और दूध से भागते हुये पाते हैं, जो बालकों के लिए स्वाभाविक ही है। केवल माँ द्वारा ही लालित पालित होने के कारण स्वाभाविक रूप से उसे पिता से अधिक माता से प्रेम है। वह कहता है: —

तेरा अङ्क लाभ कर मुझको चाह नहीं अब कोई।

अवश्य उसके पिता वहीं हैं जहाँ जाकर मनुष्य सब कुछ भूल जाता है। पिता के खोजने के लिए वह वहाँ जाना चाहता है, पर तुरंत ही ध्यान आ जाता है और कहता है: —

अम्ब नहीं! ध्यान वहाँ तेरा भी न आयेगा।

वह बड़ा जिज्ञासु एवं तर्कशील भी है। जब माँ कहती है कि चातक 'पी पी' कहता है पर तू दूध क्यों नहीं पीता, तो वह इसी प्रकार उत्तर देता है कि कोयल 'कहो कहो' कहती है, किन्तु तू कहानी नहीं कहती। वह माँ के पीछे से आकर झट से प्रणाम करता है कि कहीं माँ प्रणाम करने से पहले ही आशीर्वाद न दे दे।

वह बड़ा भावुक भी है। 'सुन, राजा वन में रहता था, घर रहती थी रानी' में वह यशोधरा की ओर ही संकेत करता है। कोपलों की ओर संकेत करते हुए वह कहता है: —

'ये हाथ लगते ही कुम्हलाकर तेरे होठों से होड़ करने लगेंगी।'

सिर नीचा किये, अधखुली आँखें पति की ओर लगाये हुये, उनसे मरकत-माला ग्रहण करती हुई मूर्ति, उनके लिये, अब गैरिकवसना होकर पवित्र से पावन हो गई है। उसकी बातों की गम्भीरता और सचाई को देखिये —

और रहो, चाहे जहाँ, सिद्धि तो है धुन की।
तेरी गोद में ही अम्ब, मैंने सब पाया है!
ब्रह्म भी मिलेगा कल, आज मिली माया है।

जैसा काव्य के नाम से प्रकट है, यशोधरा ही काव्य की जान है। यह सुवर्ण से खरे वर्ण वाली, 'हास विलास विनोद पूर्ण सिर झुकाये, अधखुली आँखें प्रियतम की ओर लगाये, उनसे मरकत-माला ग्रहण करती हुई पवित्र वधू-मूर्ति अब पावन हो गई है।' गर्विणी गोपा एवं राहुल-जननी के आँसू ही इस काव्य की अमोल निधि है।

उसका प्रेम निष्कामता, कर्त्तव्य-निष्ठा, महत्व भावना, संयम, एवं त्याग से पूर्ण है। उसके स्वामी सिद्धि-हेतु उसे त्याग कर गये हैं, यह तो गौरव की बात है। इस त्याग से आज के और भी अधिक सुन्दर लगने लगे हैं। उसे तो केवल इसी बात का दुख है कि वे उससे कह कर क्यों नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये। हाय! उसे गर्व के साथ अपने प्रियतम-पति को लोक-कल्याण के लिये विदा करने का गौरव भी नहीं प्राप्त हुआ। वह तो, वे जो कुछ अपने मन में लाते थे, उसीको अपना मुख्य कर्त्तव्य समझती थी। शोक! इतने दिनों में भी वे उसे पहचान न पाये।

गौतम के आगमन का समाचार उसे मिलता है। उसका सुधा-सिन्धु उसके सामने ही लहरा रहा है, किन्तु वह इस पार पड़ी हुई प्यासी मर रही है। यदि उसे उनके स्वागत करने का अधिकार ही होता तो क्या वह यों ही पड़ी रहती।

यदि पाती, तो कभी यहाँ बैठ रहती
मैं, छान डालती धरित्री को,
सिंहनी सी काननों में, योगिनी सी शैलों में
शफरी सी जल में, विहंगनी सी व्योम में
जाती तभी और उन्हें खोज कर लाती मैं।

पर वह अपने इस विरह उनके पथ का रोड़ा नहीं बनने देगी। यह विरह उसमें अपूर्व उत्साह की प्रेरणा करता है। उसे यही चिन्ता है,

क्योंकर सिद्ध करूँ अपने को मैं उन नर की नारी

यह तो उसकी परीक्षा का अवसर है:

आर्य-पुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

वास्तव में चाँदनी का अस्त भी सफल है, जिससे प्रभात के तपे खरे सोने में एक नई ही लाली उदित होती है। उसकी तो यही कामना है कि वे उसके दुख से दुखी न होकर सुख से सिद्धि प्राप्त करें। उसे इस बात पर बड़ा संतोष है कि दैव ने उसी के ऊपर वधू-वंश की लाज डाली और उसकी सखियों को यह दुःख सहना न पड़ा।

उसकी विरह जनित सहानुभूति तो देखिए—

मुझसे पहले तू सनाथ हो यही विनय इस घट की।

'उनके श्रम के फल सब भोगें' यही उसकी विनय है। शुद्धोदन भी उसके धैर्य की प्रशंसा करते हैं।

धीरे है यशोधरे तू, धैर्य कैसे मैं धरूँ।

उसे अपने प्रेम की शक्ति पर पूर्ण प्रत्यय है। गौतम गये हैं, तो जायें, पर वे अवश्य लौट कर आयेंगे। अकारण उसे बिना अपराध छोड़ कर कहाँ जा सकते हैं।

देखूँ एकाकी क्या लोगे
गोपा भी लेगी, तुम लोगे
मेरे हो तो मेरे होगे,
भूले, हो पहचानो।

जब वह यहाँ जी रही है तो वे भी वहाँ अवश्य जीते होंगे।

पर मेरा प्रत्यय तो फिर भी है, मेरे ही प्राण संग

उसे अपनी पतिलीनता एवं तन्मयता में वृष्टि में उनकी दयादृष्टि का, शरद ज्योत्स्ना में उनकी शान्त कान्ति का आभास मिलता है। पेड़ उन्हीं का त्याग देखकर अपने पत्ते त्याग रहे हैं।

उन्हीं के स्वागत फूल फूल में खिले हुए हैं। निर्झर उन्हीं को खोजते फिरते हैं।

राहुल-जननी का वात्सल्य ही यशोधरा के विरह का सहारा है। वह उसमें विभोर होकर राहुल के सुलाने-जगाने खिलाने-पिलाने बहलाने-सिखाने में ही अपने दिन काटती है। देखिए उसके वाक्य कैसे मार्मिक हैं 'गाती हूँ बेटा' उनके लिए रो रही हूँ, तो तेरे लिए गाऊँगी क्यों नहीं? पर उसका वात्सल्य भी उसकी महत्व भावना से कैसा व्यापक एव अलौकिक हो गया है?

बेटा प्रसव की सी पीड़ा मुझे होती है।
बहन बनेगी वही तेरी सिद्धि उनकी॥

यशोधरा के स्वभाव की एक प्रमुख विशेषता उसका गर्व है पर यह गर्व रूपाभिमान अथवा कुलाभिमान नहीं है, सच्चा धर्म गर्व है, पातिव्रत्य गर्व है और अपना दासीत्व गर्व है। 'खोज हम लावें उन्हें क्या वे असमर्थ हैं' में गर्व के साथ विवेक भी है।

जाओ नाथ अमृत लाओ तुम मुझ में मेरा पानी
चेरी ही मैं बहुत तुम्हारी मुक्ति तुम्हारी रानी।

वह जानती है—

भक्त कहीं जाते नहीं, आते हैं भगवान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने गर्व-पूर्ण कर्त्तव्य-सम्पादन पर देखिए उसे कैसा संतोष होता है।

गोपा वहीं है छोड़कर उसको गये थे वे जहाँ।

गौतम ने अन्त में उसी के पास आकर उसका मान-मोचन करने पर उसे दीनता की कैसी मार्मिक अनुभूति हो रही है :

नाथ, विजय है, यही तुम्हारी
दिया तुच्छ को गौरव भारी
अपनाई मुझ सी नारी,
होकर महा महान !

वह गर्विणी गोपा अन्तिम बार भी राहुल जैसे पुत्र का दान देकर अपनी मान-रक्षा करती है :

तुम भिक्षुक बन कर आये थे,
गोपा क्या देती स्वामी
था अनुरूप एक राहुल ही,
रहे सदा यह अनुगामी।

उसका विवेक भी बड़ी उच्च कोटि का है। वह गौतम के प्रमोद और करुणार्द्र हृदय को पहचानती है, जो उसके निर्मोह त्याग का कारण है। गौतमी के 'तभी न वे इतना दुख दे गये हैं' कहने पर वह उत्तर देती है।

'नहीं! वे अपने दुख का भागी बना कर हमें अपना सच्चा आत्मीय सिद्ध कर गये हैं।

योग अथवा ज्ञान मार्ग के विरुद्ध वह भक्ति-मार्ग की प्रतिपादिका है। राहुल के शब्द कैसे ऊँचे हैं।

अपने को खो कर उन्हें खोज रही तू आज
और आत्मरत हैं उधर वे तेरे अधिराज।

ऐसी नारी के प्रति गौतम भी कुछ कहने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं। बस,

पाला है तुमने जिसे वही बधू का धर्म।

शुद्धोदन तो उसके बिना गौतम को भी नहीं चाहते।

गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको।

स्वयं काव्य के अन्दर ही गुप्ता ने यशोधरा और पति-परित्यक्ता सीता की परिस्थितयों के सादृश्य की ओर संकेत किया है। दोनों का विरह अनिश्चित काल के लिये था—केवल पुत्र-प्रेम ही दोनों का सहारा था। पर सीता को स्वामिवंचिता होने के साथ साथ मिथ्या लोकापवाद भी सहन करना पड़ा। यशोधरा केवल पति से ही वियुक्त हुई, पर सीता को तो पति के साथ साथ सब सगे सम्बन्धी, सास श्वसुर भगिनी, देवर राज्य-संपत्ति आदि, गर्भिणी होते हुये भी छोड़ना पड़े और स्वयं वन में रहना पड़ा। दोनों के चरित्रों में भी पर्याप्त भेद दिखाई पड़ता है। जहाँ यशोधरा में गर्व को प्रमुखता है, सीता में सहज विनम्रता कोमलता, सरलता मधुरता एवं एकान्त पतिलीनता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

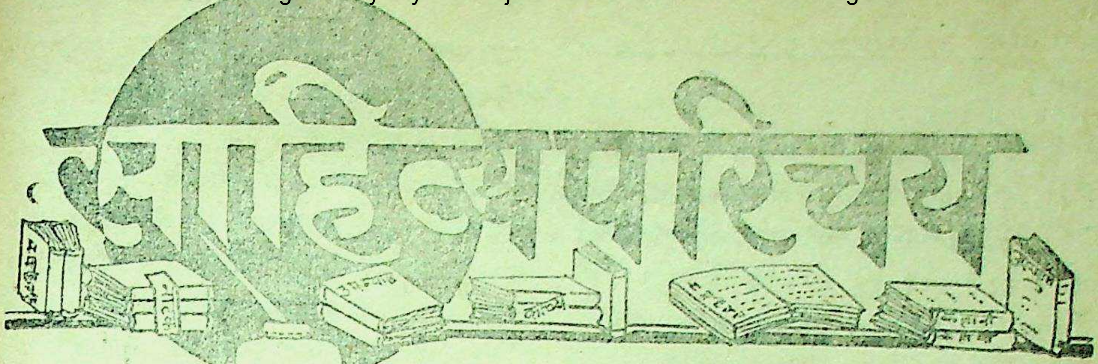

आलोचना और काव्य-संकलन—

अष्टछाप-परिचय—(आलोचना सहित जीवनी और काव्य संग्रह) लेखक—श्री प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक अग्रवाल प्रेस मथुरा, मूल्य ४) रु० पृष्ठ संख्या २६१।

कृष्ण-भक्ति शाखा के कवियों में अष्टछाप के कवियों का विशेष महत्व है। हिन्दी साहित्य गगन के सूर भी इन्हीं में से थे। यद्यपि सूर और नन्ददास का साहित्य उपलब्ध है तथापि अन्य कवियों का साहित्य संग्रहालयों से ही सीमित है। श्री मीतलजी ने इन कवियों की मधुर वाणी में चुने हुए पदों को जनता के सामने रखकर हिन्दी जनता का बड़ा उपकार किया है। कवियों की जीवनी का आधार चौरासी वैष्णवों की वार्ता तथा दोसौ बावन वैष्णवों की वार्ताओं में संग्रहीत जीवनियों और उस पर श्री हरिरायजी भावप्रकाश की टीका है। यद्यपि लेखक महोदय इन ग्रन्थों में वर्णित घटनाओं को सोलह आने ठीक नहीं मानते तथापि उन ग्रन्थों की प्रामाणिकता में उनको संदेह नहीं है अर्थात् उनको श्री गोकुलनाथ और हरिरायजी की ही कृतियाँ माना है। चौरासी वैष्णवों की वार्ता को तो नहीं किन्तु दोसौ बावन वैष्णवों की वार्ता को संदेहास्पद माना है।

लेखक महोदय ने इन ग्रन्थों के विरुद्ध डाक्टर वर्मा के आक्षेपों का सीधा उत्तर न देकर प्राप्त पोथियों की तिथि का आधार लिया है। इस ग्रन्थ में साम्प्रदायिक रीति-रिवाज और कीर्तन और संगीत आदि की पद्धतियों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है, परन्तु एक बात समझ में नहीं आई कि लेखक महोदय तो कहते हैं कि सूरदासजी पहले शिष्य, सेवक बनाते थे और उनका नाम सूर-स्वामी था परन्तु पुष्टि सम्प्रदाय होने के अनन्तर दैन्य-भाव को ग्रहण कर सूर-स्वामी और परमानन्द स्वामी क्रमशः सूरदास और परमानन्ददास हो गये। किन्तु अधिकांश विद्वान यह मानते हैं कि वल्लभ सम्प्रदाय में शिक्षित होने पर उनका दैन्य-भाव दूर होगया था 'सूर ह्वै कै घिघियात काहे को है' यह बात प्रसिद्ध ही है।

मीतलजी की आलोचना में ऐतिहासिक खोज का अवश्य प्रयास है किन्तु उसमें साहित्यिक सौष्ठव का कम उद्घाटन किया गया है। वे आलोचनाएँ अधिकतर प्रभावात्मक है। पदों के संग्रह की दृष्टि से यह ग्रन्थ अवश्य महत्त्वपूर्ण है।

—गुलाबराय एम॰ ए॰

कविता

दिल के तार—ले०—सुदर्शन, प्रकाशक वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स लिमिटेड, बंबई, मूल्य १।), पृष्ठ ७२, गीत संख्या ४३।

प्रस्तुत पुस्तक में सुदर्शन जी ने अपने उन ४३ गीतों का संग्रह कर दिया है जिनको संसार चित्रपट के जगत् में सुन चुका है। अधिकतर गीत "सिकन्दर" नामक चित्र में आगये थे। सिनेमा के लिखे गये इन गीतों को सिनेमा-जगत में जो ख्याति मिली थी उसी से प्रेरित होकर कदाचित सुदर्शनजी ने अपनी प्रतिभा को साहित्यक्षेत्र में अजमाने का मानो प्रथम प्रयत्न किया हो। आजकल का सिनेमा जिस जनता के लिए अधिकतर होता है उसी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए श्रेष्ठ साहित्य नहीं होता कदाचित् इसीलिए और इसलिए भी कि इन गीतों में राग की प्रधानता है विचारों की गंभीरता नहीं। इनको साहित्य-प्रेमी अधिक न अपना पायेंगे। कहानी के प्रसंग में आये हुए कुछ गीत यहाँ मुक्तक के रूप में उखड़े हुए से लगते हैं, उदाहरणार्थ "मँझधार" शीर्षक गीत का बिना प्रसंग के अर्थ समझ में आ ही नहीं सकता।

भाषा की दृष्टि से इस संग्रह का क्या मूल्य है, यह बतला देना कठिन नहीं, क्योंकि सिनेमा-जगत् में तो अधिकतर "हिन्दुस्तानी" ही चलती है, अतः—

"हुस्न है, शबाब है, वक्त लाजवाब है।
मैं भी चहचहा उठूँ, तू भी चहचहाए जा ॥"

देखकर कोई आश्चर्य न होना चाहिए। हाँ, यह अवश्य आपत्ति की बात है कि जोत (ज्योति), रुत (ऋतु), सुपने (स्वप्न), बरखा (वर्षा) इत्यादि के स्थान पर भी कोई फारसी का शब्द क्यों न रख दिया गया।

इन गीतों में गायक ने जीवन की कोई गंभीर विवेचना भी नहीं की है। केवल कुछ पंक्तियों में "कब रोज रोज उमड़े दरिया में नई रवानी आती है" या "तू नहीं आयो जोवन आयो" की ही ध्वनि किसी न किसी रूप में सुनाई पड़ती है।

पुस्तक का गेटअप बहुत ही सुन्दर है तथा गीतों में आए हुए विदेशी शब्दों का अर्थ भी नीचे दे दिया गया है, फिर भी कहीं कहीं "इशारे" का "इशोर" हो ही गया है। सिनेमा-जगत् का साहित्य-संसार की ओर बढ़ना अवश्य प्रशंसनीय है किन्तु यह समझ में नहीं आता कि जब सिनेमागृह में झूमते हुए मनमयूर एक आने में ही इन गीतों की पुस्तक को प्राप्त कर लेते हैं तो एक युग पीछे सवा रुपया देकर कौन "चहचहाना" चाहेगा।

अञ्जलि—लेखक-जगदीशप्रसाद दीक्षित, बी० ए०, एल-एल० बी०, प्रकाशक जगदीशप्रसाद दीक्षित सिंघाना (जयपुर), मूल्य शायद नहीं रखा गया, पृष्ठ संख्या २८, गीत सं० १२।

यद्यपि कुमार आलोचक को विधुर जीवन का अनुभव नहीं फिर भी एक सहृदय के नाते वह यह मानता है कि "इन मनोविकारों में आप बीती वास्तविक अनुभूति है।" "दुखी हृदय की यह गुनगुनाहट" कवि की उस मानसिक स्थिति की द्योतक है जिसने अपने जीवन में पहिली बार उसके ऊपर एक ऐसा बज्र टूटता है जिसका उसे स्वप्न में भी डर न था। अपनी पत्नी की रुग्णावस्था से "उद्बोधन" तक के गीतों में भले ही अधिक भावुकता न मिले स्वाभाविकता से कोई भी प्रभावित हो सकता है। वियोग में पत्नी की सभी वस्तुयें, बच्चों का रोना, आदि घटनाएँ और भी दुःख को बढ़ाती हैं। कहीं-कहीं कवि आवश्यकता से अधिक भावुक हो जाता है—

"निर्धन हूँ वरना बनवाता
एक नया ही "ताज"।"

भिन्न-भिन्न उत्सव और भिन्न-भिन्न ऋतुएँ एक विधुर के जीवन में क्या क्या भाव उत्पन्न करती हैं यह भी स्थान-स्थान पर स्पष्ट कर दिया गया है—

"मिलो सुहागिन लो गलबाहीं।
सब अरमान मिटाओ ॥"

कवि ने भाषा को शुद्ध बनाने का सफल प्रयत्न किया है और 'वयस-कुसुम कर्तन" (दे० पंचवटी) इत्यादि दूसरों के शब्द समूह का भी प्रयोग कर ही गया है। किन्तु कर्तव्य का कवि पर इतना बोझ जान पड़ता है कि वह "बन अचल" उस कर्तव्य में बड़ी ही फुर्ती से लीन हो जाता है। गीत केवल अपनी एक व्यक्तिगत समस्या को शुद्ध भौतिक दृष्टिकोण से लेकर ही लिखे गये हैं, इसलिए उनके स्थायित्व का तो प्रश्न ही नहीं आता। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यदि दीक्षितजी इतने कर्तव्यपरायण रहे तो हमारे सामने कोई दूसरी रचना न रख सकेंगे।

—ओम्प्रकाश एम० ए०, एल-एल० बी०

बाहु-बली—ले०-श्री "हीरक"; प्रकाशक हिन्दी प्रकाशन-भवन, बाँसफाटक, काशी; पृष्ठ संख्या ४+१६ मूल्य ।।) आना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन-पुराण की एक प्रसिद्ध कथा को लेकर कवि ने उस को ५ सर्गों में विभाजित कर दिया है। कथांतों का निर्देश सर्गों या अध्यायों के द्वारा न करके शीर्षकों के द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक कथानक में राष्ट्रीयता, प्रजातन्त्रवाद आदि को लाने के लिए कवि ने जो परिवर्त्तन कर दिये हैं उनसे धार्मिक व्यक्तियों को भले ही कोई आपत्ति हो, हाँ, काव्यप्रेमियों को अत्यधिक सन्तोष है। राजधर्म का कितने सरल शब्दों में विवेचन है:—

"कर्तव्य श्रेष्ठ यह राजा का, ।
निष्पक्ष प्रजा में सदा रहे ॥
हो पूर्ण शाँति जैसे, वैसा कर,
यत्न, देश सम्पन्न करे ॥"

कई स्थानों पर हीरकजी ने नारियों से राष्ट्रनिर्माण के लिए बहुत कुछ अभीष्ट आशा भी रखी है और शायद इसीलिए स्त्री-पात्रों की कल्पना भी, इतिहास के विरुद्ध, इस कथा में की गई है:—

"हम भोग विलासों की रानी,
यह भूल न मन में भाव धरो।
रख हीन संकुचित ये विचार,
मत नारी का अपमान करो।
दो उसको अवसर देखो फिर,
कर कौन कार्य दिखलाती है।" (४)

कवि को वर्णनों में ही अच्छी रुचि है और कुछ वर्णन, शब्द-विन्यास से, बड़े मनोहर लगने वाले बन गये हैं, कदाचित् पढ़ने की अपेक्षा इनके सुनने में और भी अधिक आनंद मिलता :—

" भौं हैं तानी, मुख बक्र बना,
दांतों पर दांतों का जमना।
ओठों को ओठों ने दाबा,
मुख-का यम-सा भाषण लगना।" (२८)
" बाहू से बाहू मिला,
हृदय से हृदय, कंठ से कंठ मिला।
मानो नभगंगा-कर्मभूमि को,
गंगा का उपकंठ मिला।" (२५)

काव्य में जिन गीतों का समावेश किया गया है उनसे काव्य की शोभा अधिक नहीं बढ़ती, और भाषा को कुछ सरल रखने पर भी शायद काव्य की सफलता कम न रहती। हरीक जी का यह प्रथम प्रयास वस्तुतः प्रशंसनीय है।

हृदय-तरंग—ले०—श्री रघुवरनारायणसिंह, प्राप्तिस्थान भारती-भवन, मुंगेर; मूल्य १।); पृष्ठ संख्या ५ + ८८; गीत संख्या ३४ + २ भूमिका लेखक श्री शारिधर वाजपेयी "आजाद"।

बिहार-केसरी की दृष्टि में "यह पुस्तक अपनी कीर्ति स्वयम् बोलती है"। फिर भी आलोचकों को भी रघुवर बाबू के विषय में बहुत कुछ कहना है। पुस्तक में लगे हुए फोटो को देखकर ही "लेखक" का व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाता है, उनकी गंभीरता, विचारों की परिपक्वता तथा अध्ययनशीलता का जो परिचय उनके चित्र से मिलता है वह पुस्तक के देखने पर और भी दृढ़ हो जाता है। "परिवर्तन" शीर्षक कहानी में तो नहीं, किन्तु "आशा", "विरह", "प्रेम", तथा "प्रतिशोध" शीर्षकों के अन्तर्गत जो विचारधारा है वह अधिक सफलता के लिए गद्य का आश्रय चाहती है। अंतिम कविता में कवि ने देश दशा पर भी दृष्टि डाली है:—

"सभी देश संसार की चक्रगति को
पहचानते हुए
अपने-अपने पथ निर्धारित कर रहे हैं।
पर भारत केवल एक टक आँखें पसारे
देख ही रहा है?
यह नर-हत्या, लूट, लज्जाहरण! हा!" (८८)

"आशा" शीर्षक कविता में विचार-गंभीरता की सुन्दर झलक मिल जाती है:—

"किसी को किसी से भी ईर्ष्या न होती।
मनुष्यता का विकास होता,
तृप्ति होती, हृदय में संदेह न होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनापन का राज्य होता, प्रसन्नता होती,
ईश्वर की भक्ति होती, स्वर्ग की इच्छा से दूर
कोई भाग्य को न कोसता।
तू यदि संसार में न होती तो—" (३५)

प्रस्तुत पुस्तक में यदि "परिवर्तन" और "शुभ-कामना" जैसे लेख (?) न होते तो भी कोई हानि न होती। और यदि जितना ध्यान गैटअप को बनाने में दिया गया है उतना पुस्तक के सीने और काटने पर भी दिया जाता तो वह दशा न होती जो पृष्ठ आठ पर "स्वयम् बोल" रही है।

ओमप्रकाश, एम० ए०, एल०-एल० बी०।

कविता

मेधावी—लेखक-श्री रांगेय राघव, प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद। पृष्ठसंख्या २६४, मूल्य ३)

श्री रांगेय राघव ने विश्व के इतिहास और विकास क्रम का दिग्दर्शन काव्यमय भाषा में कराने की चेष्टा की है। इस विकास-क्रम के उद्घाटन में भूगोल, खगोल, भूगर्भ विद्या, समाज शास्त्र और दर्शन सभी का यथास्थान समावेश किया गया है।

इन विषयों को काव्य की रसात्मकता प्रदान करना एक कठिन कार्य है। इस बात को ध्यान में रखते हुए यह कहना पड़ेगा कि लेखक ने एक दुष्कर कार्य को हाथ में लिया है और वैज्ञानिक इतिवृत्तता को सरसता प्रदान करने की चेष्टा की है। विज्ञान में भी सब विषय शुष्क नहीं है। विश्व की अनन्ता में मानव की न्यूनता काव्य के लिए एक रोचक विषय बन जाता है। लेखक ने काव्य के प्रारम्भिक सर्गों में इसी विराट-भावना के जाग्रत करने का प्रयास किया है। उस विराट में भी कवि ने नारी सौन्दर्य की झाँकी पाई है—

रजनी अञ्चल पर तारागण
ऐसा तेरा ही अवगुंठन
ले झलक दिखा अपनी क्षण भर
लय तालों पर नर्तित अणु अणु
सत्ता नारी का चिर नर्तन

धर घर चलते ग्रह उपग्रह
आकर्षण में चंचल बनते
तारों की गूँज सजल सुन्दर
कोमल नूपुर की रुनन झुनन
सत्ता नारी का चिर नर्तन।

कवि ने इस सत्ता को गतिमय किन्तु शाश्वत माना है। वे एक प्रकार से भौतिक एकात्मवाद के अनुयायी प्रतीत होते हैं। लेखक महाशक्ति का उल्लेख करता है किन्तु वह जड़ शक्ति ही है। लेखक ने जो सृष्टि की है वह वैज्ञानिक है और उन वैज्ञानिक सत्यों का बड़ी सफलता के साथ उद्घाटन किया गया है। उसमें कवित्व लाने को सूर्य और पृथ्वी को नायक नायिका का रूप दिया गया है। पृथ्वी पर जीवन और चेतनता के विकास का इस प्रकार वर्णन दिया गया है—

जागा सितार फिर जाग उठा
रे जीव—गुणात्मक परिवर्तन
दो मिले बदल परिमाण सतत
नूतन बन करते थे नर्तन
जलचर, थलचर नभचर आये
क्रम-क्रम विकास से हुआ सुमन
ज्यों महाप्राण की चिर विराट
छवि में आया था लघु स्पन्दन।

इसके पश्चात् सभ्यता का विकास-क्रम दिया है। इसमें लेखक ने विकासवाद का आश्रय लिया है। मानव किस तरह के आखेट व्यापार से गुहा निवासी बना। अग्नि का प्रयोग करना सीखा इत्यादि। भाषा के उदय का बड़ा सुन्दर वर्णन दिया है। उसमें वैज्ञानिक तथ्य भी प्रतीत होता है—

सामूहिक जो भय लय गुञ्जन
उन कण्ठों में जो गूँज उठा था
वही एक दिन भाषा बनकर
वस्तु विश्व पर झूम उठा था

मैं विकासवाद का विरोधी नहीं हूँ किन्तु सभ्यता के विकास की कल्पना को ध्रुव सत्य का रूप देना कुछ अनु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित सा जँचता है। भारत में आर्यों का बाहर से आगमन भी एक विवादास्पद विषय है उसको भी ध्रुव सत्य का रूप दिया गया है। लेखक ने इतिहास को भारत में सीमित नहीं रक्खा है वरन् वह बड़े कौशल से अन्य देशों की सभ्यताओं की मार्मिक विशेषताओं को ले आया है। लेखक का दृष्टिकोण उदार है। उसने इन सभ्यता की देन को भी स्वीकार किया है और इनकी विकृति को भी देखा है—

आज मुहम्मद के उपदेशों का
वह साम्य कहाँ खोया है
आह कहाँ ईसा की करुणा!
देख देख यह मन रोया है!

लेखक ने किसान मजदूर और पूँजीवाद पर भी जो प्रगतिवाद के प्रिय विषय हैं लिखा है। पूँजीवाद का गीत नृत्यगीत है और पूँजीवादियों की मनोवृत्ति का अच्छा चित्रण करता है। लेखक संसार में ईश्वर के विचार को भी वर्गभेद का साधक मानता है—

क्या यह ईश्वर की कवित्वमय
एक कल्पना पाश नहीं थी?
क्या यह वर्णभेद रखने की
अन्धकार मय बात नहीं थी?

अन्त में लेखक ने भारत को एक आशावादी उद्‌बोधन दिया है।

इस ग्रन्थ को महाकाव्य तो कठिनता से ही कहा जायगा क्योंकि इसमें वैज्ञानिक इतिवृत्तता और विचार अधिक हैं। रस के छींटे कहीं कम और कहीं अधिक हैं फिर भी विषय की कठिनाइयों को देखते हुए यह काव्य पर्याप्त रूप से सफल हुआ है।

—गुलाबराय

धर्म

विनय-पीयूष—(द्वितीय हिलोर) लेखक—महात्मा श्री अञ्जनीनन्दनशरणजी, प्रकाशक—पीयूषधारालय, बड़ौदा पृष्ठ संख्या २०२ मूल्य ३)

यह विनय-पत्रिका की टीका का एक अंश है जो क्रमशः प्रकाशित हो रहा है। इसमें २५ से ३८ संख्या तक पदों की विस्तृत टीका दी गई है। इसकी पाठ-शुद्धि के लिए आठ हस्तलिखित टीकाएँ और १८ प्रकाशित टीकाओं का सहारा लिया गया है और हरएक पद के साथ पाठान्तर भी दिये गये हैं।

टीका में भक्त की भावुकता के साथ पाण्डित्य भी है। अन्तरकथाओं की व्याख्या विस्तार के साथ की गई है और पदों के समझने के लिए जो शास्त्रीय ज्ञान अपेक्षित है वह भी इसमें कराया गया है तथा तुलसीदासजी के अन्य ग्रन्थों के साथ इन पदों की संगति भी दिखाई गई है। पुस्तक साधारण पाठकों और विद्यार्थियों दोनों के लिए उपादेय है।

—गुलाबराय

उपन्यास

रेखा—लेखक—श्री राजेन्द्र सक्सेना। प्रकाशक—कल्याण साहित्य मन्दिर प्रयाग। मूल्य १), पृष्ठ सं० ८४।

इस छोटे से उपन्यास में रोमांस, विषाद, आदर्श-राजनीति और सामाजिक सम्बन्धों का अजीब मन्थन है। अशोक, रेखा, शीला और नीलिमा तीन देवियों का प्रेम पात्र है, जिनमें पहली दो सगी बहनें हैं। विवाहित होने पर रेखा के प्रेम का अधिकारी दूसरा व्यक्ति हो जाता है। और रेखा भी धर्म और कर्तव्य वश ऐसा मानती है, पर पर अशोक के लिए उसके दिल में छिपा हुआ प्रेम का अँकुर कभी मिटा नहीं। विधवा होने पर रेखा अपनी सम्पत्ति से आश्रम खोलती है पर वहाँ भी उसे आत्म-तुष्टि नहीं होती और बीमार होकर वह महाप्रयाण की ओर अग्रसर होती है। अन्त समय पर वह अशोक के साथ अपनी छोटी बहिन का सम्बन्ध करा देने में एक सन्तोष अनुभव करती है और इसी अवसर पर नीलिमा आजीवन कुमारी रह कर रेखा के आश्रम को चलाने का व्रत ले लेती है। नीलिमा का त्याग आदर्श है। लेखक ने छोटे से उपन्यास में कितनी ही चीजें भरने की कोशिश की है, जिससे पात्रों के चरित्र का विकास नहीं हो पाया। हाँ उपन्यास दिलचस्प है और वह एक साँस में पढ़ा जा सकता है।

—रमेशवर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

112997
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्की—लेखक—श्री मन्मथनाथ गुप्त, प्रकाशक—कल्याणी साहित्य मंदिर प्रयाग। मू० ३) पृष्ठ सं० २२२

उपन्यास की पृष्ठभूमि नोआखाली का काण्ड है। अतएव उपन्यास का विषय अत्याधुनिक है। इस साम्प्रदायिक कलह, हत्या और मारकाट के विषाक्त वातावरण के अंदर भी कुछ आर्थिक तत्त्व काम करते रहते हैं, अर्थात् कोई भी तूफ़ान न तो निरा अंधड़ ही होता है और न केवल पानी का वेग। उसमें कितनी ही चीजें साथ मिली रहती हैं। आज के साम्प्रदायिक उत्पात का सूत्रपात नोआखाली से हुआ। पूर्वी बंगाल में इसी प्रकार पश्चिमी पंजाब में आम प्रजा की हालत गरीब ही तो है। देहाती क्षेत्रों में जमीदार किसानों को चूसते हैं। दोनों ही जगह मुसलमान जमीदार भी हैं और हिन्दू जमींदार भी। किसानों का इनसे वर्ग संघर्ष है किन्तु मुसलिम लीग के प्रचार ने मुसलमान किसानों की इस असली भावना को धार्मिक और राजनैतिक भावों के तूफ़ान से ढक दिया। उन्हें दिखाई देने लगा पाकिस्तान हो जायगा, वे जमीन के मालिक हो जायेंगे। साथ-साथ मजहबी प्रचार ने मुसलमान जमीदारों की रक्षा करली। हिन्दू जमींदार और साथ ही उनके सजातीय बंधु मौत के शिकार बने। जमींदार दशरथ की हत्या की गई, उनकी पत्नी के साथ अमानुषिक कृत्य हुए। पुत्री रेनुका के साथ सारे दुष्कर्म करके उसे एक साधारण मुसलमान के साथ ब्याह दिया। रेनुका का परिमल नाम के एक छात्र के साथ प्रेम था किन्तु सामाजिक बंधनों के कारण उनका विवाह न हो सका। परिमल ने अपने एक मुसलमान साथी के साथ रेनुका का पता लगाने की पूरी कोशिश की और अंत में अस्पताल में रेनुका से उसकी तब भेंट हुई जब वह लोक लीला समाप्त करने की तैयारी कर चुकी थी इस प्रकार उपन्यास में नई घटनाओं के ऊहापोह के साथ एक प्रगतिवादी दृष्टिकोण दिखलाया गया है। इस अंधकार युग में भी परिमल और उसके मुसलमान साथी का साथ-साथ काम करना प्रकाश की किरणें हैं। कहीं २ चित्र वीभत्स होगया है पर कुल मिलाकर उपन्यास समयोपयोगी एवं पठनीय है। —रमेशवर्मा

कहानी

पुष्प-कुटा—लेखक—श्री बी० पी० खन्ना 'विमल' एम० ए०। प्रकाशक साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा। पृष्ठ संख्या २४० मू० २।)

इस कहानी संग्रह में लेखक की विभिन्न पत्रिकाओं में विशेषकर चांद में प्रकाशित ग्यारह कहानियों का संग्रह है। ये कहानियाँ सामाजिक हैं और इनमें वर्तमान समाज की कठोरता पर एक कटु व्यङ्गय है। दुनियाँ में बहुत सी स्त्रियों के पतन का कारण दहेज की होड़ और वृद्ध विवाह होता है और उससे वास्तव में पतित अपराधी नहीं ठहरता है वरन् समाज अपराधी बन जाता है, यह बात 'अपराधी कौन' में भली प्रकार दिखाई गयी है। इन कहानियों में प्रेम कथायें हैं किन्तु वह प्रेम अधिकांश में शारीरिक आकर्षण के साथ आदर्शों की एकता और सम्मिलित ध्येय पर अवलम्बित है। कर्तव्य की पुकार में कुसुम और निर्मल का प्रेम इसी प्रकार का है। सामाजिक रूढ़ियाँ इसमें बाधक होती हैं किन्तु अन्त में पिता का हृदय परिवर्तन हो जाता है।

अभिशाप में सामाजिक विशेषताओं पर व्यङ्गय है, जो आदमी कुत्ते के इलाज पर ४०) रुपये खर्च कर देता है एक भिखारी के लिए एक पैसा भी नहीं देता। भिखारी उसका अज्ञात पिता ही था। इससे करुणा और पश्चाताप की मात्रा और भी बढ़ जाती है। बहुत सी कहानियों का अन्त अप्रत्याशित रूप से होता है जो उनको अधिक रुचिकर बना देता है। यद्यपि लेखक सामाजिक बन्धनों के पक्ष में नहीं तथापि उसने उन्मुक्त प्रेम को सीमा से बाहर होने से रोका है। परिणाम में अत्यधिक स्वतन्त्रता का दुष्परिणाम दिखाया गया है और साथ ही अप्रत्याशित रूप से जो पति-पत्नी के सम्बन्ध में आवद्ध होने वाले थे हाथ पर एक अक्षर D के चमक आने से वे भाई-बहन के सम्बन्ध में रहने लगते हैं। कहीं-कहीं यह प्रत्याशितता स्वाभाविकता की मात्रा का उल्लङ्घन कर गई है। जैसे शोफ़र में यह बात समझ में नहीं आती कि नायका का पति शोफर रूप से उसके यहाँ नौकरी करता रहे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह पहचान में न आवे। वैसे इसमें भी हृदय परिवर्तन की भावना प्रधान है। कौतूहल और शिक्षा दोनों दृष्टियों से यह कहानियाँ बहुत उत्तम हैं।

—गुलाबराय एम० ए०

'सुनो बच्चो'—ले०-रघुवीरशरण 'मित्र' प्र० भा० राष्ट्रीय साहित्य, प्रकाशन-परिषद्, स्वराज्यपथ सदर, मेरठ।

यह बाल-साहित्य की अनूठी पुस्तक है। यह पुस्तक देश की एक महान घटना—देश की स्वतन्त्रता, तथा एक महान् दुर्घटना—पूज्य बापू की मृत्यु के पश्चात् लिखी गई है। अतः स्वतन्त्र-भारत के बच्चे-बच्चे तक बापू के अमर सन्देश पहुँचाने का सा प्रयत्न है। बापू के महान् आदेश—आस्तिकता, धर्म तथा शीलाचरण की धारा को बालसुलभ सरलता, बालोचित कल्पना और सुबोध भाषा में बाँध कर लेखक ने एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति की है। 'सपेरा' कविता मनोरंजनात्मक, होने के साथ साथ शिक्षाप्रद भी है; 'स्वदेश', 'किसान की कहानी' 'तिरङ्गा झण्डा' आदि कविताएँ राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत हैं; 'लव-कुश की तस्वीर', 'सत्याग्रही प्रह्लाद', 'ध्रुव की कहानी आदि प्राचीन आदर्श बालकों के मनोरम चित्र हैं। इस प्रकार बाल-मनोविज्ञान और स्वभाव-विकास को दृष्टि में रख कर पुस्तक की रचना हुई है।

गीत बालकों के लिए उचित तथा भाषा सरल है। चित्रों से समस्त पुस्तक भरी पड़ी है। छपाई शुद्ध है।

—'राधे-राधे'

'झरोखे'—ले० श्री सुदर्शन—हिन्द किताब्स लिमिटेड, बम्बई। मूल्य १॥)

इसमें जगत और जीवन की ३७ झांकियाँ हैं। सभी झांकियाँ लेखक की तीव्र अनुभूति, मौलिकता और संकेतात्मक भावुकता की परिचायिका हैं। इनमें गद्य-गीतों की ही मधुरता और कोमलता है: गीति-काव्य की सी सरल तथा प्राञ्जल कल्पना का पुट है: और कहानी का सा सूक्ष्म, निर्दोष रचना-विधान है। कहना चाहिए सब झांकियाँ भाव-विन्दु हैं। चाय के घूँटों की भांति गटक गटक पी जाने की चीज इसकी रचनाएँ नहीं हैं। पढ़ कर कुछ सोचने-समझने की प्रेरणा मिलती है और इसे समझने में हृदय का साथ रहता है।

कहीं-कहीं व्यंग्य, सूक्तियाँ तथा अन्योक्तियों का सुन्दर समावेश है। 'तीन कहकहे' बड़ा सजीव चित्र है। भाषा सरल, सुबोध तथा प्रौढ़ है। सुदर्शनजी की अन्य रचनाओं में इस पुस्तिका का अन्यतम स्थान रहेगा

गेट-अप, छपाई, सफाई अच्छी है।

—'राधे-राधे'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय—

अपने लेखकों से—हम अपने लेखकों के सहयोग के लिए उनके आभारी हैं, किन्तु हमें खेद है कि हमारे कुछ लेखकगण अपनी लेखनी को विराम दे रहे हैं। अब साहित्य के पलायनवाद का युग खतम हो चला है किन्तु न जाने क्यों हमारे लेखक साहित्योद्यान के सौरभ का गूँगे के गुड़ की भाँति मन ही मन आस्वाद लेते रहते हैं और अपनी प्रसन्नता में दूसरों को भागी नहीं बनाना चाहते हैं। सरस्वती देवी का प्रसाद द्रौपदी की हाँडी के चावलों की भाँति जितना बटता है उतना ही बढ़ता है। हम अपने लेखकों से निवेदन करेंगे वे अनुदार न बनें। उनके पास नेत्र और वाणी दोनों हैं। उनके लिए 'गिरा अनयन नयन बिनु बाणी' का प्रश्न नहीं है। हम उनके लिए कुछ विषयों का सुझाव देते हैं। उन विषयों पर तथा उनसे मिलते-जुलते विषयों पर लेख भेजने की कृपा करें—

विषय—(१) युद्धकालीन साहित्य, (२) हमारे साहित्य का नया कदम क्या हो? (३) उपन्यास साहित्य की वर्तमान स्थिति, (४) साहित्यिक गति-अवरोध के कारण और उसके दूर करने के उपाय, (५) नये लक्षण ग्रन्थों की बनने की आवश्यकता। (महाकाव्य और नाटकों आदि के स्वरूप में जो परिवर्तन हुए हैं उनके आलोक में) (६) नये काव्य की नई शैलियाँ और नए साधन, (७) पंतजी की नई कृति, (८) आलोचना पर मनोविश्लेषण का प्रभाव, (९) हिन्दी गद्य में हास्य व्यंग्य, (१०) निबन्ध-साहित्य की वर्तमान स्थिति और उसके लिए दिशा-निर्देश, (११) साहित्य में प्रान्तीय सहकारिता की आवश्यकता, (१२) प्रसादजी के नाटकों की इतिहास को देन।

लेख सम्पादक के पास भेजे जायँ, किसी व्यक्ति विशेष के नाम से, विशेषकर सम्पादक के वैयक्तिक नाम से न भेजे जायँ। वे [illegible] पहुँच जाते हैं और घर से आफिस आने में देर लगती है और कभी-कभी उनमें सम्पादक का असर आ जाता है अर्थात् वे रास्ता भूल भी जाते हैं (लेकिन बहुत कम)। लेखकगण अपने पत्र पर तो पूरा पता दें ही, किन्तु लेख के नीचे या ऊपर भी पूरा पता देने का कष्ट करें। लेख बहुत से बहुत साहित्य-सन्देश के पाँच पृष्ठों से अधिक का न हो। पत्र न पहुँचने की शिकायतें या सन्देश के आर्डर व्यवस्थापक के पास आने चाहिए।

सूर-जयन्ती—व्रज-साहित्य-मण्डल मथुरा तथा नागरी प्रचारिणी सभा आगरा ने व्रजभाषा के जीवन-प्राण सूरदासजी की पुण्यजयन्ती वैशाख शुक्ला ५ मी गुरुवार ता० १३ मई को बड़ी धूमधाम से मनाई। मथुरा के उत्सव की यह विशेषता रही कि वहाँ बाहर से आये हुए विद्वानों का अच्छा समागम रहा। श्री वियोगी हरि तथा श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल ने अपने भाषणों में साहित्य के तार्किक अध्ययन की अपेक्षा उसके सीधे रसास्वाद पर अधिक बल दिया। उन्होंने बतलाया कि हमारी आधुनिक शिक्षा ने हममें से इस रसास्वाद की शक्ति को मुला दिया है। हमको साहित्य के रस की ग्राहकता उत्पन्न करना आवश्यक है। श्री परीखजी का एक लेख भी पढ़ा गया था जिसमें कि अन्तः साक्ष्य के आधार पर यह सिद्ध किया गया था कि सूरदासजी जन्म के ही अन्धे थे। यदि वे स्थल प्रामाणिक हैं और उनका अलङ्कारिक रूप से प्रयोग नहीं हुआ है तो हमको यह मानना पड़ेगा कि सूर के सूक्ष्म निरीक्षण सम्बन्धी वर्णन या तो दिव्य दृष्टि के आधार पर किये गये थे अथवा सूरदासजी ने परम्परा से सुने हुए ज्ञान को अपनी कल्पना से चाक्षुष ज्ञान की सी सजीवता प्रदान करदी थी। इस युग के बुद्धिवादी लोगों को दूसरी बात ही अधिक युक्ति संगत प्रतीत होगी।

उस अवसर पर प्रस्तुत किये हुए भ्रमरगीत के रूपक का आल इण्डिया रेडियो दिल्ली द्वारा परिप्रेषण हुआ था। आल इण्डिया रेडियो में जहाँ और सुधार हुए हैं वहाँ यह भी सुधार हुआ है कि अब वह व्रज के लोकगीतों और वहाँ के साहित्य की ओर से उदासीन नहीं है। इसके लिए वह बधाई और धन्यवाद का पात्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri